1 शिक्षा मनोविज्ञान
(Nature of Educational Psychology)

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानव है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नही कर सकता है जब तक उस राष्ट्र के प्रत्येक मानव को विकास के सर्वोत्तम अवसर न मिले। मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती है तथा इन शक्तियो के प्रस्फुटन से ही व्यक्ति का विकास होता है। यदि इन शक्तियो को प्रस्फुटित होने के पर्याप्त अवसर प्राप्त नही होते है तो मानव का विकास अधूरा रह जाता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियो का विकास करके उसके ज्ञान व कौशल मे वृद्धि की जाती है। शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित करती है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को सभ्य व सुसस्कृत बनाकर उसे समाज व राष्ट्र का एक उपयोगी नागरिक बनाया जाता है। शिक्षा की यह प्रक्रिया जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त लगातार किसी न किसी रूप मे एक सतत् प्रक्रिया के रूप मे सदैव चलती रहती है। प्रारम्भ मे बालक अपने माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्यों तथा पडोसियो से अनौपचारिक ढग से शिक्षा प्राप्त करता है। पाँच-छ वर्ष की आयु होने पर बालक की शिक्षा की व्यवस्था औपचारिक शिक्षा सस्थाओ मे सुनियोजित ढंग से प्रारम्भ की जाती है। विद्यालयो मे दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ बालक घर, समाज, धर्म, जनसचार आदि औपचारिकेत्तर माध्यमो से भी कुछ न कुछ सीखता रहता है। औपचारिक शिक्षा की समाप्ति के उपरान्त भी सीखने-सिखाने का क्रम किसी न किसी रूप मे अनवरत चलता रहता है। सीखने-सिखाने की सप्रयोजनयुक्त सतत् प्रक्रिया ही शिक्षा है। स्पष्ट है कि शिक्षा नवजात असहाय शिशु का सर्वांगीण विकास करके उसे अपने जीवन के विभिन्न उत्तरदायित्वो का निर्वाह करने योग्य बनाती है। शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक, सवेगात्मक तथा आध्यात्मिक शक्तियो का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्याओ का समाधान करता है, जीवन को आनन्दमय बनाता है तथा जनकल्याण के कार्यो में प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का पुष्प खिल जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा रूपी प्रकाश को पाकर मानव जीवन कमल के समान खिल जाता है तथा उसकी कीर्ति चारो दिशाओ मे फैल जाती है। इसके विपरीत शिक्षा रूपी प्रकाश के अभाव मे व्यक्ति अज्ञानता, दरिद्रता व कष्ट के अधकार मे डूबा रहता है। वास्तव मे, एक ओर शिक्षा जहाँ व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, संवेगात्मक व आध्यात्मिक विकास करती है, वही दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य व सजग नागरिक बनाती है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी

पीढी को उच्च आदर्शो, अभीष्ट आशाओ, उत्कण्ठ आकाक्षाओ, सनातन मूल्यो, विश्वासों तथा प्राचीन परम्पराओं से युक्त अपनी सास्कृतिक धरोहर को तरित करता है। शिक्षा बालक के हृदय मे देशप्रेम, बलिदान व निहित स्वार्थों के की भावना को प्रज्वलित करती हैं। उचित ढग से शिक्षित नागरिको के अनुकरणीय कार्यो के फलस्वरूप ही समाज एव राष्ट्र निरतर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होते है। स्पष्ट है कि शिक्षा व्यक्ति, समाज एव राष्ट्र सभी के विकास मे अत्यत महत्वपूर्ण एव सार्थक भूमिका अदा करती है।

शिक्षा को सदैव से ही समाज तथा राष्ट्र की प्रगति के एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली साधन के रूप मे स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव ही शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मानजनक स्थान दिया जाता रहा है। प्राचीन काल मे शिक्षा का स्वरूप अत्यत सकुचित तथा एकाकी था। उस समय शिक्षा को सूचनाएँ प्राप्त करने तक सीमित माना जाता था। छात्रो की आवश्यकताओ, परिस्थितियो, क्षमताओं, रुचियो आदि का शिक्षा प्रक्रिया मे कोई स्थान नही था। शिक्षा के क्षेत्र मे क्राति लाने का श्रेय मनोविज्ञान को दिया जाता है। शिक्षा मे मनोविज्ञान के प्रवेश के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का उद्‌भव हुआ। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा को बालकेन्द्रित बनाने तथा शैक्षिक समस्याओ का समाधान खोजने मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास किया। मनोविज्ञान ने बालको की प्रकृति को समझने मे सहायता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप माता-पिता, अध्यापकगण तथा प्रशासकतत्र सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सरल, सुगम तथा प्रभावशाली बनाने में सफल होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र मे मनोविज्ञान के प्रयोग के फलस्वरूप शिक्षा प्रक्रिया में सलग्न व्यक्तियो के लिए मनोविज्ञान के तथ्यो तथा सिद्धान्तो का अध्यन अपरिहार्य हो गया। शिक्षा के क्षेत्र मे मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता ने शिक्षा मनोविज्ञान नामक विषय को जन्म दिया। प्रस्तुत अध्याय मे शिक्षा मनोविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। शिक्षा मनोविज्ञान क्या है तथा इसका शिक्षा के क्षेत्र मे क्या महत्व है, इन्ही दो मुख्य बिन्दुओ की चर्चा प्रस्तुत अध्याय में की गई है।

वास्तव मे किसी भी विषय अथवा प्रकरण का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व उस विषय अथवा प्रकरण के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेना अत्यंत आवश्यक होता है। जैसा कि स्वत स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान एक शब्द युग्म है जो **'शिक्षा'** तथा **'मनोविज्ञान'** नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान इन दोनों ही शब्दों का अलग-अलग अर्थ समझने के उपरान्त शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को समझना सरल हो सकेगा। आगे शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अर्थों को अलग-अलग स्पष्ट करने के उपरान्त शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा का अर्थ
(Meaning of Education)

किसी भी शब्द के अर्थ को समझने का सबसे सहज ढग उस शब्द के शाब्दिक अर्थ को जानना है। शाब्दिक अर्थ से शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान होने के साथ-साथ उसका अर्थ भी कुछ सीमा तक स्पष्ट हो जाता है। अत शिक्षा शब्द का अर्थ समझने के लिए पहले इसके शाब्दिक अर्थ को जानना उचित ही होगा। 'शिक्षा' शब्द सस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु मे अ प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष' का अर्थ है सीखना और सिखाना। अत: 'शिक्षा' शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ—सीखने व सिखाने की क्रिया। 'शिक्षा' शब्द के लिए अग्रेजी में 'ऐजुकेशन' (Education) शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऐजुकेशन शब्द लैटिन भाषा 'ऐजुकेटम' (Educatum) शब्द से विकसित हुआ है तथा 'ऐजुकेटम' शब्द इसी भाषा के ए (E) तथा ड्यूको (Duco) शब्दो से मिलकर बना है। ए (E) का अर्थ है—अंदर से, जबकि ड्यूको (Duco) का अर्थ है—आगे बढाना। अत 'ऐजुकेशन' शब्द का अर्थ है—अदर से आगे बढाना। प्रश्न यह उठता है कि अदर से आगे बढाने से क्या तात्पर्य है। वास्तव मे प्रत्येक बालक के अदर जन्म के समय कुछ जन्मजात शक्तियाँ बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। उचित वातावरण के सम्पर्क मे आने पर ये शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, जबकि उचित वातावरण के अभाव मे ये शक्तियाँ या तो पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाती है अथवा अवाछित रूप ले लेती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियो को अंदर से बाहर की ओर उचित दिशा मे विकसित करने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दो मे यह कह सकते हैं कि 'ऐजुकेशन' शब्द का प्रयोग व्यक्ति या बालक की आन्तरिक शक्तियो को बाहर की ओर प्रकट करने अथवा विकसित करने की क्रिया के लिए किया जाता है। लैटिन के 'ऐजुकेयर' (Educare) तथा 'ऐजुशियर' (Educere) शब्दों को भी 'ऐजुकेशन' शब्द के मूल के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन दोनो शब्दो का अर्थ भी आगे बढ़ाना (To Bring Up), बाहर निकालना (To Lead Out) अथवा विकसित करना (To Raise) है। स्पष्ट है कि शिक्षा तथा इसके अंग्रेजी पर्यायवाची 'ऐजुकेशन' (Education) दोनो ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली, विकसित करने वाली अथवा इनका बाह्य प्रस्फुटन करने वाली प्रक्रिया है। अत निष्कर्ष रुप मे कहा जा सकता है कि शिक्षा शब्द का अर्थ जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने की प्रक्रिया से है।

शिक्षा के शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध मे प्रकट किए गए विचारों का अवलोकन करना आवश्यक होगा।

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य को जन्म से पूर्ण (Perfect) स्वीकार करते थे तथा उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उसकी पूर्णता को प्रस्फुटित करना था। उनके शब्दो में—

"मनुष्य की पूर्वनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।"

Education is manifestation of perfection already present in man.

—Swami Vivekanand

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एव त्मिक विकास की प्रक्रिया के रूप मे स्पष्ट किया। उनके शब्दो मे—

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के र्गीण सर्वोत्तम विकास से है।"

By Education I mean an all round drawing out of the best in child and man—body, mind and spirit.

—Mahatma Gandhi

प्रसिद्ध यूनानी **दार्शनिक सुकरात** के अनुसार—

"शिक्षा का अर्थ उन सर्वमान्य विचारो को विकसित करना है जो प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क मे विलुप्त है।"

Education means the bringing out of the ideas of universal validity which are learnt in the mind of everyman

—Socrates.

अरस्तू ने शारीरिक तथा मानसिक विकास पर बल देते हुए कहा था कि—

"स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।"

Eduction is the creation of a sound mind in a sound body.

—Aristotle

हरबर्ट स्पेन्सर ने मनुष्य जीवन की वास्तविक परिस्थितियो से तालमेल बैठाने पर बल देते हुए कहा कि—

"शिक्षा से तात्पर्य अन्तर्निहित शक्तियों तथा बाह्य जगत के मध्य समन्वय स्थापित करने से है।"

Eduction means establishment of co-ordination between the inherent powers and the outer world.

—Herbert Spencer

जॉन डीवी के शब्दों मे—

शिक्षा व्यक्ति की उन समस्त क्षमताओ का विकास करना है जो उसे अपने वातावरण को नियन्त्रित करने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूरा करने योग्य बनाएगी।"

Education is the development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfill his possiblities.

—John Dewey

जर्मन शिक्षाशास्त्री **पेस्तालॉजी** ने जन्मजात शक्तियो के विकास के रूप मे शिक्षा को पारिभाषित करते समय कहा है कि—

"शिक्षा व्यक्ति की समस्त जन्मजान शक्तियो का स्वाभाविक, समग्स तथा प्रगतिशील विकास है।"

Education is a natural, harmonious and development of man's innate powers

पेस्तालॉजी के शिष्य फ्रॉबिल ने शिक्षा को निम्न शब्दो मे पारिभाषित है—

"शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक अपनी आन्तरिक शक्तियो को शक्तियों का रूप देता है।"

Education is process by which the child makes its internal external.

—Froebel

मेकेन्जी के शब्दों मे—

"व्यापक अर्थ मे शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन-पर्यन्त चलती है तथा जो जीवन के प्रत्येक अनुभव से सवर्धित होती है।"

In wider sence, it is a process that goes on throughout life and is promoted by almost every experience in life

—S S Mackenzi

ड्रेवर के अनुसार—

"शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमे तथा जिसके द्वारा बालक के ज्ञान, चरित्र तथा व्यवहार को ढाला व परिवर्तित किया जाता है।"

Education is a process in which and by which the knowlege, character and behaviour of the young are shaped and moulded.

—Drever

टी० रेमन्ट ने शिक्षा को व्यापक अर्थों मे पारिभाषित करते हुए ठीक ही लिखा है कि—

"शिक्षा विकास की उस प्रक्रिया का नाम है जिससे मानव शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा वह अपने भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के साथ विभिन्न प्रकार से शनै शनै अनुकूलन करता है।"

Education is that process of development which consits the passage of a human being from infancy to maturity, the process where by he adapts himself gradually in various ways to his physical, social and spiritual environment.

—T. Raymont

विभिन्न विद्वानों तथा शिक्षाशास्त्रियो के द्वारा 'शिक्षा' शब्द की दी गई परिभाषाओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षा एक सोद्देश्यपूर्ण, सतत्, गतिशील, सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियो का विकास किया जाता

जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने बाह्य जीवन में अधिक अच्छे ढग से जन स्थापित करने मे समर्थ होता है । लेखक के विचार से शिक्षा शब्द को व्यापक निम्न शब्दो मे पारिभाषित किया जा सकता है—

"शिक्षा जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त निरन्तर चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक या है जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्त जन्मजात शक्तियो का सर्वोत्तम सर्वांगीण कास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन किया जाता है जिससे व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने मे समर्थ हो सके तथा समाज का एक सुयोग्य, उपयोगी तथा कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सके ।"

स्पष्ट है कि शिक्षा व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिए ही अत्यत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है । साराश रूप मे शिक्षा को निम्न शब्दों के द्वारा पारिभाषित किया जा सकता है—

"शिक्षा मानव व्यवहार का परिशोधन है ।"

Education is the modification of behaviour

मनोविज्ञान का अर्थ
(Meaning of Psychology)

'मनोविज्ञान' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—मन का विज्ञान । दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से मनोविज्ञान अध्ययन की वह शाखा है जो मन का अध्ययन करती है । मनोविज्ञान को अग्रेजी मे **'साइकॉलोजी'** (Psychology) कहते है । 'साइकॉलोजी' शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्द **'साइकी'** (Psyche) तथा **'लोगस'** (logos) से मिलकर हुई है । 'साइकी' शब्द का अर्थ है—आत्मा (Soul) तथा 'लोगस' शब्द का अर्थ है—अध्ययन (Study) । अत अग्रेजी शब्द साइकॉलोजी का शाब्दिक अर्थ है—आत्मा का अध्ययन । दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि साइकॉलोजी शब्द की उत्पत्ति अध्ययन के उस क्षेत्र को इगित करने के लिए हुई थी जो आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता था । परन्तु वर्तमान समय मे मनोविज्ञान व साइकॉलोजी शब्दो के इन दोनो शाब्दिक अर्थो को स्वीकार नही किया जाता है । वास्तव मे मनोविज्ञान का प्रारम्भ दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप मे अनेक शताब्दियो पूर्व हुआ था । परतु आधुनिक काल मे हुए परिवर्तनो के फलस्वरूप धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से पृथक कर लिया तथा अब यह एक स्वतन्त्र विषय के रूप मे स्वीकार किया जाता है । दर्शनशास्त्र से अलग होने के प्रयास मे मनोविज्ञान के अर्थ मे अनेक बार परिवर्तन हुए । मनोविज्ञान के आधुनिक अर्थ को समझने के लिए मनोविज्ञान की परिभाषाओ के ऐतिहासिक विकासक्रम को समझना उचित ही होगा । मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र से किस प्रकार अलग हुआ तथा उसके अर्थ मे क्या-क्या परिवर्तन हुए, इसको सक्षेप मे निम्न ढग से व्यक्त किया जा सकता है—

1. आत्मा के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान
(Psychology as a Science of Soul)

यदि आज से अनेक शताब्दियो पूर्व प्रश्न किया जाता कि मनोविज्ञान क्या है तो

सम्भवत: इसका उत्तर मिलता कि मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता है। प्लेटो (Plato), अरस्तू (Aristotle), डेकार्ट (Decarte) आदि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया है। जैसा कि चर्चा की जा चुकी है कि साइकॉलोजी शब्द का शाब्दिक अर्थ भी आत्मा के अध्ययन की ओर इंगित करता है। मनोविज्ञान की यह परिभाषा लगभग 16 वीं शताब्दी तक प्रचलित रही, परन्तु बाद में आत्मा की प्रकृति के सम्बन्ध में शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं तथा तत्कालीन मनोवैज्ञानिक (अथवा दार्शनिक) आत्मा की स्पष्ट परिभाषा, उसके स्वरूप, उसके रंगरूप व आकार, उसकी स्थिति तथा आत्मा के अध्ययन करने की विधियों को स्पष्ट करने में असफल रहे। परिणामत: 16वीं शताब्दी में मनोविज्ञान की इस परिभाषा को अस्वीकार कर दिया गया।

2. मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान
(Psychology as a Science of Mind)

आत्मा के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान की परिभाषा के अस्वीकृत हो जाने पर मध्ययुग के दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। दूसरे शब्दों में उन्होंने विज्ञान को अध्ययन का वह क्षेत्र माना जिसके अंतर्गत मस्तिष्क या मन का अध्ययन किया जाता है। परंतु मस्तिष्क के अर्थ के सम्बन्ध में भी वही कठिनाई उत्पन्न हुई जो आत्मा के विषय में थी। मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क की प्रकृति तथा स्वरूप को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं कर सके। मस्तिष्क के सम्बन्ध में संतोषप्रद उत्तर उपलब्ध न होने के कारण मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी शीघ्र ही अमान्य हो गई।

3. चेतना के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान
(Psychology as a Science of Consciousness)

तत्पश्चात् मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मनोविज्ञान को चेतना के विज्ञान के रूप में व्यक्त किया गया। वाइव (Vive), विलियम जेम्स (William James), विलियम वुंड (Willaim Wundt), जेम्स सली (James Sully) आदि विद्वानों ने मनोविज्ञान को चेतना के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया तथा कहा कि मनोविज्ञान चेतन क्रियाओं का अध्ययन करता है। परंतु वे चेतन शब्द के अर्थ व स्वरूप के सम्बन्ध में एक मत न हो सके। चेतन क्रियाओं पर अर्द्धचेतन व अचेतन क्रियाओं का प्रभाव भी होने के कारण मनोवैज्ञानिकों में मनोविज्ञान की इस परिभाषा पर गंभीर मतभेद उत्पन्न हो गए तथा इसे मनोविज्ञान की एक अपूर्ण परिभाषा माना जाने लगा। परिणामत: सीमित अर्थ होने के कारण मनोविज्ञान को चेतना के विज्ञान के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास भी असफल हो गया।

4. व्यवहार के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान
(Psychology as a Science of Behaviour)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। वाट्सन (Watson), वुडवर्थ (Woodworth) स्किनर (Skinner) आदि मनोवैज्ञानकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का एक निश्चित विज्ञान

Science) स्वीकार किया। वर्तमान समय मे मनोविज्ञान की इस परिभाषा सर्वमान्य परिभाषा के रूप मे स्वीकार किया जाता है।

स्पष्ट है कि मानव जाति के ज्ञान मे वृद्धि के साथ-साथ मनोविज्ञान के अर्थ मे कई परिवर्तन आए। मनोविज्ञान के अर्थ की इस यात्रा को वुडवर्थ ने निम्नांकित शब्दों मे व्यक्त किया है—

"सर्वप्रथम मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया, फिर इसने अपने मस्तिष्क का त्याग किया, फिर इसने अपनी चेतना का त्याग किया, अब यह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।"

First psychology lost its soul, then it lost its mind, then it lost its consciousness, it still has behaviour of sort.

—Woodworth

मनोविज्ञान के अर्थ के विकास की लम्बी यात्रा यद्यपि मनोविज्ञान के अर्थ को काफी सीमा तक इंगित करती है। फिर भी, मनोविज्ञान के अर्थ को भलीभांति समझने के लिए मनोवैज्ञानिको के द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाओ का अवलोकन करना उचित ही होगा। मनोविज्ञान की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार से है—

वारेन के अनुसार—"मनोविज्ञान जीवधारी तथा वातावरण की पारस्परिक अन्तर्क्रिया से सम्बन्धित विज्ञान है।"

Psychology is the science which deals with the mutual inter-relation between an organism and enviornment

—Warren

वाट्सन ने—"मनोविज्ञान को व्यवहार के धनात्मक विज्ञान के रूप मे पारिभाषित किया है।"

Psychology is the positive science of behaviour

—Watson

वुडवर्थ के शब्दों में—"मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क मे होने वाले मानव व्यवहारो का विज्ञान है।"

Psychology is the science of activities of the individual in relation to environment.

—Woodworth.

मैकडूगल के अनुसार—"मनोविज्ञान आचरण एवं व्यवहार का यथार्थ विज्ञान है।"

Psychology is the positive science of conduct and behaviour

—Mc Dougall.

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान एक निश्चित विज्ञान है जो प्राणी के भौतिक तथा सामाजिक दोनो ही प्रकार के व्यवहारो का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव अथवा पशु के व्यवहारो के कारणो की खोज करना तथा

मानव अथवा पशु स्वभाव का भलीभाँति अध्ययन करना है। क्योंकि प्राणी का व्यवहार उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है तथा वाह्य व्यवहार वास्तव में अन्तर्जगत की वाह्य अभिव्यक्ति मात्र है इसलिए मनोविज्ञान प्राणी के अन्तर्मन का भी अध्ययन करना है। मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है तो प्रश्न उठता है कि व्यवहार क्या है ? वास्तव में मनुष्य अथवा प्राणी जो कुछ भी प्रतिक्रियाएँ करता है वे ही उसका व्यवहार है। जेम्स ड्रेवर के अनुसार—"जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति मनुष्य अथवा पशु की सम्पूर्ण प्रतिक्रिया ही व्यवहार है।"

स्पष्ट है कि मनोविज्ञान वातावरण के विभिन्न अंगों के प्रति प्राणी के व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्राणियों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण करने से सम्बन्धित अध्ययन कार्य सम्पादित किए जाते है। प्राणी तथा वातावरण के विभिन्न प्रकारों के आधार पर मनोविज्ञान को अनेक शाखाओं में बाँटा जा सकता है। मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाएँ निम्नवत् है—

1. **सामान्य मनोविज्ञान** (Normal Psychology)—इसके अन्तर्गत सामान्य प्राणियों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण से सम्बंधित अध्ययन किया जाता है।

2. **असामान्य मनोविज्ञान** (Abnormal Psychology)— इसके अन्तर्गत असामान्य प्राणियों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

3. **मानव मनोविज्ञान** (Human Psychology)—इसके अन्तर्गत मनुष्यों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

4. **पशु मनोविज्ञान** (Animal Pschology)—इसके अंतर्गत पशुओं के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

5. **बाल मनोविज्ञान** (Child Psychology)—इसके अंतर्गत बालकों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियन्त्रण से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

6. **किशोर मनोविज्ञान** (Adolescent Psychology)—इसके अंतर्गत किशोरों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियंत्रण से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

7. **प्रौढ़ मनोविज्ञान** (Adult Psychology)—इसके अन्तर्गत प्रौढ़ों के व्यवहार का वर्णन, पूर्वकथन व नियंत्रण से सम्वन्धित अध्ययन किया जाता है।

8. **औद्योगिक मनोविज्ञान** (Industrial Psychology)—इसके अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र में व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

9. **समाज मनोविज्ञान** (Social Psychology)—इसके अंतर्गत सामाजिक परिस्थितियों में व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

शिक्षाशास्त्र
Education

मनोविज्ञान
Psychology

व्यवहार का परिमार्जन
Modification of Behaviour

व्यवहार का अध्ययन
Study of Behaviour

व्यवहार के परिमार्जन के लिए व्यवहार का अध्ययन
(शैक्षिक परिस्थिति मे व्यवहार का अध्ययन)
Study of Behaviour to Modify It
(Study of Behaviour in Educational Setting)

शिक्षा मनोविज्ञान
EDUCATIONAL PSYCHOLOGY
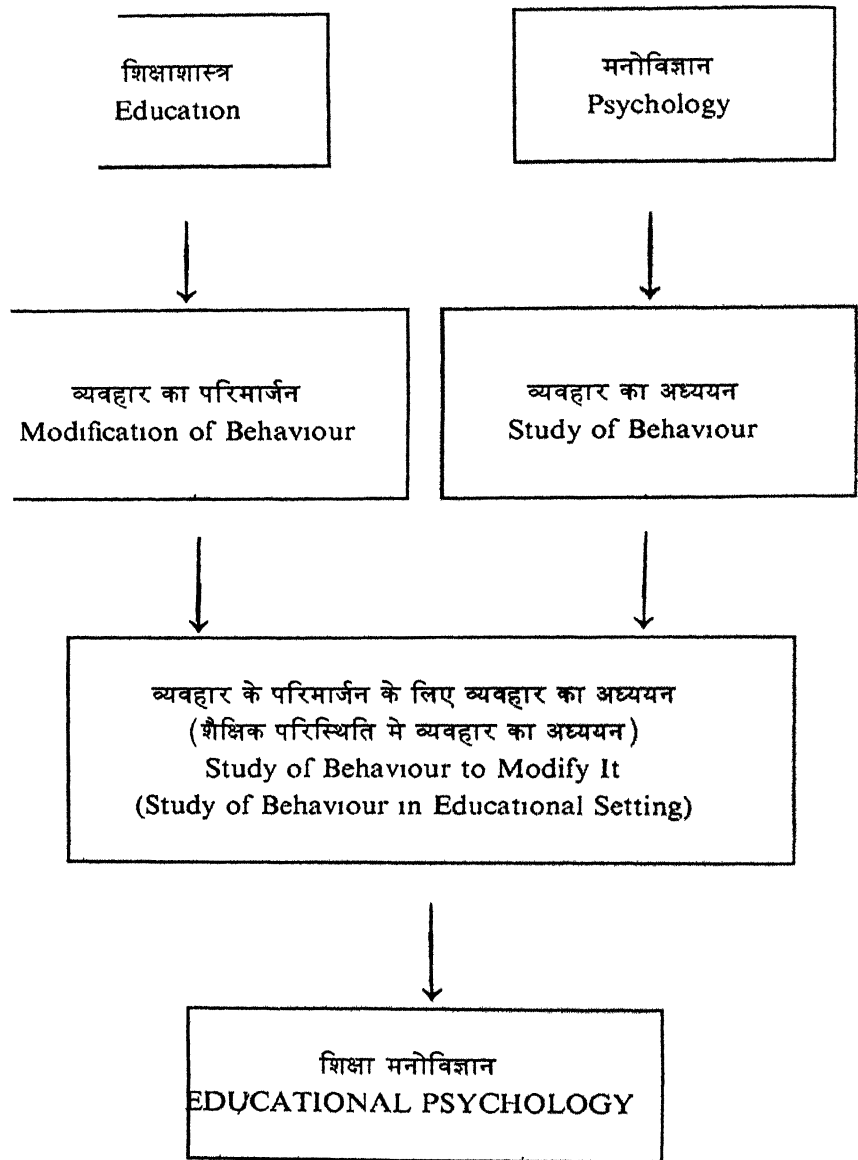
चित्र 1

शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध
Relationship between Education and Psychology

10. सैन्य मनोविज्ञान (Military Psychology)—इसके अंतर्गत व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

11. विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) अतर्गत विभिन्न क्षेत्रो में बालको के विकासक्रम का अध्ययन किया जाता है

12. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology)· अतर्गत प्रयोगो के आधार पर व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

13. व्यक्तिगत मनोविज्ञान (Individual Psychology)—इसके अतर्गत व्यक्तियो के व्यक्तिगत व्यवहार से सबंधित अध्ययन किया जाता है।

14. शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology)—इसके अंतर्गत शिक्षा के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओ की उपरोक्त सूची के अवलोकन से स्पष्ट ही है कि मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्रस्तुत पुस्तक मे मनोवज्ञान की केवल एक ही शाखा शिक्षा मनोविज्ञान की चर्चा की गई है।

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ
(Meaning of Educational Psychology)

जैसीकि चर्चा की जा चुकी है शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक अत्यत महत्वपूर्ण शाखा है। शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के सयोग से बना है—शिक्षा तथा मनोविज्ञान। अत शिक्षा मनोविज्ञान शब्द का शाब्दिक अर्थ है शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान। शिक्षा का सम्बन्ध मानव व्यवहार के परिमार्जन से होता है, जबकि मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार के अध्ययन से होता है। मानव व्यवहार के परिमार्जन के लिए मानव व्यवहार का अध्ययन करने की आवश्यकता स्वस्पष्ट ही है। मानव व्यवहार को उन्नत बनाने की दृष्टि से जब व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तो अध्ययन की इस शाखा को शिक्षा मनोविज्ञान के नाम से सम्बोधित किया जता है। अत कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियो मे मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। अत: शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक व तर्कसगत ढग से समाधान करने के लिए मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तो का उपयोग करना ही शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु है। आधुनिक शिक्षा जगत मे शिक्षा मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ कब हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानो मे कुछ मतभेद है। कुछ मनोवैज्ञानिक शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ 19वी शताब्दी से स्वीकार करते है, जबकि कुछ अन्य शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ प्लेटो व अरस्तू जैसे प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के समय से ही स्वीकार करते हैं। कॉलसनिक (Kolesnik) ने शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ ईसा के जन्म से पाँच शताब्दी पूर्व (500 BC) के यूनानी दार्शनिकों से माना है। उसके अनुसार मनोविज्ञान और शिक्षा के सर्वप्रथम व्यवस्थित

मे से एक सिद्धान्त प्लेटो का भी था। परन्तु स्किनर (Skinner) ने शिक्षा ज्ञान का प्रारम्भ प्लेटो के शिष्य अरस्तू से माना है। नि सदेह प्लेटो, अरस्तू आदि दार्शनिको ने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए इन सिद्धान्तो को लीन मनोविज्ञान से जोडने की कोशिश की थी, परतु आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान त्पत्ति 19वी शताब्दी मे पेस्तालॉजी (Pestalozzi), हर्बार्ट (Herbart) तथा (Froebel) आदि यूरोपियन शिक्षा दार्शनिको के कार्यों से हुई जिन्होने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया। वास्तव मे शिक्षा मे मनोवैज्ञानिक आदोलन का सूत्रपात रूसो (Rousseau) की प्रकृतिवादी विचारधारा से हुआ। उसने शिक्षाशास्त्रियो का ध्यान बालक की ओर आकर्षित करते हुए इस बात पर बल दिया कि बालको को उनकी रुचियों, प्रवृत्तियो, योग्यताओ तथा अवस्थाओं के अनुरूप ही शिक्षा दी जानी चाहिए। रुसो की इस विचारधारा से प्रेरणा पाकर ही पेस्तालाजी, हर्बार्ट, फ्रॉबेल आदि ने शिक्षा के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का विधिवत् उपयोग करके तत्कालीन शिक्षा प्रणाली मे अनेक सुधार किए। तत्पश्चात् गाल्टन (Galton), इबिगहॉस (Ebbinghous), जेम्स (James), बिने (Binet), गोडार्ड (Goddard) आदि मनोवैज्ञानिको ने अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र मे क्राति सी ला दी। बीसवी शताब्दी मे शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक स्पष्ट शाखा के रूप मे विकसित होने लगा। थार्नडाइक (Thorndike) को प्रथम शैक्षिक मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है। जॉन डीवी (John Dewey) नामक अमेरिकी शिक्षाशास्त्री ने शिक्षा के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक चिन्तन किया तथा शिक्षा प्रक्रिया पर अविस्मरणीय प्रभाव डाला। अमेरिका की नेशनल सोसाइटी ऑफ कॉलिज टीचर्स ऑफ ऐजूकेशन (National Society of College Teachers of Education) ने शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यों को आगे बढाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। परिणामत वर्तमान समय मे शिक्षा मनोविज्ञान को एक स्वतत्र विषय (Independent Discipline) के रूप मे स्वीकार किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान वास्तव मे क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न मनोवैज्ञानिको तथा शिक्षाशास्त्रियों के द्वारा शिक्षा मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे व्यक्त किए गए विचारो से स्पष्ट हो सकेगा। शिक्षा मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे विद्वानो के द्वारा व्यक्त की गई कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् प्रस्तुत है--

कॉलसनिक के अनुसार—"शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान के सिद्धान्तों व परिणामो का शिक्षा के क्षेत्र मे अनुप्रयोग है।"

Educational Psychology is the application of findings and theories of psychology in the field of education.

W B. Kolesnik

क्रो एवं क्रो के शब्दों में—"शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के सीखने के अनुभवो का वर्णन तथा व्याख्या करता है।"

Educational psychology describes and explains the learning experiences of an individoal from birth through old age

—Crow and Crow

स्किनर के अनुसार—"शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है तथा अधिगम से सम्बन्धित होती है।"

Educational Psychology is that branch of psychology deals with teaching and learning.

—B.F. Skinner

ट्रो के अनुसार—"शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियो के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है।"

Educational Psychology is the study of the psychological aspects of educational situations.

—Prof. Trow

स्टीफन के अनुसार—"शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है।"

Educatinal Psychology is a systematic study of educational growth

—J. M Stephon.

शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त परिभाषाओ के अवलोकन से कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियो मे मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दो मे शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा प्रक्रिया का सचालन करने की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो तथा नियमो का अध्ययन करती है। शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त वर्णित परिभाषाओ से शिक्षा मनोविज्ञान की निम्नाकित विशेषताएँ परिलक्षित होती है—

(i) शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र मानव व्यवहार है।

(ii) शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थिति मे मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।

(iii) शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रक्रिया को सरल, सुगम तथा द्रुत बनाने का प्रयास करता है।

(iv) शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तो का उपयोग करता है।

(v) शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है अर्थात् शिक्षा मनोविज्ञान अपने अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान के उद्देश्य
(Aims of Educational Psychology)

शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहायता करना है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियो का अधिकतम सम्भव, सहज, स्वाभाविक तथा सर्वांगीण विकास करके उसे समाज का एक उपयोगी नागरिक बनाना है। अत शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य भी यही है। शिक्षा मनोविज्ञान के इस उद्देश्य को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—प्रथम, छात्रो के व्यवहार को अधिक

रना तथा द्वितीय, अध्यापको को अपने शिक्षण मे सुधार करने मे सहयता प्रदान । इन दोनो उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान श्य निम्नाकित है—

(i) छात्रो की योग्यताओ, क्षमताओ तथा सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करना ।
(ii) छात्रो की रुचियो का ज्ञान प्राप्त करना ।
(iii) छात्रो की विकासात्मक विशेषताओ को ज्ञात करना ।
(iv) छात्रो की अवस्थाओं के अनुरूप उन्हे विकास की ओर अग्रसर करना ।
(v) छात्रो के वशानुक्रम का ज्ञान प्राप्त करना ।
(vi) छात्रों के वातावरण का अध्ययन करना ।
(vii) मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करना ।
(viii) मानव विकास के विभिन्न पक्षो का अध्ययन करना ।
(ix) व्यक्तिगत भिन्नताओ का अध्ययन करना ।
(x) सीखने की प्रक्रिया का अध्ययन करना ।
(xi) शिक्षण सिद्धान्तो व शिक्षण विधियों का अध्ययन करना ।
(xii) शिक्षण सामग्री तथा अधिगम सामग्री का निर्माण करना ।
(xiii) छात्रो के विशिष्ट व्यवहारो का अध्ययन करना ।
(xiv) शैक्षिक समस्याओ का अध्ययन करना ।

शिक्षा मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र
(Scope of Educational Psychology)

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ तथा उसके उद्देश्य से स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी (learner), अध्यापक (Teacher) तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया (Teaching Learning Process) का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है। शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए स्किनर ने लिखा है कि शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र मे वह सभी ज्ञान तथा प्राविधियाँ सम्मिलित है जो सीखने की प्रक्रिया को अधिक अच्छी प्रकार से समझने तथा अधिक निपुणता से निर्देशित करने से सम्बन्धित है। आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिको के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान के प्रमुख क्षेत्र निम्नवत् है—

(i) वशानुक्रम (Heredity)—वशानुक्रम व्यक्ति की जन्मजात योग्यताओं से सम्बन्धित होता है। किसी व्यक्ति के वशानुक्रम में वे समस्त शारीरिक, मानसिक तथा अन्य विशेषताएँ आ जाती है जिन्हे वह अपने माता-पिता अथवा अन्य पूर्वजो से (जन्म के समय नही वरन्) जन्म से लगभग नौ माह पूर्व प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिको ने सिद्ध कर दिया है कि बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष पर उसके वशानुक्रम का प्रभाव पडता है। शारीरिक सरचना, मूल प्रवृत्तियाँ, मानसिक योग्यता, व्यावसायिक क्षमता आदि पर व्यक्ति के वशानुक्रम का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। शैक्षिक विकास की दृष्टि से वशानुक्रम का अध्ययन करना अत्याधिक महत्वपूर्ण है। वशानुक्रम के ज्ञान के आधार पर अध्यापक अपने छात्रो का वाछित विकास कर सकता है।

(ii) विकास (Development)-शिक्षा मनोविज्ञान के अतर्गत भ्रूणावस्था से

लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले मानव के विकास का अध्ययन किया जाता है। मानव जीवन का प्रारम्भ किस प्रकार से होता है तथा जन्म के उपरान्त विभिन्न अवस्थाओ—शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढावस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि पक्षों मे क्या-क्या परिवर्तन होते है, इसका अध्ययन करना शिक्षा मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय क्षेत्र है। बालकों की विभिन्न अवस्थाओ मे होने वाले विकास के ज्ञान से उनकी सामर्थ्य तथा क्षमता के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने मे महत्वपूर्ण योगदान मिलता है।

(iii) व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Differences)—ससार मे कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे के पूर्णतया समान नही होते है। व्यक्ति शारीरिक, सामाजिक व मानसिक आदि गुणो मे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अध्यापक को अपनी कक्षा मे ऐसे छात्रों का सामना करना होता है जो परस्पर काफी भिन्न होते है। व्यक्तिगत भिन्नताओ के ज्ञान की सहायता से अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को सम्पूर्ण कक्षा की आवश्यकताओं तथा योग्यताओ के अनुरूप व्यवस्थित कर सकता है।

(iv) व्यक्तित्व (Personality)—शिक्षा मनोविज्ञान मानव के व्यक्तित्व तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ का अध्ययन भी करता है। मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव के विकास तथा उसकी शिक्षा मे व्यक्तित्व की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। अत बालक के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हो जाता है। मनोविज्ञान व्यक्तित्व की प्रकृति, प्रकारो, सिद्धान्तो का ज्ञान प्रदान करके सतुलित व्यक्तित्व के विकास की विधियाँ बताता है। अत शिक्षा मनोविज्ञान का एक कार्य क्षेत्र व्यक्तित्व का अध्ययन करके बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करना भी है।

(v) विशिष्ट बालक (Exceptional Child)—शिक्षा मनोविज्ञान विशिष्ट बालको के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का आग्रह करता है। वास्तव मे तीव्र बुद्धि या मन्द बुद्धि बालको तथा गूँगे, बहरे, अधे बालकों के द्वारा सामान्य शिक्षा का उचित लाभ उठाने की कल्पना करना त्रुटिपूर्ण ही होगा। ऐसे बालको के लिए इनकी विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था का आयोजन करना होता है। शिक्षा मनोविज्ञान इस कार्य मे महत्वपूर्ण योगदान करता है।

(vi) अधिगम प्रक्रिया (Learning Process)—अधिगम शिक्षा प्रक्रिया का आधार है। सीखने के अभाव मे शिक्षा की कल्पना की ही नही जा सकती। शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के नियमों, सिद्धान्तो तथा विधियो का ज्ञान प्रदान करता है। प्रभावशाली शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक सीखने की प्रकृति, सिद्धान्त, विधियों के ज्ञान के साथ-साथ सीखने मे आने वाली कठिनाईयो को समझे तथा उनको दूर करने के विभिन्न उपायो से भी भलीभाँति परिचित हो। सीखने का स्थानान्तरण कैसे होता है ? तथा शैक्षिक दृष्टि से इसका क्या महत्व है ? यह जानना भी अध्यापक के लिए उपयोगी होता है। इन सभी प्रकरणो की चर्चा शिक्षा मनोविज्ञान करता है।

(vii) पाठ्यक्रम निर्माण (Curriculum Development)—वर्तमान समय मे पाठ्यक्रम को शिक्षा प्रक्रिया का एक जीवन्त अग स्वीकार किया जाता है तथा पाठ्यक्रम निर्माण मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न स्तरो के बालक व बालिकाओ की आवश्यकताएँ, विकासात्मक विशेषताएँ, अधिगम शैली आदि भिन्न-भिन्न होती है। पाठ्यक्रम निर्माण के समय इन सभी का ध्यान रखना अत्यत महत्वपूर्ण होता है।

(viii) मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)—अध्यापको तथा छात्रो के मानसिक स्वास्थ्य का शैक्षिक दृष्टि से विशेष महत्व है। जव तक अध्यापक तथा छात्रगण मानसिक दृष्टि से स्वस्थ तथा प्रफुल्लित नही होगे, तब तक प्रभावशाली अधिगम सम्भव नही है। मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारको का ज्ञान प्रदान करता है तथा कुसमायोजन से बचने के उपायो को खोजता है।

(ix) शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods)—शिक्षण का अभिप्राय छात्रों के सम्मुख ज्ञान को प्रस्तुत करना मात्र नही है। प्रभावशाली शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि छात्र प्रभावशाली ढग से ज्ञान को ग्रहण करने मे समर्थ हो सके। शिक्षा मनोविज्ञान बताता है कि जब तक छात्रो को पढने के प्रति अभिप्रेरित नही किया जायेगा, तब तक अध्यापन मे सफलता मिलना सदिग्ध होगा। यह भी स्मरणीय होगा कि सभी स्तर के बालकों के लिए अथवा सभी विषयो के लिए कोई एक सर्वोत्तम शिक्षण विधि सम्भव नही होती है। शिक्षा मनोविज्ञान प्रभावशाली शिक्षण के लिए उपयुक्त शिक्षण विधियो का ज्ञान प्रदान करता है।

(x) निर्देशन व समुपदेशन (Guidance and Counselling)—शिक्षा एक अत्यत व्यापक प्रक्रिया है। समय-समय पर छात्रो को तथा अन्य व्यक्तियो को शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन व परामर्श प्रदान करना अत्यत आवश्यक है। छात्रों को किस पाठ्यक्रम मे प्रवेश लेना चाहिए, किस व्यवसाय मे वे अधिकतम सफलता अर्जित कर सकते है, उनकी समस्याओं का समाधान कैसे हो सकता है—जैसे प्रश्नो का उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान ही प्रदान कर पाता है।

(xi) मापन तथा मूल्यांकन (Measurement and Evaluation)—छात्रों की विभिन्न योग्यताओ, रुचियों तथा उपलब्धियो का मापन व मूल्याकन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा आवश्यक होता है। मापन तथा मूल्यांकन की सहायता से एक ओर जहाँ छात्रो की सामर्थ्य, रुचियो तथा परिस्थितियों का ज्ञान होता है, वही दूसरी ओर शिक्षण अधिगम की सफलता-असफलता का ज्ञान भी प्राप्त होता है। शिक्षा मनोविज्ञान के विभिन्न उपकरण छात्रो की योग्यताओ तथा उपलब्धियो का मापन व मूल्याकन करने के कार्य मे प्रयुक्त किए जाते है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यत विस्तृत है तथा इसमे मनोविज्ञान से सम्बन्धित उन समस्त बातो का अध्ययन किया जाता है जो शिक्षा प्रक्रिया का नियोजन करने, सचालन करने तथा परिमार्जन करने की दृष्टि से उपयोगी हो सकती है।

शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व
(Importance of Educational Psychology)

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था मे शिक्षा मनोविज्ञान का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा के उद्देश्यो को प्राप्त करने मे शिक्षा मनोविज्ञान अत्यत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शिक्षार्थी, शिक्षक तथा शिक्षा व्यवस्था तीनो ही दृष्टि से शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व व उपयोगिता असदिग्ध है। शिक्षा से सम्बन्धित अनेकों प्रश्नों का उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान ही प्रदान करता है। बालक की शिक्षा कब प्रारम्भ करनी चाहिए ? सहज ढग से सीखना कैसे सम्भव हो सकता है ? किस प्रकार से शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा सकता है ? भाषा को सरलता से कैसे सिखाया जा सकता है ? शीघ्र व रोचक ढग से पाठ्यवस्तु को कैसे स्मरण किया जा सकता है ? छात्रो की मानसिक योग्यताओं का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? अमुक बालक को माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त किस प्रकार के पाठ्यक्रम मे जाना चाहिए ? जैसे अनेकानेक प्रश्नो का उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान ही प्रदान कर सकता है। वास्तव मे शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रक्रिया मे दो ढग से अपना योगदान देता है—प्रथम, शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के सिद्धान्त (Theory of Education) के क्षेत्र मे योगदान करता है तथा द्वितीय, शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के अभ्यास (Practice of Education) के क्षेत्र मे अपना योगदान करता है। शिक्षा के इन दोनो क्षेत्रो मे किया जाने वाला योगदान निम्नांकित बिन्दुओ के अवलोकन से स्पष्ट हो सकेगा—

(i) विकासात्मक विशेषताओ को समझने मे (To Understand Developmental Characteristics)

(ii) अधिगम की प्रकृति को समझने मे (To Understand the Nature of Learning)

(iii) व्यक्तिगत भिन्नताओ को समझने मे (To Understand Individual Differences)

(iv) प्रभावशाली शिक्षण विधियो को समझने मे (To Understand Effective Teaching Methods)

(v) बालको की समस्याओ को समझने मे (To Understand Problems of Children)

(vi) मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान (Knowledge of Mental Health)

(vii) पाठ्यक्रम निर्माण (Curriculum Construction)

(viii) अधिगम परिणामो का मापन (Measurement of Learning Outcomes)

(ix) विशिष्ट बालको की शिक्षा (Education of Exceptional Children)

(x) समूह गत्यात्मकता की समझ (Understanding of Group Dynamics)

(xi) शिक्षण सामग्री का प्रयोग (Use of Learning Material)

(xii) शैक्षिक प्रशासन (Educational Administration)
(xiii) समय-सारणी (Time Table)
(xiv) पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities)
(xv) पाठ्य-पुस्तके (Text Books)
(xvi) अनुशासन (Discipline)

स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र मे एक अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव मे शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र मे एक क्राति सी कर दी है। शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा को एक नया स्वरूप प्रदान किया है जिसके फलस्वरूप आधुनिक समय मे शिक्षा प्रक्रिया मे बालक को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है। प्राचीन काल मे छात्र को शिक्षा प्रक्रिया मे गौण स्थान दिया जाता था, परतु अब छात्र का स्थान सर्वोपरि है। अब बालक की रुचि, योग्यता तथा परिस्थिति के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया जाता है। बालक का सहज विकास हो सके, इसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तक, शिक्षण विधियो को नित्य प्रतिदिन नूतन व नवीन रूप दिया जा रहा है। छात्रो की शैक्षिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक ढग से निदान व समाधान किया जाता है। बालकेन्दित शिक्षा के फलस्वरूप शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण मे आमूल परिवर्तन आ गया है। शिक्षा को एक आनन्ददायी क्रिया बनाने का प्रयास किया जा रहा है। पहले शिक्षा का अर्थ बालक को अधिकाधिक ज्ञान प्रदान करना मात्र था, परतु अब शिक्षा का अर्थ बालक को उचित परामर्श देकर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करना है।

अध्यापक के लिए मनोविज्ञान की उपयोगिता
(Utility of Educational Psychology for the Teacher)

विगत पृष्ठो मे स्पष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र मे मनोविज्ञान का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करता है इसलिए शिक्षा प्रक्रिया में सलग्न व्यक्तियो के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन अत्यत आवश्यक है। अध्यापक कक्षा मे चलने वाली वास्तविक शिक्षा प्रक्रिया का निर्देशक होता है। वह छात्रो के सम्मुख सीखने की परिस्थितियो को प्रस्तुत करके उनके शैक्षिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। अत किसी अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अत्यत आवश्यक, महत्वपूर्ण व उपयोगी है। शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव मे कोई भी अध्यापक अपने कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित नही कर सकता है। आधुनिक समय मे शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान ही अध्यापक की सफलता का रहस्य होता है। अपने शिक्षण कार्य को सफल बनाने के लिए तथा छात्रो के सीखने को सरल, सहज व आनन्दमय बनाने के लिए अध्यापक को मनोविज्ञान के सिद्धान्तो का उपयोग करना होता है। अध्यापकों के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन निम्नाकित दृष्टियो से उपयोगी है—

(i) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सम्यक् दृष्टिकोण प्रदान करता है।

(ii) शिक्षा मनोविज्ञान कक्षा मे उपयुक्त शैक्षिक वातावरण उत्पन्न करने मे सहायता प्रदान करता है।

(iii) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को छात्रो के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा समदर्शी

व्यवहार को अपनाने मे सहायता करता है।

(iv) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को श्रेष्ठ शिक्षण विधियों की जानकारी प्रदान करता है।

(v) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को बाल-स्वभाव तथा व्यवहार के ज्ञान से परिचित कराता है।

(vi) शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तिगत भिन्नताओ को ध्यान में रखने पर बल देता है।

(vii) शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन बनाए रखने के मनोवैज्ञानिक तरीको की जानकारी देता है।

(viii) शिक्षा मनोविज्ञान पाठ्य-निर्माण करने मे सहायता प्रदान करता है।

(ix) शिक्षा मनोविज्ञान बालको के चतुर्मुखी विकास की विधियो की जानकारी जानकारी प्रदान करता है।

(x) शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करने मे अध्यापक की सहायता करता है।

(xi) शिक्षा मनोविज्ञान मापन तथा मूल्याकन की नवीन विधियों से अध्यापक को परिचित कराता है।

---

2 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ
(Methods of Educational Psychology)

शिक्षा मनोविज्ञान वास्तव मे मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है जो मनोविज्ञान के सिद्धान्तो का प्रयोग शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए करता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियो मे छात्रो के व्यवहार को समझने, नियन्त्रित करने, अनुमान लगाने तथा उसमे परिमार्जन करने से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध कराता है। मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिए शिक्षा मनोविज्ञान विभिन्न विधियो का प्रयोग करता है जिससे वह छात्रो के व्यवहार से सम्बधित आवश्यक सूचनाए सकलित कर सके। क्योकि शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान की ही एक शाखा है इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ सामान्य 'मनोविज्ञान की विधियो से भिन्न नही हो सकती है। वास्तव मे शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के द्वारा व्यवहार के अध्ययन मे प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न विधियो का प्रयोग ही करता है।

सामान्य जीवन मे व्यक्ति अपने स्वय के तथा अन्य व्यक्ति के व्यवहार को समझने का प्रयास करता ही रहता है। जैसे, व्यक्ति सोचता है कि मुझे अमुक व्यक्ति पर क्रोध क्यो आया ? अथवा रमेश अमुक वस्तु को देखकर भयभीत क्यो हो गया ? इस प्रकार के प्रश्नो पर विचार करने से व्यवहार के कारणो का ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार अन्य व्यक्ति के व्यवहार के अवलोकन से व्यक्तियो के द्वारा किए जाने वाले व्यवहार की समझ हो जाती है। कभी-कभी व्यक्ति अन्य व्यक्तियो की प्रकृति को परीक्षण के द्वारा जानना चाहता है। जैसे, यदि कोई बालक सिनेमा देखने के सम्बध मे अपने पिता के दृष्टिकोण को जानना चाहता है तब वह उनसे सिनेमा जाने की अनुमति माँगता है। यदि इस प्रश्न पर उसके पिता नाराज होते है तब वह समझ जाता है कि उन्हे सिनेमा दिखलाना पसद नही है। सामान्य जीवन मे व्यवहार को समझने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली इन दोनो व्यापक विधियो- अवलोकन तथा परीक्षण को ही मनोवैज्ञानिकगण व्यवहार के अध्ययन के लिए प्रयुक्त करते है। अतर मात्र इतना होता है कि मनोवैज्ञानिक इन विधियों का प्रयोग परिष्कृत ढग से (Refined Manner) करते है, जबकि सामान्य जीवन मे व्यक्ति इनको अपरिष्कृत ढग (Crude Manner) से करते है। अवलोकन तथा परीक्षण दोनों विधियो की सहायता से ही मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है।

मनोविज्ञान वास्तव में वैज्ञानिक ढग से व्यवहार का अध्ययन करता है। वैज्ञानिक विधियो की मुख्य विशेषताए क्रमबद्धता (Systematicness), यथार्थता

(Accuracy); वस्तुनिष्ठता (Objectivity), परीक्षणयोग्यता (Verifiability) तथा सार्वभौमिकता (Universality) होती है। मनोवैज्ञानिकगण व्यवहार का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक विधियो के विविध सोपानों का अनुसरण करते है। वैज्ञानिक विधियाँ प्रदत्तो के संकलन, विश्लेषण तथा व्याख्या के आधार पर निष्कर्षो को प्रतिपादित करती है। वैज्ञानिक विधि मे प्राप्त परिणाम विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ, वैध तथा निष्पक्ष होते है। शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र मे जिन विधियो का प्रयोग किया जाता है, उनमे से कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नवत् है—

(I) अन्तर्दर्शन विधि (Introspection Method)
(II) वहिर्दर्शन विधि (Extrospection Method)
(III) प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)
(IV) जीवन इतिहास विधि (Case-History Method)
(V) विकासात्मक विधि (Developmental Method)
(VI) तुलनात्मक विधि (Comparative method)
(VII) मनोविश्लेषणात्मक विधि (Psycho-Analytical Method)
(VIII) निदानात्मक विधि (Diagnostic Method)
(IX) साँख्यिकीय विधि (Statistical Method)

उपरोक्त विधियो मे से अन्तर्दर्शन विधि तथा वहिर्दर्शन विधि निरीक्षण विधियो (Methods of Observation) के अन्तर्गत आती है, जवकि जीवन इतिहास विधि, विकासात्मक विधि, तुलनात्मक विधि, मनोविश्लेषणात्मक विधि, निदानात्मक विधि तथा साख्यिकीय विधि को विवरणात्मक विधियो (Methods of Exposition) के अतर्गत रखी जा सकती है। आगे मनोविज्ञान की इन विधियो का सक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

अन्तर्दर्शन विधि
(Introspection Method)

यह मनोविज्ञान की सभवत. सर्वाधिक प्राचीन विधि है इस विधि का प्रयोग प्राचीन काल में बहुतायत से किया जाता था। अवैज्ञानिक विधि होने के कारण वर्तमान समय मे इसका प्रयोग बहुत सीमित हो गया है। अन्तर्दर्शन से तात्पर्य अपने अदर देखना अथवा आत्मनिरीक्षण से है। अन्तर्दर्शन मे व्यक्ति अपने स्वय के व्यवहार को देखता है इसलिए इसे स्वअवलोकन अथवा आत्मनिरीक्षण विधि (Self-observation Method) भी कहा जाता है। प्राचीन काल के मनोवैज्ञानिक मानसिक क्रियाओ तथा प्रतिक्रियाओ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस विधि का प्रयोग करते थे। वे अपने अनुभवों के समय अर्थात् सुख-दुख, क्रोध-शान्ति, घृणा-प्रेम आदि स्थितियो मे अपनी मानसिक दशाओ तथा भावनाओ का स्वनिरीक्षण करके उसका वर्णन करते थे तथा जिसके विश्लेषण के द्वारा वे मनोवैज्ञानिक नियमों तथा सिद्धान्तो को प्रतिपादित करते थे। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति क्रोध मे है तथा वह अपने क्रोध की अवस्था के कारणों को स्वय ज्ञात करे तथा इसके आधार पर क्रोध से सम्वन्धित मानसिक प्रक्रिया के नियम, सिद्धान्त अथवा दशाओ का निरूपण करे तो इसे अन्तर्दर्शन कहा जायेगा।
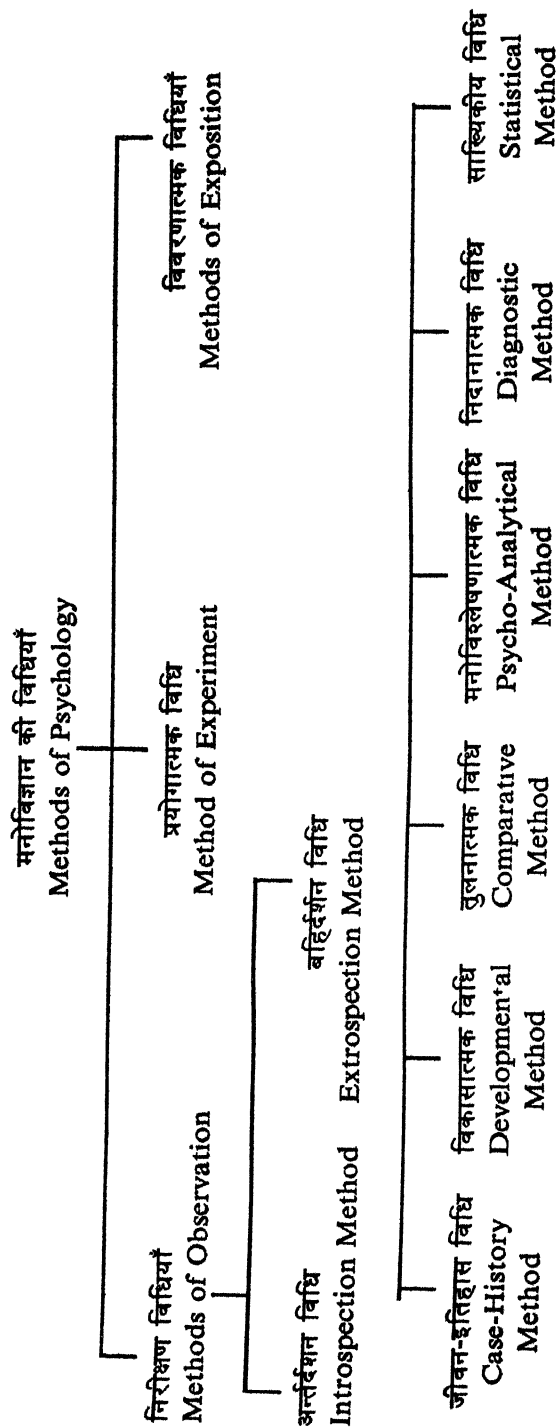
चित्र 2
मनोविज्ञान के अध्ययन की विभिन्न विधियाँ

अन्तर्दर्शन की विशेषताएं
(Characteristics of Introspection)

अन्तर्दर्शन विधि वस्तुत. आत्मनिरीक्षण की विधि है। आत्मनिरीक्षण की निम्नांकित विशेषताएं अन्तर्दर्शन की विशेषताए भी है—

(i) व्यक्ति को अपने व्यवहार के सम्वन्ध मे प्रत्यक्ष (Direct), तत्काल (Immediate) तथा वास्तविक (Real) ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(ii) व्यक्ति वास्तव मे अपने व्यवहार का अवलोकन करता है। अन्य व्यक्ति कभी-कभी व्यवहार का वास्तविक अवलोकन नही कर सकते है।

(iii) किसी विशिष्ट उपकरण की आवश्यकता न होने के कारण यह विधि अत्यत सरल तथा सदैव सुलभ विधि है।

अन्तर्दर्शन विधि की सीमाएं
(Limitations of Introspection)

अन्तर्दर्शन विधि मे वैज्ञानिकता का अभाव होने के कारण यह विधि अधिक मान्य स्वीकार नही की जाती है। इस विधि की मुख्य सीमाए निम्नवत् है—

(i) अन्तर्दर्शन विधि मे व्यक्ति अपने स्वय के व्यवहार का अवलोकन करता है। किसी मानसिक प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति के द्वारा अपने व्यवहार का अवलोकन करना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

(ii) अन्तर्दर्शन विधि से प्राप्त होने वाली सूचनाएँ अत्यधिक विषयनिष्ठ (Subjective) होती है।

(iii) शिशुओ, बालको तथा असामान्य व्यक्तियो के द्वारा अन्तर्दर्शन विधि का प्रयोग सम्भव नही हो सकता है।

(iv) अचेतनावस्था (unconciousness) मे किए जाने वाले व्यवहार का अध्ययन इस विधि के द्वारा नही किया जा सकता है।

(v) बदलते मनोवैज्ञानिक अनुभवो मे अन्तर्दर्शन करना कठिन होता है।

बहिर्दर्शन विधि
(Extrospection Method)

किसी अन्य व्यक्ति का अवलोकन करके उसके व्यवहार को जानना वहिर्दर्शन कहलाता है। इसीलिए वहिर्दर्शन विधि को पर-अवलोकन विधि या पर-निरीक्षण विधि के नाम से भी जाना जाता है। बहिर्दर्शन विधि मे व्यक्ति के व्यवहार, उसके आचरण, क्रियाओ, प्रतिक्रियाओ आदि को ध्यानपूर्वक देखकर उसके व्यवहार के कारणो का अनुमान लगाया जाता है। उदाहरणार्थ व्यक्ति क्रोधित अवस्था मे क्यो आता है, क्रोधित अवस्था मे व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करता है, क्रोध की व्यक्ति के ऊपर क्या प्रतिक्रिया होती है, क्रोध के कारण व्यक्ति मे क्या शारीरिक परिवर्तन आ जाते है, जैसी बातो का सूक्ष्म अवलोकन करके क्रोध से सम्वंधित व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है। जैसे यदि किसी व्यक्ति की आँखे लाल हों, भवे तनी हुई हों तथा वह तेजी से अपने

हाथो को इधर-उधर फेकता हुआ जोर-जोर से बोल रहा हो तो उसके इस व्यवहार को देखकर अन्य व्यक्ति समझ जाते है कि वह क्रोधित अवस्था मे है। बहिर्दर्शन अथवा पर-अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है—(i) औपचारिक बहिर्दर्शन (Formal Extrospection) तथा (ii) अनौपचारिक बहिर्दर्शन (Informal Extrospection)।

बहिर्दर्शन की विशेषताएं
(Characteristics of Extrospection)

बहिर्दर्शन विधि की मुख्य विशेषताए निम्नलिखित है—

(i) बहिर्दर्शन विधि का प्रयोग शिशुओं, बालको, किशोरो, प्रौढ़ो सभी के ऊपर किया जा सकता है।

(ii) अचेतन, अर्द्धचेतन, विकृत तथा विक्षिप्त अवस्थाओ में किए जाने वाले व्यवहारो का अध्ययन भी बहिर्दर्शन विधि के प्रयोग से किया जा सकता है।

(iii) बहिर्दर्शन विधि मे एक साथ अनेक व्यक्ति किसी व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन कर सकते है जिससे परिणाम अपेक्षाकृत अधिक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध प्राप्त होते है।

(iv) बहिर्दर्शन विधि की सहायता से पशुओ से प्राप्त परिणामो को मनुष्यो पर लागू करने की सम्भावना को देखा जा सकता है।

बहिर्दर्शन की सीमाएं
(Limitations of Extrospection)

बहिर्दर्शन विधि की सीमाए निम्नवत् है—

(i) बहिर्दर्शन विधि की सबसे बडी सीमा यह है कि अवलोकनकर्ता अन्य व्यक्तियो के व्यवहार का अवलोकन या व्याख्या करते समय प्राय: अपनी पूर्वधारणाओ तथा पूर्वाग्रहो से ग्रसित रहता है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम कभी-कभी आत्मनिष्ठ हो जाते हैं।

(ii) अवलोकित किए जाने वाला व्यक्ति कभी-कभी जानबूझकर अस्वाभाविक तथा कृत्रिम व्यवहार करता है, परतु अवलोकनकर्ता इस व्यवहार को वास्तविक मानकर उसकी त्रुटिपूर्ण व्याख्या कर देता है। अवलोकित व्यक्ति के ढोगपूर्ण व्यवहार से धोखा खाकर निकाले गए निष्कर्ष असत्य होते है।

(iii) बहिर्दर्शन विधि में अवलोकनकर्ता को एक साथ अनेक कार्य करने पडते है। व्यवहार का अवलोकन करना एक अत्यत कठिन कार्य है। अवलोकनकर्ता के द्वारा की गई स्वाभाविक त्रुटियो के कारण बहिर्दर्शन विधि अविश्वसनीय परिणाम दे देती है।

प्रयोगात्मक विधि
(Experimental Method)

अन्तर्दर्शन तथा बहिर्दर्शन विधियो मे अवलोकित किए जाने वाले व्यक्ति के

व्यवहार पर अवलोकनकर्ता का कोई नियंत्रण नही रहता है। व्यक्ति के एक ही प्रकार के व्यवहार के अनेक कारण हो सकते हैं। यही कारण है कि अवलोकनकर्ता के लिए सदैव यह सम्भव नही हो सकता है कि वह व्यक्ति के व्यवहार के वास्तविक कारणो को जान सके। इसके अतिरिक्त अवलोकन विधियो के द्वारा कार्य-कारण सम्बन्ध (Cause-Effect Relationship) की स्थापना करना उपयुक्त नही माना जाता है। कार्य-कारण सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक विधि मे परिस्थितियो को नियन्त्रित करके व्यवहार का अवलोकन किया जाता है। अतएव प्रयोगात्मक विधि को नियन्त्रित अवलोकन विधि (Controlled Observation Method) भी कहा जाता है। प्रयोगात्मक विधि एक वैज्ञानिक विधि है तथा यह वैज्ञानिक विधि के सोपानों का अनुसरण करती है। इस विधि मे प्रयोगकर्ता परिस्थितियों अथवा वातावरण को नियंत्रित करके निर्धारित करता है तथा उस निर्धारित परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

प्रयोगात्मक विधि की विशेषताएं

(Characteristics of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि की प्रमुख विशेषताए निम्नवत् है—

(i) प्रयोगात्मक विधि एक वैज्ञानिक विधि है इससे प्राप्त निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध होते है।

(ii) इस विधि मे परिस्थितियों पर मनोवैज्ञानिक का नियन्त्रण रहता है इसलिए इस विधि से कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते है।

(iii) इस विधि से प्राप्त परिणामो का सत्यापन प्रयोग को दोहरा कर किया जा सकता है।

(iv) पशुओं पर प्रयोग करके प्राप्त परिणामों को मनुष्यो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रयोगात्मक विधि की सीमाएं

(Limitations of Experimental Method)

प्रयोगात्मक विधि की कुछ सीमाए है जो निम्नवत् है—

(i) भौतिक परिस्थितियो पर नियन्त्रण रखना सरल हो सकता है, परतु व्यवहार से सम्बन्धित परिस्थितियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखना प्राय: अत्यत कठिन अथवा असम्भव होता है, जिसके कारण इस विधि से प्राप्त परिणाम त्रुटिपूर्ण भी हो सकते है।

(ii) प्रयोग चाहे कितनी ही सावधानी से क्यो न किया जाए, उसमे कुछ न कुछ कृत्रिमता अवश्य ही आ जाती है, जिसके कारण परिणामो की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है।

(iii) कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनका निर्माण करना या तो असम्भव होता है अथवा अवाछनीय होता है। जैसे, बालकों मे क्रोध, भय, डर आदि उत्पन्न करने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करना अवाछनीय ही होगा।

(iv) इस विधि मे व्यक्ति को नियन्त्रित परिस्थितियो मे कार्य करना होता है इसलिए उसमे प्रयोग के प्रति किसी प्रकार की कोई रुचि नही होती है। यही कारण है कि इस विधि मे प्रयोगकर्ता को प्रयोज्यो का सहयोग प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

(v) नियन्त्रित परिस्थितियो मे व्यक्ति का व्यवहार अस्वाभाविक तथा आडम्बरपूर्ण हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही है जिसके कारण व्यक्ति की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

(vi) व्यक्ति को न केवल बाह्य कारक वरन् उसकी आन्तरिक दशाए भी प्रभावित करती है। प्रयोगकर्ता बाह्य कारको पर तो नियन्त्रण कर सकता है, परतु आन्तरिक दशाओ पर नियन्त्रण करना उसके लिए सम्भव नही होता है।

(vii) पशुओ पर किए गए प्रयोगो से प्राप्त परिणाम सदैव ही मनुष्यो के लिए उपयुक्त नही होते है।

जीवन-इतिहास विधि
(Case-History Method)

कभी-कभी मनोवैज्ञानिकों को किसी व्यक्ति विशेष की विलक्षणता तथा समस्याओ को जानना होता है, तब मनोवैज्ञानिक प्राय जीवन-इतिहास विधि का प्रयोग करते है। जिस व्यक्ति की विलक्षणता का अध्ययन किया जाता है वह कोई अपराधी, मानसिक रोगी, झगडालू, प्रतिभाशाली, समाज-विरोधी कार्य करने वाला, समस्यात्मक बालक आदि कुछ भी हो सकता है। व्यक्ति की विलक्षणता का कारण उसका भौतिक, परिवारिक या सामाजिक वातावरण हो सकता है। व्यक्ति अपनी पूर्वगत परिस्थितियो तथा अनुभवो के फलस्वरूप विलक्षण व्यवहार करने लगता है। मनोवैज्ञानिकगण व्यक्ति के विलक्षण व्यवहार के वास्तविक कारण को जानने के लिए उसके जीवन इतिहास का अध्ययन करते है। वे उस व्यक्ति के माता-पिता, भाई-वहन, पडोसियो, सम्वन्धियो, मित्रो, अध्यापको आदि से उस व्यक्ति के द्वारा विगत मे किए गए क्रियाकलापो के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी एकत्रित करते है। व्यक्ति के वशानुक्रम, पारिवारिक व सामाजिक वातावरण, शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक, मानसिक, सवेगात्मक विकास तथा उसकी रुचियों व अनुभवों से सम्बन्धित सूचनाओ को एकत्रित करके मनोवैज्ञानिक उन कारणो की खोज करता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में विलक्षणता उत्पन्न हुई है। स्पष्ट है कि जीवन-इतिहास विधि का उद्देश्य उन कारणों का निदान करना है जो व्यक्ति को किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए मजवूर करते है।

जीवन-इतिहास विधि की विशेषताएं
(Characteristics of Case-History Method)

इस विधि की मुख्य विशेषताए निम्नवत् है—

(i) उपचारात्मक परामर्श व निर्देशन की दृष्टि से यह विधि सर्वोत्तम है।

(ii) मन्द बुद्धि व पिछडे बालकों तथा मानसिक रोगो से ग्रस्त बालको के अध्ययन के लिए यह विधि उपयोगी है।

(iii) इस विधि मे विभिन्न स्त्रोतो से तथा व्यापक ढग से सूचनाए सकलित की जाती है इसलिए इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय होते है।

जीवन-इतिहास विधि की सीमाएँ

(Limitations of Case-History Method)

इस विधि की प्रमुख सीमाए निम्नलिखित है—

(i) इस विधि का प्रयोग विशेषज्ञ ही कर सकते है।

(ii) इस विधि मे समय, श्रम व धन अधिक लगता है, जिसके कारण यह विधि अधिक व्ययशील हो जाती है।

(iii) कभी-कभी व्यक्ति तथा उसके इष्टमित्र प्रश्नगत व्यक्ति से सम्वधित सूचनाओ को छिपाने का प्रयास करते है, जिसके फलस्वरूप इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष गलत हो सकते है।

(iv) इस विधि से प्राप्त सूचनाओ की व्याख्या करते समय मनोवैज्ञानिकगणो मे भी मतभेद रहता है।

विकासात्मक विधि

(Developmental Method)

विकासात्मक विधि को जेनेटिक विधि (Genentic Method) भी कहा जाता है। इस विधि के अतर्गत व्यक्ति के विकास का क्रमवद्ध अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक जन्म से लेकर प्रौढावस्था तक व्यक्ति के विकास के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करता है तथा उसका विश्लेषण करके व्यक्ति के विकास पर उसके वशानुक्रम तथा वातावरण के प्रभाव को देखता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि विकासात्मक विधि मे विकास की विभिन्न अवस्थाओ जैसे—शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढावस्था मे व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा चारित्रिक आदि पक्षो के विकास का अध्ययन किया जाता है। स्पष्ट है कि यह विधि दीर्घकालीन विधि है, जिसमे अनेक वर्षो तक समकों को एकत्रित करना होता है। जीवन-इतिहास विधि तथा विकासात्मक विधि में प्रमुख अतर यह है कि जीवन-इतिहास विधि मे व्यक्ति से सम्वन्धित सूचनाएँ अन्य व्यक्ति उपलब्ध कराते है, जवकि विकासात्मक विधि मे मनोवैज्ञानिक स्वय अवलोकन करके अथवा मापन करके सूचनाओ को प्राप्त करता है। जीवन-इतिहास विधि मे मनोवैज्ञानिक का परिस्थितियो पर कोई नियत्रण नही होता है। वह केवल व्यक्ति से सम्वन्धित विगत सूचनाओं को प्राप्त करता है, जवकि विकासात्मक विधि में कभी-कभी उसे परिस्थितियो को नियत्रित करना होता है तथा वह एक लम्वे समय तक घट रही घटनाओ से सम्वन्धित सूचनाए प्राप्त करता है।

विकासात्मक विधि की विशेषताएं
(Characteristics of Developmental Method)

विकासात्मक विधि की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है—

(i) विभिन्न अवस्थाओ मे विकास की विशेषताओ को जानने के लिए विकासात्मक विधि सर्वाधिक उपयोगी है ।

(ii) बालक के विकासात्मक दोषो को जानने के लिए यह विधि अत्यत उपयोगी है ।

विकासात्मक विधि की सीमाएं
(Limitations of Developmental Method)

इस विधि की निम्नलिखित सीमाए है—

(i) दीर्घकालीन होने के कारण यह विधि समय, धन व श्रम की दृष्टि से अत्यत व्ययसाध्य है ।

(ii) मानव विकास को एक-साथ अनेक कारक प्रभावित करते है, सभी को नियंत्रित करके अध्ययन करना सम्भव नही होता है ।

तुलनात्मक विधि
(Comparative Method)

इस विधि मे प्राणियो के व्यवहार से सम्बन्धित समानताओं तथा असमानताओ का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । जैसे, पशुओ तथा मानवो के व्यवहारो की तुलना, दो प्रजातियो (Races) के व्यवहारों की तुलना, विभिन्न वातावरण मे पाले गए बालकों की तुलना, लडके तथा लडकियो के व्यवहारो की तुलना आदि । दो समूहो के व्यवहारों की समानताओ तथा असमानताओं की तुलना से अनेक उपयोगी सूचनाए प्राप्त हो सकती है। प्राय विभिन्न पशुओ के ऊपर प्रयोग करके व्यवहार से सम्बन्धित सिद्धान्तो को स्थापित किया जाता है तथा फिर उन सिद्धान्तो की उपयुक्तता मनुष्यों के ऊपर देखी जाती है । उदाहरण के लिए, सीखने के लगभग सभी सिद्धान्तो का प्रतिपादन प्रारम्भ में पशुओ के ऊपर प्रयोग करके किया गया तथा बाद में मानव जाति के ऊपर इनकी उपयोगिता ज्ञात की गई । पशुओ तथा अन्य प्रजातियों के व्यवहारो से तुलना करके मानव व्यवहार को समझने के कारण ही इस विधि को तुलनात्मक विधि कहा जाता है ।

तुलनात्मक विधि की विशेषताएं
(Characteristics of Comparative Method)

तुलनात्मक विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है—

(i) जिन प्रयोगो को मनुष्यो के ऊपर नही किया जा सकता, उन प्रयोगों को पशुओं के ऊपर करके सिद्धान्त प्रतिपादित करने की यह एकमात्र विधि है ।

(ii) अन्य प्रजातियो के लिए पहले से उपलब्ध ज्ञान के आधार पर व्यवहार को समझना सरल हो जाता है।

तुलनात्मक विधि की सीमाएं
(Limitations of Comparative Method)

इस विधि की निम्नांकित सीमाए है—

(i) मनुष्य तथा पशु मे स्पष्ट अतर होने के कारण पशुओं के ऊपर वनाए गए नियमो को यथावत् मनुष्य के ऊपर प्रयोग नही किया जा सकता है।

(ii) विभिन्न प्रजातियो का शारीरिक गठन, वशानुक्रम तथा परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती है। अत एक प्रजाति से प्राप्त ज्ञान को अन्य प्रजातियो पर प्रयुक्त करते समय पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता होती है।

मनो-विश्लेषणात्मक विधि
(Psycho-Analytical Method)

मनो-विश्लेषणात्मक विधि का प्रतिपादन सिगमन्ड फ्रायड (Sigmond Freud) ने किया था। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का अचेतन मन भी उसके व्यवहार को प्रभावित करता है। अचेतन वास्तव मे व्यक्ति की अतृप्त अथवा दमित इच्छाओ, भावनाओं का पुज होता है तथा यह सदैव क्रियाशील रहता है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का व्यवहार अनजाने ही इन अतृप्त अथवा दमित इच्छाओ से प्रभावित होता रहता है। मनोविश्लेषण विधि के द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके उसकी अतृप्त इच्छाओ की जानकारी प्राप्त की जाती है जिससे इन अतृप्त इच्छाओ का परिष्कार अथवा मार्गान्तरीकरण करके व्यक्ति के व्यवहार को सुधारा जा सके। स्पष्ट है कि यह विधि सामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की असामान्यता का निदान करने के लिए प्रयुक्त की जाती है। अचेतन मे निहित व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओ को जानने के लिए शब्दसाहचर्य, स्वप्न-विश्लेषण जैसी विभिन्न प्रक्षेपीय तकनीको का प्रयोग किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक विधि की विशेषताएं
(Characteristics of Psycho-Analytical Method)

इस विधि की प्रमुख विशेषताए निम्नवत् है—

(i) इस विधि से व्यक्ति के अचेतन तथा चेतन दोनों ही का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ii) व्यक्ति की भावना ग्रंथियों को ज्ञात करना तथा मानसिक विकारों का निदान इस विधि के प्रयोग से ही सम्भव है।

(iii) इस विधि मे व्यक्ति अपने मन की बातों को छुपा नही पाता है।

मनो-विश्लेषणात्मक विधि की सीमाएं
(Limitations of Psycho-Analytical Method)

मनो-विश्लेषणात्मक विधि की निम्न सीमाएँ हैं—

(i) इस विधि का प्रयोग केवल दक्ष मनोविश्लेषक ही कर सकते हैं।

(ii) इस विधि के प्रयोग मे धन एव समय अधिक लगता है।

(iii) इस विधि मे व्यक्ति तथा मनोविश्लेषक दोनो को ही अत्यधिक धैर्य से कार्य करना होता है जो कभी-कभी असम्भव हो जाता है।

(iv) व्यक्ति के मन मे छिपी अनेक वांछनीय इच्छाओ के सार्वजनिक हो जाने के कारण व्यक्ति तथा समाज इस विधि के प्रयोग करने मे सहयोग नही देते है।

निदानात्मक विधि
(Diagnostic Method)

निदानात्मक विधि का प्रयोग व्यक्ति के व्यवहार की जटिलताओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। यह एक व्यक्तिगत विधि है तथा इस विधि में व्यक्ति का अध्ययन करके उसके सम्मुख आने वाली कठिनाईयो का निदान खोजा जाता है। यह विधि शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को हल करने मे विशेष उपयोगी है। जैसे, पिछड़े बालको की कठिनाईयों को जानना, उच्च मानसिक योग्यता वाले छात्रों की शैक्षिक असफलता को जानना, अपराधी प्रवृत्ति वाले बालको के कारणो को जानना, हकलाने वाले बच्चो के हकलाने के कारणों को जानना आदि-आदि। ऐसे बालको या व्यक्तियो की मनोदशा का गहन अध्ययन करने, उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को जानने तथा उनके व्यवहार के कारणों को समझने के लिए निदानात्मक विधि का प्रयोग किया जाता है। निदानात्मक विधि के द्वारा व्यक्ति के जटिल तथा अवाछनीय व्यवहार के कारणो को ज्ञात करके उसे उपचारात्मक उपाय बताए जाते हैं।

निदानात्मक विधि की विशेषताएं
(Characteristics of Diagnostic Method)

इस विधि की मुख्य विशेषताए निम्नलिखित है—

(i) उपचारात्मक उपाय देने के लिए निदानात्मक विधि का प्रयोग अपरिहार्य है।

(ii) बालको की शैक्षिक समस्याओ का समाधान करने मे निदानात्मक विधि अत्यत उपयोगी है।

निदानात्मक विधि की सीमाएं
(Limitations of Diagnostic Method)

इस विधि की निम्नाकित सीमाए है—

(i) इस विधि का प्रयोग कुशल मनोचिकित्सक ही कर सकते है।

(ii) यह विधि समय, श्रम तथा धन की दृष्टि से अत्यधिक व्ययसाध्य है।

(साँख्यिकीय विधि)
(Statistical Method)

साख्यिकीय विधि एक आधुनिक तथा पर्याप्त प्रचलित विधि है। इस विधि मे

व्यक्तियो के प्रतिदर्श से प्रदत्तों को सकलित करके उनके आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है। इस विधि से प्राप्त सूचनाओ, सिद्धान्तों तथा नियमो को लगभग सभी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त माना जाता है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र मे इस विधि को एक अत्यत उपयोगी विधि स्वीकार किया जाता है। अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, परीक्षण आदि मापन उपकरणो की सहायता से सकलित प्रदत्तो का सांख्यिकीय ढग से विश्लेषण करके परिणाम प्राप्त किए जाते है। इस विधि से प्राप्त परिणामो की विश्वसनीयता सकलित प्रदत्तो की विश्वसनीयता पर निर्भर करती है।

सांख्यिकीय विधि की विशेषताएं

(Characteristics of Statistical Method)

इस विधि की प्रमुख विशेषताए निम्नवत् है—

(i) यह विधि एक वैज्ञानिक विधि है जिसके कारण इस विधि से प्राप्त सूचनाए प्रामाणिक स्वीकार की जाती है।

(ii) इस विधि से प्रतिदर्श से प्राप्त सूचनाओ के आधार पर समग्र के सम्बध मे निष्कर्ष ज्ञात किए जा सकते है।

(iii) साख्यिकीय विधियो के प्रयोग मे विभिन्न चरों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धो का गहन अध्ययन किया जा सकता है।

सांख्यिकीय विधि की सीमाएं

(Limitations of Statistical Method)

इस विधि की निम्नलिखित सीमाए है—

(i) इस विधि की विश्वसनीयता प्रयुक्त किए गए प्रतिदर्श तथा उससे प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर करती है। अत यदि प्रतिदर्श सम्पूर्ण जनसख्या का उचित प्रतिनिधित्व नही करता अथवा उससे प्राप्त सूचनाए असत्य होती हैं तो इस विधि से प्राप्त परिणाम अविश्वसनीय हो जाते है।

(ii) यह विधि समूहगत विशेषताओं का अध्ययन करती है। इस विधि से व्यक्तिगत विशेषताओ के सम्बध मे निष्कर्ष प्राप्त नही होते है।

उपसंहार

शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त वर्णित कुछ प्रमुख विधियो के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान अपने अध्ययन के लिए अनेक विधियों का प्रयोग करता है। यह भी स्पष्ट है कि मनोविज्ञान की प्रारम्भिक विधियाँ अव्यवस्थित, आत्मनिष्ठ तथा पक्षपातपूर्ण थीं, परंतु कालान्तर में मनोविज्ञान ने व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ, तथा पक्षपातरहित विधियों का प्रयोग करना शुरु कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप मनोविज्ञान के क्षेत्र मे किए जाने वाले अध्ययन अधिक वैज्ञानिक तथा प्रामाणिक हो गए। यद्यपि मनोविज्ञान की विधियाँ भौतिक विज्ञानों के समान निरपेक्ष अथवा शत-प्रतिशत सत्य (Absolute Truth) नही बताती हैं, फिर भी मनोविज्ञान के विकास में ये विधियाँ अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई

हैं। आधुनिक समय मे शिक्षा के क्षेत्र मे मनोविज्ञान के ज्ञान का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। अब शिक्षा के लगभग समस्त क्षेत्रो तथा समस्त कार्यक्रमो के आयोजन व सचालन मे मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, मनोविज्ञान की उपरोक्त वर्णित विधियो की अपनी कुछ विशेषताए तथा सीमाए है। किसी भी एक विधि को सर्वोत्तम विधि के रूप में इंगित नही किया जा सकता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों मे भिन्न-भिन्न विधि उपयोगी होती है। अत इन विधियो का उपयोग परिस्थितियो के अनुरूप अत्यत सतर्कता से किए जाने की आवश्यकता है जिससे प्रयुक्त की जाने वाली विधि के गुणो से लाभ उठाया जा सके तथा उसके दोषो से यथासम्भव बचा जा सके। वास्तव मे, मनोविज्ञान की ये सभी विधियाँ एक दूसरे की पूरक तथा सहयोगी है। इनमे किसी प्रकार का परस्पर विरोध तथा सघर्ष नही है।

---

3 वृद्धि एवं विकास
(Growth and Development)

माता-पिता, अध्यापकों अथवा अन्य इष्ट मित्रो को प्राय: यह कहते सुना जाता है कि रमेश की शारीरिक वृद्धि ठीक ढग से नही हो रही है क्योकि उसकी लम्बाई अथवा शारीरिक हृष्ट-पुष्टता उसकी आयु के औसत बच्चो से कम है, सोहन के मानसिक विकास की गति अच्छी है क्योंकि वह अल्प आयु में ही गम्भीर विषयो को समझ लेता है अथवा मीरा के सामाजिक विकास मे कही कोई कमी रह गई है क्योंकि वह अपनी कक्षा की अन्य छात्राओ के साथ घुल-मिलकर नही रह पाती है। वृद्धि तथा विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो बालक को असहाय शिशु से आत्मनिर्भर प्रौढ बनाती है। यह प्रक्रिया जन्म से पूर्व ही माता के गर्भ मे प्रारम्भ हो जाती है तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती है। वास्तव मे, गर्भाधान के साथ ही वृद्धि और विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तथा जन्म के उपरान्त शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था व प्रौढावस्था मे निरन्तर किसी न किसी रूप मे चलती रहती है। शिक्षा के क्षेत्र मे वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया का अत्यत महत्व है। आयु के बढने के साथ-साथ वृद्धि तथा विकास के फलस्वरूप बालक की योग्यताओ तथा क्षमताओ मे वृद्धि होने लगती है। इसलिए शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्धारण करते समय बालको की आयु तथा उनके विकास की अवस्था का ध्यान रखना अत्यत आवश्यक है। शिक्षा मनोविज्ञान बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओ तथा उनमे होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक, नैतिक आदि परिवर्तनों का ज्ञान कराता है जिससे विभिन्न आयु के बालको के विकास तथा उनके द्वारा विभिन्न विषयो के ज्ञान को हृदयगम करने की क्षमता का समुचित ढग से आकलन किया जा सके। प्रस्तुत अध्याय मे वृद्धि तथा विकास के सम्बन्ध मे कुछ आवश्यक तथा महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की गई है।

वृद्धि तथा विकास का अर्थ
(Meaning of Growth and Developement)

प्राय वृद्धि तथा विकास को समानार्थक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। नि:सदेह ये दोनों ही शब्द आगे बढने की ओर ही सकेत करते है परतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन दोनो मे कुछ अतर है। वृद्धि तथा विकास के अर्थों को समझने के लिए इनके अतर को समझना आवश्यक होगा। सामान्य रूप से वृद्धि शब्द का प्रयोग कोशीय वृद्धि (Celluar Multiplication) के लिए किया जाता है, जबकि विकास शब्द का प्रयोग वृद्धि के फलस्वरूप शरीर के समस्त अगो में आए परिवर्तनो के सगठन से है। नि.सदेह विकास मे वृद्धि का भाव सदैव निहित रहता है, परतु यह वृद्धि मे व्यापक होता है। स्पष्ट है कि

विकास वृद्धि तक ही सीमित नही है। गर्भाधान से लेकर शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था से होते हुए प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने के दौरान व्यक्ति के विभिन्न अगो के आकार, लम्बाई तथा भार आदि मे आने वाले परिवर्तनो को वृद्धि कहा जा सकता है। वृद्धि को मापा या तौला जा सकता है। बालक मे होने वाली वृद्धि को अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से देख सकते है। परतु कभी-कभी बालक के अगो के आकार मे वृद्धि होने पर भी उसकी कार्यक्षमता मे अपेक्षित प्रगति नही होती है तथा कहा जाता है कि वृद्धि तो हो रही है, परंतु विकास ठीक ढग से नही हो रहा है। स्पष्ट है कि विकास शरीर के विभिन्न अगो की कार्यक्षमता को इगित मे करता है। विकास शरीर की अनेक सरचनाओं (Structures) तथा कार्यो (Functions) को सगठित करने की जटिल प्रक्रिया है। यह वह प्रक्रिया है जिसमे विभिन्न आतरिक शरीर रचना सम्बन्धी परिवर्तन (Internal Physiological Change) तथा इनसे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाऐं (Psychological Process) एकीकृत होकर व्यक्ति को सरलता, सहजता व मितव्ययता से कार्य करने के योग्य बनाती है। अत अनेक वृद्धि प्रक्रियाओ को समाहित करने वाली श्रृखलाबद्ध परिवर्तन प्रक्रिया को विकास कहा जा सकता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति मे नवीन क्षमताएँ प्रकट होती हैं। विकास के अतर्गत दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाएँ होती है जो निरन्तर जीवन पर्यन्त चलती रहती हैं। ये हैं—वृद्धि (Growth अथवा Evolution) तथा क्षय (Atrophy अथवा Involution)। ये दोनो प्रक्रियाएँ गर्भकाल से प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्यु पर समाप्त हो जाती है। प्रारम्भिक वर्षो मे वृद्धि की प्रक्रिया तीव्र गति से होती है, जबकि क्षय प्रक्रिया अत्यत मन्द गति से चलती है। जीवन के अन्तिम वर्षो मे क्षय प्रक्रिया तीव्र गति मे चलती है, जबकि वृद्धि प्रक्रिया की गति अत्यत मन्द हो जाती है। वृद्धि तथा विकास का अर्थ विभिन्न विद्वानो के द्वारा दी गई परिभाषाओ से स्पष्ट हो सकेगा। वृद्धि तथा विकास की कुछ परिभाषाएँ अग्राकित प्रस्तुत है—

मेरीडिथ के अनुसार—"कुछ लेखक अभिवृद्धि का प्रयोग केवल आकार की वृद्धि के अर्थ मे करते है और विकास को भेदीकरण या विशिष्टीकरण के अर्थ में।"

Some writers reserve the use of 'growth' to designate increments in size and of 'development' to mean differntiation.

—Meridith

हर्लाक के शब्दों में—"विकास बडे होने तक ही सीमित नही है वरन् इसमे प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के फलस्वरूप व्यक्ति मे नवीन विशेषताएँ तथा नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं।"

Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. Development results in new characteristics and new abilities on the part of the individual.

—Hurlock

मनरों के अनुसार—"विकास परिवर्तन की वह अवस्था है जिसमें प्राणी गर्भावस्था से परिपक्वता तक गुजरता है।"

वृद्धि तथा विकास के सिद्धान्त
(Principles of Growth and Development)

वृद्धि तथा विकास के सम्बन्ध मे मनौवैज्ञानिको के द्वारा अनेक अध्ययन किए गए है। इन अध्ययनों से सिद्ध हो गया है कि वृद्धि तथा विकास के फलस्वरूप आने वाले परिवर्तनो मे पर्याप्त निश्चित सिद्धान्तो का अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया कुछ निश्चित सिद्धान्तों का अनुपालन करती है। इन सिद्धान्तो को वृद्धि तथा विकास के सामान्य सिद्धान्तों के नाम से पुकारा जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययनकर्त्ता के लिए वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया को सचालित करने वाले सिद्धान्तों को जानना अत्यत आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होगा। वृद्धि तथा विकास के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् है—

1. निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)—निरन्तर विकास के सिद्धान्त के अनुसार वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया निरन्तर अविराम गति से चलती रहती है। कभी यह मन्द गति से चलती है तथा कभी तीव्र गति से चलती है। वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया मे समग्रता का भाव निहित रहता है। वृद्धि तथा विकास को अलग-अलग सोपानो मे नही बॉटा जा सकता है। उदाहरणार्थ, प्रारम्भिक वर्षों मे वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया अत्यत तीव्र रहती है और उसके बाद के वर्षों मे धीमी हो जाती है, परतु विकास प्रक्रिया अनवरत लगातार चलती रहती है। निरन्तर विकास के सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि वृद्धि तथा विकास मे कोई आकस्मिक परिवर्तन नही होता है।

2. व्यक्तिगतता का सिद्धान्त (Principle of Individuality)—विकास की व्यक्तिगतता का सिद्धान्त बताता है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के विकास की गति भिन्न-भिन्न होती है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी गति से विकास करता है। एक ही आयु के दो बालको में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक अथवा चारित्रिक आदि विभिन्नताओं का होना विकास की व्यक्तिगतता को इगित करता है। यही कारण है कि आयु के समान होने पर भी बालक परस्पर भिन्न होते है।

3. परिमार्जितता का सिद्धान्त (Principle of Modifyability)—विकास की परिमार्जित का सिद्धान्त यह बताता है कि विकास की गति तथा दिशा में परिमार्जन सम्भव होता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि प्रयासो के द्वारा विकास की गति को वांछित दिशा की ओर तथा तीव्र गति से उन्मुख किया जा सकता है। विकास का यह सिद्धान्त शैक्षिक दृष्टि से अत्यत उपयोगी माना जाता है। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा बालक के विकास को वाछित दिशा मे अधिक तीव्र गति से अग्रसर करने का प्रयास किया जाता है।

4. निश्चित तथा पूर्वकथनीय प्रतिरूप का सिद्धान्त (Principle of Definite and Predictable Pattern)—प्रत्येक प्रजाति, चाहे वह पशु प्रजाति हो अथवा मानव प्रजाति, के विकास का एक निश्चित प्रतिरूप होता है जो उस प्रजाति के समस्त सदस्यो के लिए सामान्य होता है तथा उस प्रजाति के समस्त सदस्य उस प्रतिरूप का अनुसरण करते

है। यद्यपि किसी भी प्रजाति के सदस्यो मे परस्पर व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती है परतु ये भिन्नताएँ बहुत कम होती है तथा उस प्रजाति की सामान्य प्रवृत्ति (General Trend) को प्रभावित नही कर पाती है। व्यक्तिगो के किसी समूह के विकास का अनेक वर्षों तक अवलोकन करने पर विकास के विभिन्न पक्षो के विकासात्मक प्रतिमानो को जाना जा सकता है। विकास के इन प्रतिमानो के आधार पर अन्य व्यक्तियो के विकास का पूर्वकथन (Prediction) किया जा सकता है। इस सिद्धान्त को विकास क्रम या विकास दिशा का सिद्धान्त (Principle of Developmental Direction) के नाम से भी सम्बांधित किया जाता है। उदाहरणार्थ, शारीरिक विकास के क्षेत्र मे वृद्धि व विकास के क्रमबद्ध व पूर्वकथनीय प्रतिरूप के होने के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। जन्म पूर्व जीवन (Prenatal Life) मे शारीरिक वृद्धि मस्तकोधमुखी क्रम (CEPHALOCAUDAL SEQUENCE) का अनुसरण करती है। जिसका अर्थ है कि सबसे पहले मस्तिष्क क्षेत्र (Head Region), फिर धड़ क्षेत्र (Trunk Region), तथा सबसे अन्त मे पैर क्षेत्र (Leg Region) मे शरीर की वृद्धि तथा शरीर के विभिन्न अगो का नियन्त्रण होता है। जन्म के उपरान्त भी शारीरिक विकास मे यह क्रम बना
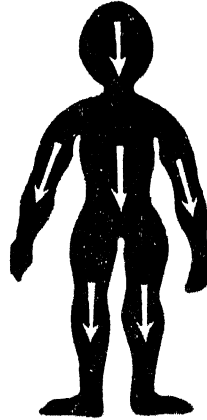
चित्र 3
मस्तकोधमुखी विकासात्मक दिशा का नियम
Law of Cephalocaudal Developmental Direction

रहता है। बालक शरीर के ऊपरी अगों अर्थात सिर का नियन्त्रण सबसे पहले सीखता है, फिर हाथो का नियन्त्रण सीखता है, फिर धड का नियन्त्रण सीखता है तथा सबसे अन्त में शरीर के निम्न भाग अर्थात् पैरो का नियन्त्रण करना सीख पाता है। मानसिक, सामाजिक, नैतिक आदि पक्षो मे भी विकास के निश्चित प्रतिमानो को देखा जा सकता है।

5. समान-प्रतिमान का सिद्धान्त (Principle of Uniform Pattern)—समान-प्रतिमान के सिद्धान्त के अनुसार समान प्रजाति (Race) के

विकास के प्रतिमानों मे समानता पाई जाती है । प्रत्येक प्रजाति, चाहे वह पशु प्रजाति हो चाहे अथवा मानव प्रजाति, अपनी प्रजाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती है । उदाहरणार्थ, संसार के समस्त भागो मे मानव प्रजाति के शिशुओ के विकास का प्रतिमान एक ही है तथा मानव शिशुओ के विकास के प्रतिमानो मे किसी प्रकार का अतर नही पाया जाता है ।

6. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Integration)—इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न अगो के विकास मे परस्पर समन्वय रहता है । बालक पहले सम्पूर्ण अगो को तथा फिर उस अग के विभिन्न भागो को चलाना सीखता है । तत्पश्चात् वह इन समस्त भागो में समन्वय स्थापित करना सीखता है । जब तक शरीर के विभिन्न अगो तथा उनके भागो के बीच समन्वय स्थापित नही होता है तब तक उचित विकास नही हो पाता है । विभिन्न अगो का एकीकरण ही गतियो को सरल व सहज बनाता है ।

7. वंशानुक्रम तथा वातावरण की अतःक्रिया का सिद्धान्त (Principle of Interaction between Heredity and Enviornment)—इस सिद्धान्त के अनुसार बालक का विकास वशानुक्रम तथा वातावरण की परस्पर अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है । केवल वशानुक्रम अथवा केवल वातावरण बालक के विकास की दिशा व गति को निर्धारित नही करते है वरन् दोनो की अन्त क्रिया के द्वारा विकास की दिशा व गति का नियन्त्रण होता है । वास्तव मे, वशानुक्रम उन सीमाओं को निर्धारित करता है जिससे आगे बालक का विकास करना सम्भव नही होता, जबकि वातावरण उन सीमाओ के बीच विकास के अवसर व सम्भावनाओं को निर्धारित करता है । अच्छे वशानुक्रम के अभाव मे अच्छा वातावरण निष्फल हो सकता है तथा अच्छे वशानुक्रम के बावजूद दूषित वातावरण बालक को कुपोषण या गम्भीर रोगो का शिकार बना सकता है अथवा उसकी जन्मजात योग्यताओ को कुठित कर सकता है ।

विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Development)

यद्यपि विकास की अवस्था अथवा सोपान अथवा स्तर जैसे शब्द का प्रयोग तकनीकी दृष्टि से भ्रामक है । फिर भी, प्राय यह स्वीकार किया जाता है कि विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को कुछ अवस्थाओ मे बाँटा जा सकता है । विकास की अवस्था शब्द युग्म से सकेत मिलता है कि एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे जाने पर विकास प्रक्रिया मे कुछ निश्चित परिवर्तन आ जाते है । वास्तव मे विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती है । परतु व्यावहारिक कारणो को दृष्टिगत रखते हुए यह मान लिया जाता है कि विकास की प्रक्रिया मे बालक विकास की कुछ अवस्थाओ अथवा सोपानो से होकर गुजरता है । विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विकास के विभिन्न सोपानो अथवा अवस्थाओं को बताया है । सामान्य रूप से मानव विकास को निम्नाकित अवस्थाओं मे बाँटा जा सकता है—

1. गर्भावस्था (Prenatal)
2. शैशवावस्था (Infancy)

3. बाल्यावस्था (Childhood)
4. किशोरावस्था (Adolesence)
5. प्रौढावस्था (Adulthood)

माता व पिता के मिलन के फलस्वरूप माता के द्वारा गर्भ धारण करने से लेकर शिशु के जन्म तक का समय गर्भावस्था कहलाती है। शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम पॉच वर्ष का काल शैशवास्था या शैशवकाल कहलाता है। पॉच वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु तक ही अवधि बाल्यावस्था या बाल्यकाल कहलाती है। बारह वर्ष की आयु से लेकर अट्ठारह वर्ष की आयु तक की अवस्था किशोरावस्था कहलाती है। अट्ठारह वर्ष की आयु के उपरान्त का काल प्रौढकाल या प्रौढावस्था कहलाती है।

शैक्षिक दृष्टि से इनमे से मध्य की तीन अवस्थाओं अर्थात् शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था का अत्यधिक महत्त्व है। विकास की इन तीनो अवस्थाओ मे होने वाले विकास का वर्णन अध्याय पॉच, छ व सात मे प्रस्तुत किया गया है।

विकास के पक्ष
(Aspects of Development)

विभिन्न अवस्थाओ मे होने वाले विकास के उपरोक्त वर्णित विवेचन से स्पष्ट है कि विकास की प्रत्येक अवस्था मे बालक के व्यवहार में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। बालक के व्यवहार मे होने वाले परिवर्तनो के आधार पर विकास को अग्राकित पक्षो मे विभक्त किया जा सकता है:—

1. शारीरिक विकास (Physical Development)
2. मानसिक विकास (Mental Development)
3. सामाजिक विकास (Social Development)
4. सवेगात्मक विकास (Emotional Development)
5. नैतिक विकास (Moral Development)

शैक्षिक दृष्टि से विकास के इन सभी पक्षो का अत्यधिक महत्त्व है। विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ मे इन विभिन्न पक्षो का विकास किस प्रकार से होता है तथा विकास की गति को किसे प्रकार से वाछित दिशा मे तीव्र गति से बढ़ाया जा सकता है, इसका अध्ययन करना शैक्षिक मनोवैज्ञानिक के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक तथा नैतिक विकास की विस्तृत चर्चा अध्याय आठ, नौ, दस, ग्यारह तथा बारह मे की गई है।

---

4 वंशानुक्रम तथा वातावरण
(Heredity and Environment)

प्राय देखा जाता है कि माता-पिता के अनेक गुण उनकी सन्तान मे भी परिलक्षित होते है। कहने का अभिप्राय यह है कि बच्चो के रगरूप, आकृति, मानसिक योग्यता आदि पर उनके माता-पिता की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। वास्तव मे बालक अपने माता-पिता से अनेक शारीरिक व मानासिक गुण प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, प्राय. देखा जाता है कि बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान बुद्धिमान होती है, जबकि कम बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान कम बुद्धिमान होती है। व्यक्ति को न केवल अपने माता-पिता से वरन् अपने अन्य पूर्वजो से भी अनेक गुण विरासत मे मिलते है। माता-पिता तथा अन्य पूर्वजो से प्राप्त होने वाले गुणो को ही वशानुक्रम, पैतृकता, वश परम्परा अथवा आनुवाशिकता आदि नामो से पुकारा जाता है।

परतु कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि व्यक्ति मे ऐसे गुण होते है जो उसके किसी पूर्वज मे नही होते। जैसे, कभी-कभी सगीत मे किसी भी प्रकार की रुचि न रखने वाले परिवार का कोई बच्चा महान सगीतज्ञ बन जाता है अथवा अपराधी व्यक्तियो की सगत मे पडकर किसी सतपुरुष का पुत्र अपराधी बन जाता है। ऐसा वातावरण के प्रभाव से सम्भव होता है। अनुकूल वातावरण मे व्यक्ति अपने परिवार से भिन्न गुणो को विकसित कर लेता है। बालक के विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण का क्या प्रभाव है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सर्वमान्य समाधान अभी तक प्राप्त नही हुआ है। कुछ विद्वान् वशानुक्रम को तथा कुछ विद्वान् वातावरण को अधिक महत्वपूर्ण मानते है। दोनों मतों को मानने वाले विद्वान् अपने-अपने मतो की पुष्टि के लिए तरह-तरह के प्रमाण प्रस्तुत करते है। जैविक मनोवैज्ञानिक वशानुक्रम को अधिक महत्व देते है। उनके अनुसार बालक के विकास मे वशानुक्रम मुख्य भूमिका तथा वातावरण गौण भूमिका अदा करता है। परतु वातावरणवादी मनोवैज्ञानिक बालक के विकास मे वातावरण को वशानुक्रम से अधिक प्रभावशाली स्वीकार करते है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक बालक के विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो ही के योगदान को स्वीकार करते है। उनके अनुसार वशानुक्रम की तुलना बीज (seed) से की जा सकती है जिसमें किसी विशिष्ट प्रकार का वृक्ष बनने की पूर्ण सम्भावनाएँ निहित रहती है, जबकि वातावरण की तुलना बीज या पौधे को उपलब्ध मिट्टी, खाद, पानी, धूप तथा वायु आदि से मिलने वाले पोषण से की जा सकती है। वृक्ष के विकास के लिए दोनो ही की आवश्यकता होती है। दोनो में से किसी एक के अभाव मे वृक्ष का बनना सम्भव नही है। आम तथा अमरूद के बीजो को पास-पास बोकर एक समान पोषण देने पर भी आम के बीज से आम का पौधा तथा अमरूद के बीज से अमरूद का पौधा ही निकलेगा।

वशानुक्रम की समानता के अभाव मे एक समान पोषण एक समान परिणाम नही दे सकता । इसके अतिरिक्त दो एक समान बीजो को भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद, मिट्टी, जल, वायु तथा धूप आदि का विभिन्न पोषण देने पर उनसे एक जैसी गुणवत्ता के फलो की अपेक्षा करना व्यर्थ ही होगा । अच्छे पोषण से अच्छे फल मिलेगे, जबकि कुपोषण से निम्न स्तर के फल ही प्राप्त होगे । वास्तव मे विकास प्रक्रिया मे प्रकृति (Nature) तथा पोषण (Nurture) दोनों का ही महत्व है । मानव व्यवहार तथा विकास के निर्धारको मे वशानुक्रम तथा वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होने के नाते इन दोनों का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे वशानुक्रम तथा वातावरण के स्वरूप तथा बाल विकास मे इनके योगदान की चर्चा की गई है।

वंशानुक्रम का अर्थ
(Meaning of Heredity)

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है प्रत्येक जीवधारी अपने पूर्वजो से अनेक शारीरिक, मानसिक तथा व्यवहार सम्बन्धी गुणो को विरासत मे प्राप्त करता है। पूर्वजो के द्वारा हस्तातरित किए गए गुणो के मिश्रित समूह को ही वशानुक्रम कहा जाता है। अत वंशानुक्रम जन्मजात गुणों का योगफल है। जीवविज्ञान के अनुसार निषेचित अड (Fertilized Ovum) मे उपस्थित सम्भाव्य गुणो (Potential Traits) का योगफल (Sum Total) ही वशानुक्रम कहलाता है। विभिन्न विद्वानो के द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाओ के अवलोकन से वशानुक्रम का अर्थ स्पष्ट हो सकेगा । वशानुक्रम की कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् है—

वुडवर्थ के अनुसार—"वशानुक्रम मे वे सभी बाते समाहित रहती है जो जीवन का प्रारम्भ करते समय, जन्म के समय नही वरन् जन्म से लगभग नौ माह पूर्व गर्भाधान के समय व्यक्ति मे उपस्थित थी।"

Heredity covers all the factors that were present in the individual when he began life, not at birth, but at the time of conception, about nine months before birth.

—Woodworth.

जेम्स ड्रेवर के शब्दों में—"माता-पिता से शारीरिक तथा मानसिक विशेषताओ का सतानों को हस्तान्तरण होना वंशानुक्रम है।"

Heredity is the transmission from parents to offspring of physical and mental characteristics.

—James Drever.

डगलस तथा हालैंड के अनुसार—"किसी व्यक्ति के वशानुक्रम मे वे सभी सरचनाएँ, शारीरिक विशेषताएँ, क्रियाएँ अथवा क्षमताएँ सम्मिलित होती है, जिन्हें वह माता-पिता, अन्य पूर्वजों अथवा प्रजाति से ग्रहण करता है।"

One's heredity consists of all the structures, physical characteristics, functions or capicities derived from parents, other ancestors or species.

—Douglas and Holland

पीटर्सन के अनुसार—"कोई व्यक्ति अपने माता-पिता के द्वारा अपने पूर्वजो से जो भी प्राप्त करता है, उसे वशानुक्रम के रूप मे पारिभाषित किया जा सकता है।"

Heredity may be defined as what one gets from his ancestral stock through his parents.

—H. A. Peterson

उपरोक्त परिभाषाओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि वशानुक्रम माता-पिता तथा अन्य पूर्वजो के वे गुण है जो व्यक्ति उनसे प्राप्त करता है। वास्तव मे वशानुक्रम एक अमूर्त (Abstract) तथा जैवकीय दृष्टि से अत्यत जटिल (Complex) धारणा है। प्राय वशानुक्रम को व्यक्ति तथा उसके पूर्वजो के व्यवहारो की तुलना करके जाना जाता है। व्यक्ति के जीवन की सम्भावनाएँ काफी तक उसके वशानुक्रम पर ही निर्भर करती है। साराश रूप मे कहा जा सकता है व्यक्ति के जन्मजात गुण ही उसका वशानुक्रम है।

वंशानुक्रम के नियम
(Laws of Heredity)

न केवल मनोवैज्ञानिको बल्कि जीववैज्ञानिको (Biologists) के लिए वशानुक्रम एक अत्यत रोचक तथा रहस्यमय विषय रहा है। वशानुक्रम की क्रियाशीलता का अध्ययन करने के लिए अनेक शोध कार्य तथा प्रयोग किए गए है। इन शोध कार्यों तथा प्रयोगो के आधार पर वशानुक्रम के कुछ सामान्य नियमो का प्रतिपादन किया गया है। ये नियम बताते है कि वशानुक्रम किस प्रकार से क्रियाशील रहता है। वशानुक्रम के कुछ प्रमुख नियम निम्नवत् है—

1. समानता का नियम (Law of Resemblance)—इस नियम के अनुसार समान-समान को ही जन्म देता है (Like Produces Like)। यह नियम कहता है कि बच्चो मे अपने माता-पिता के समान होने की प्रवृत्ति होती है। जैसे माता-पिता होते है वैसे ही उनके बच्चे होते है। बुद्धिमान माता-पिता के बच्चो मे बुद्धिमान होने की, समान्य बुद्धि माता-पिता के बच्चो मे सामान्य बुद्धि होने की तथा मद बुद्धि माता-पिता के बच्चो मे मद बुद्धि होने की प्रवृत्ति रहती है। इसी प्रकार से शारीरिक दृष्टि से सुदर माता-पिता के बच्चो मे सुदर होने की सम्भावना रहती है, जबकि कुरुप माता-पिता के बच्चो में कुरुप होने की सम्भावना रहती है।

2. भिन्नता का नियम (Law of Variation)—यह नियम पूर्ववर्ती समानता के नियम का पूरक है, जो कहता है कि बच्चे पूर्णरूपेण अपने माता-पिता के समान नही होते है, वरन् उनमे अपने माता-पिता से कुछ अतर भी होते है। कभी-कभी बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे औसत बुद्धि अथवा अल्प बुद्धि वाले होते है तथा गौरवर्ण माता-पिता के बच्चे श्यामवर्ण के होते है। ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही माता-पिता के कई बालक शारीरिक तथा मानसिक गुणो मे पर्याप्त अतर रखते है। इस विभिन्नता का कारण माता-पिता के उत्पादक कोषो के वशसूत्रो (Chromosomes) का भिन्न-भिन्न सयोगो मे सयुक्त (Unite) होना है। एक ही माता-पिता के वशसूत्रो के विभिन्न समुच्चय (Combination) भिन्न-भिन्न गुणो से युक्त सतानो को जन्म देते हैं।

3. प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression)—प्रत्यागमन के इस नियम के अनुसार प्रत्येक गुण मे औसत की ओर प्रत्यागमन करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह देखा गया है कि बहुत प्रतिभाशाली माता-पिता के बच्चे अपने माता-पिता की अपेक्षा कम प्रतिभाशाली होते है ? तथा बहुत ही निम्न स्तरीय बुद्धि वाले माता-पिता के बच्चे अपने माता-पिता से कुछ अधिक बुद्धि वाले होते है। इस प्रकार से बच्चो मे औसत की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति होती है।

4. चयनित गुणों का सिद्धान्त (Law Of Selective Traits)—यह नियम बताता है कि केवल कुछ ही गुणो मे वश परम्परा होती है। वशानुक्रम मे समस्त मानवीय गुण सम्मिलित नही रहते है। आँखो का रग, त्वचा का रग, खून का प्रकार, रगान्धता, चेहरे की बनावट आदि कुछ ऐसे गुण है जो वंशानुक्रम मे माता-पिता के द्वारा अपनी सतान को प्राप्त होते है।

5. मातृ व पितृ पक्षों का नियम (Law of Maternal and Paternal Lines)—वशानुक्रम केवल माता अथवा केवल पिता से प्राप्त गुणो से निर्धारित नही होता है वरन् बालक की माता व उसके पूर्वज तथा उसके पिता व उसके पूर्वज उसके कुछ आधे-आधे भाग को निर्धारित करते हैं।

6. संयोग का नियम (Law of Chance)—वंशानुक्रम के निर्धारण मे सयोग का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान रहता है जिसके कारण वशानुक्रम की पूर्ण सत्य भविष्यवाणी करना सम्भव नही है। एक ही माता-पिता के वशसूत्रो (chromosomes) के सयुक्त होने की एक करोड सडसठ लाख सत्तर हजार दो सौ सोलह विभिन्न सम्भावनाएँ सम्भव हैं।

वंशानुगत विशेषक
(Hereditary Traits)

जीववैज्ञानिको तथा मनोवैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न विधियों से अध्ययन करके अनेक वशानुगत लक्षणो या विशेषको (Hereditary Traits) का पता लगाया है। अब तक लगभग 200 वशानुगत विशेषक लगभग निर्धारित किए जा चुके है। वशानुगत विशेषको को निम्नाकित चार वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

1. संरचनात्मक विशेषक (Structural Traits)—वशानुगत विशेषकों के इस वर्ग के अतर्गत वे विशेषक आते है जो व्यक्ति के शरीर की सरचना से सम्बन्धित होते है। शरीर अथवा अगो की माप व आकृति, बालों का रग, बालो की आकृति (सीधे या घुघराले), बालो का विन्यास, नेत्रो का रग, त्वचा का रग व दशा, दाँत के डेनटीन व ऐनेमल आदि सरचनात्मक लक्षण हैं। बौनापन, युक्तागुलिता (Syndactyly) एव लघुअगुलिता (Brachydactyly) सरचनात्मक वशानुगत विशेषको के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

2. क्रियात्मक विशेषक (Functional Traits)—वंशानुगत विशेषको के इस वर्ग के अंतर्गत व्यक्ति के शरीर की क्रिया प्रणालियों से सम्बन्धित लक्षण आते है। स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति, दीर्घायु, प्रजनन क्षमता, रुधिर वर्ग (Blood Groups) तथा रोगों के

प्रति सवेदनशीलता (Susceplibility) आदि क्रियात्मक वशानुगत विशेषकों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

3. मानसिक विशेषक (Mental Traits)—वशानुगत विशेषको के इस वर्ग के अतर्गत मानसिक योग्यताओ तथा व्यक्तित्व से सम्बन्धित लक्षण आते हैं। बुद्धि, साहित्यिक, गणितीय, वैज्ञानिक, गायन जैसी योग्यताएँ, मितव्ययता, स्वामीभक्ति, स्वाभिमान, मिजाज आदि लक्षण मानसिक वशानुगत विशेषकों के प्रमुख उदाहरण है।

4. असाधारण विशेषक (Abnormal Traits)—वशानुगत विशेषको के इस वर्ग के अतर्गत उन असाधारण लक्षणो अथवा रोगो को रखा जाता है जो व्यक्तियो को वंशपरम्परा से प्राप्त होते है। बहुअँगुलिता (Polydactyly), गजापन, (Baldness) वर्णान्धता (Clour Blindness), अधिरक्तस्राव (Haemophilia), रजकहीनता (Albinism), मिरगी (Epilepsy), हँसियाकार-रुधिराणु ऐनीमिया (Sickle-cell Anaemia), फीनाइलकीटोनूरिया (Phenylketonuria), एल्कैप्टोनूरिया (Alkaptonuria) आदि असाधारण वशानुगत विशेषको के कुछ प्रमुख उदाहृण है।

वंशानुक्रम की प्रक्रिया
(Process of Heredity)

वशानुक्रम के वास्तविक वाहक (Carrier) पित्रैक (Genes) होते है। पित्रैक धागे के समान (String like) अत्यत महीन कण होते है जो मानवीय उत्पादक कोषो (Human Reproductive Cells) मे विद्यमान रहते हैं तथा माता-पिता से अपनी सतान को हस्तारित होते है। पित्रैक वास्तव मे DNA (Deoxyribo-Nucleic Acid) के अणु होते है। DNA की रचना का अध्ययन प्रारम्भिक स्तरीय मनोवैज्ञानिको के लिए विशेष उपयोगी प्रतीत नही होने के कारण, प्रस्तुत नही किया जा रहा है। फिर भी इच्छुक पाठक DNA की रचना का ज्ञान जीवविज्ञान की उच्च स्तरीय पुस्तको से प्राप्त कर सकते है। पित्रैक विभिन्न समुच्चयो (Combination) मे प्रत्येक वशसूत्र (Chromosome) मे पाए जाते है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रत्येक वशसूत्र मे लगभग 3000 तक पित्रैक होते है। वशसूत्रो मे पित्रैक एक रेखीय आकृति के रूप मे शृखलाबद्ध होते है।

सभी जीवधारियो के गुणसूत्र ढाँचे मे गुणसूत्र जोडों (Pairs) मे होते है, अर्थात् किसी एक प्रकार की आकृति, माप एव रचना के दो समान गुणसूत्र होते है। प्रत्येक जोडी के दो समान गुणसूत्रो को समजात गुणसूत्र (Homologous Chromosomes) कहते है। प्रत्येक सन्तान को समजात गुणसूत्रो की प्रत्येक जोडी का एक गुणसूत्र अण्डाणु (Ovum) के द्वारा माता से तथा दूसरा गुणसूत्र शुक्राणु (Sperm) के द्वारा पिता से मिलता है। मानव जाति मे गुणसूत्रो की कुल सख्या 46 या 23 जोडियाँ होती हैं। पुरुष के 46 गुणसूत्रों के 23 जोडो (Pairs) मे से केवल 22 जोडो के गुण सूत्र ही अपने-अपने जोडीदार के समान होते है। 23वी जोडी के गुणसूत्र असमान होते है। 23वी जोडी का

एक गुण सूत्र लम्बा छडीनुमा होता है तथा इसे X गुणसूत्र (X-Chromosome) जबकि दूसरा गुणसूत्र छोटा गोल सा होता है तथा इसे Y गुणसूत्र (Y-Chromosome) कहते है । इसके विपरीत नारी मे 23वी जोडी के गुणसूत्र भी समजात होते है । नारी की 23वी जोड़ी के दोनो गुणसूत्र लम्बे छडीनुमा होते है । क्योकि ये पुरुष के X गुणसूत्र जैसे होते है इसीलिए इन्हे X गुणसूत्र कहा जाता है । अत पुरुष की 23वी जोडी मे X व Y गुण सूत्र होते है जबकि नारी की 23वी जोडी मे X व X गुणसूत्र होते है । इसी 23वी जोडी के गुणसूत्रो के कारण ही पुरुष तथा स्त्री का लिंग भेद विकसित होता है, जिसके कारण ये गुणसूत्र लिंग गुणसूत्र (Sex Chromosomes) कहलाते है । महिला की 23वी जोडी के गुणसूत्रो को X गुणसूत्रो से इसलिए सम्बोधित किया जाता है क्योकि ये गुणसूत्र लम्बे होते है तथा मिलकर X के आकार की आकृति बनाते है । पुरुषों की 23वी जोडी के गुणसूत्रो मे एक लम्बा व एक छोटा होने के कारण X की आकृति नही बनती है तब X की एक टॉग होने के कारण Y की आकृति बनती है इसलिए छोटे गुणसूत्र को Y से सम्बोधित किया जाता है ।
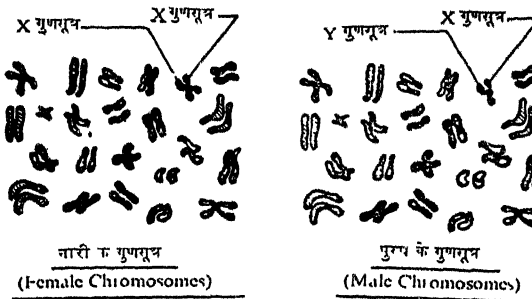
चित्र 4
पुरुष तथा नारी के गुणसूत्रों की संरचना

उत्पादक कोष दो प्रकार के होते है—पितृ उत्पादक कोष (Male Sperm Cells) तथा **मातृ उत्पादक कोष** (Female Ovum Cells) । ये मातृ व पितृ उत्पादक कोष माता तथा पिता के पुर्नुत्पादक अंगो (Reproductive Organs) जिन्हे जननाग या जनद (Gonads) कहते है, मे विकसित होते है । पुरुष उत्पादक कोष जिन्हें शुक्र कण (sperms) कहते हैं, पुरुष जनद (Male Gonads) अर्थात् वृषण (Testicles) मे विकसित होते है, जबकि मातृ उत्पादक कोष, जिन्हें अण्ड (Ova) कहते है, महिला जनद (Female Gonads) अर्थात् अण्डाशय (Ovaries) मे विकसित होते है । प्रत्येक अण्ड कोष तथा शुक्र कोष गुणसूत्रो के तेईस जोडो अर्थात् कुल 46 गुणसूत्रो से मिलकर बना होता है, जिनमे से आधे पितृपक्ष से तथा आधे मातृपक्ष से प्राप्त होते है । गुणसूत्रो के प्रत्येक जोडे का एक गुणसूत्र मातृपक्ष से प्राप्त होता है तथा दूसरा पितृ पक्ष से प्राप्त होता है । प्रारम्भ मे कोष अपरिपक्व होते है शुक्राणु कोष तथा अण्ड कोष के परस्पर सयुक्त होने के लिए तत्पर होने से ठीक पूर्व इनके गुणसूत्र एक प्रवाह की स्थिति (State of flux) मे होते हैं जिसके दौरान वे पूर्णरूपेण पुर्नव्यवस्थित होते है । तब सर्वप्रथम प्रत्येक
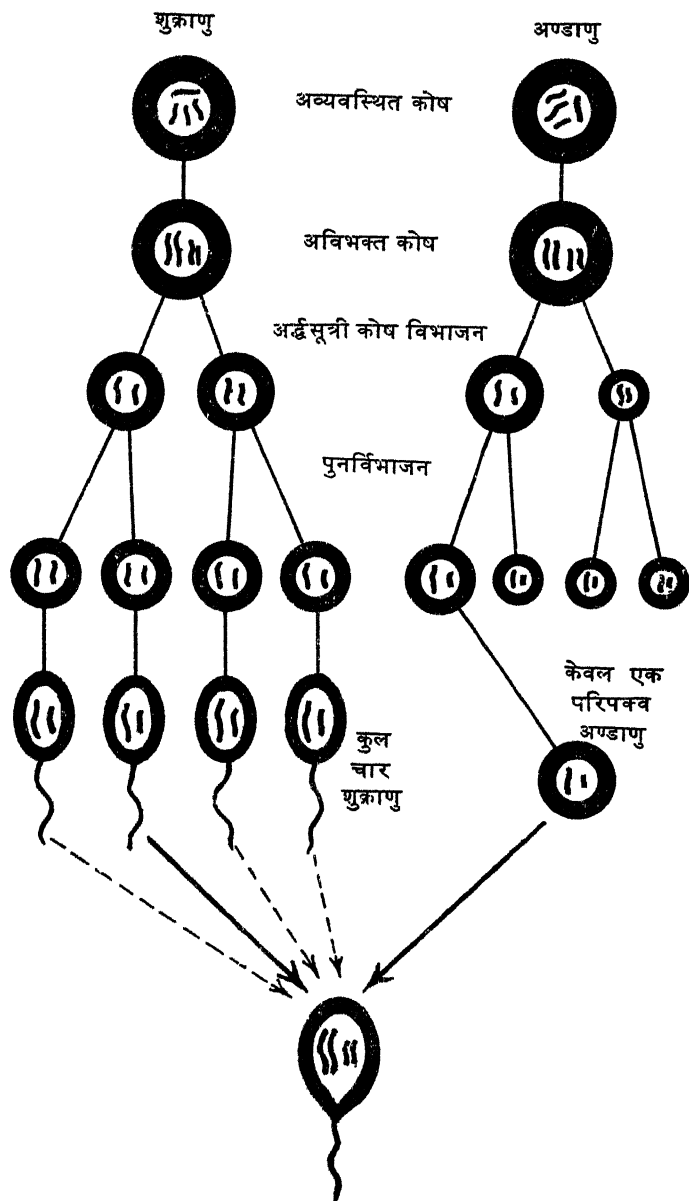
चित्र—5
शुक्राणु तथा अण्डाणु के विभाजन एव निषेचन की प्रक्रिया

कोष के 46 वशसूत्र इस प्रकार से 23 जोडे बनाते है कि प्रत्येक जोडे मे वही दो गुण सूत्र होते है जिनके साथ कोष का प्रारम्भ हुआ था। इसके पश्चात् कोष अवकरण व विभाजन की प्रक्रिया (Reduction and Division Process) से गुजरता है। अवकरणीय कोष विभाजन की इस प्रक्रिया मे वशसूत्रो के 23 जोडे वाला कोष दो कोषो में इस प्रकार विभाजित होता है कि प्रत्येक जोडे का एक वशसूत्र एक विभाजित कोष मे तथा दूसरा वशसूत्र दूसरे विभाजित कोष मे आ जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक विभाजित कोष मे केवल 23 वशसूत्र होते है। इसे अर्द्धसूत्री कोष विभाजन भी कहते है। यह केवल सयोग पर होता है कि प्रत्येक जोडे का कौन-सा वशसूत्र किस विभाजित कोष मे जाता है। इस प्रकार से वशसूत्रो के करोडो सयोजन हो सकते है। इसके उपरान्त ये दोनो ही विभाजित कोष पुन दो-दो भागो मे विभक्त हो जाते है परतु प्रत्येक मे 23 वशसूत्र होते है तथा इस प्रकार से विभाजित कोष अपनी पूर्ण पहचान (Idendity) बनाए रखते है। अण्डकोष के विभाजन की प्रक्रिया को अण्डजनन (Oogenesis) कहते है, जबकि शुक्राणु के विभाजन की प्रक्रिया को शुक्रजनन (Spermatogenesis) कहते है। अण्डजनन तथा शुक्र जनन की प्रक्रियाएँ लगभग एक समान होती है अतर केवल अन्तिम सोपान पर होता है। शुक्राणु के विभाजन प्रक्रिया से प्राप्त चारो विभक्त शुक्र कोष अण्डकोष से सयुक्त होने के लिए तैयार होते है, जबकि अण्ड के विभाजन से प्राप्त चार विभक्त कोषो मे से केवल एक ही अण्ड के रूप मे विकसित होता है तथा अन्य तीन विलग (Isolate) होकर अविकसित रह जाते है। इस प्रकार से चारो विभक्त शुक्र कोष परिपक्व होते हैं तथा ये परिपक्व अण्ड से सयुक्त होने के लिए समर्थ होते है। परिपक्व अण्ड तथा किसी एक परिपक्व शुक्र कोष के सयुक्त होने से ही नवीन जीवन का प्रारम्भ होता है। परिपक्व अण्ड के 23 वशसूत्र परिपक्व शुक्र कोष के 23 वशसूत्रो से मिलकर गुणसूत्रो के 23 जोडे बनाते है। प्रत्येक जोडे का एक गुणसूत्र माता से मिलता है तथा दूसरा गुणसूत्र पिता से मिलता है। अण्ड व शुक्र के मिलने से बने सयुक्त कोष को सयुक्त कोष या युक्ता (Zygote) कहते हैं। इस प्रकार से यह सयुक्त कोष अथवा युक्ता दो उत्पादक कोषों का योग होता है तथा इस सयुक्त कोष के विभक्तीकरण तथा गुणीकरण (Division and Multiplication) से ही सम्पूर्ण मानव शरीर का निर्माण होता है। गर्भाधान के समय अण्ड स्रवित होकर गर्भाधान नाल (Fallowpian Tube) के द्वारा गर्भाशय (Womb) मे आते हैं, जहाँ शुक्राणु से उसका सयोग होता है। इस प्रकार इन दोनो के सायुज्जन (Fusion) से निषेचन (Fertilization) की क्रिया सम्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप यह निषेचित सयुक्त कोष (Zygote) कालान्तर मे भ्रूण (Embryo) मे परिवर्तित हो जाता है। अण्ड व शुक्राणु के सयोजन के साथ ही सयुक्त कोष के विभाजन की प्रक्रिया (Mytosis) प्रारम्भ हो जाती है तथा भ्रूण का विकास होने लगता है। इस प्रकार से बालक को प्राप्त होने वाले वशसूत्रो के 23 जोडो के प्रत्येक जोडे का एक वशसूत्र मातृपक्ष से प्राप्त होता है, जबकि दूसरा वशसूत्र पितृपक्ष से प्राप्त होता है। इन वशसूत्रो मे विद्यमान पित्रैक बालक के वशानुक्रम को निर्धारित करते है। वशानुक्रम की प्रक्रिया चित्र 5 से स्पष्ट हो सकेगी।

स्थिति प्रथम माता पिता दोनो ही शुद्ध काली आँखो वाले → सभी सन्ताने शुद्ध काली आँखो वाली होगी।
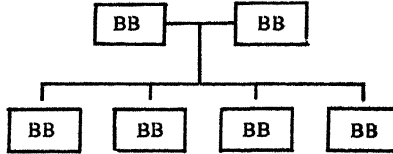
स्थिति द्वितीय माता पिता दोनो ही शुद्ध नीली आँखो वाले → सभी सन्ताने शुद्ध नीली आँखो वाली होगी।
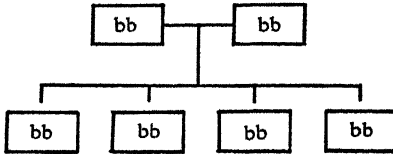
स्थिति तृतीय माता पिता मे से एक शुद्ध काली तथा दूसरा शुद्ध नीली आँखो वाला → सभी सन्ताने सकर काली आँखो वाली होगी।
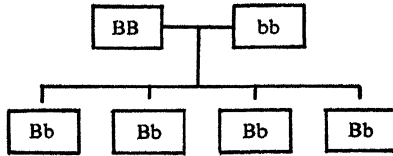
स्थिति चतुर्थ माता पिता मे से एक शुद्ध काली तथा दूसरा सकर काली आँखो वाला → आधी सन्ताने शुद्ध काली तथा आधी सकर काली आँखो वाली होगी।
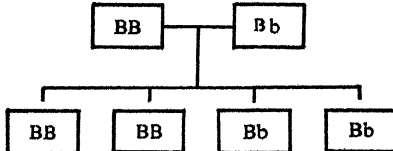
स्थिति पचम माता पिता मे से एक शुद्ध नीली तथा दूसरा सकर काली आँखो वाला → आधी सन्तान शुद्ध नीली तथा आधी सकर काली आँखो वाली होगी।
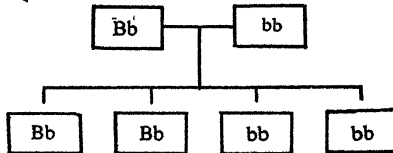
स्थिति षष्ठम माता पिता दोनो ही सकर काली आँखो वाले → आधी सन्तान सकर काली, एक चौथाई शुद्ध काली तथा एक चौथाई सन्तान शुद्ध नीली आँखो वाली होगी।
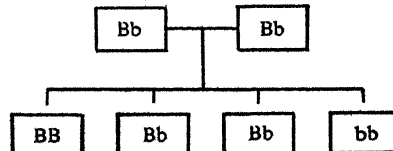
चित्र 6 वंशानुक्रम का मेन्डल नियम

गर्भाधान का महत्त्व
(Inportance of Conception)

गर्भाधान अर्थात् शुक्राणु के द्वारा अडकोष का निषेचन मानव जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओ मे से एक है। गर्भाधान के समय जो कुछ भी होता है वह जन्म लेने वाले बालक के सम्पूर्ण भावी जीवन का निर्धारण करता है। गर्भाधान के समय ही कालान्तर में जन्म लेने वाली सन्तान के वशानुक्रम (Heredity Endowment), लिगभेद (Sex Determination) तथा सतानों की सख्या (Numbei of Offsprings) का निर्धारण हो जाता है।

1. वंशानुक्रम (Heredity Endowment)—अड के शुक्राणु के साथ निषेचित होते समय ही वशानुक्रम का निर्धारण हो जाता है। जैसी कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि वशानुक्रम के वास्तविक वाहक पित्रैक होते हैं जो गुणसूत्रो मे स्थित रहते है। व्यक्ति को अपने माता-पिता से कौन-कौन से पित्रैक मिलते हैं, यह निषेचन के समय ही निश्चित हो जाता है तथा बाद मे इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नही है। कोष परिपक्वता के दौरान पित्रैक संयोगवश ही समुच्चय बनाते है जो माता-पिता तथा अन्य पूर्वजो के गुणो को उस तक पहुँचाते है। वशानुक्रम का निर्धारण केवल सयोग के ऊपर निर्भर करता है। माता अथवा पिता के पक्ष से प्राप्त होने वाले गुणसूत्रो को नियंत्रित करने की अभी तक किसी विधि का खोजना सम्भव नही हो सकता है। गुणसूत्रों के सयोजन के लगभग तीन खरब भिन्न-भिन्न प्रकार के समुच्चय बन सकते है। यही कारण है कि वशानुक्रम से प्राप्त होने वाले शारीरिक तथा मानसिक गुण केवल सयोग पर निर्भर करते है तथा इन्हे नियत्रित करना सभव नही है। वशानुक्रम से प्राप्त होने वाले अधिकाश गुण मेन्डल के द्वारा प्रतिपादित नियम का अनुसरण करते है। मेन्डल का नियम कहता है कि जब किसी वर्ग के कुछ गुण प्रबल (Dominant Traits) तथा कुछ गुण निर्बल (Recessive Traits) होते हैं तब प्रबल गुण निर्बल गुणों पर हावी हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, आँखो का नीला रग (Blue Colour) निर्बल गुण हैं, जबकि काला रग (Black Colour) प्रबल गुण है। यदि माता तथा पिता दोनों ही विशुद्ध नीले रंग वाली आँखों के होगे तो बालक नीले रग की आँखों वाला होगा। यदि माता तथा पिता दोनो ही विशुद्ध काले रंग की आँखों वाले होगे तो बालक भी विशुद्ध काले रंग की आँखो वाला होगा, परतु यदि माता-पिता मे से एक विशुद्ध काले रग की आँखो वाला तथा दूसरा विशुद्ध नीले रग की आँखो वाला होगा तो बालकों की आँखो के रंग का निर्धारण मेन्डल के नियम से निर्धारित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रथम पीढी (First Generation) के सभी बालक काले रग की आँखों वाले होंगे, परतु उनमें से प्रत्येक नीले रग की आँख के सुप्त गुण से (Recessive Trait) से युक्त होगा जो केवल तब ही प्रस्फुटित होगा जब वह बालक अपने जैसे साथी से अथवा विशुद्ध नीली आँखों वाले साथी से सयोग करेगा। तब यह दमित गुण अगली पीढी मे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो सकेगा। यदि काली आँखो को B से तथा नीली आँखो को b से इंगित करें तब वशानुक्रम का यह नियम चित्र 6 से अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

यद्यपि अनेक वशानुगत गुण मेन्डल के नियम का अनुसरण करते है परंतु कुछ कुछ ऐसे
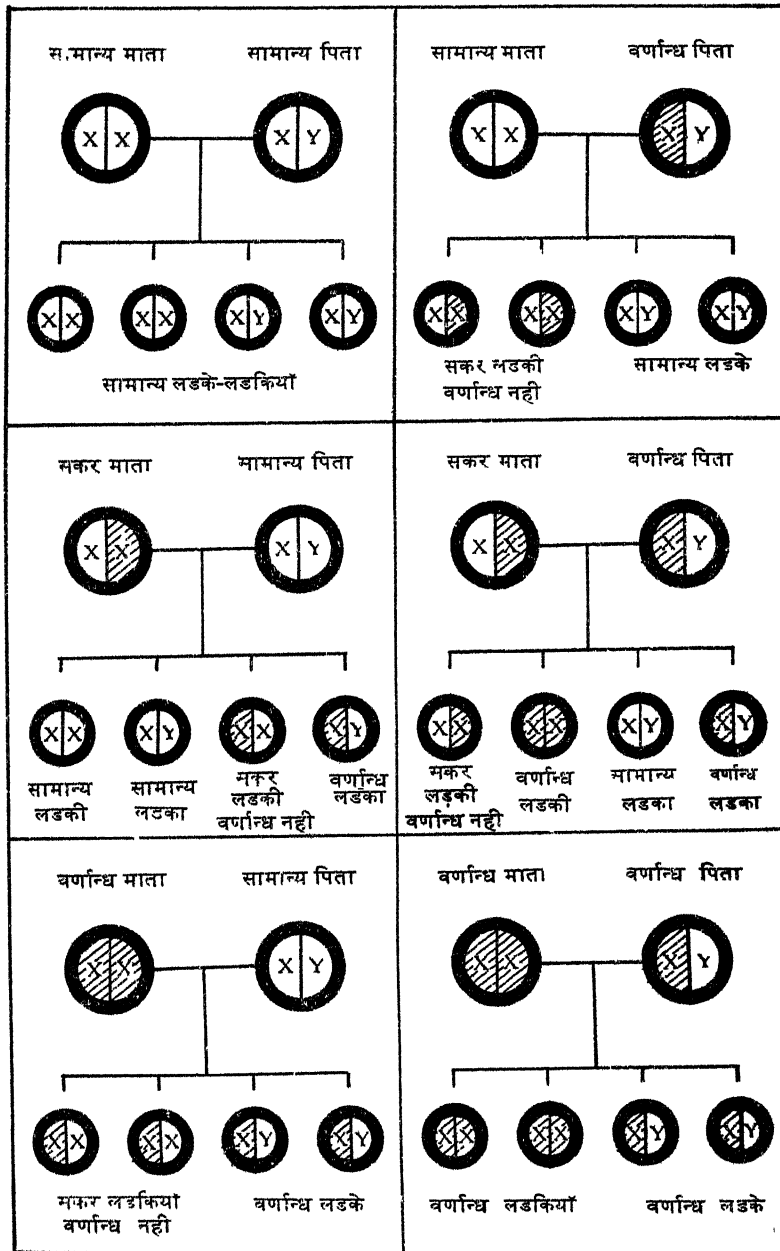
चित्र—7
वर्णान्धता की वशानुक्रम प्रक्रिया
(Inheredance of Colour Blindress)

होते है जिनमे गुणों की प्रवलता व निर्वलता का निर्धारण नही किया जा सकता है । तब बालक माता-पिता से लगभग समान मात्रा मे गुण को प्राप्त करता है जैसे शुद्ध श्वेत वर्ण माता व शुद्ध श्यामवर्ण पिता की सन्तान प्राय न श्वेत वर्ण होती है न श्यामवर्ण होती है, बल्कि साँवली होती है । इसी प्रकार से कुछ गुण लिग भेद से सम्बन्धित (Sex Linked) होते है । जैसे कुछ गुण ऐसे होते है जिनमे पित्रैक केवल X गुणसूत्र के असमजात खण्ड पर होते है । Y गुणसूत्र पर ऐसे गुणो के पित्रैक नही होते है । ऐसे गुण पुत्रियो को माता व पिता दोनो से मिल सकते है किन्तु पुत्रो को केवल माता से मिलते है । ऐसे गुण प्राय लड़को मे अधिक परिलक्षित होते है परतु उनका हस्तातन्तरण केवल माता से होता है क्योकि पिता से लडके को केवल Y गुणसूत्र मिलता है । ऐसे वशानुक्रम को क्रिस-क्रास (Criss-Cross) वशानुक्रम कहते है । जैसे रगान्धता का दोष किसी लडके को अपनी माता से मिलता है जो कि स्वय रगान्धता की रोगी नही होती बल्कि वह अपने पिता से इस गुण को लेती है तथा अपने पुत्र को देती है । अधिरक्तस्राव (Haemophilia) अर्थात् रुधिर का देर से थक्का बनने का रोग भी लडको को केवल माता से मिलता है । स्पष्ट है कि ऐसे रोगो मे स्त्रियो की भूमिका पितृक वाहको के (Genic Carriers) के रूप मे रहती है । लिग सम्बन्धित अधिकाश आनुवशिक रोगो के लिए रोगयुक्त X पित्रैक दुर्बल या सुप्त (Recessive) होते है, जबकि रोग मुक्त X पित्रैक प्रबल या प्रभावी (Dominant) होते है, किन्तु X व Y के समुच्चय मे Y पित्रैक दुर्बल (Rescessive) होते है तथा रोग युक्त X पित्रैक प्रबल (Dominant) होते है । यही कारण है कि ऐसे रोग लडको तथा शुद्ध नस्ली (Homozygous) लडकियों मे तो परिलक्षित होते है, परतु सकर (Hetrozygous) लडकियों मे परिलक्षित नहीं होते है। वर्णान्धता का वशानुक्रम चित्र 7 से स्पष्ट हो सकेगा । अधिरक्तस्राव का वशानुक्रम भी एक पीढी से दूसरी पीढी को ठीक इसी ढग से हस्तान्तरित होता है ।

2. लिंग निर्धारण (Sex Determination)—लिग का निर्धारण पूर्णरूपेण सयोग पर निर्भर करता है । माता अथवा पिता का अपनी सतान के लिग निर्धारण पर कोई नियत्रण नही होता है। माता के अण्ड तथा पिता के शुक्र के मधुर-मिलन के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाला बालक लडका होगा अथवा लडकी, यह केवल संयोग से निर्धारित होता है । बालक का लिग निर्धारण वास्तव मे गर्भाधान के समय अण्ड को शुक्राणु के द्वारा निषेचित करने के साथ ही निर्धारित हो जाता है । पीछे चर्चा की जा चुकी है कि गुणसूत्रों के तेईस जोडों मे से एक जोडा लिग गुणसूत्रो से युक्त होता है । लिग गुणसूत्र दो तरह के हो सकते है—X गुणसूत्र जो लम्बे छडीनुमा होते है तथा Y गुणसूत्र जो छोटे गोल से होते है । अण्ड मे केवल X गुणसूत्र होते है, जबकि शुक्राणु में X तथा Y दोनो ही प्रकार के गुणसूत्र होते है। परिणामत शुक्रजनन मे होने वाले अर्द्धसूत्री विभाजन के द्वारा दो प्रकार के शुक्राणु बनते है—आधे वे जिनमे X गुणसूत्र होता है तथा आधे वे जिनमे Y गुणसूत्र होता है, परतु अण्डजनन के द्वारा एक ही प्रकार के अण्डाणु बनते है—प्रत्येक मे X गुणसूत्र ही होता है । यही कारण है कि पुरुषों को विषमयुग्मकी (Hetrogametic) तथा स्त्रियो को समयुग्मकी (Homogametic) कहा जाता है । स्पष्ट है कि निषेचन के लिए तत्पर तथा परिपक्व विभाजित आधे शुक्राणुओ मे X गुणसूत्र होता है तथा आधे मे Y गुणसूत्र होता है । जब अड का निषेचन शुक्राणु से होता

है तब निषेचित कोष मे या तो दो X अथवा एक X व एक Y लिंग गुणसूत्र हो सकते हैं। निषेचित अण्ड मे जब X-X लिग गुणसूत्रों का सयोजन होता है तब सतान लडकी होती है इसके विपरीत निषेचित अण्ड मे जब X-Y गुणसूत्रो का सयोजन होता तब सतान लडका होता है। अण्ड को X गुणसूत्र से युक्त विभाजित शुक्राणु निषेचित करेगा अथवा Y गुणसूत्र से युक्त शुक्राणु निषेचित करेगा यह बात पूर्णतया सयोग पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त एक बार अण्ड के किसी विभाजित शुक्राणु से निषेचित हो जाने के उपरान्त किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नही होता है लिग निर्धारण की प्रक्रिया चित्र 8 से स्पष्ट हो सकेगी।
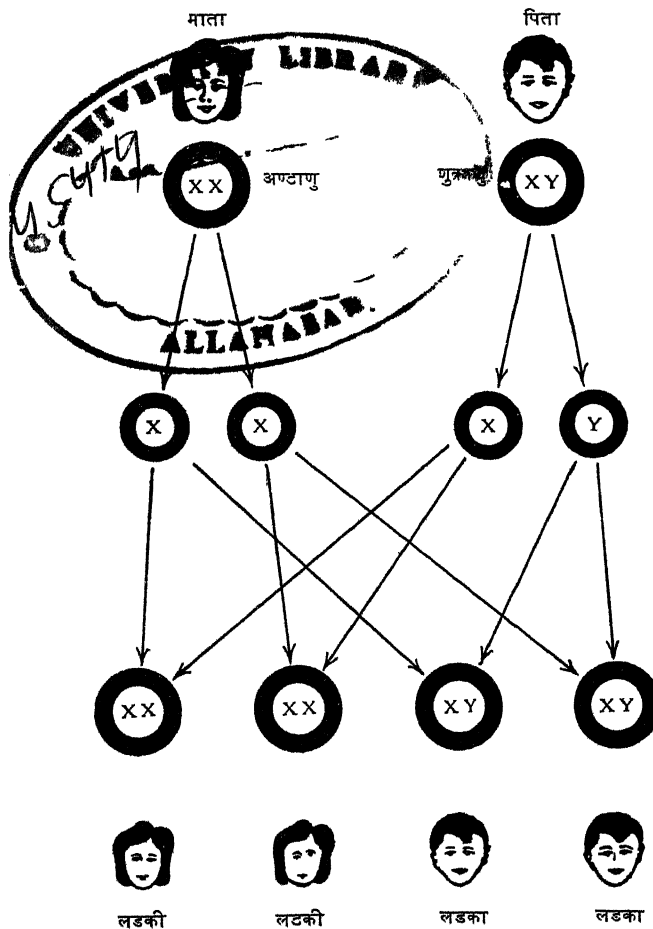
चित्र 8 लिग निर्धारण (Sexedtermination)

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि साख्यिकीय आँकडो के अवलोकन से लिग निर्धारण के सम्बन्ध मे निम्नाकित बातें कही जा सकती है—

(1) दुबले-पतले पुरुषो के अधिकतर लडकियाँ जन्म लेती है, जबकि हृष्ट-पुष्ट पुरुषो के अधिकतर लडके जन्म लेते है।

(11) उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारो मे निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवारो की अपेक्षा लडको की सख्या अधिक होती है।

(iii) अधिक शारीरिक श्रम वाले व्यवसायों (Masculine Occupations) मे कार्यरत पुरुषो के आरामदायक व्यवसायो (Feminine Occupations) मे कार्यरत पुरुषो की अपेक्षा अधिक सख्या मे लडके जन्म लेते हैं।

(1v) प्रत्येक 100 लडकियो पर लगभग 105 या 106 लडके जन्म लेते हैं परतु लडको मे शिशु मृत्यु दर अधिक होने के कारण प्रौढ जनसख्या मे पुरुष लडकियो की अपेक्षा कम होते है। लडको के अधिक जन्म लेने का कारण सम्भवत X गुणसूत्र की तुलना मे Y गुणसूत्र का कुछ हल्का होना है जिसके कारण Y गुणसूत्र से युक्त विभाजित शुक्राणु अधिक शीघ्रता से गति करते है। परिणामत इसके द्वारा अण्ड से निषेचित करने की सम्भावना कुछ बढ जाती है।

परतु यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि उपरोक्त सूचनाएँ इस सम्बन्ध में कोई निष्कर्षात्मक प्रमाण प्रस्तुत नही करती है कि लिग का निर्धारण सयोग के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से सचालित होता है।

3. संतानों की संख्या (Number of Offspring)—सामान्यत महिलाएँ एक प्रसव मे एक ही बालक को जन्म देती है, परन्तु कभी-कभी 2-3 या इससे भी अधिक सख्या मे बालको का जन्म होता है। यह देखा गया है कि लगभग 87 प्रसवो मे एक बार जुडवाँ बालक (Twins), 7½ हजार मे से एक बार तीन बालक (Triplets), लगभग 6½ लाख मे से एक बार एक साथ चार बालक (Quadraplets), लगभग 5½ करोड मे एक बार एक साथ पाँच बालक (Quintuplets) तथा लगभग पाँच अरब मे से एक बार एक साथ छ बालक (Sextuplets) होते है।

तालिका

विभिन्न संख्या में जुड़वाँ बच्चों की आवृत्तियाँ

	जुड़वाँ बच्चों की आवृत्तियाँ
एक साथ दो बालक	लगभग 87 मे से एक बार
एक साथ तीन बालक	लगभग 7, 569 मे से एक बार
एक साथ चार बालक	लगभग 6, 58, 507 मे से एक बार
एक साथ पाँच बालक	लगभग 5, 72, 89, 761 मे से एक बार
एक साथ छ. बालक	लगभग 4,98,42, 09, 207 मे से एक बार

एक से अधिक बालको का एक साथ जन्म दो तरह का हो सकता है—यमज बालक (Indenticals) तथा सहोदर बालक (Fraternal Twins)। यमज बालको की स्थिति मे सभी बालक एक ही सयुक्त कोष से विकसित होते है, जबकि सहोदर बालको की स्थिति मे भिन्न-भिन्न बालक भिन्न-भिन्न सयुक्त कोषों (Zygotes) से विकसित होते है।

सामान्य तौर पर प्रत्येक मासिक चक्र मे प्रौढ महिला केवल एक ही परिपक्व अण्ड को उत्पन्न करती है परन्तु कभी-कभी केवल सयोगवश एक से अधिक अण्ड एक साथ परिपक्व हो जाते हैं। जब गर्भाशय मे से एक अधिक परिपक्व अण्ड उपस्थित होते है तब उस सभी के शुक्राणुओ से निषेचित होने की सम्भावनाएँ रहती है जिसके परिणामस्वरूप एक से अधिक निषेचित कोष अलग-अलग भ्रूणो के रूप में विकसित होने लगते है जो जुड़वाँ बच्चो के रूप मे जन्म ले लेते है। यदि दो निषेचित कोष होते है तो एक साथ दो बालको का जन्म होता है, यदि तीन निषेचित कोष होते है तो एक साथ तीन बालको का जन्म होता है तथा इसी प्रकार से चार अथवा अधिक बालको का जन्म होता है। क्योकि ये बालक भिन्न-भन्न सयुक्त कोषो से विकसित होते है इसलिए इनके गुणसूत्र भिन्न-भिन्न हो सकते है। यही कारण है कि ऐसे बालक शारीरिक व मानसिक गुणों मे एक दूसरे से पूर्णरूपेण समान नही होते है तथा उनमे केवल भाईयो, बहनो जैसी समानताएँ ही होती है। ये एक समान अथवा भिन्न-भिन्न लिंग के भी हो सकते है। उदाहरण के लिए ऐसे जुडवाँ बालको की स्थिति मे दोनो लडके भी हो सकते है या दोनों लडकियाँ भी हो सकती है या एक लडका व एक लडकी हो सकती है। इस स्थिति में एक साथ जन्म लेने वाले बालक वास्तव मे तकनीकी दृष्टि से जुडवाँ नही होते है वरन् वे

यमज जुडवाँ बालक (Identical Twins)
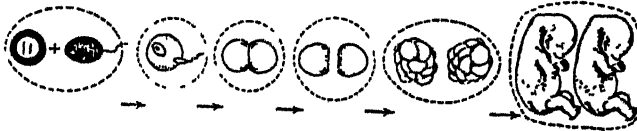
सहोदर जुडवाँ बालक (Fraternal Twins)
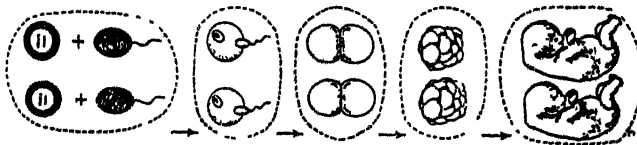
चित्र—9

यमज तथा सहोदर जुडवाँ बालको की जन्म प्रक्रिया

(Birth Process of Identical and Fraternal Twins)

सहगामी गर्भाधान (Simultaneous Piegancies) का परिणाम होते है।

जब केवल एक ही अण्ड परिपक्व होकर गर्भाशय मे आता है तब सामान्यत एक ही शिशु को जन्म लेना चाहिए। परतु कभी-कभी सयुक्त कोष दो या अधिक भागों मे

विभक्त हो जाता है तथा प्रत्येक भाग अलग-अलग भ्रूण के रूप मे विकसित होने लगता है। परिणामत. एक से अधिक बालको का जन्म हो जाता है। ऐसे बालक एक ही सयुक्त कोष से विकसित होते है इसलिए इनके गुणसूत्रो का सयोजन पूर्णत एक जैसा होता है तथा ये एक दूसरे से वशानुक्रम मे समान होते है। स्पष्ट है कि एक साथ जन्म लेने वाले ऐसे सभी बालकों का लिग एक जैसा होगा अर्थात् या तो वे सभी लडकी होते है अथवा लडकी होते है।

वातावरण का अर्थ
(Meaning of Environment)

वातावरण के लिए पर्यावरण शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। साधारण बोलचाल की भाषा मे वातावरण का तात्पर्य व्यक्ति के आस-पास के चारों तरफ उपस्थित परिस्थितियो से है। पर्यावरण शब्द के सधि विच्छेद से भी स्पष्ट है कि पर्यावरण शब्द परि तथा आवरण से मिलकर बना है। **'परि'** का अर्थ है चारो ओर तथा **'आवरण'** का अर्थ है ढकने वाला। अत पर्यावरण शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ—चारो ओर से ढकने वाला। अत किसी व्यक्ति के चारो ओर जो कुछ भी है वही उसका पर्यावरण है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पर्यावरण के अन्तर्गत वे सभी बाते आ जाती है जो मानव के जीवन तथा व्यवहार को प्रभावित करती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने पर्यावरण की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। इन परिभाषाओ के अवलोकन से पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट हो सकेगा। पर्यावरण की कुछ परिभाषाएँ अग्राकित प्रस्तुत है—

डगलस तथा हालैंड के अनुसार—"वातावरण शब्द का प्रयोग उन समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावो तथा दशाओं को सामूहिक रूप से वर्णित करने के लिए किया जाता है जो जीवित प्राणियो के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, तथा वृद्धि विकास व परिपक्वता को प्रभावित करती है।

The term environment is used to describe in aggregate all the external forces, influences and conditions, which affect the life, nature, behaviour and the growth, development and maturation of living organisms.

—Douglas and Holland.

बोरिंग, लैंगफील्ड तथा वेल्ड के अनुसार—"वातावरण वह प्रत्येक वस्तु है जो व्यक्ति के पित्रैको के अतिरिक्त उसकी अन्य सभी बातो को प्रभावित करती है।"

The environment is everything that affects the individual except his genes.

—Boring, Langfield and Weld.

वुडवर्थ के अनुसार—"वातावरण मे वे समस्त वाह्य तत्व आ जाते है जिन्होंने जीवन प्रारम्भ करने के समय से व्यक्ति को प्रभावित किया हो।"

Environment covers all the outside factors that have acted on the individual since he began life.

—Woodworth

उपरोक्त परिभाषाओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि वातावरण अनेक वस्तुओ के समावेश से बनता है तथा इसके अतर्गत वे सभी बाते आ जाती है जो बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक विकास को प्रभावित करती है। वातावरण का विस्तार असीमित होता है तथा इसके अतर्गत वे सभी परिस्थितियॉ आ जाती है जो प्राणी को किसी भी रूप मे प्रभावित करती है। वातावरण को दो भागो मे मे बॉटा जा सकता है—**आन्तरिक वातावरण** तथा **बाह्य वातावरण**। आन्तरिक वातावरण से तात्पर्य व्यक्ति के शरीर मे विद्यमान परिस्थितियो से है, जबकि बाह्य वातावरण से तात्पर्य घर, परिवार, समाज मे उपलब्ध परिस्थितियो से होता है। बाह्य वातावरण को पुन भौतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण, आर्थिक वातावरण, सास्कृतिक वातावरण आदि मे बॉटा जा सकता है। कुछ विद्वान् वातावरण को जन्म-पूर्व वातावरण (Prenatal Envıronment) तथा जन्म पश्चात् वातावरण (Post natal Envıronment) मे विभक्त करते है। जन्म पूर्व वातावरण से तात्पर्य जन्म से पूर्व माता के गर्भाशय की परिस्थितियो से है। गर्भकाल के दौरान माता के गर्भाशय के जिस वातावरण मे भ्रूण का विकास होता है वह अत्यत महत्वपूर्ण होता है जो जन्म के उपरान्त बालक को तरह-तरह से प्रभावित करता है।

वातावरण का महत्व
(Importance of Environment)

व्यक्ति के विकास मे वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो ने सिद्ध कर दिया है कि बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष पर उसके भौतिक सामाजिक, सास्कृतिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पडता है। बालक का वातावरण गर्भावस्था के दौरान से ही उसके विकास को प्रभावित करने लगता है। गर्भाधान के उपरान्त लगभग नौ माह तक भ्रूण का विकास माता के गर्भाशय मे होता है। गर्भाशय के वातावरण के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकती है। यदि गर्भाशय का वातावरण विकारयुक्त होता है तो बालक के विकास मे व्यवधान उत्पन्न होने की सम्भावनाएँ रहती है। उदाहरणार्थ, यदि गर्भस्थ शिशु को माता के रक्त से पर्याप्त मात्रा मे कैल्शियम आदि पौष्टिक पदार्थ नही मिलते है तो उसमे शारीरिक विकृतियॉ आ जाती है। शिशु के जन्म के उपरान्त उसे मिलने वाला वातावरण उसके शारीरिक विकास, मानसिक विकास तथा सामाजिक विकास आदि को प्रभावित करता है। उचित वातावरण के अभाव मे बालक का शारीरिक गठन, उसकी हृष्ट-पुष्टता, लम्बाई-चौडाई मे परिवर्तन आ जाता है। यह देखा गया है कि जापानी मूल के उन व्यक्तियो की लम्बाई भौगोलिक वातावरण के कारण बढ गई है। जिनकी अनेक पीढियॉ अमेरिका मे निवास कर रही है। सामाजिक तथा सास्कृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक विकास पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उत्तम वातावरण मे पलने वाले बच्चो की बौद्धिक क्षमता अधिक होती है। वास्तव मे वातावरण व्यक्ति के ऊपर अमिट व दीर्घकालिक प्रभाव छोडता है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तर-क्रिया
(Interaction of Heredity and Environment)

वशानुक्रम तथा वातावरण के सम्बन्ध मे प्रस्तुत उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्ति के विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो की ही महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। व्यक्ति के विकास को उसका वशानुक्रम तथा वातावरण किस किस सीमा तक प्रभावित करता है, यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। वास्तव मे वशानुक्रम तथा वातावरण एक दूसरे के पूरक है। ये दोनो मिलकर व्यक्ति के विकास के मार्ग को प्रशस्त करते है। व्यक्ति जो कुछ भी सोचता है, करता है अथवा अनुभव करता है वह उसके वशानुक्रम तथा वातावरण की परस्पर अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है। वशानुक्रम विकसित होने के लिए क्षमताएँ प्रदान करता है, जबकि वातावरण इन क्षमताओं को विकसित होने के अवसर प्रदान करता है। वशानुक्रम तथा वातावरण के महत्व को वुडवर्थ ने बीज तथा धरती के उदाहरण से स्पष्ट करते हुए कहा है कि अच्छी उपज के लिए उत्तम बीज व उत्तम धरती दोनो की ही आवश्यकता है, उत्तम बीज के अभाव मे उत्तम धरती तथा उत्तम धरती के अभाव मे उत्तम बीज के होने के बावजूद भी अच्छी फसल की सम्भावनाएँ धूमिल हो जाती है। ठीक इसी प्रकार से मानव के विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। क्रो तथा क्रो ने इस विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है कि—
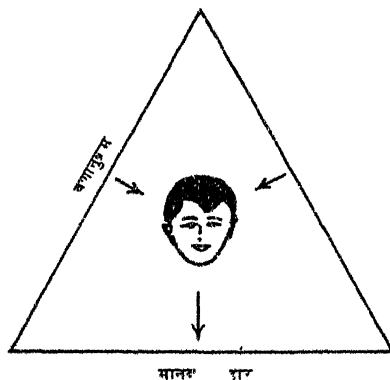
चित्र 10
वशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तर्क्रिया

"व्यक्ति का निर्माण न केवल वशानुक्रम से तथा न केवल वातावरण से होता है वरन् यह जैविक दाय तथा सामाजिक विरासत के एकीकरण का परिणाम होता है।"

A Person is neither "born" to be nor "made" what he is, Rather he is the product of the integration of biological inheritance and social heritage.

—Crow and Crow

वंशानुक्रम के ज्ञान का उपयोग
(Use of Knowledge of Heredity)

वेज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करके मानव तथा मानव जाति की उन्नति करना विज्ञान का एक व्यावहारिक पक्ष है। वशानुक्रम से सम्बन्धित ज्ञान का उपयोग करके मानव जाति को लाभ पहुँचाना विज्ञान का एक ऐसा ही व्यावहारिक पक्ष है। खेतो मे अच्छी फसल पैदा करना, लाभप्रद पेड-पौधो को विकसित करने तथा जीवजतुओ की नस्लो को उन्नत करने के लिए वशानुक्रम के ज्ञान का उपयोग किया जाता है। प्राचीन काल से ही वशानुक्रम के नियमो के विधिवत् ज्ञान के न होने के बावजूद भी घटिया नस्ल के पशुओ के प्रजनन को कम करने तथा अच्छी नस्ल के पशुओ के प्रजनन को बढावा देने का प्रयास होता रहा है। वशानुक्रम का व्यावहारिक उपयोग मानव जाति के आनुवशिक सुधार के लिए भी किया जा सकता है। प्राचीन काल मे ग्रीस देश मे राजाज्ञा के द्वारा लूले-लँगडे, कोढी तथा अन्य प्रकार से अयोग्य व्यक्तियो को सतानोत्पत्ति करने से रोका जाता था जिससे वहाँ के निवासियो की नस्ल उन्नत हो सके। सम्भवत इसी कारण ग्रीस का स्पार्टा नामक राज्य श्रेष्ठ योद्धाओ तथा ऐथेन्स राज्य श्रेष्ठ दार्शनिको के लिए प्रसिद्ध हुआ। परतु कालान्तर मे दया तथा उदारता की भावनाओ के कारण इस प्रकार के प्रतिबन्ध हटा लिए गए।

वशानुक्रम विज्ञान बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति का शारीरिक तथा मानसिक विकास काफी सीमा तक उसके वशानुक्रम पर निर्भर करता है। व्यक्ति को अपने माता-पिता तथा अन्य पूर्वजो से विभिन्न वशानुगत लक्षण पित्रैको के माध्यम से मिलते है। नि.सदेह वातावरणीय दशाएँ अर्थात् पालन-पोषण भी व्यक्ति के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा करता है। फिर भी, पालन-पोषण व्यक्ति मे उपस्थित पित्रैको की प्रकृति को नही बदल सकता है। पालन-पोषण पित्रैकों के दर्शरूप को अवश्य प्रभावित करता है। अच्छे पालन-पोषण से पित्रैको के लक्षण अच्छी तरह से प्रस्फुटित हो जाते है, जबकि अच्छे पालन-पोषण के अभाव मे पित्रैको के लक्षण सुप्त ही रह जाते है। कोई व्यक्ति अपने जीवनकाल मे कैसा होगा, इसका निर्धारण वशानुक्रम अर्थात् प्रकृति (Natuic) तथा वातावरण अर्थात् पालन पोषण (Nurture) दोनो मिलकर करते है।

सुजनन विज्ञान
(Eugenics)

फ्रासिस गाल्टन ने सबसे पहले वैज्ञानिक ढग से मानव के वशानुगत लक्षणो मे सुधार करके मानव जाति के उन्नयन का विचार प्रस्तुत किया, जिसके परिणामस्वरूप जीवविज्ञान की एक नई शाखा सुजननशास्त्र अर्थात् सुजननिकी का जन्म हुआ। गाल्टन को सुजननशास्त्र का पिता (Father of the Eugenics) कहा जाता है। सुजननविज्ञान व्यावहारिक वशानुक्रम की वह शाखा है जिसके अतर्गत वशानुक्रम के सिद्धान्तो की सहायता से भावी पीढियो को वशानुक्रम मे प्राप्त होने वाले लक्षणो को नियन्त्रित किया जाता है जिससे मानव जाति की नस्ल सुधर सके। सुजननशास्त्र का उद्देश्य किसी व्यक्ति के वशानुगत लक्षणो को परिवर्तित करने का नही है वरन् पीढी दर

पीढी उत्तम वशानुगत लक्षणो की वशागति को बढावा देना तथा घटिया लक्षणों की वशागति पर रोक लगाना है जिससे सम्पूर्ण मानव जाति के पित्रैक मग्रह (Gene Pool) अर्थात् जर्म प्लाज्म (Germ Plasm) को सुधारा जा सके।

इस कार्य के लिए सर्वप्रथम उच्च एव निम्न वशानुगत लक्षणो वाले व्यक्तियो का विश्लेषण करना होता है, जिसके लिए दो विधियाँ अपनाई जा सकती है। प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति के परिवार की अनेक पीढियो का इतिहास एकत्रित करके देखा जाए कि उनके कुल मे कौन-कौन से लक्षण वशानुक्रम से प्राप्त होते रहे है। द्वितीय, सभी बच्चो को विकास की समान सुविधाएँ देकर देखा जाए कि उनके शारीरिक तथा मानसिक विकास मे उत्पन्न कौन-कौन सी भिन्नताएँ वशानुक्रम के कारण है। यद्यपि ये दोनो ही विधियाँ कठिन है। फिर भी, वैज्ञानिको ने अपने अध्ययनो से अनेक वशानुगत लक्षणो तथा उनकी वशागति को जानने मे सफलता प्राप्त की है। वशानुगत लक्षणो तथा उनकी वंशागति प्रक्रिया के ज्ञान के आधार पर मानव जाति की नस्ल का सुधार करने के लिए अनेक उपायों को किया जा सकता है। इनमे से कुछ उपाय निषेधात्मक उपाय (Negative measures) हो सकते है तथा कुछ स्वीकारात्मक उपाय (Positive measures) हो सकते है।

निषेधात्मक उपाय (Negative Measures)—निषेधात्मक उपायो के अतर्गत उन उपायो को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा निम्न स्तरीय वशानुगत लक्षणो वाले व्यक्तियो को सतानोत्पत्ति से यथासम्भव रोका जा सके। ऐसा करने से मानव समाज के कुल पित्रैक सग्रह मे निम्न स्तरीय पित्रैक धीरे-धीरे कम हो सकेगे। कुछ प्रमुख निषेधात्मक उपाय निम्नवत् है—

1. वैवाहिक प्रतिबंध (Marriage Control)—मूर्ख, पतित तथा वशानुगत रोगो से ग्रस्त लोगों के विवाह पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए जिससे इनके घटिया पित्रैको का भावी समाज मे प्रसार न हो सके।

2. पृथक्करण (Segration)—मन्द बुद्ध, पतित तथा वशानुगत रोगों से ग्रस्त व्यक्तियो को अस्पतालो या अन्य स्थानो मे अलग करके रखना चाहिए जिससे उनका अच्छे वशानुगत लक्षणो वाले व्यक्तियो से सभोग न हो सके। इस उपाय से भावी पीढी मे अच्छे एव बुरे पित्रैको के मिश्रण की सम्भावनाएँ कम हो जाएगी।

3. संतति नियन्त्रण (Birth Control)—निम्न स्तरीय वशानुगत लक्षणों वाले व्यक्तियो को सतति नियंत्रण के लिए प्रेरित करना चाहिए यदि ऐसे व्यक्ति सतानोत्पत्ति न करे तो कुछ ही पीढियो के उपरान्त समाज के सभी सदस्य उत्कृष्ट लक्षणो वाले हो जायेगे। आजकल सतति नियत्रण के अनेक उपाय उपलब्ध है।

4. सहगोत्री विवाह पर प्रतिबन्ध (Control on Consanguineous Marriages)—एक ही पूर्वजो की सतानो में परस्पर विवाह पर प्रतिबन्ध होना चाहिए, क्योकि इससे घटिया वशानुगत लक्षणो की वशागति बढ जाती है। वशानुगत रोग प्राय सुप्त पित्रैको के कारण होते है जो इनब्रीडिग (Inbreeding) के द्वारा शुद्ध नस्ली (Homozygous) होकर अपने लक्षणो का विकास करते है।

5. देशान्तरण पर नियन्त्रण (Control Over Immigration)—निम्न स्तरीय

वशानुगत लक्षणों वाले व्यक्तियो को एक देश से दूसरे देश मे जाकर बसने की अनुमति नही देनी चाहिए जिससे निम्न स्तरीय पित्रैको का एक आबादी से दूसरी आबादी तक स्थानान्तरण को रोका जा सके।

स्वीकारात्मक विधियाँ (Positive Measures)—इसके अतर्गत उत्कृष्ट वशानुगत लक्षणो की वशगति को प्रोत्साहित करके भावी पीढियो के पित्रैक सग्रह मे सुधार करने वाले उपाय आते है। कुछ महत्वपूर्ण स्वीकारात्मक उपाय निम्नवत् है—

1. जीवन साथी का उत्कृष्ट चुनाव (Better Selection of Mate)—विवाह के लिए साथी का चुनाव उच्च वशानुगत लक्षणो पर आधारित होना चाहिए। माता-पिता दोनो का वशानुक्रम श्रेष्ठ होने पर सताने भी श्रेष्ठ होती है।

2. उत्तम जर्म प्लाज्म का अधिक उपयोग (Best Use of Good Germ Plasm)—समाज के स्वस्थ तथा बुद्धिमान सदस्यो को प्रजनन के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। विभिन्न शैक्षिक तथा व्यावसायिक कारणो से गुणवान व्यक्तियो के विवाह देर से होते है जिससे प्रजनन कम हो जाता है। परिणामत उत्कृष्ट मानव जर्म प्लाज्म का पूरा लाभ समाज को नही मिल पाता है। अत ऐसे व्यक्तियो के लिए अल्पकालीन तथा बहुविवाह (Polygamy) का प्रचार होना चाहिए। श्रेष्ठ व्यक्तियो को अधिक सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

3. जननिक चयन या यूटेलीजेनीसिस (Germinal Choice or Eutelegenesis)—जीववैज्ञानिको ने पुरुष वीर्य को निम्न तापमान पर जमाकर सुरक्षित रखने की विधि का विकास कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप शुक्राणु बैक (Sperm Banks) स्थापित करने के विचार सम्मुख आये है। शुक्राणु बैको मे श्रेष्ठ पुरुषो के वीर्य को सुरक्षित रखा जाता है। इससे स्त्रियो का मनचाहे पुरुषो के शुक्राणुओ से कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination) कराकर श्रष्ठ बालको के जन्म को बढाया जा सकता है। अमेरिका तथा अन्य कुछ देशो मे शुक्राणु बैक तथा कृत्रिम गर्भाधान की प्रथा प्रारम्भ हो गई है।

4. चिकित्सीय उपाय (Medical Measures)—वशानुगत लक्षणो मे सुधार की अनेक चिकित्सीय विधियो का विकास किया जा चुका है तथा जीव वैज्ञानिक इस दिशा मे और भी अधिक प्रयास रत है। जेनिक सर्जरी (Genic Surgery) जेनिक अभियान्त्रिकी (Genic Engineering), चिकित्सा अभियन्त्रिकी (Medical Engineering) आदि के द्वारा वैज्ञानिक पैत्रिक सामग्री (Genetic Material) मे परिवर्तन करके वशानुगत लक्षणो मे सुधार करते है। अभी ये विधियाँ प्रयोगात्मक स्तर पर ही है।

सौपरिवेशिकी

(Euthenics)

व्यावहारिक वशानुक्रम की वह शाखा जिसके अन्तर्गत उत्तम प्रशिक्षण तथा पालन पोषण के द्वारा व्यक्ति के अच्छे वशानुगत लक्षणो के अधिकतम सम्भव विकास करने से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है, सौपरिवेशिकी (Euthenics) कहलाती है।

सौपरिवेशिकी मे श्रेष्ठ बालको का चयन करके उनके बहुमुखी विकास के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती है। श्रेष्ठ बालकों का चयन करने के लिए प्राय बुद्धिलब्धि गुणाको (I.Q.) का उपयोग किया जाता है। प्राय 110 से अधिक बुद्धिलब्धि गुणाक वाले बालको को श्रेष्ठ बालक स्वीकार किया जाता है।

मेधावी बालको का चयन करके उन्हे प्रारम्भ से ही श्रेष्ठतम शैक्षिक तथा अन्य वातावरणीय सुविधा देने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। समाज तथा राज्य अपने प्रतिभाशाली बालको को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करके योग्य नागरिको का निर्माण करते रहे हैं। वास्तव मे यह समाज की उन्नति की एक उत्कृष्ट विधि है। वर्तमान समय मे भी अनेक अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय सस्थाएँ इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। वातावरणीय सुविधाओं अर्थात् पालन-पोषण के द्वारा व्यक्ति के श्रेष्ठ लक्षणो को यथासम्भव अधिकतम् विकसित करने के लिए निम्नाकित उपाय किये जा सकते है—

1. विशिष्ट शिक्षा सस्थाओं की स्थापना (Establishment of Special Educational Institutions)—श्रेष्ठ बालकों के लिए सामान्य बालको से भिन्न शिक्षा सस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिए। इन विशिष्ट शिक्षा सस्थाओ मे श्रेष्ठ बालको की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप परिवेश उपलब्ध होना चाहिए जिससे उनका अधिकाधिक मानसिक विकास हो सके।

2. विशिष्ट पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधि (Special Curriculum and (Teaching Methods)—श्रेष्ठ बालको के लिए उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। ऐसे बालकों को विशिष्ट शिक्षण विधियो से श्रेष्ठ अध्यापकों के द्वारा पढाया जाना चाहिए जिससे उन्हे आवश्यक मानसिक भोजन (Mental Food) मिल सके।

3. पाठ्यसहगामी क्रियायें (Co-curricular Activities)—विशिष्ट बालकों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त ऐसी पाठ्यसहगामी क्रियाओं की सुविधाएँ भी देनी चाहिए जो उनकी प्रतिभा के बहुमुखी विकास मे सहायक सिद्ध हो सके।

4. आवास तथा पोषण (Residence and Nutrition)—श्रेष्ठ बालको के रहने तथा खाने की व्यवस्था भी उत्कृष्ट होनी चाहिए। उनका आवास स्वच्छ, हवादार, रोशनी से युक्त तथा शान्त होना चाहिए। उनका भोजन सन्तुलित तथा आवश्यक तत्वो से परिपूर्ण होना चाहिए।

5. प्रतिभा का उपयोग (Use of Talent)—उत्कृष्ट बालको की प्रतिभा का सही उपयोग किया जाना चाहिए। उन्हे समाज मे उच्च स्थान मिलना चाहिए। ऐसे व्यक्तियो को प्रारम्भ से ही मानसिक तनावों से मुक्त रखा जाना चाहिए।

शिक्षा में वंशानुक्रम तथा वातावरण की महत्ता
(Importance of Heredity and Environment in Education)

शैक्षिक दृष्टि से वंशानुक्रम तथा वातावरण का अत्यंत महत्व है। नि संदेह वंशानुक्रम को परिवर्तित नही किया जा सकता, परतु वशानुक्रम को ध्यान में रखकर

बालक को विकास के लिए उचित वातावरण प्रदान किया जा सकता है जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके । आधुनिक शिक्षा मे बालक को शिक्षा का केन्द्रबिन्दु माना जाता है । अत बालक के विकास को प्रभावित करने वाले इन दोनो ही कारको का अध्ययन महत्वपूर्ण माना जाता है । अभिभावक, अध्यापक तथा प्रशासकगण मानव विकास मे वशानुक्रम तथा वातावरण की भूमिका से अवगत होकर बालको के शैक्षिक विकास के लिए अनुकूलतम प्रयास कर सकते है ।

बालको की अनेक शारीरिक, मानसिक तथा अन्य क्षमताओ के विकास मे वशानुक्रम के कारण विभिन्नताएँ होती है । बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर उसकी वशानुगत विशेषताओ का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही होता है । अत अध्यापक तथा अभिभावकगणो को बालक के शरीरिक तथा मानसिक विकास का मूल्याकन करते समय उसके वशानुक्रम को ध्यान मे रखना चाहिए । वशानुक्रम के कारण कभी-कभी प्रतिभाशाली माता-पिता के बच्चे मन्द बुद्धि तथा मन्द बुद्धि माता-पिता के बच्चे कुशाग्र वाले भी हो सकते है । ऐसे बच्चो के साथ उचित तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए । वशानुक्रम से बालको को कुछ प्रवृत्तियाँ भी प्राप्त होती है, जिनमे से कुछ सामाजिक दृष्टि से अवाछनीय भी होती है । इन अवाछनीय प्रवृत्तियो पर ध्यान देकर इनके दमन तथा मार्गान्तरीकरण का प्रयास भी किया जाना चाहिए । वातावरण का भी बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास मे योगदान होता है । अनुकूल वातावरण मे ही बालक की सुप्त जन्मजात योग्यताएँ प्रस्फुटित होती है । अत घर, परिवार, समाज तथा विद्यालय में वाछित योग्यताओ के विकास के लिए अनुकूल तथा अवाछित योग्यताओ के प्रतिकूल वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए ।

स्पष्ट है कि वशानुक्रम तथा वातावरण का ज्ञान बाल विकास की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण है तथा शैक्षिक कार्यक्रमो का निर्माण व सचालन बालक के वशानुक्रम तथा वातावरण को ध्यान मे रखकर ही किया जाना चाहिए ।

---

5 शैशवावस्था में विकास
(Development During Infancy)

शैशवावस्था जन्मोपरात मानव विकास की प्रथम अवस्था है। गर्भावस्था जन्म पूर्व विकास का काल है जिसमे नवीन मानव जीवन का प्रारम्भ होता है तथा निषेचित कोष मानव शरीर का आकार ग्रहण करता है। शैशवावस्था मे नवजात शिशु का विकास होता है। शैशवावस्था को जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। यह वह अवस्था है जो बालक के सम्पूर्ण भावी जीवन को प्रभावित करती है, इसलिए शैशवावस्था को मानव जीवन का आधार माना जाता है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार जीवन के प्रथम पाच-छ वर्षों मे शरीर तथा मस्तिष्क अत्यत ग्रहणशील (Receptive) रहते है। इस अवस्था में बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है या कराया जाता है उसका बालक के ऊपर अमिट प्रभाव तत्काल पडता है। सामान्यत शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम छ वर्ष शैशवावस्था कहलाते है। शिशु को अग्रेजी भाषा मे इन्फैट (Infant) कहते है। इनफैट लैटिन भाषा के दो शब्द (In व Farı) से मिलकर बना है। 'In' का अर्थ है—नही, तथा 'Farı' का अर्थ है—बोलना। अत 'इनफैट' का शाब्दिक अर्थ है—बोलने के अयोग्य। अत 'इनफेट' शब्द का प्रयोग बच्चो की उस अवस्था तक के लिए किया जाता है जब वे सार्थक शब्दो का प्रयोग प्रारम्भ करते है। सामान्यत तीन वर्ष की आयु तक का बालक शब्दो का सार्थक प्रयोग करना प्रारम्भ कर देता है। इसलिए तकनीकी दृष्टि से शून्य से तीन वर्ष आयु तक की अवधि को शैशवावस्था कहते है तथा तीन से छ वर्ष की आयु को पूर्व बाल्यावस्था कहते है। परतु जब मानव विकास को शैशवा, बाल्या, किशोरा तथा प्रौढावस्था नामक केवल चार भागो मे बॉटा जाता है, तब शून्य से 6 वर्ष की अवस्था को शैशवावस्था के नाम से ही सम्बोधित करने का प्रचलन रहा है।

शैशवावस्था की विकासात्मक विशेषताएँ
(Developmental Characteristics of Infancy)

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक तथा नैतिक विकास की दृष्टि से शैशवावस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है—

1. शारीरिक विकास में तीव्रता
(Rapidity in Physical Development)

शैशवास्था मे विशेषकर प्रथम वर्षो मे शारीरिक विकास अत्यत तीव्र गति से होता है। लम्बाई तथा भार मे तीव्र वृद्धि होती है। शरीर के अन्य अगों व मॉसपेशियो का भी क्रमिक विकास होता है।

2. मानसिक क्षमताओं में तीव्रता

(Rapidity in Mental Pottentialities)

शैशवावस्था मे शिशु की मानसिक क्षमताओ जैसे ध्यान, स्मरण, कल्पना, सवेदना, प्रत्यक्षीकरण आदि के विकास मे तीव्रता रहती है। यह माना जाता है कि व्यक्ति का जितना भी कुल मानसिक विकास होता है उसका आधा भाग तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है।

3 सीखने में तीव्रता

(Rapidity in Learning)

शिशु के सीखने की गति अत्यत तीव्र होती है। शैशवावस्था के प्रथम छ वर्षो मे वह लगभग उतना सीख लेता है जितना वह बाल्यावस्था व किशोरावस्था के बारह वर्षो मे सीखता है।

4. दोहराने की प्रवृत्ति

(Tendency of Repetition)

शैशवावस्था मे शिशु मे शब्दो, वाक्यो अथवा क्रियाओ को दोहराने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। दोहराने मे शिशु आनन्द का अनुभव करता है।

5 जिज्ञासा प्रवृत्ति

(Curiosity Tendency)

शिशु मे जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक होती है। छोटा शिशु खिलौनों तथा अन्य वस्तुओं को फेककर, उसके भागो को अलग-अलग करके या अन्य किसी ढग से अपनी जिज्ञासा को शान्त करता है। बडा शिशु अपने से अधिक आयु के बालको व व्यक्तियो से विभिन्न वस्तुओ तथा बातो के सम्बध मे तरह-तरह के क्या, क्यों तथा कैसे से युक्त प्रश्न पूछता है।

6. परनिर्भरता

(Dependence on Others)

जन्म के उपरान्त कुछ समय तक शिशु बिल्कुल असहाय स्थिति में रहता है। वह भोजन व अन्य शारीरिक आवश्यकताओ के साथ-साथ प्रेम, सहानुभूति तथा सुरक्षा के लिए अन्य व्यक्तियो पर आश्रित होता है। वह विशेष रूप से अपनी माता पर निर्भर रहता है।

7. स्वप्रेम की भावना

(Feeling of Self Love)

शैशवावस्था मे शिशु के अदर स्वप्रेम की भावना, जिसे नार्सीसिज्म (Narcissism) कहते है, अत्यत प्रबल होती है। वह सभी का प्रेम पाना चाहता है। वह चाहता है कि केवल उसे ही माता, पिता, भाई, बहन आदि का प्रेम मिले। वह अपने अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो से प्रेम किए जाने पर उनसे ईर्ष्या करने लगता है। उसमे अधिकार की तीव्र भावना रहती है। वह प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार चाहता है।

वह अपने खिलौने व वस्तुऐ अन्यों को नही देना चाहता है तथा सब कुछ अपने पास रखना चाहता है । स्वप्रेम की भावना को नार्सीसिज्म के नाम से फ्रायड ने एक यूनानी पौराणिक कथा के आधार पर सम्बोधित किया था । उस कथा मे नार्सीसिट (Narcessat) नामक व्यक्ति को अपने ही शरीर से अत्यधिक प्रेम करता हुआ बताया गया था ।

8. संवेगों का प्रदर्शन

(Emotional Expression)

जन्म के समय शिशु मे उत्तेजना के अतिरिक्त अन्य कोई सवेग नही होता । परतु दो वर्ष की आयु होने तक उसमे भय क्रोध, प्रेम तथा पीडा नामक चार मुख्य सवेग विकसित हो जाते है । कुछ मनोवैज्ञानिक शिशु के रोने, चिल्लाने, हाथ-पैर फेंकने की क्रियाओ को सवेगपूर्ण क्रिया मानते हुए कहते है कि शिशु जन्म से ही सवेगात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है ।

9. सामाजिक भावना का विकास

(Development of Social Feelings)

शैशवावस्था के प्रारम्भिक वर्षो मे शिशु में सामाजिक भावना का अभाव रहता है । छोटा शिशु अकेले ही खेलना चाहता है । परंतु शैशवावस्था के अन्तिम वर्षों मे शिशु मे सामाजिक भावना का विकास होने लगता है । वह अन्य शिशुओं मे रुचि लेने लगता है तथा उनके साथ खेलना पसन्द करता है । चार-पाँच वर्ष का बालक अपने छोटे भाई-बहनो या साथियों का बचाव (Defend) करने का प्रयास करता है । वह अन्य बच्चो के साथ खेलना पसद करता है, अपनी वस्तुओ मे अन्यों को साझीदार बनाता है, अन्य बच्चो के अधिकारो का ध्यान रखता है तथा अन्य बच्चो की परेशानी, कष्ट या दुख में उनको सात्वना देने का प्रयास करता है ।

10. मूल प्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार

(Instinctive Behaviour)

शैशवावस्था मे व्यवहार का आधार प्राय शिशु की मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं । शिशु भूख लगने पर रोने लगता है तथा सामने आने वाली किसी भी वस्तु को मुँह मे रख लेता है । क्रोध आने पर शिशु रोकर अथवा हाथ-पैर फेककर अथवा अपने पास की वस्तुओं को फेंक कर अपना क्रोध व्यक्त करता है ।

11. काम प्रवृत्ति

(Sex Instinct)

फ्रायड तथा अन्य मनोविश्लेषण वादियो के अनुसार शैशवावस्था में काम प्रवृत्ति अत्यत प्रबल होती है, परतु शिशु उसकी अभिव्यक्ति व्यस्कों के समान नही कर पाता है । माता का स्तनपान करना, हाथ-पैर के अँगूठे को चूसना आदि शिशुओं की काम प्रवृत्ति के सूचक होते हैं । लडको मे अपनी माँ के प्रति प्रेम तथा लडकियो मे पिता के प्रति प्रेम भाव का उदय होता है । फ्रायड ने लडकों के मातृ प्रेम भाव को ओडीपस भावना ग्रन्थि (Oedipus Complex) नाम से तथा लड़कियों के पितृ प्रेम भाव को इलेक्ट्रा भावना ग्रन्थि (Electra Complex) नाम से सम्बोधित किया । इन दोनों नामों का आधार भी यूनानी पौराणिक कहानियाँ थी ।

12. नैतिक भावना का अभाव
(Lack of Morality)

शिशु मे नैतिक भावना का अभाव होता है। उसे अच्छे-बुरे, सही-गलत तथा उचित-अनुचित का ज्ञान नही होता है। वह उन कार्यो को करना चाहता है जिसमे उसे आनन्द की प्राप्ति हो, भले ही वे कार्य अवाछनीय क्यो न हो।

शैशवावस्था में शिक्षा
(Education During Infancy)

शिक्षा की दृष्टि से मानव जीवन मे शैशवावस्था का अत्यत महत्व है। वेलेन्टाइन ने तो शैशवावस्था को सीखने का आदर्श काल (Ideal Period for Learning) कहा है। वाट्सन के अनुसार विकास की अन्य किसी अवस्था की तुलना मे शैशवावस्था मे सीखने का क्षेत्र तथा तीव्रता (Scope and Intensity) अधिक होती है। शैशवावस्था मे शिशु की शिक्षा व्यवस्था करते समय इस काल की विकासात्मक विशेषताओ (Developmental Characteristics) को ध्यान मे रखना अत्यत उपयोगी तथा सार्थक हो सकता है। अत इस काल मे शिशु की शिक्षा का आयोजन करते समय निम्नाकित बातो पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा—

1. उचित वातावरण
(Proper Environment)

शिशु के उचित विकास के लिए शान्त, स्वस्थ तथा सुरक्षित वातावरण आवश्यक है। अत. घर तथा पूर्व प्राथमिक विद्यालय मे शिशुओ को शान्त, स्वास्थ्यवर्द्धक तथा सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाना चाहिए।

2. पालन-पोषण
(Nurture)

शैशवावस्था मे शारीरिक विकास का विशेष महत्व होता है। शारीरिक विकास के लिए पौष्टिक तथा सतुलित भोजन आवश्यक है। अत शिशु के पालन तथा पोषण मे पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए जिससे उसे स्वास्थ्यवर्द्धक पौष्टिक भोजन मिल सके।

3. स्नेहपूर्ण व्यवहार
(Affectionate Behaviour)

शिशु को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अन्यो पर निर्भर रहना पडता है। इसलिए माता-पिता, शिक्षक अथवा किसी अन्य व्यक्ति को उसकी असहायपूर्ण स्थिति का लाभ नही उठाना चाहिए। शिशुओं को बात-बात पर डॉटना अथवा पीटना नही चाहिए। शिशुओ की आवश्यकताओ की अवहेलना नही करनी चाहिए। शिशु को भय या क्रोध नही दिखाना चाहिए वरन् उनके प्रति दया, प्रेम, शिष्टता, सहानुभूति, स्नेह का व्यवहार करना चाहिए।

4. जिज्ञासा की संतुष्टि

(Satisfaction of Curiosity)

शिशु तरह-तरह के प्रश्नो के द्वारा अपनी जिज्ञासा को शात करना चाहता है। अत माता-पिता, शिक्षक तथा अन्य व्यक्तियो को उसके प्रश्नो के सतोषजनक उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा को शात करने का प्रयास करना चाहिए।

5. सामाजिक भावना का विकास

(Development of Sociability)

शैशवावस्था के अतिम वर्षो मे शिशु दूसरे शिशुओ के साथ मिलना, बात करना तथा खेलना पसद करने लगता है। सामाजिकता की भावना के विकास के लिए यह आवश्यक होगा कि अभिभावक तथा शिक्षक उसे अन्य बालको के साथ मिलने-जुलने तथा खेलने के उचित अवसर प्रदान करे।

6. मानसिक क्रियाओं के अवसर

(Opportunities for Mental Activities)

शैशवावस्था मे मानसिक विकास की गति अत्यत तीव्र होती है। अत बच्चे को सोचने तथा विचारने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे वह अपना सर्वोत्तम मानसिक विकास कर सके।

7. वार्तालाप के अवसर

(Opportunities for Conversation)

बालक की भाषा के विकास की दृष्टि से वार्तालाप अत्यत महत्वपूर्ण है। अभिभावको तथा शिक्षको को शिशुओ को छोटी-छोटी कहानियाँ तथा कविताएँ सुनानी तथा याद करानी चाहिए। शिशुओ के साथ सरल भाषा मे वार्तालाप करना चाहिए।

8. आत्मप्रदर्शन के अवसर

(Opportunities for Self-Demonstration)

शिशु मे आत्मप्रदर्शन की भावना होती है। अत. उसे ऐसे कार्य करने के पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए जिनके द्वारा वह अपनी इस भावना को प्रदर्शित कर सके। कविता पाठ, कला, शिल्पकला आदि के माध्यम से शिशुओं को अपनी योग्यताओ को प्रदर्शित करने के अवसर देने चाहिए।

9. अच्छी आदतों का निर्माण

(Formation of Good Habits)

व्यक्ति की आदतें ही उसके भावी जीवन का निर्माण करती है। शिशु को प्रारम्भ से ही अच्छी आदतो की ओर अग्रसर करना चाहिए।

10. व्यक्तिगत भिन्नता पर ध्यान

(Attention on Individual Differences)

विकास का स्वरूप बताता है कि शिशुओ मे व्यक्तिगत भिन्नताए होती है अत शिशु के स्वाभाविक विकास के लिए शिक्षा प्रदान करते समय उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओ पर उचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

11. करके सीखने की महत्ता

(Importance of Learning by Doing)

शिशु जन्म से ही क्रियाशील होता है। खेल मे उसकी सहज रुचि होती है। अत उसे करके सीखने तथा खेल द्वारा सिखाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

शैशवावस्था मे विकास की विशेषताओ को ध्यान मे रखकर यदि उपरोक्त बिन्दुओ के अनुरूप शिशु शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी तब सम्भवत शिशुओ का सहज व स्वाभाविक ढग से अधिकतम सम्भव सर्वागीण विकास हो सकेगा।

---

6 बाल्यावस्था में विकास
(Development During Childhood)

बाल्यावस्था जन्मोपरान्त मानव विकास की दूसरी अवस्था है जो शैशवावस्था की समाप्ति के उपरान्त प्रारम्भ होती है। बाल्यावस्था मे प्रवेश करते समय बालक अपने वातावरण से काफी सीमा तक परिचित हो जाता है। इस अवस्था मे वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार करना सीखना प्रारम्भ करता है तथा उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ भी इसी अवस्था मे होता है। शैक्षिक दृष्टि ने बाल्यावस्था जीवन की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में बालक अपनी आदतो, व्यवहार, रुचियो, इच्छाओ आदि प्रतिरूपो (Patterns) का निर्माण कर लेता है, जिन्हे बाद मे रुपान्तरित (Modify) करना अत्यत कठिन होता है। सामान्यत 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु के बीच की अवधि को बाल्यावस्था कहा जाता है। क्योकि इस अवधि मे बालक प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा प्रारम्भ करता है इसलिए शिक्षाशास्त्री इसे प्रारम्भिक विद्यालय आयु (Elementry School Age) भी कहते है। इस अवधि मे बालक मे स्फूर्ति अधिक होने के कारण कुछ लोग इसे स्फूर्ति अवस्था (Smart-Age) भी कहते है। कुछ लोग इसे गन्दी अवस्था (Dirty Age) भी कहते है क्योकि इस अवस्था मे बालक खेल-कूद, भाग-दौड, उछल-कूद मे लगे होने के कारण प्राय गन्दा और लापरवाह रहता है।

बाल्यावस्था की विकासात्मक विशेषताएँ
(Developmental Characteristics of Childhood)

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक, तता नैतिक विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था की कुछ प्रमुख विशेषताऐं अग्रांकित प्रस्तुत की गई है—

1. शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता
(Stability in Physical and Mental Growth)

बाल्यावस्था मे शारीरिक तथा मानसिक विकास मे स्थिरता आ जाती है अर्थात् विकास की गति मन्थर (slow) हो जाती है। विकास की स्थिरता बालक की मानसिक तथा शारीरिक शक्तियो को दृढता प्रदान करती है, उसकी चचलता कम होने लगती है, उसका मस्तिष्क परिपक्व सा दिखाई पडता है तथा वह व्यस्को के समान व्यवहार करना चाहता है। रास (Ross ने बाल्यावस्था को मिथ्या परिपक्वता (Pseudo Maturity) का काल कहा है।

2. मानसिक योग्यताओं में वृद्धि

(Increase in Mental Abilities)

बाल्यावस्था के दौरान बालक की मानसिक योग्यताओ मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। बालक की सवेदनशीलता, प्रत्यक्षीकरण, स्मरणशक्ति तथा तर्कशक्ति आदि मे पर्याप्त वृद्धि होती है।

3. जिज्ञासा की प्रबलता

(Forceful Curiosity)

बाल्यावस्था मे बालक मे जिज्ञासा प्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल होती है। वह जिन वस्तुओ के सम्पर्क मे आता है उनके सम्बन्ध मे तरह-तरह की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। शैशवावस्था मे बालक के द्वारा पूछे जाने वाले जिज्ञासा प्रश्न साधारण होते है जिनके द्वारा वह विभिन्न वस्तुऐ क्या है, इसकी जानकारी प्राप्त करता है। इसके विपरीत बाल्यावस्था मे बालक "क्यो" तथा "कैसे" के प्रश्न पूछता है तथा विभिन्न विषयो से सम्बन्धित विस्तृत सूचनाएँ प्राप्त करना चाहता है।

4. आत्मनिर्भरता की भावना

(Feeling of Self Dependence)

बाल्यावस्था मे बालक शैशवावस्था के समान अन्यो पर आश्रित नही रहता है, वह अपने व्यक्तिगत कार्य जैसे स्नान करना, वस्त्र पहनना, स्कूल के लिए तैयार होना इत्यादि स्वय करना प्रारम्भ कर देता है। इस अवस्था मे बालको मे आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती जाती है।

5. रचनात्मक कार्यों में रुचि

(Interest in Constructive Work)

बाल्यावस्था मे बालक रचनात्मक कार्यो मे रुचि लेने लगता है। लडके बगीचे मे काम करने अथवा लकडी, कागज या अन्य किसी वस्तु से कुछ खेल आदि बनाने जैसे कार्यो मे आनन्द की प्राप्ति अनुभव करते है। लडकियाँ सिलाई, बुनाई, कढाई या रसोई से सम्बन्धित कार्यो को करने मे रुचि लेने लगती है।

6. सामाजिक तथा नैतिक गुणों का विकास

(Development of Social and Mcral Qualities)

बाल्यावस्था मे बालक घर या पडोस के अन्य बालको तथा विद्यालय के छात्रो के साथ काफी समय व्यतीत करता है। उसका व्यवहार दूसरो की प्रशसा तथा निदा पर आधारित रहता है जिसके फलस्वरूप उसमे अनेक सामाजिक तथा नैतिक गुणो जैसे आज्ञापालन, सहयोग, सहनशीलता, ईमानदारी, सत्यता, सद्भावना, सहानुभूति, आत्मनियन्त्रण, अनुशासन आदि का विकास होने लगता है।

7. सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता

(Intensity of Gregariousness)

इस अवस्था मे बालक मे सामूहिक प्रवृत्ति प्रबल होती है। वह अपना अधिक से

अधिक समय दूसरे बालको के साथ व्यतीत करना चाहता है। उसकी रुचि सामूहिक खेलो मे अधिक होती है। बालक किसी न किसी समूह का सदस्य बन जाता है तथा उस समूह के सभी सदस्य मिल कर खेल खेलते है अथवा अन्य कार्य करते है।

8. बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास
(Development of Extrovert Personality)

शैशवावस्था मे शिशु अन्तर्मुखी होता है वह एकान्तप्रिय तथा केवल अपने मे ही रुचि रखता है परतु बाल्यावस्था मे बालक बहिर्मुखी होने लगता है। वह बाह्य जगत मे रुचि लेता है। बालक अन्य व्यक्तियो, वस्तुओ व कार्यो के सम्बन्ध मे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

9. संग्रह प्रवृत्ति
(Acquisition Tendency)

बाल्यावस्था मे बालक तथा बालिकाओ मे सग्रह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। बालक काँच की गोलियो, टिकटो, मशीन के कलपुर्जों, पत्थर के टुकडों, खिलौनों आदि का सग्रह करने मे विशेष रुचि लेते है। बालिकाए चित्रो, खिलौनो, गुडियों, कपडे के छोटे-छोटे टुकडो आदि का सग्रह करती देखी जा सकती है।

10. काम प्रवृत्ति की न्यूनता
(Lesser Sense of Sex)

मनोविश्लेषणवादियो के अनुसार यद्यपि शैशवावस्था मे काम प्रवृत्ति होती है परतु बाल्यावस्था मे स्वप्रेम तथा पिता व मातृ विरोधी काम ग्रथियाँ समाप्त हो जाती है। बालक-बालिकाऐ अपना अधिकाश समय पढने, लिखने व खेलने कूदने में व्यतीत करते है।

11. रुचियों में परिवर्तन
(Change in Interests)

बाल्यावस्था मे बालक-बालिकाओ की रुचियो मे स्थायित्व का अभाव होता है। इस अवस्था के दौरान बालक की रुचियो मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। वातावरण तथा समूह मे परिवर्तन के साथ-साथ बालक बालिकाओ की रुचियाँ परिवर्तित होती रहती है।

बाल्यावस्था में शिक्षा
(Education During Childhood)

बाल्यावस्था को मानव के सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला स्वीकार किया जाता है। बाल्यावस्था के दौरान ही व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोणो, मूल्यों तथा आदर्शों का काफी सीमा तक निर्धारण हो जाता है। अत. यह आवश्यक है कि बाल्यावस्था में बालक की विकासात्मक विशेषताओं (Developmental Characteristics) को ध्यान में रखकर ही उसकी शिक्षा व्यवस्था की जाए। बाल्यावस्था के दौरान बालक-बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा—

1. शारीरिक विकास पर ध्यान
(Attention on Physical Development)

स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है । अत मानसिक विकास के लिए बालक के शारीरिक विकास पर भी उचित ध्यान देना महत्वपूर्ण होता है । बालको को स्वस्थ बनाए रखने के लिए उन्हे सतुलित तथा पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना चाहिए । बालको की क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए उन्हे विद्यालय मे विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओ जैसे खेलकूद, व्यायाम आदि मे भाग लेने के लिए पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए ।

2. बाल मनोविज्ञान पर आधारित शिक्षा
(Education based on Child Psychology)

बालक-बालिकाऐ कठोर अनुशासन पसद नही करते है । शारीरिक दड, बल प्रयोग, डॉट-डपट आदि से वे घृणा करते है । अत. बालको के लिए प्रेम व सहानुभूति पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए ।

3. खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षा
(Education through Play and Activity)

खेल तथा क्रियाशीलता बालको की सहज तथा स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है । आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक बालको की शिक्षा मे खेल तथा क्रियाशीलता को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते है । खेल तथा क्रिया द्वारा बालक सरलता, सहजता, उत्साह तथा प्रसन्नता से नवीन वातो को सीख लेते है । अत वालको की शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वालक स्वाभाविक क्रियाशीलता तथा खेल द्वारा नवीन ज्ञान का अर्जन कर सके ।

4. भाषा विकास पर बल
(Emphasis on Language Development)

वाल्यावस्था मे भाषा विकास पर ध्यान दिया जाना अत्यत आवश्यक है । वालको के भाषा ज्ञान की वृद्धि के लिए उन्हे वार्तालाप करने, कहानियाँ सुनाने, पत्र-पत्रिकाऐ पढने, वाद-विवाद प्रतियोगिताओ मे भाग लेने, भाषण देने, कविता पाठ करने जैसी क्रियाओ मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

5. रोचक पाठ्यसामग्री
(Interesting Content)

वालको की पाठ्यसामग्री उनकी आवश्यकताओ के अनुरूप तथा रोचक होनी चाहिए । वाल्यावस्था मे वालको की रुचि मे विभिन्नता तथा परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । इसलिए शिक्षा की पाठ्यसामग्री मे रोचकता तथा विभिन्नता का पुट होना ही चाहिए ।

6. जिज्ञासा प्रवृत्ति की संतुष्टि
(Satisfaction of Curiosity)

शिक्षा के द्वारा बालको की प्रबल जिज्ञासा प्रवृत्ति को सतुष्ट करने तथा उसे प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। माता-पिता तथा अध्यापको को बालको के प्रश्नो का समुचित उत्तर देकर उसे नई-नई लाभप्रद बाते सिखानी चाहिए।

7. सामूहिक प्रवृत्ति की तुष्टि

(Satisfaction of Gregariousness)

बालको की सामूहिक प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए विद्यालयो मे सामूहिक कार्यों या खेलकूद की व्यवस्था की जानी चाहिए। बाल सभा, स्काऊट-गाइड, पर्यटन, नाटक, सरस्वती यात्राऐ, सास्कृतिक कार्यक्रमो आदि के द्वारा बालक-बालिकाओ की सामूहिक प्रवृत्ति की सतुष्टि की जा सकती है।

8. रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था

(Arrangement of Constructive Work)

घर तथा विद्यालय मे बालक बालिकाओं के लिए विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यो की व्यवस्था की जाती है। मिट्टी, लकडी, कागज, दफ्ती आदि के द्वारा तरह-तरह की वस्तुऐ बनवाकर बालक-बालिकाओ की रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास किया जा सकता है।

9. संचय प्रवृत्ति का प्रोत्साहन

(Promotion of Acquisitiveness)

बालक की सचयी प्रवृत्ति को शैक्षिक दृष्टि से अभिमुख बनाया जा सकता है। माता-पिता तथा अध्यापक शिक्षाप्रद वस्तुओ को एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते है। डाक टिकट, माचिस, सिक्के, चित्र, प्राकृतिक वस्तुए आदि को एकत्रित कराकर उन्हे शैक्षिक दृष्टि से सार्थक रूप मे व्यवस्थित किया जा सकता है।

10. सामाजिक गुण का विकास

(Development of Social Qualities)

बाल्यावस्था मे बालक का समाजीकरण होता है। बालक घर से निकल कर स्कूल मे जाता है जहाँ वह अन्य छात्रो तथा अध्यापको से सामाजिक अन्तर्क्रिया करता है। अतः विद्यालय मे ऐसी क्रियाओ का आयोजन किया जाना चाहिए जो बालक के सामाजिक विकास की गति को तेज कर सके। कक्षा, विद्यालय तथा खेल के मैदान मे इस प्रकार का वातावरण होना चाहिए कि छात्रो मे अनुशासन, आत्मसयम, उत्तरदायित्व, आज्ञापालन, सहयोग, सहानुभूति आदि सामाजिक गुणो का अधिकतम विकास हो सके।

11. नैतिक शिक्षा

(Moral Education)

बाल्यावस्था के दौरान बालको मे नैतिक मूल्यों का विकास होने लगता है। वह समाज की नैतिक मान्यताओ तथा नियमो मे विश्वास करने लगता है। अत बालकों मे नैतिक मूल्यो के उचित निर्माण तथा सामाजिक मान्यताओ व नियमों मे विश्वास बढाने

7 किशोरावस्था में विकास
(Development During Adolescence)

किशोरावस्था जन्मोपरात मानव विकास की तृतीय अवस्था है जो बाल्यावस्था की समाप्ति के उपरात प्रारम्भ होती है तथा प्रौढावस्था के प्रारम्भ होने तक चलती है। यद्यपि व्यक्तिगत भेदो, जलवायु आदि के कारण किशोरावस्था की अवधि मे कुछ अतर पाया जाता है, परतु फिर भी, प्राय 12 वर्ष से 18 वर्ष की आयु के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा सवेगात्मक परिवर्तनो को व्यक्तिगत विकास की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण माना जाता है। बाल्यावस्था तथा प्रौढावस्था के बीच का सधिकाल (Transitional Period) होने के कारण इसे जीवन का सर्वाधिक कठिन काल माना जाता है। इस अवधि मे बालक दोनो ही अवस्थाओ मे रहता है। न तो उसे बालक ही समझा जाता है और न ही प्रौढ के रूप मे स्वीकृति मिलती है। किशोरावस्था को अग्रेजी मे 'एडोलेसेन्स' (Adolescence) कहते है। 'एडोलेसेन्स' शब्द लैटिन भाषा के 'ऐडोलिसियर' (adolescere) से बना है जिसका अर्थ है—परिपक्वता की ओर बढना (To Grow to Maturity) अत किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमे बालक परिवपक्वता की ओर अग्रसर होता है तथा जिसकी समाप्ति पर वह पूर्ण परिपक्व व्यक्ति (Fully Matured Individual) बन जाता है। किशोरावस्था को हॉल (Hall) ने सघर्ष (stress), तनाव (strain), तूफान (storm) तथा विरोध (strife) की अवस्था कहा है। सवेगात्मक उथल-पुथल तथा तनाव की अवस्था होने के कारण कुछ मनोवैज्ञानिक इसे समस्यात्मक अवस्था (Problem Age) भी कहते है। शैक्षिक दृष्टि से भी किशोरावस्था को अत्यत महत्वपूर्ण माना जाता है। अत. किशोरावस्था की विशेषताओं तथा इस अवस्था में शिक्षा के स्वरूप पर विचार करना शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययनकर्ता के लिए आवश्यक ही होगा।

किशोरावस्था की विकासात्मक विशेषताएँ
(Developmental Characteristics of Adolescence)

किशोरावस्था मे होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक तथा नैतिक विकास की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है—

1. शारीरिक विकास

(Physical Development)

किशोरावस्था को शारीरिक विकास की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस काल में किशोर तथा किशोरियो मे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो यौवन आरम्भ के लक्षण होते हैं। इस अवस्था मे किशोरियाँ स्त्रीत्व को तथा किशोर पुरुषत्व को प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर होते है। किशोरावस्था मे भार तथा लम्बाई मे तीव्र वृद्धि होती है, शारीरिक ढाँचे तथा माँसपेशियो मे दृढता आती है। किशोरो मे दाढी एव मूँछ की रोमावलि दृष्टिगोचर होने लगती है। किशोरियों के वक्षस्थल व कूल्हे विकसित होने लगते है तथा मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाता है। वे अपने शरीर तथा स्वास्थ्य के प्रति सजग रहते है। किशोर स्वस्थ, सबल तथा उत्साही बनने का प्रयास करते है, जबकि किशोरियाँ अपनी आकृति को नारी सुलभ आकर्षण प्रदान करने की इच्छुक रहती है।

2. मानसिक विकास

(Mental Development)

किशोरावस्था मे मानसिक योग्यताओं का भी विकास होता है। कल्पना, स्मृति, दिवास्वप्नो की बहुलता, तर्कशक्ति, निर्णय लेने की क्षमता अधिक विकसित हो जाती है। इस अवधि मे किशोर-किशोरियो में परस्पर विरोधी मानसिक दशाए (Contrasting Mental Moods) परिलक्षित होने लगती है। मानसिक जिज्ञासा का विकास हो जाता है। वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं मे रुचि लेने लगता है।

3. स्थिरता तथा समायोजन का अभाव

(Lack of Stability and Adjustment)

किशोरावस्था मे किशोर-किशोरियो की मनःस्थिति शिशुओ के समान अस्थिर हो जाती है। बाल्यावस्था मे आई स्थिरता समाप्त होने लगती है तथा किशोर-किशोरियाँ पुन शिशु के समान अस्थिर मन वाले हो जाते है। इसलिए किशोरावस्था को शैशवावस्था की पुनरावृत्ति (Recapitulation) भी कहा जाता है। इस अवस्था मे व्यवहार मे इतनी तेजी से परिवर्तन होते है कि किशोर-किशोरियो का व्यवहार उद्विग्न सा रहता है उनके विचार क्षण-क्षण परिवर्तित-होते रहते है। परिणामत वे अन्य व्यक्तियों तथा वातावरण के साथ समायोजन करने मे कठिनाई का अनुभव करते है।

4. व्यवहार में विभिन्नताएं

(Differences in Behaviour)

किशोर-किशोरियो मे सवेगों की प्रबलता होती है। सवेगात्मक आवेश मे वे असम्भव तथा असाधारण लगने वाले कार्यो को भी कर डालते है। भिन्न-भिन्न अवसरो पर उनके व्यवहार भिन्न-भिन्न दिखाई देते है व कभी अदम्य उत्साह से युक्त, कभी बिल्कुल हतोत्साहित, कभी अत्यत क्रियाशील तथा कभी अत्यत काहिल दिखाई देते हैं।

5. घनिष्ठ मित्रता

(East Friendship)

किशोरावस्था मे किशोर किसी समूह का सदस्य होते हुए भी समूह के केवल एक दो व्यक्तियो से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है जो उसके परम मित्र होते है। इनसे वह अपनी व्यक्तिगत समस्याओ की चर्चा करता है तथा परामर्श लेता है।

6. रुचियों में परिवर्तन तथा स्थायित्व

(Changes and Stability in Interests)

किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षो मे किशोर किशोरियो की रुचियो मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है परतु बाद के वर्षो मे उनकी रुचियो मे स्थायित्व आने लगता है। किशोर तथा किशोरियो की रुचियो मे कुछ समानताएँ भी होती है तथा कुछ विभिन्नताए भी पाई जाती है। पत्र-पत्रिकाए, कहानियाँ, नाटक उपन्यास आदि पढना, रेडियो सुनना, सिनेमा तथा दूरदर्शन कार्यक्रम देखना, शरीर को आकर्षक बनाने के लिए अलकृत करना, विषमलिगी की ओर आकर्षित होना आदि किशोरो तथा किशोरियो की रुचियाँ होती है। किशोर खेलकूद, घर से बाहर घूमने-फिरने मे अधिक रुचियाँ लेते है, जबकि किशोरियाँ कढाई, बुनाई, नृत्य, सगीत तथा घरेलू कार्यो मे विशेष रुचि लेती है।

7. कामशक्ति की परिपक्वता

(Maturity of Sex Instinct)

किशोरावस्था की सम्भवत सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता काम इन्द्रियो की परिपक्वता तथा काम प्रवृत्ति का क्रियाशील होना है। शारीरिक दृष्टि से किशोर तथा किशोरियाँ काम सम्बन्ध स्थापित करने मे सक्षम हो जाते है। शैशवावस्था का दबा हुआ यौन आवेग, जो बाल्यावस्था मे सुप्त रहता है, पुन जागृत हो जाता है। किशोर-किशोरियो मे तथा किशोरियाँ किशोरों मे विशेष रुचि लेने लगती है। किशोर किशोरियो की मित्रता उनके परस्पर मिलने-जुलने, बातचीत करने, घूमने-फिरने जैसे क्रियाकलापो मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

8. समूह को महत्व

(Importance of Group)

किशोर-किशोरियाँ अपने समूह अथवा सगी-साथियों को अपने परिवार, अध्यापक तथा विद्यालय से अधिक महत्व देते है। उनके समस्त कार्य तथा व्यवहार समूह से प्रभावित होते है। वे अपने समूह के दृष्टिकोणो को अधिक अच्छा समझते है तथा उनके अनुरूप ही अपने व्यवहारो, आदतो, रुचियो तथा इच्छाओ आदि मे परिवर्तन लाते है।

9. स्वतन्त्रता व विद्रोह की भावना

(Feeling of Independence and Revolt)

किशोरावस्था मे स्वतन्त्रता की भावना अत्यत प्रबल होती है। किशोर-किशोरियाँ अपने से बडो के आदशो, परिवार व समाज की परम्पराओ, रीति-रिवाजो अथवा अन्ध विश्वासो को सहज ही स्वीकार नही करते है। वे अपना

स्वतत्र जीवन व्यतीत करना चाहते है। बिना तर्क के वे किसी बात को स्वीकार नही करना चाहते है। यदि उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो वे विद्रोह करने का प्रयास करते है वास्तव मे किशोर-किशोरियाँ प्रौढो को अपने मार्ग की बाधा समझते है। उनके विचार मे प्रौढ व्यक्ति उनकी स्वतन्त्रता का हनन करने का प्रयास करते रहते है।

10. समाज-सेवा की भावना

(Feeling of Social Service)

किशोरावस्था मे समाज सेवा की भावना प्रबल हो जाती है। किशोर दूसरे व्यक्तियो का उपकार करना चाहते है। उनमे त्याग तथा बलिदान की भावना प्रबल होती है। देश, समाज अथवा मित्रमडली के लिए किशोर-किशोरियाँ अपने प्राणो की बाजी लगाने तक के लिए तत्पर हो जाते है। वे सम्पूर्ण मानव जाति के लिए प्रेम व हित भाव से ओत-प्रोत रहते है। वे बुराइयो को दूर करके आदर्श समाज की स्थापना मे अपना भरसक सहयोग प्रदान करने का प्रयास करते है।

11. ईश्वर तथा धर्म में विश्वास

(Faith in God and Religion)

किशोरावस्था मे धार्मिक भावना का उदय होता है। किशोर तथा किशोरियाँ किसी न किसी रूप मे ईश्वर की सत्ता को स्वीकारने लगते है। वे धर्म मे विश्वास करने लगते है तथा मदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा अथवा गिरजाघर जाने लगते है। उनमे सभी धर्मो का आदर करने की भावना होती है।

12. वीर पूजा की भावना

(Feeling of Hero Worship)

किशोरावस्था मे वीर पूजा की प्रवृत्ति बढ जाती है। इतिहास, साहित्य तथा वास्तविक जीवन के नायक-नायिकाओ, महापुरुषो, नेताओ, अथवा वीरो के आदर्श गुणो से प्रभावित होकर वे उनके प्रति श्रद्धा तथा भक्तिभाव रखते है तथा उनके आदर्शो के अनुयायी होकर उनकी पूजा करने लगते है। इसलिए किशोरावस्था को वीर पूजा की अवस्था (Age of Hero Worship) भी कहा जाता है।

13. स्वाभिमान की भावना

(Feeling of Self Respect)

किशोर-किशोरियो मे स्वाभिमान तथा आत्मगौरव की प्रबल भावना होती है। वे छोटी-छोटी बातो से अपने को अपमानित तथा तिरस्कृत महसूस करते है। स्वाभिमान को ठोस लगने के कारण कभी-कभी वे घर से भाग कर स्वतत्र व आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करने का प्रयास करते है।

14. अपराध प्रवृत्ति का विकास

(Development of Delinquency)

इच्छापूर्ति मे बाधा, निराशा, असफलता, प्रेम का अभाव, नवीन अनुभवों की ललक आदि के कारण किशोरावस्था मे अपराध प्रवृत्ति की भावना विकसित होने लगती

है। वास्तव मे किशोरावस्था अपराध प्रवृत्ति के विकास का एक नाजुक समय होता है तथा अधिकाश अपराधियो के अपराधी जीवन का प्रारम्भ प्राय किशोरावस्था की विषम परिरिस्थतियो के परिणामस्वरूप होता है।

15. व्यवसाय की चिन्ता
(Anxiety for Vocation)

किशोरावस्था मे किशोर अपने भावी व्यवसाय के सम्बन्ध मे चिन्तित रहते है। किसी व्यवसाय को चुनने, उसके लिए तैयारी करने, उसमे प्रवेश पाने तथा उसमे उन्नति करने से सम्बन्धित बातो की किशोर प्राय आपस मे चर्चा करते रहते है। अपनी पसंद के व्यवसाय के अनुरूप ही किशोर पाठ्यविषयों का चयन करते है।

किशोरावस्था की उपरोक्त वर्णित विकासात्मक विशेषताओं के विवेचन से स्पष्ट है कि किशोरावस्था नवीन विशेषताओ से युक्त काल है जिसमे मानव जीवन की उच्चतर तथा श्रेष्ठतर विशेषताएं परिलक्षित होती है। बिग्गी तथा हट (Biggi and Hunt) ने किशोरावस्था की विशेषताओ के सम्बध मे कहा है कि, "किशोरावस्था की विशेषताओ को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द परिवर्तन है। यह परिवर्तन शारीरिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक होता है।"

किशोरावस्था में शिक्षा
(Education During Adolescence)

किशोरावस्था जीवन का सर्वाधिक कठिन, महत्वपूर्ण तथा नाजुक समय होता है। इस काल मे किशोर-किशोरियो मे शारीरिक, मानसिक तथा सवेगात्मक दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्तन होते है। शैक्षिक दृष्टि से किशोरावस्था अत्यत महत्वपूर्ण मानी जाती है। यदि इस अवस्था मे उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाएगा, तो किशोरों के द्वारा वाछित दिशा मे प्रगति करने की सम्भावनाए बढ़ जाएगी। किशोरों के भावी जीवन के निर्माण की दृष्टि से माता-पिता, अध्यापक तथा समाज का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उनके लिए उपयुक्त एव सुनियोजित शिक्षा की व्यवस्था करे। किशोरावस्था मे शिक्षा का स्वरूप निम्नानुसार होना चाहिए—

1. शारीरिक विकास के लिए शिक्षा
(Education for Physical Development)

किशोरावस्था मे अनेक महत्वपूर्ण तथा क्रातिकारी शारीरिक परिवर्तन होते है इसलिए शरीर को स्वस्थ, सबल तथा सुडौल बनाने पर आवश्यक ध्यान देना चाहिए। अत. किशोरावस्था में पौष्टिक भौजन, स्वस्थ्य शिक्षा, शारीरिक व्यायाम तथा खेलकूद आदि की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. मानसिक विकास के लिए शिक्षा
(Education for Mental Development)

किशोरावस्था में मानसिक शक्तियो का सर्वोत्तम व सर्वांगीण विकास करने के लिए उचित शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए। किशोरो की मानसिक क्षमता, निरीक्षण

शक्ति, तर्कशक्ति, चिन्तनशक्ति, स्मरण शक्ति तथा कल्पना शक्ति का विकास उनकी रुचियो, रुझानों तथा योग्यताओ के अनुरूप किया जाना चाहिए । जिज्ञासा प्रवृत्ति को शात करने के लिए प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक स्थानो के भ्रमण की व्यवस्था की जानी चाहिए । पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला, पर्यटन, वाद-विवाद प्रतियोगिता, साहित्यिक गोष्ठियो जैसी पाठ्य-सहगामी क्रियाओ के आयोजन से उनकी अवलोकन तथा अभिव्यक्ति शक्ति को प्रशिक्षित करना चाहिए । सगीत, चित्रकला आदि के द्वारा किशोरो के सौदर्यात्मक मूल्यो का विकास किया जा सकता है ।

3. संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा

(Education for Emotional Development)

किशोरावस्था मे सवेगात्मक जीवन मे उथल-पुथल हो जाती है । किशोर अनेको सवेगो से सघर्ष करता है । वह सही कर्त्तव्य को समझने मे कठिनाई अनुभव करता है । शिक्षा के द्वारा निष्कृष्ट व दुखद सवेगो को दबाने अथवा मार्गान्तरीकरण करने का तथा उत्तम सवेगो का विकास करने का प्रयास किया जाना चाहिए । कला, साहित्य, सगीत तथा सास्कृतिक कार्यक्रमो के द्वारा सवेगो का विकास किया जाना चाहिए ।

4. सामाजिक विकास के लिए शिक्षा

(Education for Social Development)

किशोर अपने समूह को अत्याधिक महत्व देता है । अत विद्यालय मे ऐसे समूहो का गठन किया जाना चाहिए जिनकी सदस्यता ग्रहण करके किशोर अपना समाजिक विकास कर सके । सामूहिक क्रियाओ, सामूहिक खेलकूद, स्काउटिग, सास्कृतिक कार्यक्रम अादि किशोरो मे उत्तम सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक सम्बन्धो को विकसित करने की दिशा मे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

5. धार्मिक तथा नैतिक विकास के लिए शिक्षा

(Education for Religious and Moral Development)

किशोरावस्था मे निरन्तर विरोधी विचार उठते है । वे उचित-अनुचित का निर्धारण नही कर पाते है इसलिए परिवार तथा विद्यालय मे किशोरो को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए । अभिभावको तथा अध्यापको के द्वारा उत्तर आदर्श, व्यवहार तथा आचरण प्रस्तुत करके किशोरो के नैतिक चरित्र का विकास किया जा सकता है ।

6. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप शिक्षा

(Education for Individual Differences)

किशोरावस्था मे किशोरो की व्यक्तिगत विभिन्नताए तथा आवश्यकताए शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होती है । उनकी शिक्षा की इस प्रकार से व्यवस्था की जानी चाहिए कि सभी किशोर-किशोरियो को अपनी विभिन्न रुचियो, प्रवृत्तियों तथा योग्यताओं के अनुरूप शिक्षा मिल सके । विद्यालयो मे शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन (Educational and Vocational Guidance) की भी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वे अपनी रुचियों, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप पाठ्यक्रम तथा

व्यवसाय का चयन कर सके। बालक तथा बालिकाओ की रुचियो तथा भावी आवश्यकताओ मे अतर होने के कारण उनके पाठ्यक्रमो मे भी विभिन्नताए होनी चाहिए।

7. यौन शिक्षा

(Sex Education)

किशोर-किशोरियो की अधिकाश समस्याओ का सम्बन्ध उनकी काम प्रवृत्ति से होता है। भारतीय परिवारो मे काम को एक वर्जित विषय माना जाता है। इसके सम्बन्ध मे वात करने मे लज्जा व सकोच का अनुभव किया जाता है। यही कारण है कि भारतीय परिवेश मे किशोर-किशोरियो की यौन शिक्षा पर जरा भी ध्यान नही दिया जाता है। इस विषय की अज्ञानता व अनभिज्ञता का प्राय किशोर-किशोरियो पर घातक प्रभाव पडता है। वास्तव मे किशोरावस्था के दौरान मर्यादित यौन शिक्षा प्रदान करना अति आवश्यक है जिससे उनकी काम प्रवृत्ति को उचित दिशा मे ले जाया जा सके।

8. उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग

(Use of Proper Teaching Methods)

किशोरावस्था मे निरीक्षण, परीक्षण, तर्क एव चिन्तन करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। अत किशोर-किशोरियो को शिक्षा प्रदान करते समय ऐसी विधियो का प्रयोग करना चाहिए जिससे वे सतुष्ट भी हो सके तथा उनकी विभिन्न मानसिक शक्तियो का विकास भी हो सके।

9. किशोर के प्रति व्यस्क जैसा व्यवहार

(Adult Type Behaviour towards Adolescence)

किशोरो मे उचित महत्व तथा स्थिति पाने की तीव्र इच्छा होती है। उन्हे बालक समझ कर उनके प्रति बालक जैसा व्यवहार नही करना चाहिए वरन् उनके साथ व्यस्क जैसा व्यवहार करना चाहिए। अनावश्यक नियत्रणो तथा बधनो मे न बधकर किशोरो को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य स्वतन्त्र ढग से करने के अवसर देने चाहिए। किशोरो को खीज, निराशा तथा अवहेलना से बचा कर उनकी अपराधप्रवृत्ति पर अकुश लगाया जा सकता है।

o किशोरावस्था बालको के भावी जीवन के निर्माण की एक महत्वपूर्ण अवस्था है। अत अध्यापको तथा अभिभावको को किशोर-किशोरियो की शिक्षा का नियोजन तथा सचालन अत्यत सावधानी से करना चाहिए जिससे बालक उत्कृष्ट जीवन के पथ पर सफलतापूर्वक आगे वढ सके।

---

8 शारीरिक विकास
(Physical Development)

बालक के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। बालक का शारीरिक विकास उसके समस्त व्यवहार तथा विकास के अन्य सभी पक्षो को प्रभावित करता है। शारीरिक विकास के अतर्गत शरीर रचना, स्नायु मडल, मासपेशीय वृद्धि, अत स्त्रावी ग्रथियाँ आदि प्रमुख रूप से आती है। बालक के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पडता है। यही कारण है कि शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक विकास को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे शारीरिक विकास की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। प्रस्तुत अध्याय मे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे होने वाले शारीरिक विकास की चर्चा की गई है।

जन्म पूर्व शारीरिक विकास
(Prenatal Physical Development)

ज्यो ही अण्ड शुक्राणु से मिलकर निषेचित होता है, त्यो ही मानव जीवन का प्रारम्भ हो जाता है। निषेचित अण्ड सर्वप्रथम दो कोषो मे विभाजित होता है जिनमे से प्रत्येक कोष पुन दो-दो मे विभाजित हो जाते है। कोष विभाजन की यह प्रक्रिया अत्यत तीव्र गति से चलने लगती है। इनमे से कुछ कोष प्रजनन कोष (Germ Cells) बन जाते है तथा अन्य शरीर कोष (Body Cells) बन जाते है। शरीर कोषों से ही माँसपेशियों, स्नायुयो तथा शरीर के अन्य भागो का निर्माण होता है। निषेचन से जन्म तक के समय को जन्म पूर्वकाल अथवा जन्म पूर्व विकास का काल कहा जाता है। सामान्यत जन्म पूर्वकाल दस चन्द्रमास अथवा नौ कैलेण्डर मास अथवा चालीस सप्ताह अथवा 280 दिन का होता है। परतु इस अवधि मे कभी-कभी काफी अतर हो जाता है। एक सौ अस्सी दिन से लेकर 334 दिन तक का जन्म पूर्व काल होने के उदाहरण मिल चुके है। जन्म पूर्व काल के लगभग 280 दिनो मे निषेचित अण्ड का आकार लगभग पचास हजार गुना हो जाता है तथा इसका भार एक ग्राम के पाँच हजारवें भाग से बढकर लगभग साढ़े तीन कि०ग्रा० हो जाता है अर्थात् इसका भार जन्म के समय से लगभग दस अरब गुना हो जाता है। जन्म पूर्व काल को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—डिम्वावस्था (Period of Ovum), पिण्डावस्था (Period of Embryo) तथा भ्रूणावस्था (Period of Fetus)। इन तीनो ही कालो मे विकास की अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताए होती है।

1. डिम्बावस्था

(Period of Ovum)

जन्म पूर्व विकास का प्रथम काल डिम्बावस्था अथवा डिम्ब काल (Period of Ovum) कहलाता है। यह अवस्था अण्ड के निषेचित होने के क्षण से प्रारम्भ होकर. लगभग दो सप्ताह तक चलती है अर्थात जन्मपूर्व विकास के प्रथम दो सप्ताह तक की अवस्था डिम्बावस्था कहलाती है। डिम्बावस्था के दौरान निषेचित अण्ड अथवा सयुक्त कोष बाहर से लगभग नही के बराबर पोषण पाता है तथा यह अण्ड मे उपस्थित भोजन (Yolk) से ही पोषित होता है। इस समय यह माता से भी जुडा नही होता है वरन् इस अवधि मे यह एक मुक्त रूप से विचरण करने वाला कण (Free-Floating Particle) होता है। इस काल मे इसका आकार लगभग अपरिवर्तित रहता है परतु इसकी आतरिक सरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते है। निषेचित अण्ड अत्यत तीव्र गति से विभक्त तथा पुनर्विभक्त होता रहता है। कोष के अदर विद्यमान प्रत्येक गुणसूत्र लम्बाई में इस प्रकार से विभक्त होता है कि प्रत्येक नए कोष मे पुराने कोष के समस्त पित्रैक उपस्थित रहते है।

निषेचन के लगभग दस दिन के उपरान्त निषेचित अण्ड गर्भाशय (Uterine) की दीवार पर स्थापित होने के लिए कोई उपयुक्त स्थान पा लेता है तथा अपने स्पर्श अगो (Feelers) को गर्भाशय की दीवार मे चुभोकर गर्भाशय की सतह की रक्त नलिकाओ (Blood Vessels) से अपना सम्बन्ध जोड लेता है। इस प्रकार से वह पोषण का नया स्रोत बना लेता है। इस प्रक्रिया को आरोपण (Implantation) कहते है। आरोपण हो जाने के उपरान्त सयुक्त कोष एक परजीवी (Parasite) हो जाता है तथा जन्म पूर्व काल का बाकी समय वह इसी अवस्था मे व्यतीत करता है। डिम्बावस्था तीन कारणो से महत्वपूर्ण होती है—प्रथम, निषेचित अण्ड गर्भाशय मे आरोपित होने से पूर्व निष्क्रिय हो सकता है, द्वितीय, आरोपण गलत स्थान पर हो सकता है तथा तृतीय, आरोपण होना सम्भव नहीं हो सकता है।

यदि अण्ड में इतना कम भोजन पदार्थ (Yolk) होता है कि वह अण्ड के गर्भाशय मे आरोपित होने से पूर्व ही समाप्त हो जाता है तो निषेचित अण्ड निष्क्रिय होकर समाप्त (Dead) हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि माता की थायरॉयड (Thyroid) तथा पीयूष (Pituitary) ग्रथियो से निकलने वाले हार्मोस निषेचित अण्ड के लम्बे समय तक आरोपित न हो पाने के उत्तरदायी होते है। यदि माता की पीयूष ग्रंथि तथा गर्भाशय की क्रियाशीलता के बीच उचित तालमेल रहती है, तब ही गर्भाशय की दीवारें निषेचित अड को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहती हैं। परतु, यदि तालमेल न होने के कारण यह तैयारी विलम्ब से होती है, तब निषेचित अण्ड आरोपित नही हो पाता है तथा आगामी मासिक चक्र मे शरीर से बाहर निकल जाता है।

कभी-कभी निषेचित अण्ड गर्भाशय मे ऐसे स्थान पर आरोपित हो जाता है कि वह पोषण प्राप्त नही कर सकता है। परिणामत भोजन के अभाव में वह निष्क्रिय होकर मर जाता है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी यह गर्भाशय की दीवार के किसी छोटे तन्तुनुमा ट्यूमर (Small Fibroid Tumor) पर आरोपित हो जाता है, तब उसे पोषण उपलब्ध

नही हो पाता है। इसी प्रकार से कभी-कभी निषेचित अण्ड गर्भाशय मे जाने से पूर्व ही फालोपियेन नली (Fallopian Tube) की दीवार पर आरोपित हो जाता है जहाँ पर इसका सामान्य विकास नही हो सकता है।

स्पष्ट है कि डिम्बावस्था मे तीन बातें अत्यत आवश्यक तथा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है—प्रथम, निषेचित अण्ड मे पर्याप्त मात्रा मे भोजन पदार्थ (Yolk) होना चाहिए जिससे आरोपित होने से पूर्व तक सयुक्त कोष का भलीभाँति पोषण हो सके तथा यह क्रियाशील रहे। द्वितीय, माता की थायरॉयड व पीयूष ग्रथि तथा गर्भाशय की क्रियाशीलता के मध्य उचित तालमेल होनी चाहिए जिससे गर्भाशय की दीवारें उचित समय पर सयुक्त कोष को स्वीकार करने के लिए तत्पर हों सके। तृतीय, सयुक्त कोष अपने आप को गर्भाशय में किसी उचित स्थान पर ही आरोपित करे जिससे उसे माता से पोषण मिल सके तथा उसका उचित विकास हो सके।

2. पिण्डावस्था

(Period of Embryo)

जन्म पूर्व विकास का द्वितीय काल पिण्डावस्था (Embryonic Period) अथवा पिण्ड काल (Period of Embryo) कहलाता है। यह अवस्था निषेचन के तीसरे सप्ताह से शुरु होकर आठवें सप्ताह तक चलती है। लगभग छ. सप्ताह तक चलने वाली पिण्डावस्था परिवर्तन की अवस्था है, जिसमे कोषो का समूह एक लघु मानव (Minature Individual) के रुप मे विकसित हो जाता है। शरीर की लगभग समस्त मुख्य विशेषताए, बाह्य तथा आन्तरिक, इस लघु अवधि मे स्पष्ट हो जाती है। इस काल मे विकास मस्तक-ऊधोमुखी दिशा (Cephalocaudal Sequence) मे होता है अर्थात सर्वप्रथम मस्तक क्षेत्र का विकास होता है तथा फिर धड क्षेत्र का विकास होता है तथा सबसे अन्त मे पैर क्षेत्र का विकास होता है।

तेजी से विभक्त होकर द्विगुणित हो रहे कोष समुच्चय की बाह्य सतह के कोष सहायक उपकरणों के रुप में परिवर्तित हो जाते है जो जन्म लेने तक भ्रूण के पोषण मे सहायक होते है तथा उसे सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसके अन्तर्गत आँवल या अपरा (Placenta), नाभिनाल (Umblical Cord) तथा गर्भ झिल्ली (Sac) होती है। आँवल (Placenta) लगभग एक इच मोटी तथा 8 से 10 इच व्यास वाली गोल वृत्ताकार (Pie-shaped) संरचना होती है जो गर्भाशय मे उस जगह विकसित होती है जहाँ निषेचित अण्ड अपने को आरोपित करता है। नाभि नाल एक ओर आँवल (Placenta) से तथा दूसरी ओर भ्रूण के उदर से जुडी हुई नली होती है। यह रक्त नलिकाओ से युक्त 10 से 20 इच लम्बी तथा लगभग आधा इच व्यास वाली सरचना होती है। माता के रक्त तत्र से रक्त आँवल (Placenta) व नाभि नाल के द्वारा भ्रूण तक प्रवाहित होता है। इस रक्त प्रवाह के द्वारा ही भ्रूण को पोषण के लिए आवश्यक तत्व जैसे आक्सीजन, भोजन तथा पानी आदि माँ से प्राप्त होते है। भ्रूण के शरीर के वर्ज्य पदार्थ (Waste Products) भी आँवल (Placenta) तथा नाभि नाल के द्वारा माता के रक्त तत्र मे वापिस पहुँचते ह जहाँ से वह बाहर निकल जाते है। यद्यपि भ्रूण का अपना रक्त सचार तन्त्र (Circulatory System) होता है। परतु यह पोषण तथा वर्ज्य पदार्थो के
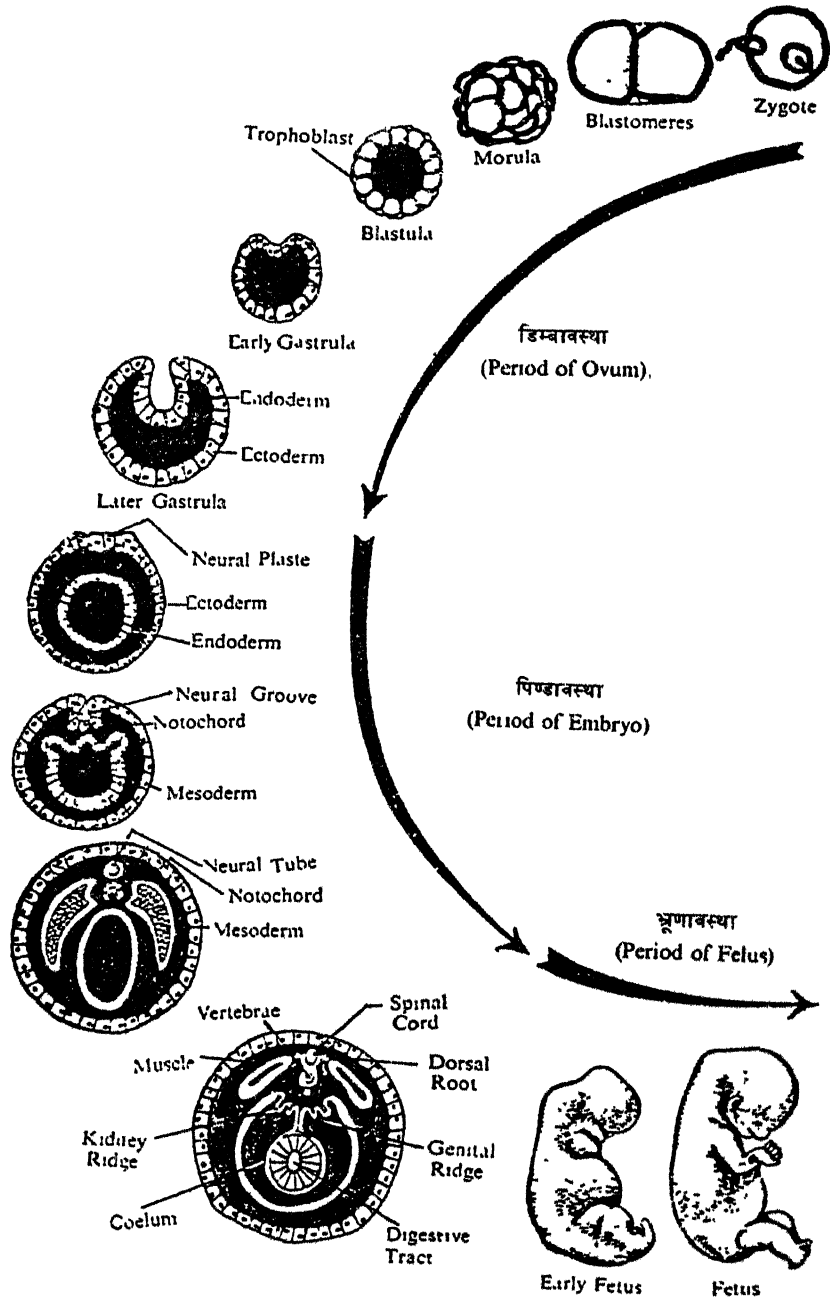
चित्र 11 जन्मपूर्व शारीरिक विकास
(Prenatal Physical Development)

अपसर्जन के लिए ऑवल (Placenta) पर निर्भर करता है। माता तथा भ्रूण के रक्त तत्रो के मध्य कोई सीधा सम्पर्क नही होता है वरन् यह सम्बन्ध ऑवल के माध्य से स्थापित रहता है।

तीसरा सहायक उपकरण जो पिण्डावस्था मे विकसित होता है, गर्भ झिल्ली (Sac) कहलाता है। यह चार झिल्लियो का बना होता है तथा ऑवल से जुडा होता है। इसमे एक तरल पदार्थ भरा होता है जिसे एम्नियोटिक द्रव (Amniotic Fluid) कहते है। इस द्रव के अदर भ्रूण विकसित होता है। इसका कार्य जन्म तक भ्रूण को सुरक्षा प्रदान करना तथा जन्म पूर्व के वातावरण के तापमान को स्थिर रखना होता है। जन्म से ठीक पहले गर्भ झिल्ली (Sac) फट जाती है तथा एम्नियोटिक द्रव (Amniotic Fluid) बह कर बाहर आने लगता है जो बालक के बाहर आने के मार्ग को चिकना (Lubricate) करने मे सहायक होता है। जन्म पूर्व के ये तीनो उपकरण बालक के जन्म पूर्व विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है परतु जन्म के उपरान्त इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है तथा बालक के जन्म के उपरान्त ये तीनो उपकरण माता के गर्भ से बाहर आ जाते है।

कोषों का आन्तरिक भाग तीन परतो—बाह्य परत (Ectoderm), मध्य परत (Mesoderm) तथा आन्तरिक परत (Endoderm) मे विभाजित हो जाता है। बाह्य परत (Ectoderm) से त्वचा, बाल, नाखून, दॉत, सवेदन कोष (Sensory Cells) तथा समस्त स्नायुमडल (Nervous System) विकसित होता है। मध्य परत (Mesoderm) से त्वचा की आन्तरिक पर्त, मॉसपेशियॉं, रक्त सचार व मल-मूत्र विसर्जन अग (Circulatory and Excretory Organs) विकसित होते है। आन्तरिक परत (Endoderm) से पाचन तत्र, श्वसन तत्र, जिगर, लार ग्रथियॉं, थायरॉयड ग्रंथियॉं आदि विकसित होती है। पिण्डावस्था के अत तक भ्रूण मानव का आकार ले लेता है परतु इसके शरीर के विभिन्न अगो का अनुपात किसी प्रौढ मानव से काफी भिन्न होता है।
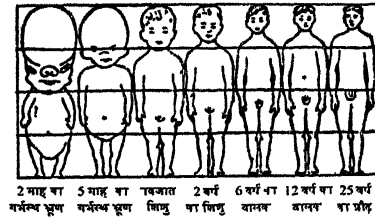
चित्र 12

विभिन्न आयु मे शरीर के अगो का अनुपात

पिण्डावस्था दो कारणो से अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है—प्रथम, कुपोषण, सवेगात्मक सदमो, अत्यधिक शारीरिक गतिशीलता, ग्रथियो के कार्यों मे व्यवधान अथवा अन्य किसी कारण से भ्रूण गर्भाशय की दीवार से विलग हो सकता है, जिसके परिणाम स्वरुप स्वत गर्भपात (Spontaneous Abortion या Miscarriage) हो जाता है। द्वितीय, पिण्डावस्था मे भ्रूण के शरीर निर्माण की प्रक्रिया मे विकासात्मक विसगतियाँ (Developmental Irregularities) हो सकती है जो प्राय बाद मे दूर नही की जा सकती है तथा बालक के भावी विकास को बुरी तरह से प्रभावित कर सकती है।

3. भ्रूणावस्था
(Period of Fetus)

निषेचन के नवे सप्ताह से लेकर बालक के जन्म तक की अवधि भ्रूणावस्था (Period of the Fetus) अथवा भ्रूणकाल (Fetel Period) कहलाती है। यद्यपि जन्म पूर्व विकास के तीनो काल मे यह सर्वाधिक बडा काल होता है। परतु अनेक दृष्टियो से यह अवधि अन्य दोनो अवधियो की तुलना मे कुछ कम महत्वपूर्ण होती है। भ्रूणावस्था मे विकास की गति इससे पूर्व की अवस्थाओ की अपेक्षा धीमी रहती है। इस काल मे पिण्डावस्था मे निर्मित बालक के शरीर के विभिन्न भागो के आकार मे वृद्धि होती है तथा आनुपातिक आकार मे भी परिवर्तन होता है। भ्रूणावस्था की विभिन्न अवधियो मे शरीर के विभिन्न अगो के अनुपात नीचे दी गई सारणी मे प्रस्तुत किये गए है।

सारणी

भ्रूणावस्था के दौरान शरीर के विभिन्न अगो की लम्बाई मे अनुपात

शरीर के अग	8 सप्ताह का भ्रूण	20 सप्ताह का भ्रूण	40सप्ताह का भ्रूण
सिर	45%	35%	25%
धड	35%	40%	40%
पैर	20%	25%	35%

भ्रूणावस्था चार दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानी जाती है—प्रथम, गर्भाधान के उपरान्त पाँच माह तक गर्भपात की सम्भावनाएं बनी रहती है। द्वितीय, माता के गर्भ मे बालक को मिल रहे वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भ्रूण के विकास को प्रभावित कर सकती है। तृतीय, अपरिपक्व प्रसव (Pre-Mature Delivery) हो सकता है। चतुर्थ, प्रसव की सरलता अथवा जटिलता सदैव ही जन्म पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित होती है।

जन्म पूर्व काल का शैक्षिक महत्व
(Educational Importance of Prenatal Period)

मानव जीवन के लिए जन्म पूर्व काल अत्यत महत्वपूर्ण है। यदि गर्भावस्था के दौरान बालक को उपलब्ध वातावरण की परिस्थितियाँ अनुकूल नही होती है तो ये विकसित हो रहे बालक पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यही कारण है कि भावी माता को अपने भोजन तथा स्वास्थ्य के प्रति प्र्याप्त सजगता बरतनी चाहिए। कुपोषण न केवल शारीरिक विकास को प्रभावित करता है वरन् बालक के मानसिक पिछडेपन का कारण भी बन सकता है। कुपोषण के कारण स्नायुमडल का विकास या तो विलम्ब से प्रारम्भ होता है अथवा धीमी गति से होता है तथा इस कमी को बाद मे कभी भी दूर नही किया जा सकता है। बालक अपने पोषण के लिए माता के ऊपर आश्रित होता है। इसलिए कोई भी ऐसी वस्तु जो माता के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है, वह उसके गर्भ मे पल रहे बालक को भी अवश्य प्रभावित करती है। माता के भोजन के अपौष्टिक या अपर्याप्त होने से बालक का विकास भी प्रभावित हो जाता है।

गर्भस्थ शिशु टोक्सीनों (Toxins) के प्रति अत्यत सवेदनशील होता है। माता के द्वारा ली जाने वाली दवाईयाँ, चाय, कॉफी, शराब, अफीम, निकोटीन आदि का कुछ न कुछ अश गर्भस्थ शिशु मे अवश्य पहुँचता है जो उसके ऊपर हानिकरक प्रभाव छोड सकता है। अतः भावी माता को शराब, दवाईयाँ, कॉफी, चाय, धूम्रपान आदि से यथासम्भव बचना चाहिए।

माता की शारीरिक व मानसिक थकान तथा कुसमायोजन का भी बालक के विकास पर प्रभाव पडता है। आवश्यक आराम का अभाव, अपेक्षित शारीरिक व्यायाम का अभाव, तग वस्त्रों का पहनना तथा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के मान्य नियमो की अवहेलना करने के कारण बालक को विकास के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियाँ नही मिल पाती है। अत भावी माता को उचित मात्रा मे आराम व व्यायाम का ध्यान रखना चाहिए तथा सवेगात्मक सदमो से बचना चाहिए।

जन्म पूर्व काल की सम्पूर्ण अवधि मे माता का स्वस्थ तथा रोगमुक्त रहना भी अत्यत महत्वपूर्ण है। कुछ रोग जैसे सिफलिस (Siphilis), टायफायड (Typhoid), डिप्थीरिया (Diphtheria) आदि वशानुगत नही होते है। परतु कभी-कभी ये रोग जन्म से पूर्व ही गर्भावस्था के दौरन शिशु के रोगग्रस्त माता के सम्पर्क मे आने के कारण माता से शिशु को हो जाते है। ऐसे रोग जो वशानुगत नही होते हैं परतु जन्म के समय बालक मे विद्यमान होते ह, सहजन्म रोग (Congenital Disease) कहलाते है। ऐसे रोगो से बालक को बचाने के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण गर्भावस्था के दौरान माता सक्रामक रोगो से मुक्त रहे।

शैशवावस्था में शारीरिक विकास
(Physical Development In Infancy)

जन्म से लेकर छः वर्ष की आयु होने तक बालक शिशु (Infant) कहलाता है तथा इस अवधि को शैशवावस्था कहते है। शारीरिक विकास की दृष्टि से शैशवावस्था

अत्यधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। शैशवावस्था मे विशेषकर जन्म से तीन वर्ष की आयु होने के दौरान, शारीरिक विकास की गति अत्यत तीव्र रहती है। शैशवावस्था मे होने वाले शारीरिक विकास की प्रकृति तथा सार्थकता विभिन्न आयु के शिशुओ के अवलोकन से तथा उनसे सम्बधित अनुसधानो के परिणामों से ज्ञात हो सकती है। शैशवावस्था मे होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्यो को निम्नाकित प्रस्तुत किया गया है।

लम्बाई

(Length)

जन्म के समय शिशु की लम्बाई लगभग 51 से०मी० होती है। प्राय बालक जन्म के समय बालिकाओ से लगभग आधा से०मी० अधिक लम्बे होते है। शैशवावस्था की सम्पूर्ण अवधि मे बालको की लम्बाई बालिकाओ की लम्बाइ से अधिक रहती है। प्रथम वर्ष मे शिशु की लम्बाई लगभग 73 से०मी०, दूसरे वर्ष 81 से०मी०, तीसरे वर्ष मे 88 सें०मी०, चौथे वर्ष मे 95 से०मी०, पाँचवे वर्ष मे 101 से०मी० तथा छठे वर्ष के अन्त मे 108 सें०मी० हो जाती है। शैशवावस्था के विभिन्न वर्षों मे बालक-बालिका की लम्बाई निम्नाकित तालिका मे दर्शायी गयी है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (सें० मी० में)

आयु	जन्म के समय	3माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6वर्ष
बालक	51 5	62.7	64.9	69.5	73.9	81.6	88.8	96.0	102.1	108.5
बालिका	51.0	60.9	64.4	66.7	72.5	80.1	87.2	94.5	101.4	107.4

2. भार

(Weight)

जन्म के समय से लेकर सम्पूर्ण शैशवावस्था के दौरान बालकों का भार बालिकाओ के भार से अधिक होता है। नवजात शिशु का भार लगभग तीन किग्रा० होता है। प्रथम छः माह मे शिशु का भार लगभग दो गुना हो जाताहै तथा एक वर्ष के अत तक लगभग तीन गुना हो जाता है। शैशवावस्था के दौरान विभिन्न आयु में शिशुओं का औसत भार निम्नांकित तालिका मे दर्शाया गया है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा० में)

आयु	जन्म के समय	3माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6वर्ष
बालक	3.2	5.7	6.9	7.4	8.4	10.1	11.8	13.5	14.8	16.3
बालिका	3.0	5.6	6.2	6.6	7.8	9.6	11.2	12.9	14.5	16.0

3. सिर तथा मस्तिष्क

(Head and Brain)

नवजात शिशु (Neonate) का सिर उसके शरीर की अपेक्षा बडा होता है । जन्म के समय सिर की लम्बाई कुल शरीर की लगभग एक चौथाई होती है । प्रथम दो वर्षों मे सिर की लम्बाई तथा आकार मे तीव्र गति से वृद्धि होती है, परन्तु वाद के वर्षो मे इसके विकास की गति मद हो जाती है । जन्म के समय मस्तिष्क का भार लगभग साढे तीन सौ ग्राम होता है जो 6 वर्ष की आयु तक बढते-बढते लगभग 1250 ग्राम हो जाता है, जोकि प्रौढ व्यक्ति के मस्तिष्क के भार का लगभग 90% होता है । स्पष्ट है कि शैशवावस्था मे मस्तिष्क का विकास भी अत्यत तीव्र गति से होता है ।

4. हड्डियाँ

(Bones)

शरीर सरचना वास्तव मे हड्डियो का ढाँचा होता है । हड्डियाँ मानव के अन्य अगों को सुरक्षा तथा शरीर को ढाचा प्रदान करती है । नवजात शिशु मे हड्डियों की संख्या लगभग 270 होती है । नवजात शिशु की हड्डिया छोटी (Small), कोमल (Soft) तथा लचीली (Pliable) होती है । शैशवावस्था के दौरान केलशियम, फास्फोरस तथा अन्य खनिज पदार्थों को पाकर ये धीरे-धीरे मजबूत होती जाती है । हड्डियों के इस प्रकार से मजबूत होने की प्रक्रिया को अस्थिकरण अथवा अस्थि-दृढीकरण (Ossification) कहते है । बालको की तुलना मे बालिकाओ मे अस्थिकरण अधिक शीघ्र होता है ।

5. दाँत

(Teeth)

जन्म के समय शिशु के दाँत नही होते है,-लगभग छठे या सातवे माह में अस्थायी दूध के दाँत (Deciduous Teeth) निकलने लगते है । एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दाँत निकल जाते है । इसके पश्चात ये दाँत गिरने लगते है तथा पाँचवे या छठे वर्ष की आयु से शिशु के स्थायी दाँत निकलने लगते हैं ।

6. माँस पेशियाँ

(Muscels)
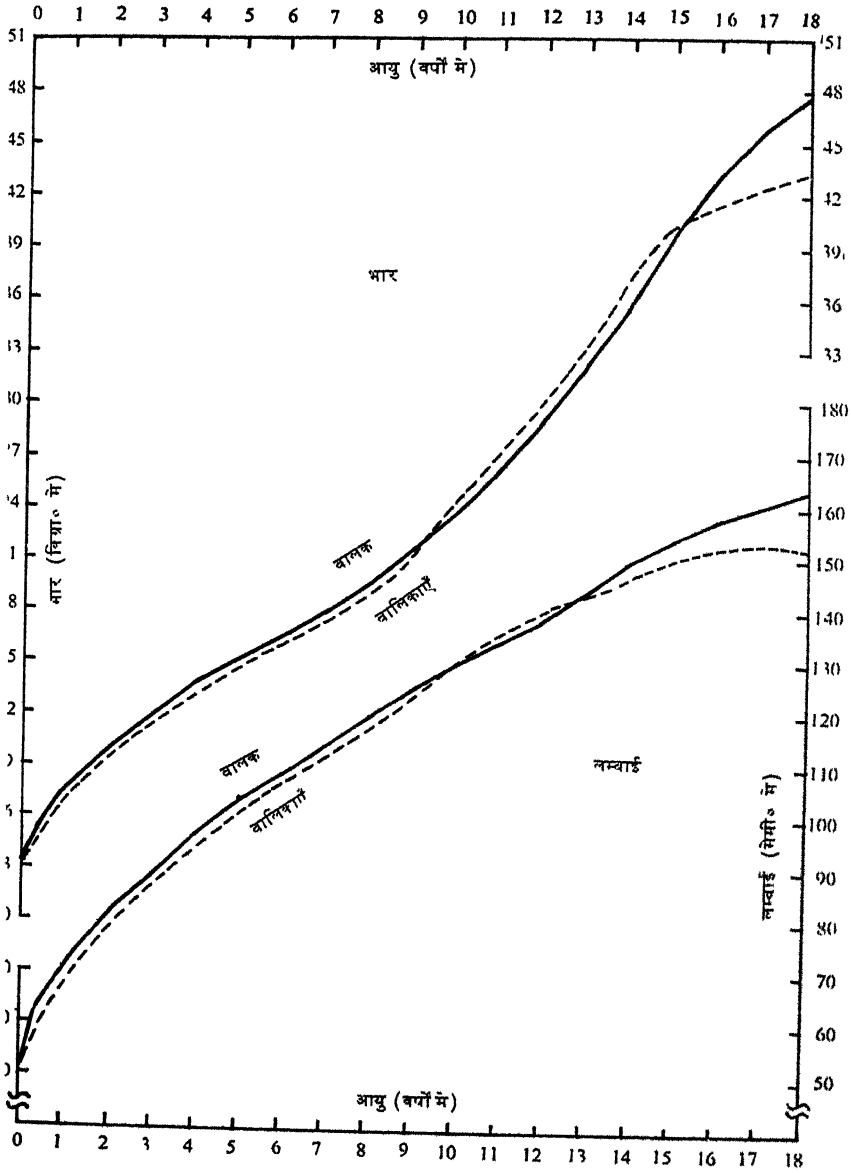
चित्र 13
विभिन्न आयु मे औसत लम्वाई तथा भार

नवजात शिशु की माँसपेशियो का भार उसके शरीर के कुल भार का लगभग 23% होता है। माँसपेशियो के प्रतिशत भार मे धीरे-धीरे बढोत्तरी होती जाती है।

7. अन्य अंग

(Other Organs)

शिशु की भुजाओं तथा टाँगो का विकास भी तीव्र गति से होता है। प्रथम दो वर्षो मे भुजाए दो गुनी तथा टाँगे लगभग डेढ़ गुनी हो जाती है। शिशु के यौन अगो का बिकास अत्यत मद गति से होता है। जन्म के समय शिशु के हृदय की धडकन अनियमित होती है। कभी वह तीव्र हो जाती है तथा कभी धीमी हो जाती है। जैसे-जैसे हृदय बडा होता जाता है वैसे-वैसे धडकन मे स्थिरता आ जाती है। प्रथम माह मे शिशु का हृदय प्रति मिनट लगभग 140 बार धडकता है, जबकि छ. वर्ष की आयु मे हृदय की धडकन घटकर ·100 के लगभग हो जाती है।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास
(Physical Development in Childhood)

छ वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु तक की अवधि बाल्यावस्था कहलाती है। बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों के दौरान अर्थात् 6 से 9 वर्ष की आयु तक शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। बाद के तीन वर्षों में शारीरिक विकास की गति कुछ धीमी हो जाती है परतु इस अवधि मे शारीरिक विकास दृढता की ओर उन्मुख होता हैं।-यही कारण है कि 9 से 12 वर्ष की अवधि को परिपाक काल (Consolidation Period) भी कहते है। बाल्यावस्था मे होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन अग्राकित हैं—

1. लम्बाई

(Length)

छ. वर्ष से बारह वर्ष की आयु तक चलने वाली बाल्यावस्था मे शरीर की लम्बाई लगभग 5 से 7 सें०मी० प्रतिवर्ष की गति से बढ़ती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ मे जहाँ बालको की लम्बाई बालिकाओ की लम्बाई से लगभग एक सें०मी० अधिक होती है वही इस अवधि की समाप्ति पर बालिकाओ की औसत लम्बाई बालको की औसत लम्बाई से लगभग एक सेमी० अधिक हो जाती है। बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षो मे बालक तथा बालिकाओ की औसत आयु निम्नाकित तालिका मे दर्शायी गयी है।

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (सें० मी० में)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	108.5	113.9	119.3	123.7	128.4	133.4	138.3
बालिका	107.4	112.8	118.2	122.9	128.4	133.6	139.2

2. भार

(Weight)

बाल्यावस्था के दौरान बालको के भार मे काफी वृद्धि होती है । नौ-दस वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओ के भार से अधिक होता है परतु इसके उपरान्त बालिकाओ का भार बालकों के भार से अधिक होना प्रारम्भ हो जाता है । बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षों मे बालक तथा बालिकाओ का औसत भार निम्नाकित तालिका मे दर्शाया गया है—

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा० में)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	16.3	18.0	19.7.	21.5	23.5	25.9	28.5
बालिका	16.0	17.6	19.4	21.3	23.6	26.4	29.8

3. सिर तथा मस्तिष्क

(Head and Brain)

बाल्यावस्था मे सिर के आकार में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है परन्तु शरीर के अन्य अगों की तुलना मे यह अभी भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है । शरीर के विभिन्न अंगो की अनुपातहीनता धीरे-धीरे कम होती जाती है । बाल्यावस्था के अत तक सिर का आकार प्रौढावस्था के सिर के आकार का लगभग 95 प्रतिशत हो जाता है । बाल्यावस्था में मस्तिष्क आकार तथा भार दोनो ही दृष्टि से लगभग पूर्णरुपेण विकसित हो जाता है । बाल्यावस्था के अत तक मस्तिष्क का भार प्रौढ मस्तिष्क के भार का लगभग 95 प्रतिशत रहता है ।

4. हड्डियाँ

(Bones)

बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता दोनों में ही वृद्धि होती है । इस अवस्था मे हड्डियों की सख्या 270 से बढ़कर लगभग 350 हो जाती है । इस अवस्था के दौरान हड्डियो का दृढ़ीकरण अथवा अस्थिकरण (Ossification) तेजी से होता है जिसके परिणामस्वरुप बालको की हड्डियो का लचीलापन समाप्त होने लगता है तथा उनमे कडापन आने लगता है ।

5. दाँत

(Teeth)

लगभग पॉच-छ वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं । सोलह वर्ष की आयु तक लगभग सभी स्थायी दाँत निकल आते हैं । स्थायी दाँतों की संख्या

लगभग 27-28 होती है। बालिकाओ मे स्थायी दाँत बालको की अपेक्षा कुछ जल्दी निकलते है। दाँतो के निकल आने से बालको की मुखाकृति मे परिवर्तन आने लगता है तथा उनका भोलापन समाप्त होने लगता है।

6. माँसपेशियाँ

(Muscles)

बाल्यावस्था मे माँसपेशियो का धीरे-धीरे विकास होता जाता है। बारह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते बालक की माँसपेशियो का भार उसके शरीर के कुल भार का लगभग 33% हो जाता है। इस अवस्था मे बालक माँसपेशियो पर पूर्ण नियत्रण करने लगता है।

7. अन्य अंग

(Other Organs)

बाल्यावस्था मे बालक के लगभग सभी अंगो का विकास हो जाता है जिसके कारण वह अपने विभिन्न शारीरिक अगो, शक्तियो तथा गति पर नियत्रण करने मे समर्थ हो जाता है। वह अपनी इच्छानुसार अपने विभिन्न अगो का सचालन करता है तथा बहुत अधिक सक्रिय रहता है। बालक के कधे चौडे, कूल्हे पतले, पैर लम्बे व सीधे होते है, जबकि बालिकाओं के कधे पतले, कूल्हे चौडे तथा पैर कुछ अदर को झुके हुए होते हैं। लगभग 11-12 वर्ष की आयु मे बालक बालिकाओ के यौन अगों का विकास तीव्र गति से होने लगता है। बाल्यावस्था मे हृदय की धडकन गति मे निरन्तर कमी होती रहती है। बारह वर्ष की आयु मे धड़कन की गति लगभग 85 प्रति मिनट हो जाती है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास

(Physical Development in Adolescence)

बाल्यावस्था के उपरान्त किशोरावस्था प्रारभ होती है। किशोरावस्था, बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच का काल है जिसमें प्रजनन क्षमता का विकास होता है। यह 18 वर्ष की आयु तक रहती है। किशोरावस्था मे बालक तथा बालिकाओ का विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है-। किशोरावस्था मे होने वाले शारीरिक विकास से सबधित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नाकित है—

1. लम्बाई

(Length)

किशोरावस्था मे बालक तथा बालिकाओ की लम्बाई बहुत तीव्र गति से बढती है। बालिकाए प्राय· 16 वर्ष की आयु तक तथा बालक लगभग 18 वर्ष की आयु तक अपनी अधिकतम लम्बाई प्राप्त कर लेते है। किशोरावस्था मे बालको की लम्बाई बालिकाओ से अधिक रहती है। अट्ठारह वर्ष की आयु का बालक इसी आयु की बालिका से लगभग 10 सें०मी० अधिक लम्बा होता है। किशोरावस्था मे बालक-बालिकाओ की औसत लम्बाई निम्नाकित तालिका में दर्शायी गयी है—

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (सें०मी० में)

आयु	12 वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	138.3	144.6	150.1	155.5	159.5	161.4	161.8
बालिका	139.2	143.9	147.5	149.6	151.0	151.5	151.6

2. भार
(Weight)

किशोरावस्था मे भार मे काफी वृद्धि होती है। बालकों का भार बालिकाओ के भार से अधिक बढता है। इस अवस्था के अत मे बालकों का भार बालिकाओ के भार की तुलना मे लगभग 10-11 किग्रा० अधिक होता है। किशोरावस्था के विभिन्न वर्षों मे बालक तथा बालिकाओं का औसत भार निम्नाकित तालिका मे दर्शाया गया है—

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा० में)

आयु	12 वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	28.5	32.1	35 7	39.6	43.2	45.7	47.3
बालिका	29.8	33.3	36.8	39.8	41.1	42.2	43.1

3. सिर तथा मस्तिष्क
(Head and Brain)

किशोरावस्था मे सिर तथा मस्तिष्क का विकास जारी रहता है, परतु इसकी गति काफी मद हो जाती है। लगभग 16 वर्ष की आयु तक सिर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है। मस्तिष्क का भार प्राय 1200 ग्रा० से लेकर 1400 ग्रा० के बीच होता है।

4. हड्डियाँ
(Bones)

किशोरावस्था मे हड्डियों के दृढ़ीकरण अर्थात् अस्थिकरण (Ossification) की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। जिसके परिणाम-स्वरुप अस्थियो का लचीलापन समाप्त हो जाता है तथा वे दृढ़ हो जाती है। किशोरावस्था मे हड्डियो की सख्या कम होने लगी

है। अस्थिपजर की कुछ हड्डियाँ आपस मे मिलकर एक हो जाती है। प्रौढ़ व्यक्ति मे केवल 206 हड्डियाँ होती हैं।

5. दांत

(Teeth)

किशोरावस्था मे प्रवेश करने से पूर्व बालक तथा बालिकाओ के लगभग 27-28 स्थायी दाँत निकल जाते है। प्रज्ञा दन्त सबसे अन्त मे निकलतें हैं। प्रज्ञादन्त (Wisdom Teeth) प्राय किशोरावस्था के अन्तिम वर्षों मे अथवा प्रौढावस्था के प्रारम्भिक वर्षों मे निकलते है। कुछ व्यक्तियो मे प्रज्ञादत नही निकलते हैं।

6. माँस पेशियाँ

(Muscles)

किशोरावस्था मे माँसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। किशोरावस्था की समाप्ति पर माँसपेशियो का भार शरीर के कुल भार का लगभग 45% हो जाता है। माँसपेशियो के गठन मे भी दृढता आ जाती है।

7. अन्य अंग

(Other Organs)

किशोरावस्था के अन्त तक बालक तथा बालिकाओ की सभी ज्ञानेन्द्रियो (आँख, कान, नाक, त्वचा तथा जिह्वा) तथा कमेन्द्रियो (हाथ, पैर, मुख) का पूर्ण विकास हो जाता है। वे शारीरिक दृष्टि से परिपक्व हो जाते है। शरीर के सभी अग पुष्ट तथा सुडौल दिखाई देते है। किशोरो के कन्धे चौडे हो जाते है एव मुख पर दाढी तथा मूँछ आने लगती है। किशोरियों के वक्षस्थल तथा कूल्हो मे परिवर्तन आने लगता है। किशोर तथा किशोरियों के प्रजनन अगो का पूर्ण विकास हो जाता है। लगभग 14-15 वर्ष की आयु में किशोरियों मे मासिक धर्म (Mensus) प्रारम्भ हो जाता है। थॉयरायड ग्रथि के सक्रिय हो जाने के कारण किशोरो की आवाज मे भारीपन आ जाता है, जबकि किशोरियो की आवाज मे कोमलता तथा मृदुलता आ जाती है। हृदय की धडकन की गति मे निरन्तर कमी आती जाती है। प्रौढावस्था मे प्रवेश करते समय व्यक्ति का हृदय एक मिनट मे लगभग 72 बार धडकता है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing Physical Development)

विभिन्न अवस्थाओ मे होने वाले शारीरिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नवत् है।

1. वंशानुक्रम

(Heredity)

बालक के शारीरिक विकास पर उसके माता-पिता के स्वास्थ्य, शारीरिक सरचना

या पूर्वजो के शारीरिक दोषो व रोगो का प्रभाव पडता है । स्वस्थ माता-पिता की सतान प्राय. शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होती है । रोगी तथा निर्बल माता-पिता के बच्चे प्राय उन्ही के जैसे रोगी तथा निर्बल होते है ।

2. वातावरण

(Environment)

बालक के शारीरिक विकास मे उसको मिलने वाले वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । वायु, धूप तथा स्वच्छता वातावरण के तीन मुख्य तत्व है । शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप तथा स्वच्छ वातावरण मिलने से बालक का शारीरिक विकास उचित ढग से होता है, जबकि शुद्ध वायु, पर्याप्त प्रकाश तथा स्वच्छ वातावरण से वचित तग गलियों व बद मकानो मे गदगी पूर्ण वातावरण मे रहने वाले बालक प्राय: विभिन्न रोगो का शिकार होकर अपना स्वास्थ्य खो देते है ।

3. भोजन

(Diet)

पौष्टिक तथा सतुलित भोजन बालक के शारीरिक विकास को स्वाभाविक ढंग से होने मे विशेष रुप से सहायता प्रदान करता है । पौष्टिक तथा संतुलित भोजन मिलने पर बालक का शारिरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है, जबकि पौष्टिक भोजन के अभाव मे बालक उचित शारीरिक विकास से वचित रह जाता है ।

4. परिवार की स्थिति

(Family Status)

परिवार की सामाजिक, आर्थिक, तथा सास्कृतिक परिस्थिति का भी बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पडता है । परिवार के रहन-सहन, सामाजिक परम्पराओ तथा खान-पान के अनुरुप ही बालक का विकास होता है ।

5. दिनचर्या

(Routine)

बालक की दिनचर्या का उसके शारीरिक विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है । नियमित दिनचर्या अच्छे स्वास्थ्य की आधारशिला होती है । खाने, नहाने, पढ़ने, खेलने सोने आदि दैनिक कार्यों को नियमित समय पर करने से बालक का स्वस्थ विकास होता है । बालको को प्रारम्भ से ही नियमित जीवन व्यतीत करने की आदत डालनी चाहिए ।

6. विश्राम तथा निद्रा

(Rest and Sleep)

शरीर के स्वस्थ विकास के लिए विश्राम तथा निद्रा आवश्यक है । थकान शारीरिक विकास मे बाधा उत्पन्न करती है । विश्राम तथा निद्रा थकान को दूर करके बालक के शरीर को विकसित होने के अनुकूल अवसर प्रदान करती है । शैशवावस्था में बालक को निद्रा की अधिक आवश्यकता होती है ! नवजात शिशु अधिकाश समय सोता रहता है, जबकि 3-4 वर्ष का शिशु लगभग 12 घटे सोता है । बाल्यावस्था में

लगभग दस घटे व किशोरावस्था मे लगभग आठ घटे की निद्रा पर्याप्त होती है।

7. खेल तथा व्यायाम

(Play and Exercise)

शारीरिक विकास पर खेल तथा व्यायाम का बहुत प्रभाव पडता है इसलिए बालको के खेल तथा व्यायाम पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। छोटा शिशु अपने हाथ व पैरो को चला कर व्यायाम कर लेता है। परतु बालको तथा किशोरो के लिए खुली हवा मे खेलने तथा व्यायाम करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. प्रेम तथा सहानुभूति

(Love and Affection)

माता-पिता, परिवारजनो, अध्यापको तथा अन्य व्यक्तियो से मिलने वाला प्रेम, स्नेह तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार बालक के शारीरिक विकास को द्विगुणित कर सकता है। माता-पिता के स्नेह से वचित बालक दुखी रहने लगता है जिसके परिणामस्वरूप उसका सतुलित शारीरिक विकास नही हो पाता है। असुरक्षा की भावना से ग्रसित बालक अपना आत्मविश्वास खो बैठता है जो उसके विकास को अवरूद्ध कर देता है। अत. बालक के शारीरिक विकास के लिए स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा सुरक्षा की भावना का होना आवश्यक है।

9. अन्य कारक

(Other Factors)

उपरोक्त वर्णित कारको के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी व्यक्ति के शारीरिक विकास को प्रभावित कर सकते है, ये है—(i) रोगो के कारण शरीर मे उत्पन्न विकृतियॉ, (ii) दुर्घटना के कारण शारीरिक अगो की हानि अथवा कार्यक्षमता मे कमी, (iii) भौगोलिक परिस्थितियॉ, तथा (iv) गर्भावस्था मे माता के द्वारा की गई असावधानियॉ।

उपसंहार

गर्भावस्था , शैशवावस्था, तथा किशोरावस्था मे होने वाले शारीरिक विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारको के विवेचन से स्पष्ट है कि शारीरिक विकास मानव विकास का एक अत्यत महत्वपूर्ण पक्ष है तथा उचित परिस्थितियो मे ही शारीरिक रूप से स्वस्थ शिशुओ, बालको तथा किशोरो का निर्माण किया जा सकता है। माता-पिता तथा अध्यापक दोनो ही के लिए विभिन्न आयु मे होने वाले शारीरिक विकास के स्वरूप तथा उसको प्रभावित करने वाले कारको का ज्ञान आवश्यक है। व्यक्ति की शारीरिक रचना उसके सम्पूर्ण व्यवहार का आधार है। इसलिए व्यवहार के परिशोधन अर्थात् बालक को शिक्षित करने का कार्य उसके शारीरिक विकास को उचित मार्ग पर तीव्र गति से आगे बढाने से ही प्रारम्भ होना चाहिए। स्पष्ट है कि बालक के शारीरिक विकास का शिक्षा प्रक्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बालक के स्वस्थ तथा स्वाभाविक शारीरिक विकास के लिए शिक्षक तथा अभिभावक दोनो को ही उसकी शारीरिक सरचना, स्वरुप तथा प्रभावित करने वाले कारको का ज्ञान आवश्यक है।

9 मानसिक विकास
(Mental Development)

मानसिक विकास से तात्पर्य मानसिक शक्तियो मे वृद्धि से है। इसके अतर्गत संवेदनशीलता, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, अवलोकन, ध्यान, स्मृति, कल्पना, चिन्तन तर्क, निर्णय, बुद्धि, भाषा, अधिगम आदि शक्तियाँ आती है। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। जैसे-जैसे उसकी आयु मे वृद्धि होती है वैसे-वैसे उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है। परिपक्वता तथा अधिगम के फलस्वरूप बालक का मानसिक विकास होता है। मानसिक विकास अर्थात् समझने की शक्ति, स्मरण शक्ति, कल्पना करने की शक्ति, तर्क करने की शक्ति तथा बुद्धि आदि के विकास को शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। यद्यपि विकास की प्रक्रिया गर्भाधान के क्षण से प्रारम्भ हो जाती है तथा मृत्युपर्यन्त चलती है परतु शिक्षाशास्त्रियो की रूचि शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे होने वाले विकास मे अधिक होती है। प्रस्तुत अध्याय मे विकास की इन तीनो अवस्थाओ मे होने वाले मानसिक विकास का वर्णन किया गया है।

शैशवावस्था में मानसिक विकास
(Mental Development in Infancy)

शैशवावस्था मे होने वाले मानसिक विकास का शिशुओ के शारीरिक विकास से घनिष्ठ सम्बध होता है। मानसिक विकास से तात्पर्य शिशुओ की उस योग्यता के विकसित होने से है, जिसके द्वारा वह अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उसके अनुकूल समायोजन करने मे समर्थ होता है। शैशवावस्था मे शिशुओ की मानसिक योग्यताओ का विकास अत्यत तीव्र गति से होता है। तीन वर्ष की आयु तक लगभग 50% मानसिक विकास हो जाता है। शैशवावस्था मे होने वाले मानसिक विकास की मुख्य विशेषताये निम्नवत् है—

1. प्रथम माह में मानसिक विकास
(Mental Development in the First Month)

जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है। शिशु अपनी भूख, नीद तथा अन्य शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए रोने, हाथ-पैर फेंकने, जोर की आवाज करके चौकाने जैसे कार्य करता है।

2. दूसरे माह में मानसिक विकास
(Mental Development in the Second Month)

शिशु दूसरे माह मे ध्वनि के प्रति आकर्षित होने लगता है। वस्तुओ को ध्यान से देखता है तथा वातावरण मे होने वाले परिवर्तनो के प्रति सजग रहता है।

3. चौथे माह में मानसिक विकास
(Mental Devlopment in the Fourth Month)

चौथे मास के दौरान शिशु दी जाने वाली वस्तुओ को पकडने का प्रयास करता है। तरह-तरह की आवाजे करता है। माँ तथा अन्य प्रियजनो को देखकर मुस्कराता है।

4. छठे माह में मानसिक विकास
(Mentel Development in the Sixth Month)

छठे मास मे शिशु सुनी गई आवाज का अनुसरण करने लगता है। अपना नाम समझने लगता है। वस्तुओ को पकडकर मुँह मे रखता है।

5. आठवें माह में मानसिक विकास
(Mental Development in the Eighth Month)

आठवे मास मे शिशु अपनी रूचि की वस्तु अथवा खिलौना लेना चाहता है। वह खिलौने या वस्तु को छीन लेने पर रोने लगता है।

6. दसवें माह में मानसिक विकास
(Mental Development in the Tenth Month)

दसवे माह मे शिशु घुटनों के बल चलना सीख जाता है। अपने वातावरण को पहचानता है। वस्तुओ को छूना, इधर-उधर करना तथा तोडना-फोडना चाहता है।

7. प्रथम वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the First Year)

एक वर्ष की आयु मे शिशु छोटे-छोटे शब्दों को बोलता है, धीरे-धीरे चलने का प्रयास करता है तथा अन्य व्यक्तियों के कार्यो का अनुसरण करता है।

8. द्वितीय वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Second Year)

इस आयु मे शिशु दो-तीन शब्दो के सरल वाक्य बना लेता है। नाम लेने पर वस्तुओ को बताता है। पूछने पर अपनी नाक, आँख, कान आदि की ओर सकेत करता है, अपना नाम बताता है, तथा गुटको को एक के ऊपर एक रख लेता है।

9. तृतीय वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Third Year)

तृतीय वर्ष मे शिशु सख्याओ को दोहराता है, वस्तुओ को यथास्थान रखना है तथा रेखा खीचने का प्रयास करता है।

10. चतुर्थ वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Fourth Year)

चतुर्थ वर्ष मे शिशु छोटे-बडे को समझने लगता है, चित्र के बारे मे प्रश्न पूछता है, दस तक की गिनती याद कर लेता है, अक्षर लिखने लगता है तथा वस्तुओ को क्रम से रखता है ।

11. पंचम वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Fifth Year)

पाँचवे वर्ष के दौरान शिशु बडे वाक्यो को बोलने लगता है, मुख्य रंगो को पहचानता है तथा हल्के-भारी का ज्ञान रखता है ।

12. षष्ठम् वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Sixth Year)

छठे वर्ष में शिशु 15-20 तक गिनती याद कर लेता है, सरल प्रश्नों के उत्तर देता है तथा चित्र के लुप्त भागो को बताता है ।

शैशवावस्था मे विकसित होने वाली उपरोक्त वर्णित मानसिक कार्यक्षमताओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि जन्म के उपरान्त के प्रथम छ वर्षों मे शिशु मुख्यत. मूल प्रवृत्यात्मक मानसिक व्यवहार ही करता है । वह ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा आस पास की वस्तुओ को पहचान कर वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है । शिशु की ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् देखने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने तथा स्पर्श करके महसूस करने की क्षमता धीरे-धीरे विकसित होती जाती है ।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास
(Mental Development in Childhood)

बाल्यावस्था मे मानसिक विकास की गति शैशवावस्था की तुलना मे कम होती है । फिर भी, बालको के समझने, स्मरण करने, विचार करने, समस्या का समाधान करने, प्रत्यक्ष ज्ञान करने, चिन्तन करने, निर्णय लेने जैसी शक्तियो का विकास होता है । बाल्यावस्था के दौरान बालकों के मानसिक की मुख्य विशेषतायें अग्रांकित होती है—

1. सप्तम् वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Seventh Year)

सातवें वर्ष के दौरान बालक छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन कर लेता है । वस्तुओ मे समानताये तथा अतर बताता है । सयुक्त तथा जटिल वाक्यों का समाधान खोजने का प्रयास करता है ।

2. अष्टम् वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Eighth Year)

आठवे वर्ष मे बालक छोटी-छोटी कविताये तथा कहानियाँ याद कर लेते है । उनमे कहानी से सम्बधित प्रश्नो का उत्तर देने की योग्यता विकसित हो जाती है । वे प्रतिदिन की साधारण समस्याओ का समाधान खोज लेते है ।
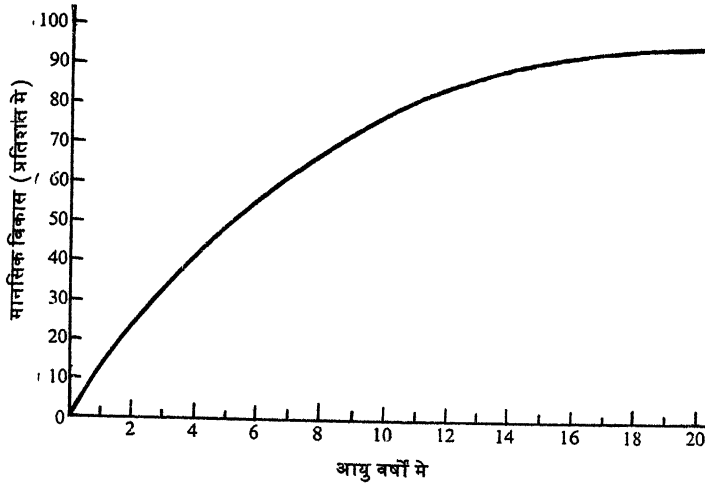
चित्र 14 मानसिक विकास

3. नवम् वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Ninth Year)

नौ वर्ष की अवस्था मे बालक समय, दिन, दिनाँक, वर्ष आदि समझने लगता है । वह रुपये-पैसे गिन लेता है । वह सुनी हुई बातो को सुना देता है । जोड, घटा, गुणा, भाग से सबधित सरल समस्याओं को हल कर लेता है ।

4. दशम् वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Tenth Year)

दस वर्ष को अवस्था मे बालक द्रुत गति से बोलने लगता है । वह अपने दैनिक कार्य स्वय करने लगता है । वह तार्किक चिन्तन करने लगता है ।

5. एकादश वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Eleventh Year)

इस आयु में बालक कठिन शब्दो की व्याख्या करने लगता है, विभिन्न वस्तुओ की तुलना करने लगता है । वह प्रत्यक्ष अवलोकन करके पशु-पक्षियो, कीडे-मकोडे, कल पुर्जो आदि वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त करता है । उसकी तर्क, जिज्ञासा तथा निरीक्षण शक्तियों का पर्याप्त विकास हो जाता है ।

6. द्वादश वर्ष में मानसिक विकास
(Mental Development in the Twelveth Year)

बारहवे वर्ष के दौरान-बालिकाओ मे तर्क करने तथा समस्या समाधान की योग्यता का काफी अधिक विकास हो जाता है। वह हर बात के पीछे कारण खोजने लगता है।

बाल्यावस्था मे होने वाले उपरोक्त वर्णित मानसिक धर्म क्षमताओ के विकास के अवलोकन से स्पष्ट है कि इस अवस्था के दौरान बालक-बालिकाओ की ज्ञानेन्द्रियाँ परिपक्व होने लगती है, उनका चिन्तन तथा तर्क बाह्य केन्द्रित होने लगता है, उनकी निर्णय शक्ति विकसित हो जाती है, वे पढने-लिखने तथा अन्य क्रियाओ मे रुचि लेते है, पहेली बूझने, समस्यात्मक खेलो तथा क्रियाओ को करने मे उनकी रुचि बढ जाती है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास
(Mental Development in Adolescence)

किशोरावस्था मे मानसिक विकास अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँचने लगता है। इस अवस्था मे मानसिक विकास से सबधित प्रमुख विशेषताये निम्नाकित ढग से लिखी जा सकती है—

1. मानसिकत योग्यताये
(Mental Capacities)

किशोरावस्था मे मानसिक योग्यताओ का स्वरुप लगभग निश्चित हो जाता है। किशोरो मे सोचने-समझने, विचार करने तथा समस्याओ का समाधान करने की उच्च स्तरीय मानसिक योग्यताये विकसित हो जाती है, परतु वे प्रौढो के समान उनका प्रभावशाली ढग से उपयोग नही कर पाते है। ध्यान, चिन्तन, तर्क, स्मरण आदि की योग्यताये अपनी अधिकतम सीमा को छूने लगती है। यह माना जाता है कि 16 वर्ष की आयु तक किशोर किशोरियो का लगभग पूर्ण मानसिक विकास हो जाता है।

2. कल्पना शक्ति
(Imagination)

किशोरावस्था मे किशोर वास्तविक जगत मे रहते हुए भी कल्पना लोक मे विचरण करते है। कल्पना की अधिकता के कारण उनमे दिवास्वप्न देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। बालको की अपेक्षा बालिकाओ मे कल्पना शक्ति अधिक होती है। सगीत, कला, साहित्य तथा अन्य रचनात्मक कार्यो के द्वारा किशोर-किशोरियाँ अपनी कल्पना शक्ति को अभिव्यक्त करते है।

3. भाषा
(Language)

किशोरावस्था मे शब्द भडार बहुत बढ जाता है। चिन्तन्, तर्क तथा कल्पना शक्ति के विकास का प्रभाव बालको के भाषा विकास पर भी पडता है। सामाजिक सम्पर्क तथा विद्यालय के प्रभाव के फलस्वरुप उनका भाषा ज्ञान तीव्र गति से बढता है।

4. रुचियों का विकास

(Development of Interests)

किशोरावस्था मे रुचियो का विकास तीव्र गति से होता है। शारीरिक स्वास्थ्य तथा आकर्षण, पौष्टिक भोजन, वेशभूषा, पढाई-लिखाई, आदर्श, भावी रोजगार, चलचित्र, दूरदर्शन, साहित्य पढने आदि मे किशोर-किशोरियो की विशेष रुचि होती है।

किशोरावस्था मे होने वाले मानसिक विकास से स्पष्ट है कि इस काल मे मानसिक योग्यताये अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है।

प्याजे के अनुसार ज्ञानात्मक विकास

(Cognitive Development According to Piaget)

जीन प्याजे (Jean Piaget) को ज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र मे कार्य करने वाले तत्कालीन मनोवैज्ञानिको मे सर्वाधिक प्रभावशाली स्वीकार किया जाता है। प्याजे का जन्म 9 अगस्त सन् 1896 को स्विट्जरलैड मे हुआ था। बाईस वर्ष की आयु में उन्होने जन्तु विज्ञान (Zoology) मे पी-एच० डी० की उपाधि अर्जित की। उन्होने जन्तुविज्ञान के क्षेत्र मे अनेक लेख भी प्रकाशित किए। तत्पश्चात् उन्होने जीवविज्ञान तथा ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया के बीच सम्बन्ध खोजने का प्रयास प्रारम्भ किया। मनोविज्ञान के प्रशिक्षण के दौरान उन्होंने अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) के निर्देशन मे फ्रेंच स्कूल के बच्चों के बुद्धि परीक्षण का कार्य भी किया। वे बच्चो के द्वारा बौद्धिक प्रश्नो पर दिए जाने वाले गलत उत्तरों से अत्यधिक विचलित हुए तथा उन्होने विभिन्न आयु के बच्चो के द्वारा अपने चारो ओर के बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होने अपने तीनो बच्चो के मानसिक विकास से सबधित क्षण-प्रतिक्षण का विस्तृत लेखा-जोखा तैयार किया तथा इस लेखे- जोखे के आधार पर उन्होंने विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अनेक पुस्तको तथा लेखो (400 से अधिक) को प्रकाशित किया। ज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र मे अपना महत्वपूर्ण योगदान छोडते हुए जीन प्याजे 16 सितम्बर सन् 1980 को परलोकवासी हो गये।

प्याजे के अनुसार ज्ञानात्मक कार्यविधि (Cognitive Functioning) की मुख्य विशेषतायें—**संगठन** (Organization) तथा **अनुकूलन** (Adaptation) है। सगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओ (Perceptual and Congnitive Informations) को सार्थक पैटर्न (Patterns), जिन्हे बौद्धिक सरचनाये (Cognitive Structures) कहते है, मे व्यवस्थित करने से है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वय की बौद्धिक सरचनाओं का निर्माण करता है जो वातावरण के साथ समायोजन करने मे उसके ज्ञान तथा कार्यो को सगठित करती है। व्यक्ति मिलने वाली नवीन सूचनाओं को इन बौद्धिक सरचनाओ मे सगठित करने का प्रयास करता है। परतु कभी-कभी वह इस कार्य मे सफल नही हो पाता है, तब वह अनुकूलन करता है। प्याजे प्रथम मनोवैज्ञानिक था जिसने व्यक्ति को जन्म से क्रियाशील तथा सूचना प्रोसेसिंग प्राणी (Active and Information Processing Being) स्वीकार किया। उसके अनुसार व्यक्ति एकत्रित बौद्धिक सूचनाओ का वर्गीकरण करता रहता है, जिससे वह

अपने बाह्य जगत की परिस्थितियो के अनुरुप सहज व स्वाभाविक ढग से उचित व्यवहार कर सके। अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने पूर्व ज्ञान तथा नवीन अनुभवो के मध्य सतुलन (Equilibrium or Balance) स्थापित करता है। अनुकूलन मे दो प्रक्रियाये हो सकती है— (1) आत्मसातकरण (Assimilation) तथा समायोजन(Accomodation)। आत्मसातकरण से तात्पर्य नवीन अनुभवो को पूर्ववर्ती विद्यमान बौद्धिक सरचनाओ मे व्यवस्थित करने से है जबकि समायोजन से तात्पर्य नवीन अनुभवो की दृष्टि से पूर्ववर्ती बौद्धिक सरचनाओ मे सुधार करने, विस्तार करने या परिवर्तन करने से है। यह विद्यमान बौद्धिक सरचनाओ को परिवर्तित करने की प्रक्रिया है जिससे नवीन अनुभव अथवा ज्ञान को उचित ढग से व्यवस्थित किया जा सके।

जीवन के नये अनुभवो का अनुकूलन करते समय व्यक्ति पहले अपने सभी अनुभवो तथा सूचनाओ को पहले से विद्यमान बौद्धिक सरचनाओ मे आत्मसात करने का प्रयास करता है। यदि उसे लगता है कि ऐसा करना सभव नही है तब वह अपनी बौद्धिक सरचनाओ मे परिवर्तन लाकर समायोजित करता है। स्पष्ट है कि अनुकूलन मे व्यक्ति या तो नवीन सूचनाओ को पुरानी बौद्धिक सरचनाओ मे आत्मसात करता है अथवा पुरानी बौद्धिक सरचनाओ को नवीन बौद्धिक सरचनाओ मे समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। प्याजे के अनुसार बौद्धिक विकास व्यक्ति तथा वातावरण की परस्पर सतत् अन्तक्रिया पर निर्भर करता है। अनुकूलन के द्वारा नवीन ज्ञान को आत्मसात करने अथवा समायोजित करने की प्रक्रिया एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी।उदाहरणार्थ माना कि दो वर्ष का कोई बालक प्रथम बार किसी सफेद कुत्ते को देखता है तथा प्रश्न करता है कि यह क्या है? माता-पिता उसे बताते है कि यह कुत्ता है। बालक कुत्ते को ध्यान से देखता है तथा जान जाता है कि कुत्ते के दो आँखे, दो कान, एक मुँह, एक पूँछ, चार पैर होते है तथा सफेद रग होता है। कुछ दिन बाद वह बालक सफेद रग की एक बकरी के बच्चे को अपने सम्मुख देखता है तो वह देखता है कि यह सफेद रंग की है, इसके भी दो आँखे, दो कान, एक मुँह व चार पैर है। वह सोचता है कि यह कुत्ता है। यह बालक की आत्मसात की प्रक्रिया है। बालक बकरी मे कुत्ते जैस गुण इसलिए देख रहा है क्योंकि उसे बकरी कुत्ते के समान प्रतीत हो रही है। वह कुत्ते के प्रत्यय को बकरी से मिलान कर रहा है तथा बकरी के कुत्ते से भिन्न गुणो पर ध्यान नही दे रहा है।

जब बालक पहले से ज्ञात बातों मे कोई नवीन बात जोडता है तो उसे समायोजन की प्रक्रिया कहेगे। जैसे यदि कोई बालक जानता है कि कुत्ते के दो आँखे, दो कान, एक सिर, एक मुँह, चार पैर व एक पूँछ होती है तथा यदि अब वह सीखता है कि कुत्ता भौकता है तो इससे उसके पूर्ववर्ती ज्ञान मे एक नवीन बात जुड जायेगी। जैसे-जैसे पुरानी बातों मे नई बातो मे नई बाते जुडती जाये, वैसे-वैसे कुत्ते से सम्बोधित उसका प्रत्यय परिपक्व होता जायेगा। इसी प्रकार जब बालक कुत्ते तथा बकरी मे अंतर सीख जायेगा तो वह समायोजन होगा। आत्मसात तथा समायोजन की प्रक्रिया तभी घटित होती है जब वातावरणीय उद्दीपन बालक के द्वारा अर्जित बौद्धिक विकास स्तर के अनुरुप होते है। यदि बालक के अनुभव उसके बौद्धिक स्तर के अनुरुप नही होते है तब अनुकूलन

आत्मसात अथवा समायोजन सम्भव नही होता है। जैसे कक्षा दो के किसी बालक के समक्ष उच्च स्तरीय गणित के किसी प्रश्न को प्रस्तुत करना बौद्धिक विकास की दृष्टि से व्यर्थ ही होगा।

ज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे बालक बौद्धिक कार्यो को करने के लिए भिन्न-भिन्न तरीके अपनाते है। लगभग 18 वर्ष की आयु मे बालक प्रौढो के समान बौद्धिक कार्य करना प्रारम्भ कर देते है। बौद्धिक विकास एक स्वसचालित प्रक्रिया है जिसमे बालक अपनी बौद्धिक सरचनाओ तथा नवीन अनुभवो मे तालमेल बैठाना सीखता है। विभिन्न आयु स्तरो पर यह तालमेल भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। अपने अवलोकनो के आधार पर प्याजे ने बौद्धिक विकास को चार मुख्य अवस्थाओ मे विभक्त किया है। प्रत्येक अवस्था बौद्धिक सरचनाओ मे तालमेल बैठाने के बालक के प्रयासो के एक भिन्न रुप को अभिव्यक्त करती है। प्रत्येक अवस्था एक समय अवधि मे उपयुक्त होती है तथा प्रत्येक अवस्था अपनी पूर्व अवस्थाओ से अधिक उपयुक्त होती है। प्याजे के द्वारा बताई गई बौद्धिक विकास की चार अवस्थाये निम्नवत् है—

1 सवेदनात्मक गामक अवस्था (Sensori-motor Stage)
2. पूर्व सक्रियात्मक अवस्था (Pre-Operational Stage)
3 मूर्त सक्रिया अवस्था (Concrete Operations Stage)
4. औपचारिक सक्रिया अवस्था (Formal Operations Stage)

प्याजे के द्वारा बताई गई ज्ञानात्मक विकास की इन चारो अवस्थाओ का विस्तृत वर्णन अग्रांकित किया गया है।

1. संवेदनात्मक गामक अवस्था
(Sensori-Motor Stage)

ज्ञानात्मक विकास की प्रथम अवस्था को प्याजे ने सवेदनात्मक गामक अवस्था के नाम से सम्बोधित किया है। यह अवस्था जन्म के उपरान्त प्रथम दो वर्षो तक चलती है। इस अवस्था मे बालक देखने, पहुँचने, पकडने, चूसने आदि की स्वत सहज क्रियाओ से व्यवस्थित प्रयासरत क्रियाओं की ओर अग्रसित होता है। जन्म के समय बालक मे देखने, छूने, पकडने तथा चूसने की क्षमताये होती है परतु धीरे-धीरे इन क्षमताओ पर आधारित उसकी स्वत सहज क्रियाये (Reflexive-Actions) अधिक प्रभावशाली व सगठित होती जाती है। वह अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए इनका प्रयोग करना सीख जाता है सवेदनात्मक गामक अवस्था के दौरान शिशु असहाय जीवधारी से गतिशील (Mobile), अर्द्धभाषी(Semi-Verbal) तथा सामाजिक दृष्टि से चतुर (Socially Adept) व्यक्ति बन जाते है। वे आवाज तथा प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं, रुचिकर कार्यो को करते रहने की कोशिश करते है तथा वस्तुओ को स्थिर मानते है। बालक प्रयास एव त्रुटि के आधार पर अपनी परिस्थितियो को समझने का प्रयास करते है। लगभग डेढ वर्ष की आयु मे बालक कुछ करने से पहले सोचना प्रारम्भ कर देते हैं। पहले वे अनुकरण करने के लिए भाषा का प्रयोग करते है परतु बाद मे वे अपनी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का प्रयोग करते हैं। इस अवस्था की बौद्धिक सरचनाओ के पूर्ण विकास के उपरान्त बालक आगामी अवस्था मे जाने के लिए तैयार हो जाता है।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था
(Pre-Operational Stage)

ज्ञानात्मक विकास की पूर्व-सक्रियात्मक अवस्था लगभग दो वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होकर सात वर्ष की अवस्था तक चलती है। इस अवस्था मे सकेतात्मक कार्यो का प्रादुर्भाव (Emergence of Symbolic Functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of Language) होता है। इस अवस्था को दो भागो मे बॉटा जा सकता है। (i) पूर्व-प्रत्ययात्मक काल (Pre-cenceptual Stage) जो दो से चार वर्ष तक होता है तथा (ii) आत-प्रज्ञ काल (Intuitive Stage), जो दो चार वर्ष से सात वर्ष तक होता है। पूर्व प्रत्ययात्मक अवस्था एक परिवर्तन की अवस्था है जो खोज (Exploration) की अवस्था भी कही जा सकती है। बालक विभिन्न घटनाओ या कार्यो के सबध मे क्यो तथा कैसे (Why and How) जानने मे रुचि रखते है। वे जिस भी कार्य को अन्यो के द्वारा करते या होते देखते है उसी कार्य को करने लगते है। उनमे बडो का अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है। बच्चे अपने बडे भाई या पिता की तरह किताब या समाचार पत्र को पढने तथा माँ की तरह खाना पकाने या सफाई करने जैसे कार्य करते रहते है। अनुकरण करने के खेलो के द्वारा बालक तरह-तरह के प्रश्नो तथा सूचनाओ की आवश्यकताओ के प्रति जागरुक होते है। पूर्व-प्रत्ययात्मक अवस्था मे भाषा विकास का विशेष महत्व है। दो वर्ष का बालक लगभग 200 शब्दो को समझ लेता है, जबकि छ वर्ष का बालक लगभग 16000 शब्दो को समझ लेता है। दो वर्ष का बालक एक या दो शब्दो के वाक्य-बोलता है जो व्याकरण की दृष्टि से प्राय अशुद्ध व अपूर्ण होते है। तीन वर्ष का बालक लगभग आठ-दस शब्दो के वाक्य बोलने लगता है जो व्याकरण की दृष्टि से लगभग शुद्ध होते है। पूर्वसक्रियात्मक अवस्था मे भाषा का अधिकतम विकास होता है। अच्छे तथा समृद्ध भाषायी वातावरण मे (Rich Verbal Enviornment) मे बालक को भाषा विकास करने के अधिक अवसर मिलते है। लगभग चार वर्ष से लेकर सात वर्ष तक की आयु मे वालक आत-प्रज्ञ चिन्तन की अवस्था मे होता है। आत-प्रज्ञ से प्याजे का तात्पर्य बिना किसी तार्किक विचार प्रक्रिया के किसी वस्तु या बात को मस्तिष्क के द्वारा तुरत स्वीकार कर लेने से है। उदाहरण के लिए यदि समान लम्बाई की दो छडो को एक-दूसरे के समान्तर रख कर बालक से पूछा जाता है कि कौन सी छड़ी अधिक लम्बी है तो बालक का उत्तर होगा कि दोनों छडी बराबर लम्बाई की है। अब यदि बालक के देखते हुए ही उनमे से एक छडी को कुछ खिसका दिया जाय तथा उससे पुन. वही प्रश्न किया जाये तो वालक उनमे से एक छडी को दूसरे से अधिक लम्बी बताएगा।
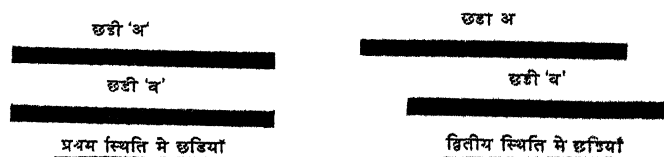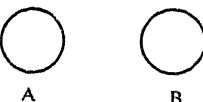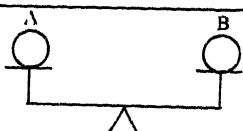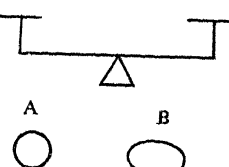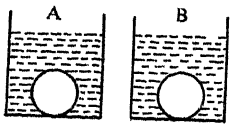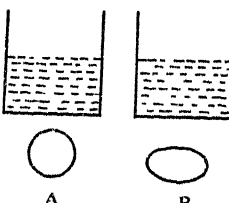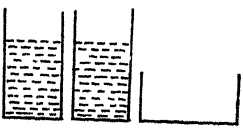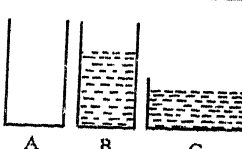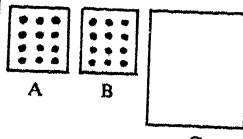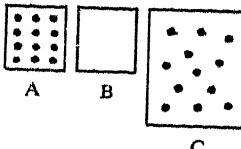
चित्र—15
आत प्रज्ञ चिन्तन

बालक के द्वारा दिए जाने वाले इस उत्तर के लिए आत-प्रज्ञ चिन्तन की तीन विशेषताए उत्तरदायी होती है । **प्रथम**—इस अवस्था के बालको मे विभिन्न प्रत्ययो की समझ मुख्यत इस बात पर निर्भर करती है कि वे क्या देख रहे है अर्थात् उनके द्वारा देखी गई परिस्थिति की सतही बनावट अथवा प्रबल विशेषताये क्या है । उपरोक्त उदाहरण मे बालक केवल परिलक्षित स्थिति (Apperance) से मूर्ख बन कर एक छडी को दूसरी से बडी बता देता है । **द्वितीय**—किसी परिस्थिति, घटना या वस्तु का बोध उसके सर्वाधिक प्रबल तथा स्पष्ट रुप से दिखाई देने वाले पक्ष पर आधारित होता है । बालको के लिए विभिन्न पक्षो के मध्य सबध या तालमेल को बैठाना कठिन होता है । उपरोक्त उदाहरण मे बालक या तो केवल दायी ओर अथवा केवल बायी ओर की परिस्थिति पर ध्यान देकर एक छडी को दूसरी छडी से लम्बी बना देता है । **तृतीय**—इस अवस्था मे विचार प्रक्रिया अविलोम (Irreversible) होती है अर्थात् बालक मानसिक क्रम के प्रारम्भिक बिन्दु पर पुन नही लौट पाता है । उपरोक्त उदाहरण मे बालक छड़ियो की प्रथम अवस्था को मन ही मन पुन विचार मे नही ला पाता है ।

आत-प्रज्ञ चिन्तन अवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता सरक्षण सिद्धान्त (Principle of Conservation) की प्राप्ति है । सरक्षण का सिद्धान्त कहता है कि किसी वस्तु की मात्रा पर उस वस्तु के आकार मे परिवर्तन करने अथवा उस वस्तु को हिस्सो मे या टुकडो मे विभक्त कर देने का कोई प्रभाव नही होता है । प्याजे ने सहति, भार, आयतन, सख्या आदि के सरक्षण का अध्ययन किया । प्याजे के अनुसार तार्किक क्रियाओ के लिए सरक्षण का ज्ञान आवश्यक है । सरक्षण के ज्ञान के लिए विलोमता (Reversibility) तथा तार्किक गुणितता (Logical Multiplication) नामक दो पूर्व योग्यताये आवश्यक है । विलोमता (Reversibility) से अभिप्राय किसी वस्तु को मन ही मन उसके पूर्व आकार मे देखने से है । जैसे किसी बालक को गीली मिट्टी की दो एक समान गेद दी जाये, फिर उसके सम्मुख ही उनमे से एक गेद को दबाकर लम्बा कर दिया जाये, तब यदि बालक यह सोच लेता है कि लम्बी गेद को पनु गोल करने पर यह पहले जैसी हो जायेगी तो इसका अर्थ है कि बालक मे विलोमता (Reversibility) की योग्यता विकसित हो गई है । तार्किक गुणितता (Logical Multiplication) से तात्पर्य दो या दो से अधिक विमाओं या विशेषताओ पर एक साथ ध्यान देने से है । जैसे किसी चपटे बर्तन तथा पतले बर्तन मे एक समान मात्रा मे पानी डाला जाये तब यदि बालक यह समझ लेता है कि एक बर्तन में पानी की ऊँचाई अधिक है परतु दूसरे बर्तन मे पानी की परिधि अधिक है इसलिए दोनो बर्तनो मे पानी की मात्रा समान है, तो इसका अर्थ है कि वालक ने तार्किक गुणितता की योग्यता भी अर्जित कर ली है । विलोमता (Reversibility) तथा तार्किक गुणितता (Logical Multiplication) की योग्यताये बालक को सरक्षण का सिद्धान्त समझने योग्य बनाती हैं जिससे तार्किक चिन्तन की प्रभावशीलता बढती है ।

पूर्व-सक्रियात्मक अवस्था के आत-प्रज्ञ चिन्तन काल में बालक कें खेल अधिकाधिक सामाजिक होते जाते है । बालक पोस्टमैन, पुलिसमैन, अध्यापक जैसी सामाजिक भूमिकाओ का अनुकरण करते है । बालक अपने परिवार से बाहर के व्यक्तियो को महत्व देने लगते है । पूर्व-सक्रियात्मक अवस्था की बौद्धिक सरचनाओ के

	प्रथम परिस्थिति	परिवर्तित परिस्थिति	प्रश्न
सहृति का मरक्षण	A B गेद B को दवाकर चपटा कर दो	A B	गेद A तथा गेद B मे से कौन-सी गेद वडी है ?
भार का सरक्षण	A B गेद B को दवाकर चपटा कर दो	A B	गेद A तथा गेद B मे से कौन सी गेद भारी है ?
आयतन का सरक्षण	A B दोनो गेदो को पानी से वाहर निकालो तथा गेद B को दवाकर चपटा कर दो	A B	दोनो गेदो को पुन पानी मे डालने पर किस वाकर मे पानी का स्तर अधिक ऊँचा होगा ?
द्रव की मात्रा का सरक्षण	A B C वर्तन A के पानी को वर्तन C मे डाल दो	A B C	वर्तन B तथा वर्तन C मे से किस वर्तन मे अधिक पानी है ?
मख्या का सरक्षण	A B C ट्रे B की गोलियो को वडी ट्रे C मे विखेर दो ।	A B C	ट्रे A तथा ट्रे C मे से किस ट्रे मे अधिक गोलियाँ है ?

चित्र 16

सरक्षण के सिद्धान्त का विकास

पूर्ण विकसित हो जाने पर तथा बालकों के द्वारा इन सरचनाओं को अपने लिए उपयुक्त महसूस नही करने पर बालक मूर्त-सक्रिया अवस्था की ओर अग्रसित होने के लिऐ तत्पर हो जाते है।

3. मूर्त संक्रिया अवस्था
(Concrete Operations Stage)

मूर्त सक्रिया अवस्था लगभग सात से बारह वर्ष की आयु तक होती है। पूर्व सक्रियात्मक अवस्था का अतार्किक चिन्तन सक्रियात्मक विचारो का स्थान लेने लगता है। बालक छोटे-छोटे विलोमीय (Reversible) पदो की श्रंखला के द्वारा विचार करने लगता है। बालक मूर्त वस्तुओ के सबध मे अनेक तार्किक सक्रियाये करने लगता है। बाह्य सतही अतर उन्हे अब मूर्ख नही बना पाते है। अब वे माप सकते है, तौल सकते है तथा गिन सकते है। जब सूचनाये मूर्त होती है तब वे ठीक ढग से तुलना भी कर सकते हैं।

मूर्त-सक्रिया अवस्था के दौरान बालक तीन गुणात्मक योग्यताओ मे निपुणता हासिल कर लेता है। ये तीन योग्यताये है—विचारों की विलोमता (Reversibility of Thought), सरक्षण (Conservation) तथा क्रमबद्धता व पूर्ण-अश प्रत्ययो का उपयोग (Use of Serial Ordering and Part-Whole Concepts)। इस अवस्था मे विचारो की विलोमता मे बालक निपुण हो जाते है। भौतिक वस्तुओ मे सरक्षण बालको की विचार प्रक्रिया का एक अग बन जाता है। इस अवस्था मे विकसित होने वाली तीसरी महत्वपूर्ण ज्ञानात्मक क्षमता बालको के द्वारा क्रमबद्धता तथा अंश-पूर्ण प्रत्ययो का उपयोग करना है। क्रमबद्धता से तात्पर्य विभिन्न वस्तुओ को उनकी किसी विशेषता जैसे आकार, भार आदि की दृष्टि से क्रमबद्ध करने से है। यह वस्तुओं को छोटी से बडी के क्रम मे व्यवस्थित करने की योग्यता है। इसलिए पहले बालक छोटे (Lesser then) तथा बडे(Greater then) के प्रत्ययो को अर्जित करता है। इस अवस्था मे बालक एक साथ अश तथा पूर्ण दोनो के सबध मे भी विचार करना प्रारम्भ कर देता है अर्थात् बालको मे यह योग्यता विकसित हो जाती है कि वह वस्तुओ को कुछ भागो मे विभक्त कर सके तथा उन भागो से सबधित समस्याओ पर तार्किक चिन्तन कर सके।

मूर्त सक्रियावस्था में बालको मे आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति कम होने लगती है। वे अपने वाह्य जगत को अधिक महत्व देना प्रारम्भ कर देते है। जब मूर्त सक्रियाये बालको की समस्याओ का समाधान करने की दृष्टि से उपयुक्त नही रह पाती है तब बालक बौद्धिक विकास के अतिम चरण की ओर अग्रसर होने लगते है।

4. औपचारिक संक्रिया अवस्था
(Formal Operations Stage)

ज्ञानात्मक विकास की अतिम अवस्था औपचारिक सक्रिया अवस्था है, जो लगभग 11 से 15 वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवस्था के दौरान बालक अमूर्त बातो के सबध मे तार्किक चिन्तन करने की योग्यता विकसित करता है। मूर्त वस्तुओ तथा सामग्री के स्थान पर शाब्दिक तक सांकेतिक अभिव्यक्ति का प्रयोग तार्किक चिन्तन मे

किया जाता है। समस्या-समाधान व्यवहार अधिक व्यवस्थित हो जाता है। बालक निष्कर्ष निकालने लगता है, व्याख्या करने लगता है तथा परिकल्पनाये बनाने लगता है। औपचारिक सक्रियात्मक विचार बालको को वास्तविकता से बाहर जाने तथा सम्भावनाओ पर विचार करने योग्य बनाते है। बालको का कार्य त्रुटि एव प्रयास पर ही आधारित नही होता है वरन् से भविष्य के सबध मे अपने विचारो को भी प्रक्षेपित करते है तथा भावी सम्भावनाओं के सबध मे तर्क करते है।

औपचारिक सक्रिया अवस्था मे बालको का कुल बौद्धिक सगठन अधिक क्रमबद्ध हो जाता है। बालक एक साथ अधिक से अधिक तथ्यो को समझने तथा अधिकाधिक दृष्टिकोणो को अपनी विचार प्रक्रिया मे स्थान देने के योग्य हो जाते है। वे अपने बारे मे विचार करते है इसलिए स्वआलोचक बन जाते है। वे पुरानी पीढी के मूल्यो तथा व्यवहार की विश्लेषणात्मक आलोचना करना प्रारम्भ कर देते है। अपने व अन्यों के व्यवहार व कार्यो के बारे मे नैतिक निर्णय प्रस्तुत करते है।

प्याजे के द्वारा बताई गई उपरोक्त वर्णित चारो अवस्थाएँ क्रमश जटिल होती जाती है। बालको के द्वारा एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे जाने की गति उनकी शारीरिक परिपक्वता तथा वातावरणीय अनुभवो पर आधारित होती है। कुछ बालको का बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है, कुछ का औसत गति से होता है तथा कुछ का मद गति से होता है। यही कारण है कि विभिन्न अवस्थाओ की आयु सीमा तथा अवधि पूर्णरूपेण निश्चित न होकर लगभग (Approximate) होती है। कोई भी अवस्था एकदम समाप्त नही हो जाती है, बल्कि बालक शनै शनै एक अवस्था मे दूसरी अवस्था मे प्रविष्ट होता है। बालक किसी एक क्षेत्र मे पूर्व सक्रियात्मक अवस्था मे हो सकता है, जबकि किसी अन्य क्षेत्र मे मूर्त सक्रियात्मक अवस्था मे हो सकता है तथा किसी अन्य क्षेत्र मे वह औपचारिक सक्रिया अवस्था मे हो सकता है। प्याजे के द्वारा बताई गई बौद्धिक विकास की ओर उपरोक्त अवस्थाओ को शिक्षाशास्त्र मे अत्यत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

ब्रूनर के अनुसार ज्ञानात्मक विकास
(Cognitive Development According to Bruner)

जेरोम ब्रूनर (Jerome Bruner) नामक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक ने भी ज्ञानात्मक विकास के एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ब्रूनर के इस सिद्धान्त को प्याजे के द्वारा प्रतिपादित ज्ञानात्मक सिद्धान्त का प्रमुख विकल्प माना जाता है। बालकों के ज्ञानात्मक व्यवहार का विस्तृत अवलोकन करके ब्रूनर ने ज्ञानात्मक विकास की विशेषताओं को वर्गीकृत किया। उसके अनुसार ज्ञानात्मक विकास को निम्नाकित तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है।

1. क्रियात्मक अवस्था (Enactive Stage)
2. प्रतिबिम्बात्मक अवस्था (Iconic Stage)
3. सकेतात्मक अवस्था (Symbolic Stage)

ज्ञानात्मक विकास की इन तीनों अवस्थाओं का सक्षिप्त विवरण अग्रांकित प्रस्तुत किया गया है।

मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Mental Development)

विभिन्न अवस्थाओ मे होने वाले मानसिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है । परिवार, वातावरण या अन्य परिस्थितियो मे सबधित ये कारक मानसिक विकास की गति को तीव्र अथवा मद कर सकते है । मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नवत् है—

1. वंशानुक्रम
(Heredity)

मनोवैज्ञानिक अध्ययनो से सिद्ध हो गया है कि व्यक्ति को वशानुक्रम से अनेक मानसिक योग्यताये तथा गुण प्राप्त होते है जिन्हे वातावरण के द्वारा परिवर्तित नही किया जा सकता है । वास्तव मे कोई भी व्यक्ति उमसे अधिक विकास नही कर सकता है जितका उसका वशानुक्रम सम्भव बनाता है ।

2. परिवार का वातावरण
(Family Environment)

परिवार के वातावरण का बालक के मानसिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । शात तथा सुखद वातावरण मे बालक का मानसिक विकास तीव्र गति से होता है जबकि दुखद व कलहपूर्ण वातावरण मे बालक के मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है ।

3. परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति
(Socio-Economic Status of the Family)

परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भी बालक के मानसिक विकास पर प्रभाव पडता है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार के बालको को मानसिक विकास के लिए अधिक अच्छी सुविधाये, परिस्थितियाँ तथा अवसर उपलब्ध होते है जिसके कारण उनका मानसिक विकास अधिक अच्छा होता है ।

4. शारीरिक स्वास्थ्य
(Physical Health)

शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ट सबध होता है । प्राचीन काल से ही स्वीकार किया जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है । शारीरिक दृष्टि से सबल तथा स्वस्थ बालक, निर्बल व अस्वस्थ बालक की अपेक्षा अपनी मानसिक क्षमताओ को अधिक विकसित कर लेता है ।

5. माता-पिता की शिक्षा
(Education of Parents)

माता-पिता का शैक्षिक स्तर भी बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करता है । शिक्षित माता-पिता बालक के मानसिक विकास मे रुचि लेते है तथा उसे सही मार्ग

पर आगे बढने के अवसर उपलब्ध कराते है तथा प्रोत्साहित करते है, जबकि अशिक्षित माता-पिता बालको के मानसिक विकास की ओर ध्यान नही देते तथा जरा भी असफलता प्राप्त होने पर उन्हे हतोत्साहित करते है।

6. बालक की शिक्षा
(Education of the Child)

बालकों के मानसिक विकास के लिए उपयुक्त ढग से शिक्षा प्रदान करना भी आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा मानसिक गुणो तथा शक्तियो का विकास किया जाता है। अत यदि बच्चो को उचित प्रकार की शिक्षा उपलब्ध होती है तो वे अपने मानसिक गुणो तथा शक्तियो का अधिकतम विकास कर सकते है।

7. विद्यालय
(School)

बालको के मानसिक विकास मे विद्यालय की अत्यत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक अच्छा विद्यालय बालको को मानसिक विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करता है, जिससे बालको की मानसिक शक्तियो का अधिकतम विकास सम्भव हो सके। इसके विपरीत एक निष्क्रष्ट विद्यालय बालको की मानसिक शक्तियो को कुठित करके उनके विकास के अवसर समाप्त कर देता है।

8. अध्यापक
(Teachers)

बालक के मानसिक विकास पर उसके अध्यापको का भी प्रभाव पडता है। मानसिक दृष्टि से श्रेष्ठ अध्यापक बालको के प्रति स्नेह, सहानुभूति तथा सहयोग से परिपूर्ण व्यवहार करके उनके मानसिक गुणो का विकास करने का प्रयास करते है, जबकि अयोग्य अध्यापक छात्रो के साथ असहयोगात्मक व्यवहार करते है जो बालको के मानसिक विकास को अवरुद्ध कर देता है।

9. समाज
(Society)

व्यक्ति किसी न किसी समाज का सदस्य होता है तथा उसके मानसिक विकास को वह समाज काफी प्रभावित करता है। यदि समाज अपने भावी नागरिको के लिए अच्छे विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय तथा मनोरजन साधनो की व्यवस्था करता है तो बालको का मानसिक विकास स्वाभाविक ढग से निरन्तर होता रहता है। इन सुविधाओ के अभाव मे बालको के मानसिक विकास की गति तथा सीमा सकुचित हो जाती है।

उपसंहार

शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे होने वाले मानसिक विकास तथा उसे प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारको के विवेचन से स्पष्ट है कि मानसिक विकास मानव विकास का एक अत्यत महत्वपूर्ण पक्ष है तथा उचित परिस्थितियो मे ही मानसिक दृष्टि से सुयोग्य शिशुओ, बालको तथा किशोरो का निर्माण किया जा सकता है। मानसिक विकास के स्वरुप तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान मानसिक विकास को द्रुत गति प्रदान करने मे सहायक हो सकता है। छात्रो की विभिन्न मानसिक योग्यताओ का विकास करने मे शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। माता-पिता, अध्यापक वर्ग तथा समाज सभी के लिए यह आवश्यक है कि वे बालको के मानसिक विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ, साधन तथा अवसर उपलब्ध कराये।

10 सामाजिक विकास
(Social Development)

जन्म के समय शिशु मे सामाजिकता लगभग शून्य होती है। जैसे-जैसे उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास होने लगता है, वैसे-वैसे उसका समाजीकरण होने लगता है। वह अपने माता-पिता, परिवार के सदस्यो, सगी साथियों तथा अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे आता है जिसके फलस्वरुप वह सामाजिक परम्पराओ, मान्यताओं, रुढियो आदि के अनुरुप व्यवहार करना सीखता है तथा सामाजिक जगत मे अपने को समायोजित करने का प्रयास करता है। समाजीकरण की इस प्रक्रिया से बालक का सामाजिक विकास होता है।

सामाजिक विकास से तात्पर्य विकास की उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन करता है, सामाजिक परिस्थितियो के अनुरुप अपनी आवश्यकताओ व रुचियो पर नियन्त्रण करता है, दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करता है तथा अन्य व्यक्तियो के साथ प्रभावपूर्ण ढग से सामाजिक सबध स्थापित करता है। सामाजिक विकास के फलस्वरुप व्यक्ति समाज का एक मान्य, सहयोगी तथा कुशल नागरिक बन जाता है। समाज मे रह कर ही व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करता है तथा जन्मजात प्रवृत्तियो व योग्यताओ का विकास करता है। समाज मे रह कर ही वह दूसरों से सम्पर्क करता है, समाज के मूल्यो, विश्वासो तथा आदर्शों मे आस्था रखने लगता है तथा समाज की जीवन-शैली को अपनाता है। उसमे सहअस्तित्व की भावना आ जाती है, वह सामाजिक हित में तथा लोककल्याण की भावना से अपने निहित स्वार्थों का त्याग करना सीख जाता है तथा सामाजिक गुणो को विकसित करके समाज में अनुकूलन स्थापित करने का प्रयास करता है। अन्य व्यक्तियो के साथ सम्पर्क करने एव अनुकूलन स्थापित करने की योग्यता सामाजिक विकास का ही परिणाम है जो बालक के समाजीकरण के फलस्वरुप विकसित होती है। स्पष्ट है कि समाजीकरण तथा सामाजिक विकास परस्पर घनिष्ठ रुप से सबधित होते है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालक के सामाजिक विकास को गति प्रदान करती है। घर, परिवार, पडोस, मित्र-मडली, विद्यालय, समुदाय, जनसचार साधन तथा राजनीतिक व सामाजिक सस्थाये बालक के समाजीकरण मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। बालक के सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण माना जाता है। आधुनिक समय मे शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक विकास करना है। अत शिक्षा के द्वारा बालको के न केवल शारीरिक व मानसिक विकास को प्रोत्साहित किया जाता है वरन् उनके सामाजिक विकास को भी प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया मे महत्वपूर्ण योगदान

दे सकती है । घर मे माता-पिता तथा विद्यालय मे अध्यापकगण विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापो का आयोजन करके वालको मे समाजीकरण की प्रक्रिया को बढाकर उनका सामाजिक विकास कर सकते है । प्रस्तुत अध्याय मे विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे होने वाले सामाजिक विकास का सक्षिप्त वर्णन किया गया है ।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास
(Social Development During Infancy)

यद्यपि जन्म के समय शिशु सामाजिक नही होता है,परतु दूसरे व्यक्तियो के साथ शिशु के प्रथम सम्पर्क से ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है जो निरन्तर आजीवन चलती रहती है । अन्य व्यक्तियो के निरन्तर सम्पर्क मे आते रहने के कारण शिशु की सामाजिक स्थिति मे परिवर्तन होने लगता है जिसके फलस्वरुप उसके समाजीकरण अथवा सामाजिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है । शैशवावस्था के दौरान शिशु का सामाजिक विकास निम्नाकित ढग से होता है—

1. प्रथम माह में सामाजिक विकास (Social Development in the First Month) —प्रथम माह मे शिशु किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नही करता है । वह तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है । वह रोने की तथा नेत्रो को घुमाने की प्रतिक्रियाये करता हे ।

2. द्वितीय माह में सामाजिक विकास (Social Development in the Second Month) —दूसरे सप्ताह मे शिशु आवाजो को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से वात करता है या ताली बजाता है या खिलौना दिखाता है । आवाज को सुनकर वह सिर घुमाता है तथा दूसरो को देखकर मुस्कराता है ।

3. तृतीय माह में सामाजिक विकास (Social Development in the Third month)—तीसरे माह मे शिशु माँ को पहचानने लगता है । जब कोई व्यक्ति शिशु से वात करता है या ताली वजाता है तो वह रोते-रोते चुप हो जाता है ।

4. चतुर्थ माह में सामाजिक विकास (Social Development in the Fourth Month) —चौथे माह मे शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है, मुस्कराता है । जब कोई व्यक्ति उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है ।

5. पंचम् माह में सामाजिक विकास (Social Development in the Fifth Month) —पाँचवे माह मे शिशु प्रेम व क्रोध के व्यवहार मे अतर समझने लगता है । दूसरे व्यक्ति के हँसने पर वह भी हँसता है तथा डाँटने पर सहम जाता है ।

6. षष्ठम माह में सामाजिक विकास (Social Development in the Sixth Month) —छठे माह मे शिशु परिचित-अपरिचित मे अतर करने लगता है । वह अपरिचितो से डरता है । वडो के प्रति आक्रामक (Aggressive) व्यवहार करता है । वह वडो के वाल, कपडे, चश्मा आदि खीचने लगता है ।

7. नवम् माह में सामाजिक विकास (Social Development in the

Nınth Month) —नवे माह मे शिशु दूसरो के शब्दो, हावभाव तथा कार्यो का अनुकरण करने का प्रयास करने लगता है।

8. प्रथम वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Fırst Year) —एक वर्ष की आयु मे शिशु घर के सदस्यो से हिल-मिल जाता है। बडो के मना करने पर मान जाता है तथा अपरिचितो के प्रति भय तथा नापसन्दगी दर्शाता है।

9. द्वितीय वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Second Year) —दो वर्ष की आयु मे शिशु घर के सदस्यो को उनके कार्यो मे सहयोग देने लगता है। इस प्रकार से वह परिवार का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है।

10. तृतीय वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Thırd Year) —तीन वर्ष की आयु मे शिशु अन्य बालको के साथ खेलने लगता है। खिलौनो के आदान-प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालको से सामाजिक सबध बनाता है।

11. चतुर्थ वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Fourth Year) —चौथे वर्ष के दौरान शिशु प्राय नर्सरी विद्यालयो मे जाने लगता है जहॉ वह नए नए सामाजिक सबध बनाता है तथा नए सामाजिक वातावरण मे स्वय को समायोजन करता है।

12. पंचम वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Fıfth Year) —पॉचवे वर्ष मे शिशु मे नैतिकता की भावना की विकास होने लगता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानो के अनुरुप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

13. षष्ठम वर्ष में सामाजिक विकास (Socıal Development ın the Sıxth Year) —छठे वर्ष मे शिशु प्राथमिक विद्यालय मे जाने लगता है जहॉ उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ हो जाता ह। विद्यालय मे शिशु नए मित्र बनाता है, सामाजिक कार्यो मे भाग लेता हैं तथा नवीन परिस्थितियो से अनुकूलन करता है।

शैशवावस्था मे बालक के द्वारा किए जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारो के अवलोकन से स्पष्ट है कि जन्म के उपरान्त धीरे-धीरे बालक का समाजीकरण होता है। जन्म के समय शिशु सामाजिक प्राणी नही होता है परतु अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे आने पर उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। प्रारम्भ मे परिवार के सदस्य, फिर इष्ट मित्र व पडोसी तथा तदुपरान्त विद्यालय शिशु के समाजीकरण मे सार्थक योगदान करता है।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
(Social Development in the Childhood)

बाल्यावस्था मे समाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। बालक बाह्य समाज के सम्पर्क मे आता है जिसके फलस्वरुप उसका सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। बाल्यावस्था मे होने वाले सामाजिक विकास को निम्नाकित ढग से व्यक्त किया जा सकता है—

1. बालक किसी न किसी टोली या समूह का सदस्य बन जाता है। यह टोली अथवा समूह ही उसके खेलो, वस्त्रो की पसद तथा अन्य उचित-अनुचित बातो का निर्धारण करते हैं। बालक टोली के द्वारा निर्धारित अथवा पसद किये गये कार्य व्यवहारो को अपनाना चाहता है।

2. समूह के सदस्य के रुप मे बालक के अदर अनेक सामाजिक गुणो का विकास होता है। उत्तरदायित्व, सहयोग, साहस, सहनशीलता, सद्भावना, आत्मनियत्रण, न्यायप्रियता आदि सामाजिक गुण बालक मे धीरे-धीरे उदय होने लगते हैं।

3. इस अवस्था मे बालक तथा बालिकाओं की रुचियों मे स्पष्ट अतर दृष्टिगोचर होता है।

4. बाल्यावस्था मे बालक प्राय· घर से बाहर रहना चाहता है, परतु उसका व्यवहार शिष्टतापूर्ण होता है।

5. इस अवस्था मे बालक मे सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशसा पाने की तीव्र इच्छा होती है।

6. प्यार तथा स्नेह से वचित बालक इस आयु मे प्राय: उद्दण्ड ह जाते हैं।

7. बाल्यावस्था मे बालक मित्रो का चुनाव करते हैं। वे प्राय कक्षा पहपाठियो को अपना घनिष्ठ मित्र बनाते हैं।

बाल्यावस्था मे बालक-बालिकाओ द्वारा किये जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारो से स्पष्ट है कि इस अवस्थ मे उनके सामाजिक जीवन का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरुप बालक-बालिकाओ के समाजीकरण के अवसर तथा सम्भावनाये बढ जाती है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास
(Social Development in the Adolescence)

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियो का सामाजिक परिवेश अत्यत विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा सवेगात्मक परिवर्तनो के साथ-साथ उनके समाजिक व्यवहार मे भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। किशोरावस्था मे होने वाले अनुभवों तथा बदलते सामाजिक सबधो के फलस्वरुप किशोर-किशोरियाँ नए ढंग से सामाजिक वातावरण मे समायोजित करने का प्रयास करते हैं। किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरुप निम्नाकित होता है—

1. समूहों का निर्माण (Formation of Groups)—किशोरावस्था मे किशोर

एव किशोरियाँ अपने-अपने समूहो का निर्माण कर लेते है। परतु यह समूह बाल्यावस्था के समूहो की तरह अस्थायी नही होते है। इन समूहो का मुख्य उद्देश्य मनोरजन करना होता है। पर्यटन, नृत्य, सगीत, पिकनिक आदि के लिए समूहो का निर्माण किया जाता है। किशोर-किशोरियो के समूह प्राय अलग-अलग होते है।

2. मैत्री भावना का विकास (Development of Friendship) —किशोरावस्था मे मैत्रीभाव विकसित हो जाता ह। प्रारम्भ मे किशोर किशोरो से तथा किशोरियाँ किशोरियो से मित्रता करती है, परतु उत्तर किशोरावस्था मे किशोरियो की रुचि किशोरो से तथा किशोरो की रुचि किशोरियो से मित्रता करने की भी हो जाती है। वे अपनी सर्वोत्तम वेशभूषा, श्रृगार व सजधज के साथ एक दूसरे के समक्ष उपस्थित होते है।

3. समूह के प्रति भक्ति (Devotion to the Group) —किशोरो मे अपने समूह के प्रति अत्यधिक भक्तिभाव होता है। समूह के सभी सदस्यों के आचार विचार, वेशभूषा, तौर तरीके आदि लगभग एक ही जैसे होते है। किशोर अपने समूह के द्वारा स्वीकृत बातो को आदर्श मानता है तथा उनका अनुकरण करने का प्रयास करता है।

4. सामाजिक गुणों का विकास (Development of Social Qualities) —समूह के सदस्य होने के कारण किशोर-किशोरियो मे उत्साह, सहानुभूति, सहयोग, सद्भावना, नेतृत्व आदि सामाजिक गुणो का विकास होने लगता है। उनकी इच्छा समूह मे विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की होती है, जिसके लिए वे विभिन्न सामाजिक गुणो का विकास करते है।

5. सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास (Development of the Feelings of Social Maturity) —किशोरावस्था में बालक-बालिकाओं में वयस्क व्यक्तियों की भाँति व्यवहार करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। वे अपने कार्यों तथा व्यवहारों के द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते है। स्वय को सामाजिक दृष्टि से परिपक्व मान कर वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वो का निर्वाह करने का प्रयास करते हैं।

6. विद्रोह की भावना (Feeling of Revolt) —किशोरावस्था मे किशोर किशोरियो में अपने माता-पिता तथा अन्य परिवारजनो से सघर्ष अथवा मतभेद करने की प्रवृत्ति आ जाती है। यदि माता-पिता उनकी स्वतत्रता का हनन करके उनके जीवन को अपने आदर्शों के अनुरुप ढालने का प्रयत्न करते हैं अथवा उनके समक्ष नैतिक आदर्शों का उदाहरण देकर उनका अनुकरण करने पर वल देते हैं तो किशोर-किशोरियाँ विद्रोह कर देते हैं।

7. व्यवसाय चयन में रुचि (Interest in Selection of Vacation) —किशोरावस्था के दौरान किशोरो की व्यावसायिक रुचियाँ विकसित होने लगती है। वे अपने भावी व्यवसाय का चुनाव करने के लिए सदैव चिन्तित से रहते हैं। प्राय. किशोर अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार सम्पन्न व्यवसायो को अपनाना चाहते हैं।

8. बहिर्मुखी प्रवृत्ति (Extrovert Tendency) —किशोरावस्था मे बहिर्मुखी प्रवृत्ति का विकास होता है। किशोर-किशोरियो को अपने समूह के क्रियाकलापो तथा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं मे भाग के अवसर मिलते है जिसके फलस्वरुप उनमे बहिर्मुखी रुचियाँ विकसित होने लगती है। वे लिखने-पढ़ने, सगीत, कला, समाजसेवा, जनसम्पर्क आदि से सवन्धित कार्यो मे रूचि लेने लगते है।

9.राजनैतिक दलों का प्रभाव (Influence of Political Parties) —किशोरावस्था मे राजनैतिक दलो की विचारधारओ का किशोरों पर प्रभाव पडता है। किशोर प्राय किसी राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित होकर किसी राजनैतिक दल के अनुयायी बन जाते है। दल मे सम्मान, प्रतिष्ठा तथा प्रशसा प्राप्त करने के लिए किशोर आदम्य उत्साह तथा समपर्णभाव से जनकल्याण के कार्य करते है। इससे एक ओर जहाँ किशोरो को अपने सामाजिक विकास मे सहायता मिलती है, वही दूसरी ओर दूषित राजनैतिक वातावरण मे पडकर गलत रास्ते पर चलकर किशोरो के दादा बन जाने की सम्भावना भी रहती है।

किशोरावस्था मे होने वाले सामाजिक विकास की उपरोक्त वर्णित मुख्य विशेषताओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि किशोरावस्था सामाजिक विकास की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण अवस्था है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing Social Development)

विभिन्न अवस्थाओ मे होने वाला सामाजिक विकास अनेक कारको से प्रभावित होता है। वालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित है—

1. वंशानुक्रम (Heredity) —मनोवैज्ञानिको के अनुसार सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का भी प्रयास पड़ता है। वशानुक्रम व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ-साथ उसके सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है। अनेक सामाजिक गुण व्यक्ति को वश परम्परा के रुप मे अपने पूर्वजों से प्राप्त होते है।

2. शारीरिक तथा मानसिक विकास (Physical and Mental Development) —शारीरिक तथा मानसिक विकास का व्यक्ति के सामाजिक विकास से घनिष्ठ सवध होता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा विकसित मस्तिष्क वाले बालको के समाजीकरण की सम्भावनायें अधिक होती है, जबकि अस्वस्थ्य तथा कम विकसित मस्तिष्क वाले वालको के समाजीकरण की सम्भावना कम होती है। बीमार, अपग, शारीरिक दृष्टि से अनाकर्षक, विक्रत मस्तिष्क वाले, अल्प वुद्धि वाले बालक प्राय सामाजिक अवहेलना तथा तिरस्कार सहते रहते है, जिसके फलस्वरुप उनमें हीनता की भावना विकसित हो जाती हैं तथा वे अन्य वालकों के साथ स्वय को समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते है। अत्यधिक प्रतिभाशाली बालक भी मानसिक तालमेल के अभाव (Lack of mental matching) तथा श्रेष्ठता ग्रंथि (Superiority Complex) के कारण प्राय. सामाजिक रुप से समायोजन करने मे परेशानी का अनुभव करते है।

3. संवेगात्मक विकास (Emotional Development) —सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार सवेगात्मक विकास होता है। संवेगात्तमक तथा सामाजिक व्यवहार एक दूसरे के अनुयायी होते है। जिन बालको मे प्रेम, स्नेह, सहयोग, ह्रास परिहास के भाव अधिक होते है वे सभी को अपनी ओर आर्कषित कर लेते है तथा स्नेह व आकर्षण का पात्र वन जाते है। इसके विपरीत जिन बालकों मे ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, नीरसता आदि भाव होते है वे किसी को भी अच्छे नही लगते है तथा ऐसे बालकों की सभी उपेक्षा करते है।

4. परिवार (Family) —समाजीकरण का प्रारम्भ परिवार से होता है। परिवार का वातावरण, सस्कृति, सदस्यो का आचरण, पालन-पोषण आदि का बालको के सामाजिक विकास पर प्रभाव पडता है। बालक अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यो जैसे आचरण तथा व्यवहार करने का प्रयास करता है।

5. आर्थिक स्थिति (Economic Status) —माता-पिता की आर्थिक स्थिति का भी बालक के समाजीकरण पर प्रभाव पडता है। धनी माता-पिता के बच्चे अच्छे माहौल मे रहते है, अच्छे व्यक्तियो के सम्पर्क मे आते है तथा अच्छे विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त करते है जिसके कारण उनका सामाजिक विकास अच्छा होना स्वभाविक ही है। इसके विपरीत निर्धन परिवारो के बालक उत्तम वातावरण, उचित सम्पर्क तथा श्रेष्ठ विद्यालय के अभाव मे समुचित सामाजिक विकास से वचित रह जाते है।

6. समाज (Society) —समाज का भी बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया मे महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सामाजिक व्यवस्था बालक के समाजीकरण को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। समाज के कार्य, आदर्श तथा प्रतिमान बालक के सामाजिक दृष्टिकोण का निर्माण करते है। ग्रामीण व शहरी समाज मे तथा लोकतत्र व राजतत्र मे बालको के सामाजिक व्यवहार मे स्पष्ट अतर देखा जा सकता है।

7. विद्यालय (School)—बालक के सामाजिक विकास मे विद्यालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है। विद्यालय मे बालक को अन्य बालको, अध्यापको से मिलने-जुलने की तथा विभिन्न प्रकार की सामूहिक क्रियाओं मे भाग लेने के अवसर मिलते है जो उसके समाजीकरण की दिशा को निर्धारित करते है।

8. अध्यापक (Teachers) —बालकों के सामाजिक विकास पर उनके अध्यापको का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। छात्र अपने अध्यापक से उसी के समान व्यवहार करना सीखते है। यदि अध्यापक शात, शिष्ट तथा सहयोगी होता है तो छात्रो मे भी शिष्टता, धैर्य तथा सहकारिता के गुण विकसित हो जाते है। इसके विपरीत यदि शिक्षक अशिष्ट, क्रोधी तथा असहयोगी है तो छात्र भी उसी के समान बन जाते है। अत्यधिक सरल व्यक्तित्व वाले अध्यापक अपने छात्रो को अनुशासन में नही रख पाते हैं जिसके कारण ऐसे अध्यापको के छात्रो मे अनुशासनहीनता एव उद्दण्डता की भावना का विकसित हो जाती है।

9. अन्य कारक (Other Factors) —सस्कृति, राजनैतिक दल, साहित्य, धार्मिक सस्थाये तथा जनसचार माध्यमो जैसे अनेक अन्य कारक भी बालको के सामाजिक विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

उपसंहार

शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे होने वाले सामाजिक विकास तथा उसे प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारकों के विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक विकास मानव जीवन का एक अत्यत महत्वपूर्ण पक्ष है। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही मानव एक सामाजिक प्राणी बनता है। सामाजिक वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील रहता है तथा व्यक्ति को अपने सामाजिक वातावरण मे होने वाले परिवर्तनो के अनुरुप बदलना होता है। दूसरो से सहयोग करना, अन्यो के अनुरुप व्यवहार करना, शिष्टता का आचरण तथा सहअस्तित्व को स्वीकारना आदि सामाजिक परिपक्वता के लक्षण होते है। बालक के सामाजिक वातावरण को नियत्रित करके उन्हे वाछित दिशा मे सामाजिक विकास के लिए प्रेरित किया जा सकता है। शिक्षा इस कार्य मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। शिक्षा सस्थाओ मे स्वस्थ सामाजिक अन्तक्रिया के अवसर उपलब्ध कराकर छात्रो की समाजीकरण की प्रक्रिया को सवल वनाया जा सकता है।

---

11 संवेगात्मक विकास
(Emotional Development)

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में समय-समय पर क्रोध, भय, हर्ष, घृणा, प्रेम, वासना, क्षोभ आदि का अनुभव करता है, इन्हें संवेग कहते हैं । मानव जीवन मे संवेगों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है । मनुष्य को संवेगों के द्वारा विभिन्न कार्यों को करने की प्रेरणा तथा शक्ति मिलती है । सवेगों के उदय होने पर व्यक्ति में अतिरिक्त शक्ति का सचार होता है तथा वह ऐसे-ऐसे कार्य कर दिखाता है जो सामान्य स्थिति में उसके लिए सम्भव प्रतीत नही होते हैं । भय की स्थिति मे व्यक्ति कभी-कभी ऊँचे-नीचे गड्ढों तथा नालों को लाँघ जाता है । क्रोध की स्थिति मे कभी-कभी व्यक्ति अपने से शक्तिशाली व्यक्ति को परास्त कर देता है । सवेगों का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के भावात्मक पक्ष से होता है । सुखद वस्तु को देककर प्रसन्न होना, डरावनी वस्तु को देखकर डर जाना, इच्छा के विपरीत कार्य होने पर क्रोधित होना, खराब वस्तु को देखकर घृणा आना तथा दूसरों को अभावग्रस्त देखकर दया आना आदि संवेगात्मक स्थिति के कुछ उदाहरण है । संवेगो के उत्पन्न होने पर व्यक्ति की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति मे परिवर्तन आ जाता है । सवेग वास्तव मे मानसिक उपद्रव (Mental Disturbance) की अवस्था होती है, जिसमे व्यक्ति सामान्य स्थिति मे नही रहता है । संवेगात्मक स्थिति मे बुद्धि व विवेक का व्यक्ति के व्यवहार पर अकुश नही रह जाता है तथा उसे उचित-अनुचित का ज्ञान नही हो पाता है । एक ओर जहाँ सवेगो की सहायता से व्यक्ति साहसिक तथा प्रशसनीय कार्य करता है, वही दूसरी ओर संवेगों के वशीभूत होकर वह पशुवत् निंदनीय व्यवहार कर जाता है । क्रोध में व्यक्ति माता-पिता अथवा अध्यापकों के साथ अभद्र व्यवहार कर जाता है । काम वासना के वशीभूत होकर व्यक्ति नीच कार्य कर बैठता है । संवेग वास्तव मे व्यक्ति को उत्तेजित करते हैं तथा उस उत्तेजना मे व्यक्ति प्रशंसनीय तथा निंदनीय दोनो ही प्रकार के कार्य करता है । सवेग मानव के लिए अत्यत महत्वपूर्ण होते हैं ।

संवेग का अर्थ
(Meaning of Emotion)

सवेग शब्द का शाब्दिक अर्थ है—वेग से युक्त अर्थात् जब व्यक्ति वेगवान होकर कार्य करता है तो उसे संवेग कहते हैं । अग्रेजी भाषा मे सवेग को इमोशन (Emotion) कहते हैं । 'इ' (E) का अर्थ है—अदर से तथा 'मोशन' (Motion) का अर्थ है—गति । अत. इमोशन का अर्थ है—आन्तरिक भावो को बाहर की ओर गति देना । दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि संवेग आन्तरिक भावों का बाह्य प्रकाशन है । संवेग वास्तव में भावों का तीव्र होना है ।

वुडवर्थ के शब्दों में—"सवेग आवेश मे आने की स्थिति है।"

Emotion is a 'moved' or 'stirred-up' state of the individual.

—Woodworth

पी०टी० यंग के अनुसार—"सवेग मनोवैज्ञानिक कारणो से उत्पन्न व्यक्ति का तीव्र उपद्रव है जिसके अतर्गत व्यवहार, चेतन अनुभव तथा अतरग क्रियाये सम्मिलित रहती है।"

Emotion is an acute disturbance of the individual as a whole, psychological in origin, involving behaviour, conscious experience and visceral functioning.

—P.T.Young

संवेगों की विशेषताएें
(Characteristics of Emotions)

सवेगो की निम्नाकित विशेषताये होती है—

1. **संवेगों की व्यापकता** (Universality of Emotions) —सवेग सभी प्राणियों मे पाए जाते है। मानव हो अथवा पशु-पक्षी, बालक हो अथवा वृद्ध, सभी भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे भिन्न-भिन्न सवेगों को प्रदर्शित करते है। सभी देशो के निवासियो मे सवेग पाए जाते है।

2. **शारीरिक परिवर्तन** (Bodily Changes) —संवेगों के उदय होने पर अस्थायी शारीरिक परिवर्तन हो जाते है। ये परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते है—(i) आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन तथा (ii) बाह्य शारीरिक परिवर्तन। आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनो के अतर्गत जल्दी-जल्दी श्वॉस लेना, हृदय की धडकन का बढ़ जाना, पाचन क्रिया का प्रभावित हो जाना आदि प्रमुख है। बाह्य शारीरिक परिवर्तनों मे आवाज मे परिवर्तन आ जाना, मुखमडल के प्रकाशन मे अंतर आ जाना, अग सचालन की गति मे परिवर्तन आ जाना आदि प्रमुख है।

3. **विचार प्रक्रिया का लोप हो जाना** (Not Functioning of Thinking Process) —सावेगिक दशा मे व्यक्ति की विचार प्रक्रिया लुप्त हो जाती है। बुद्धि तथा विवेक का उसके व्यवहार पर नियत्रण नहीं रहता है। वह उचित-अनुचित का विचार नही कर पाता है। यही कारण है कि व्यक्ति सवेगों के वशीभूत होकर अनेक ऐसे कार्य कर जाता है जो वह सामान्य दशा मे करना कदापि पसन्द नही करता है।

4. **व्यक्तिगतता** (Individuality) —संवेगो की अभिव्यक्ति मे व्यक्तिगतता होती है। एक ही स्थिति मे भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के सवेग तथा उनकी मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है। जैसे किसी गरीब बच्चे को भीषण शीत मे ठिठुरता देखकर कोई व्यक्ति उसे पहनने के लिए पुराने कपडे दयावश दे देता है, जबकि अन्य कोई व्यक्ति उसकी स्थिति पर हँस सकता है। इसी प्रकार से पुत्र के शैतानी करने पर किसी पिता को क्रोध आ सकता है, जबकि किसी अन्य पिता के चेहरे पर मन्द मुस्कान तिरोहित हो सकती है।

5. **संवेगों की अस्थिरता** (Instability of Emotions) —सवेगों की प्रकृति अस्थायी (Temporary) होती है। सवेग थोडे समय तक रहते है, फिर व्यक्ति सामान्य स्थिति मे आ जाता है। क्रोध की मनोदशा मे माँ अपने बच्चो को डाँटती है, परतु थोडी देर बाद ही वह सामान्य हो जाती है। इसी प्रकार से करूणा, घृणा, भय, आश्चर्य, कामुकता आदि सवेग कुछ समय के उपरान्त शान्त हो जाते है।

6. **संवेगों का स्थानान्तरण** (Transfer of Emotions) —सवेग कभी-कभी स्थानान्तिरत हो जाते है। जैसे यदि कोई व्यक्ति क्रोध मे अपने नौकर को डाँट रहा होता है तथा उस समय कोई अन्य व्यक्ति आकर उससे कुछ बात करना चाहता है तो क्रोधी व्यक्ति को आगन्तुक पर भी क्रोध आने लगता है।

7. **मूल प्रवृत्तियों से संम्बन्ध** (Relations with Instincts)—सवेगो की उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों से होती है जैसे जिज्ञासा प्रवृत्ति से आश्चर्य की उत्पत्ति होती है।

8. **संवेगों की क्रियात्मक प्रवृत्ति** (Conative Tendency in Emotions) —सवेगो का सम्बन्ध क्रियात्मक प्रवृत्तियो से होता है। प्रत्येक सवेग किसी न किसी एक क्रियात्मक प्रवृत्ति से सम्बधित होता है। भय मे व्यक्ति भागता है, आमोद मे व्यक्ति हँसता है तथा क्रोध मे व्यक्ति की भवे तन जाती है।

9. **सुख-दुख का भाव निहित होना** (Inclusion of the Feeling of Pleasure or Pain) —सवेगो मे या तो दुख का भाव निहित होता है अथवा सुख का भाव निहित होता है। प्रेम, स्नेह व वात्सल्य जैसे सवेगो मे सुख का भाव निहित रहता है जबकि भय, घृणा, ईर्ष्या जैसे सवेगो मे दुख का भाव निहित रहता है।

संवेगों के प्रकार

(Kinds of Emotions)

सवेग अनेक प्रकार के होते है। मैकडूगल (McDougal) ने 14 सवेगो का उल्लेख किया है, जिनमे से प्रत्येक एक-एक मूलप्रवत्ति (Instinct) से सम्बन्धित है। ये 14 सवेग निम्नवत है—

1. भय (Fear)
2. क्रोध (Anger)
3. घृणा (Disgust)
4. वात्सल्य (Tenderness)
5. करुणा (Distress)
6. कामुकता (Lust)
7. आश्चर्य (Wonder)
8. आत्महीनता (Negative Self Feeling)
9. आत्म-अभिमान (Positive Self Feeling)
10. एकाकीपन (Lonlyness)
11. भूख (Hunger)
12. अधिकार (Feeling of Ownership)
13. कृतिभाव (Creativeness)
14. आमोद (Amusement)

भारतीय विद्वान केवल दो मुख्य सवेग स्वीकार करते है। ये है—**राग** तथा **द्वेष**। इन दोनो मुख्य सवेगो को निम्न ढग से अन्य सवेगो के रुप में व्यक्त किया जा सकता है—

मुख्य सवेग	विवरण	सवेग
रागात्मक सवेग	अपने से बडो के प्रति राग	सम्मान, भक्ति, श्रृद्धा
	अपने बराबर वालों के प्रति राग	मित्रता, प्रेम, आसक्ति
	अपने से छोटो के प्रति राग	स्नेह, वात्सल्य, दया
द्वेषात्मक संवेग	अपने से बडो के प्रति द्वेष	भय, कायरता, घृणा
	अपने बराबर वालो के प्रति द्वेष	क्रोध, ईर्ष्या, जलन
	अपने से छोटो के प्रति द्वेष	गर्व, अभिमान, अधिकार

कुछ सवेग ऐसे होते है जो नैसर्गिक होते है—जैसे भय, क्रोध, आश्चर्य, शोक आदि। जबकि कुछ संवेग ऐसे होते है जो धीरे-धीरे विकसित होते है— जैसे ईर्ष्या, प्रेम, घृणा आदि। जिन सवेगो से व्यक्ति को सुख मिलता है उन्हे सुखद संवेग अथवा धनात्मक सवेग (Positive Emotions) कहते है— जैसे प्रेम, स्नेह, मित्रता। जिन सवेगो से व्यक्ति को दुख मिलता है उन्हे दुखद सवेग या दुखप्रद संवेग या ऋणात्मक सवेग (Negative Emotions) कहते है—जैसे भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
(Emotional Development During Infancy)

मानव जीवन मे सवेगो का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सभी संवेग जन्मजात नही होते है बरन् उनका विकास धीरे-धीरे होता है। प्रारम्भ मे शिशु की सवेगात्मक प्रतिक्रियाये सामान्य उत्तेजना मात्र होती है। धीरे-धीरे उसमे भय, क्रोध, हर्ष आदि सवेगो का उदय होने लगता है। शैशवावस्था मे शिशु के सवेगात्मक विकास के सम्बध मे निम्नाकित बाते उल्लेखनीय हैं—

1. शिशु जन्म के समय से ही सवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है। शिशु का रोना, चिल्लाना तथा हाथ-पैर पटकना आदि शिशु के सवेगात्मक व्यवहार को परिलक्षित करते है।

2. शिशु का सवेगात्मक व्यवहार अत्यधिक अस्थिर होता है। इच्छापूर्ति में व्यवधान उत्पन्न होने पर उसमे सवेगात्मक उत्तेजना होती है तथा इच्छा के पूर्ण होते ही उसकी उत्तेजना समाप्त हो जाती है। रोता हुआ शिशु खिलौने, दूध अथवा मिठाई आदि पाते ही रोना बद करके हँसना प्रारम्भ कर देता है। आयु के बढने के साथ शिशु के सवेगात्मक व्यवहार मे स्थिरता आने लगती है।

3. शिशु की सवेगात्मक अभिव्यक्ति धीरे-धीरे परिवर्तित होती जाती है। आयु के बढ़ने के साथ ऋणात्मक संवेगों की तीव्रता मे कमी आती है, जबकि धनात्मक संवेगों की तीव्रता मे बढ़ोत्तरी होती है।

4. प्रारम्भ में शिशु के सवेग अस्पष्ट होते हैं परंतु धीरे-धीरे उसके संवेगों मे स्पष्टता आने लगती है।

5. लगभग दो वर्ष की आयु तक शिशु मे लगभग सभी सवेगो का विकास हो जाता है। ब्रिजेज (Bridgs) के अनुसार विभिन्न प्रकार के सवेगो के उदय होने की आयु अग्रांकित सारणी मे प्रस्तुत की गई है।

सारणी

शैशवावस्था मे सवेगात्मक विकास

आयु	संवेग									
जन्म के समय	उत्तेजना									
3 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट							
6 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	घृणा	भय				
12 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास		
18 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या	
2 वर्ष	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	घृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या	
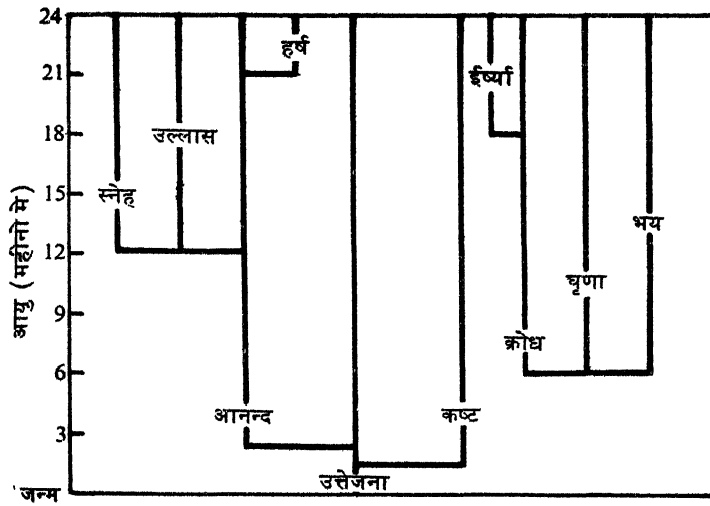
चित्र 17 शैशवावस्था में सवेगों का विकास

6. फ्रायड के अनुसार छोटे शिशु मे आत्मप्रेम अर्थात् नारीसिज्म (Naricissim) की भावना होती है। उसके अनुसार चार-पाँच वर्ष के बालक मे मातृ प्रेम या पितृ विरोधी भावना ग्रथि (Oedipus Complex) का विकास हो जाता है, जबकि चार-पाँच वर्ष की बालिका मे पितृ प्रेम या मातृ विरोधी भावना ग्रथि (Electra Complex) विकसित हो जाती है।

शैशवावस्था मे होने वाले सवेगात्मक विकास के अवलोकन से स्पष्ट है कि शिशु का सवेगात्मक व्यवहार उसकी आयु बढने के साथ-साथ निश्चित तथा स्पष्ट होता जाता है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
(Emotional Development During Childhood)

सवेगात्मक विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था विकास की एक अनोखी अवस्था (Unique Stage) है। बाल्यावस्था मे सवेगो की अभिव्यक्ति मे सामाजिकता का भाव आने लगता है। बालक सवेगो की अभिव्यक्ति पर नियत्रण करने लगता है। सवेगों की उग्रता कम होने लगती है। बाल्यावस्था मे होने वाले संवेगात्मक परिवर्तनो की कुछ प्रमुख विशेषताये निम्नवत् होती है—

1. **संवेगों की उग्रता में ह्रास** (Lack of Intensity of Emotions) —बाल्यावस्था मे सवेगो की उग्रता मे कमी आ जाती है। वे शैशवावस्था की भाँति उग्र रुप से अभिव्यक्ति नही होते है। समाजीकरण के प्रारम्भ होने के फलस्वरुप बालक सवेगो का दमन करने का प्रयास करता है अथवा उनको शिष्ट ढग से अभिव्यक्त करता है। माता-पिता, अध्यापक तथा अन्य बडे व्यक्तियो के समक्ष वह ऐसे सवेगों को प्रकट नही करता है, जिन्हे अवाछनीय समझा जाता है।

2. **ईर्ष्या** (Jealousy) —बाल्यावस्था मे बालक-बालिकाओ मे किसी न किसी कारण से ईर्ष्या व द्वेष की भावना विकसित हो जाती है जिसके कारण वे अपने भाई-बहनो या साथियो कों चिढ़ाते , झूठे आरोप लगाते, तिरस्कार करते, निदा करते या व्यग्य करते देखे जा सकते है। बालक प्राय. ईर्ष्या तब करता है, जब उसका कोई अधिकार छिन जाता है अथवा वह अन्यों को अपने से अच्छी स्थिति मे पाता है।

3. **भय** (Fear)—बाल्यावस्था में बालक में भय का सवेग होता है, परतु यह भय शैशवावस्था के भय से कुछ भिन्न होता है। इस अवस्था में भय का सबंध प्रायः भावी कार्यो से होता है। बाल्यावस्था मे बच्चों के अंदर परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त न करने का भय, गृहकार्य न करने पर स्कूल मे दड मिलने का भय तथा कक्षा मे प्रश्न का उत्तर न दे पाने के कारण अध्यापक द्वारा पिटाई का भय होता है।

4. **निराशा** (Frustration) —बाल्यावस्था मे बालक निराशा की भावना से पीडित होता है। परिवार, समाज तथा विद्यालय के द्वारा बनाए गए अनुशासन सबंधी नियम बालको की इच्छापूर्ति में बाधक होते है। इच्छाओं के पूरी न हो पाने के कारण बालको मे निराशा के भाव उत्पन्न होते है।

5. **जिज्ञासा की प्रबलता** (Forceful Curiosity) —बाल्यावस्था मे

बालक-बालिकाओं मे जिज्ञासा प्रवृत्ति अत्यत प्रबल होती हैं। वह जिन वस्तुओं के सम्पर्क मे आता है, उनके सबध मे क्यों तथा कैसे से सम्बन्धित प्रश्न पूछकर उनकी कार्यप्रणाली का ज्ञान प्राप्त.करना चाहता है।

6. **क्रोध** (Anger) —क्रोध का मुख्य कारण हताशाए हैं। इच्छापूर्ति मे बाधा पडने पर अथवा कार्यों की अनावश्यक आलोचना करने पर बालक को क्रोध आता है। बाल्यावस्था में क्रोध का सवेग प्रबल हो जाता है। बालक मौन होकर, उदास होकर, अथवा भाई-बहन या साथियों से झगडा करके अथवा वस्तुओ की उठा-पटक करके अपने क्रोध को प्रकट करता है।

7. **प्रफुल्लता** (Joy)—प्रफुल्लता एक आनन्ददायक अभिव्यक्ति होती है। जब कोई सुखद अथवा आनन्ददायक परिस्थिति उत्पन्न होती है तब बालक प्रफुल्लता के वेग का अनुभव करता है। रुचिकर खाद्य पदार्थों अथवा वाछित खेल सामग्री बालक की प्रफुल्लता का कारण हो सकती है।

8. **स्नेह** (Affection) —प्रफुल्लता के समान स्नेह भी एक सुखद सवेग है। बालक अपनी स्नेह भावना की अभिव्यक्ति उन व्यक्तियो अथवा वस्तुओ के प्रति करता है जिनके साथ वह रहना चाहता है या जिनकी वह सहायता करना चाहता है। जिन वस्तुओ तथा व्यक्तियों के सम्पर्क मे उसे सुख मिलता है, उनके प्रति वह अपना स्नेह दर्शाता है।

बाल्यावस्था मे होने वाले सवेगात्मक विकास की विशेषताओ से स्पष्ट है कि बाल्यावस्था में भय, निराशा, चिन्ता, व्यग्रता, कुण्ठा, स्नेह, हर्ष, प्रफुल्लता आदि सवेग स्पष्ट रुप से परिलक्षित होने लगते हैं।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास
(Emotional Development During Adolescence)

किशोरावस्था में सवेगात्मक व्यवहार में अनेक परिवर्तन आते है। वास्तव मे किशोरावस्था का आगमन संवेगात्मक व्यवहार में आए तीव्र परिवर्तनों से ही परिलक्षित होता है। किशोरावस्था में होने वाले संवेगात्मक विकास की कुछ प्रमुख विशेषताये निम्नवत् हैं—

1. **भाव प्रधान जीवन** (Feeling Dominated Life) —किशोरावस्था में जीवन अत्यधिक भावप्रधान होता है। किशोर-किशोरियों मे दया, प्रेम, क्रोध, सहानुभूति, सहयोग आदि प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं।

2. **विरोधी मनोदशायें** (Opposite Moods) —किशोरावस्था में व्यक्ति मे विरोधी मनोदशाये दिखाई देती हैं। लगभग समान परिस्थितियो मे कभी वह अत्यधिक प्रसन्न तथा कभी अत्यत दुखी दिखाई देता है। जो परिस्थिति एक अवसर पर उसे उल्लास से परिपूर्ण कर देती हैं, वही परिस्थिति अन्य अवसर पर उसे खिन्न कर देती हैं।

3. **संवेगों में विभिन्नतायें** (Differences in Emotions) —किशोरावस्था मे

सवेगो मे अत्यधिक विभिन्नतायें होती हैं । भिन्न-भिन्न अवसरो पर किशोर-किशोरियो के व्यवहार भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं । वे कभी हतोत्साहित तथा कभी उत्साह से परिपूर्ण, कभी अत्यधिक प्रसन्न तथा कभी अत्याधिक खिन्न, कभी अत्यधिक क्रोधी तथा कभी अत्यधिक सहानुभूतिपूर्ण, कभी अत्यधिक दयालु तथा कभी अत्यधिक रुष्ट दिखाई देते हैं ।

4. **काम भावना** (Sex Instinct) —किशोरावस्था मे काम भावना व्यवहार के केन्द्रीय तत्व के रुप मे कार्य करती है। काम भावना की तीव्रता के कारण किशोर-किशोरियो मे प्रेम सवेग बढ जाते हैं । स्व प्रेम (Auto-erotism), समलिगी प्रेम (Homosexuality) तथा विषम लिंगी प्रेम (Hetrosexuality) के रुप में किशोर-किशोरियाँ अपनी काम प्रवृत्ति की सवेगात्मक अभिव्यक्ति करते है ।

5. **वीर पूजा** (Hero Worship) —किशोरावस्था मे वीर पूजा की भावना विकसित हो जाती है। कल्पनाशील होने के कारण किशोर-किशोरियों को कहानी, उपन्यास, सिनेमा, इतिहास तथा वास्तविक जीवन के नायक व नायिकाये अपने आदर्शों तथा वीरोचित गुणो से मुग्ध कर लेते है। अपने आदर्शों तथा रुचियो के अनुरुप किशोर-किशोरियाँ कुछ वीर वीरांगनाओ का चयन कर लेते हैं तथा उनके कार्यों व आदर्शों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं ।

6. **स्वाभिमान की भावना** (Feeling of Self-Respect) —किशोरावस्था मे स्वाभिमान की भावना प्रबल होती हैं। किशोर अपने आत्मगौरव तथा सम्मान पर किसी प्रकार का आघात सहन करना नही चाहता है । स्वाभिमान पर चोट लगने पर कभी-कभी किशोर घर से पलायन कर जाते हैं अथवा आत्महत्या की बात सोचने लगते हैं ।

7. **अपराध प्रवृत्ति** (Delinquency) —किशोर न तो बालक समझा जाता है तथा न ही प्रौढ, जिसके कारण उसे सवेगात्मक व्यवहार में कठिनाई का समान करना पडता है । वातावरण से अनुकूलन करने के प्रयास की असफलता से उसमे निराशा की भावना विकसित होने लगती हैं, जो उसे अपराध प्रवृत्ति की ओर प्रवृत्त करती है । प्रेम का अभाव, इच्छापूर्ति मे बाधा, निराशा से युक्त जीवन तथा नवीन अनुभवों की ललक के कारण किशोरावस्था में कभी-कभी अपराध प्रवृत्ति विकसित होने लगती हैं ।

8. **चिन्तायुक्त व्यवहार** (Anxious Behaviour) —किशोरावस्था मे किशोर अनेक बातो के प्रति चिन्तित रहता है। वह अपने रंग रुप, स्वास्थ, मान-सम्मान, आर्थिक स्थिति, शैक्षिक प्रगति, भावी व्यवसाय आदि के प्रति सदैव व्यग्र रहता है ।

9. **स्वतंत्रता की भावना** (Feeling of Independence) —किशोरावस्था में स्वतत्रता की भावना अत्यधिक प्रबल होती है । किशोर-किशोरियाँ अपने परिवार तथा समाज के आदर्शों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, अध विश्वासो आदि को न मानकर अपनी स्वतंत्र जीवन शैली अपनाना चाहते हैं। वे तर्क-वितर्क करके सामाजिक आदर्शों की उपयुक्तता को जानना चाहते हैं । यदि उसके क्रियाकलापों पर प्रतिबंध लगाये जाते हैं, तब किशोर इन्हे सरलता से स्वीकार नही करते हैं, वरन् विद्रोह करने का प्रयास करते हैं ।

किशोरावस्था मे होने वाले सवेगात्मक विकास के अवलोकन से स्पष्ट है कि किशोरो मे क्रियाशीलता की प्रवृत्ति अधिक होती है जिसके परिणामत इस अवस्था मे सवेग अधिक उग्र होते है।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Emotional Development)

शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था मे होने वाले सवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नाकित है—

1. **वंशानुक्रम** (Heredity) —व्यक्ति वशानुक्रम से अनेक शारीरिक तथा मानसिक गुण व योग्यताये प्राप्त करता है। इन शारीरिक तथा मानसिक गुणो का व्यक्ति के सवेगात्मक विकास पर प्रभाव पडता है।

2. **स्वास्थ्य** (Health) —व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य का उसके सवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ सबध होता है। स्वस्थ्य व्यक्ति की अपेक्षा बीमार, रोगग्रस्त अथवा शारीरिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियो मे सवेगात्मक अस्थिरता अधिक होती है।

3. **थकान** (Fatigue) —थकान भी व्यक्ति के सवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करती है। थके हुए व्यक्ति मे क्रोध, नाराजगी या चिडचिडापन जैसे ऋणात्मक या अवाछनीय सवेग प्रदर्शित करने की अधिक प्रवृति पाई जाती है।

4. **मानसिक योग्यता** (Mental Abilities) —व्यक्ति के सवेगात्मक व्यवहार पर उसकी मानसिक क्षमता का अत्याधिक प्रभाव पडता है। अधिक बुद्धिमान व्यक्तियो का सवेगात्मक क्षेत्र विस्तृत होता है। उच्च मानसिक क्षमता वाले बालकों मे अपने सवेगो को नियत्रित करने की अधिक क्षमता होती है।

5. **परिवार का वातावरण** (Environment of the Family) —परिवार के वातावरण तथा सदस्यो का सवेगात्मक व्यवहार भी बालकों के सवेगात्मक विकास को तीन ढग से प्रभावित करता है। प्रथम, यदि परिवार मे शाति, सुरक्षा व स्नेह का वातावरण होता है तो बालक का सतुलित ढग से सवेगात्मक विकास होता है। द्वितीय, यदि परिवार मे कलहपूर्ण, अत्यधिक सामाजिक तथा मौज-मस्ती का वातावरण रहता है तो बालको मे अत्यधिक सवेग उत्पन्न हो जाते है। तृतीय, यदि परिवार के सदस्य अत्यधिक सवेदनशील होते है तथा अत्यधिक सवेगात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं तो बालक भी अत्यधिक सवेदनशील होकर सवेगात्मक व्यवहार करते है।

6. **अँभिभावकों का दृष्टिकोण** (Attitude of Parents) —बालको के प्रति माता-पिता का दृष्टिकोण तथा व्यवहार भी बालको के सवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। बच्चो की उपेक्षा करना, घर से अधिक समय बाहर रहना, बच्चो के सबध मे अत्यधिक चिंतित रहना, बच्चों को अत्यधिक सरक्षण देना, बच्चो को बालसुलभ अनुभवो से वचित रखना, बच्चो को अत्यधिक लाडप्यार करना अथवा बच्चो के प्रत्येक कार्य मे हस्तक्षेप करना जैसे व्यवहार बच्चो मे अवाछनीय संवेगात्मक व्यवहार विकसित कर देते है।

7. **सामाजिक-आर्थिक स्थिति** (Socio-Economic Status) —परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी सवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करती है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले बालक-बालिकाओ मे निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले बालक-बालिकाओ की तुलना मे सवेगात्मक स्थिरता अधिक होती है। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले बालक-बालिकाये धनी बालकों को उत्तम खानपान, वेशभूषा, सुख व एश्वर्य से युक्त देखते है जिंसके फल्वरुप उनमे ईर्ष्या, द्वेष जैसे ऋणात्मक सवेग अधिक विकसित हो जाते है।

8. **सामाजिक स्वीकृति** (Social Acceptance) —व्यक्ति के द्वारा किये गये कार्यों के फलस्वरुप प्राप्त सामाजिक स्वीकृति भी उसके सवेगात्मक विकास को प्रभावित करती है। व्यक्ति अपने कार्यों की दूसरों के द्वारा प्रशसा चाहता है। जब उसकी अभिलाषा पूर्ण नही होती है तब उसमे सवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में यदि व्यक्ति को अपने कार्यों की सामाजिक स्वीकृति नही मिलती है तो उसका सवेगात्मक व्यवहार या तो शिथिल हो जाता है अथवा उग्र हो जाता है।

9. **विद्यालय** (School) —विद्यालय का बालकों के सवेगात्मक विकास पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बालक विभिन्न क्रियाओ के द्वारा अपने सवेगों की अभिव्यक्ति करता है। यदि विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम, कार्यक्रम, शिक्षक वृन्द इत्यादि बालको के सवेगो के अनुकूल होते है तो उन्हे आनन्द की प्राप्ति होती है तथा उनका स्वस्थ सवेगात्मक विकास होता है। इसके विपरीत विद्यालयी वातावरण से तालमेल न होने पर, परीक्षा मे असफल हो जाने पर, अध्यापकों के अत्यधिक शुष्क व्यवहार आदि के कारण बालकों मे अवाछित सवेग जैसे भय, क्रोध, चिडचिडाहट या घृणा आदि उत्पन्न हो जाते है। अध्यापकगण बालको के समक्ष अच्छे तथा बुरे उदाहरण प्रस्तुत करके उनको साहसी या डरपोक, क्रोधी या सहनशील, शांत या कलहप्रिय बना सकते है। अच्छी आदतो के निर्माण तथा अच्छे आदर्शों का अनुसरण करने की इच्छा सवेगों को नियंत्रित करने की क्षमता प्रदान करती है।

उपसंहार

मानव जीवन में सवेगों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति के व्यवहार का सबध सवेगों से होता है तथा शिक्षा का संबध व्यवहार के परिशोधन से होता है। इसलिये बालकों के संवेगात्मक व्यवहार का अध्ययन करना शैक्षिक दृष्टि से अत्यत उपयोगी है। माता-पिता तथा अध्यापकों को बालकों के संवेगात्मक व्यवहार का अध्ययन करके उनका उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। शिक्षा के द्वारा अवाछित सवेगों को नियत्रित करने तथा वांछित सवेगों को प्रोत्साहित करने के प्रयास किये जाने चाहिए। बालको के वातावरण को इस प्रकार से नियंत्रित करना चाहिए कि एक ओर जहाँ उनमे अवाछित सवेगो का उदय न हो सके, वही दूसरी ओर उनमें वाछित संवेगों का संचार हो सके। शोधन (Sublimation), अध्यवसाय (Industriousness) तथा रेचन (Catharsis) के द्वारा सवेगों को नियन्त्रित किया जा सकता है। शोधन में अवांछित सवेगों को परिमार्जित करके उन्हे अच्छी दिशा दी जा सकती है। जैसे क्रोध की

प्रवृत्ति को शत्रुओ की ओर या काम प्रवृत्ति को साहित्य की ओर परिवर्तित किया जा सकता है। अध्यवसाय मे रत रहना, सवेगो को वशीभूत करने का एक अच्छा उपाय है। रेचन का तात्पर्य है कि सवेगो को आने से रोका न जाये वरन् सवेगो को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त अवसर दिए जाए। नि सदेह अध्यापक तथा अभिभावकगण बालको के सवेगात्मक विकास मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है। पाठ्यसहगामी क्रियाओ जैसे नाटक, खेल, स्काउटिग, भ्रमण आदि के माध्यम से छात्रो का उचित ढग से सवेगात्मक विकास किया जा सकता है।

12 नैतिक विकास
(Moral Development)

व्यक्ति जिस समाज तथा समुदाय मे रहता है वह समाज व समुदाय उसके ऊपर तरह-तरह के सामाजिक बंधन, निर्देश अथवा दायित्व आरोपित करता है जिन्हे समाज के आदर्श (Ideals) या मानक (Norms) कहते है। समाज के द्वारा आरोपित इन बधनो, दायित्वो व निर्देशो का व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओ से सघर्ष (Conflicts) होना स्वाभाविक ही होता है। अधिकाश व्यक्ति सामाजिक बंधनो को कोई ऐसे बाह्य बधन नही मानते है, जिन्हे उन पर जबर्दस्ती आरोपित किया गया हो। प्राय समाज के बंधन व्यक्ति की जीवन-शैली के अग बनकर उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। वास्तव मे सामाजिक बधन प्रारम्भ मे व्यक्ति को बाह्य (External) प्रतीत होते हैं तथा प्राय· वे व्यक्ति की इच्छापूर्ति में बाधक होते है। प्रारम्भ मे बालक सामाजिक नियमों, मानकों अथवा कानूनों को समझने अथवा स्वीकार करने के लिए तत्पर नही होते है, परतु बालकों को ऐसा करने के लिए समाजीकृत किया जाता है। समाजीकरण की वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज मे प्रचलित आचरण के नैतिक मानदण्डों (Moral Standards of Conduct) को अपने मे समाहित (Internalize) करता है तथा सीखता है कि व्यक्तिगत इच्छाओं तथा सामाजिक दायित्व के सघर्ष को किस प्रकार से नियन्त्रित किया जाये, नैतिक विकास कहलाती है। जीन प्याजे (Jean Piaget) के अनुसार नैतिक विकास न्याय (Justice) के परिपक्व तथा स्वस्फूर्त (Atonomous) प्रत्ययों की प्राप्ति है।" बौद्धिक विकास का नैतिक विकास से घनिष्ठ सबध है। बौद्धिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे बालक भिन्न-भिन्न ढग से सोचते तथा समझते हैं इसीलिए बौद्धिक विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में सामाजिक नियमों, कानूनों तथा प्रचलनों (Customs) की समझ भिन्न-भिन्न होती है। बालक अपने सतत् क्रियाशील प्रयासो के द्वारा बाह्य जगत को समझने तथा अपने सामाजिक अनुभवों को नैतिक मूल्यों तथा निर्णय के रुप मे संगठित करने का प्रयास करता रहता है। बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तरो पर बालको के नैतिक मूल्यों तथा निर्णयों का संगठन भिन्न-भिन्न होता है। जैसे-जैसे बालकों का बौद्धिक विकास होता जाता है वैसे-वैसे उनके नैतिक मूल्यों तथा नैतिक निर्णयो मे परिवर्तन आता जाता है। बालकों में होने वाले नैतिक विकास के संबंध में प्याजे (Piaget) तथा कोहलबर्ग (Kohlberg) ने अपने-अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं। इन दोनों सिद्धान्तों की चर्चा प्रस्तुत अध्याय मे की गई है।

प्याजे का नैतिक विकास सिद्धान्त
(Piaget's Theory of Moral Development)

जीन प्याजे ने नियमो, अधिकारो, दोषो, पापों व अत्याचारों के मूल्याकन, समानता तथा पर निर्भरता से सबधित प्रश्नो तथा कहानियो के माध्यम से बच्चों के गहन साक्षात्कार लिए तथा इससे प्राप्त सूचनाओ का विशलेषण करके बालकों के नैतिक विकास का अध्ययन किया। उसके अनुसार नैतिक विकास के तीन मुख्य स्तर होते है।

(i) **नैतिक यथार्थता** (Moral Realism)
(ii) **नैतिक समानता** (Moral Equality)
(iii) **नैतिक सापेक्षता** (Moral Relativism)

1. **नैतिक यथार्थता** (Moral Realism) —यह नैतिक विकास का प्रथम स्तर है जो लगभग सात-आठ वर्ष की आयु तक चलता है इसे विषम नैतिकता (Hetronomous Morality) अथवा विवशता की नैतिकता (Morality of Constraint) भी कहते है। नैतिक विकास के इस स्तर पर बालक के अदर विद्यमान नैतिकता अन्यो के द्वारा स्थापित नियमो पर आधारित होती है। नियमो, उत्तरदायित्वो अथवा निर्देशो को अपरिवर्तनीय, अविचारणीय तथा निरपेक्ष माना जाता है। जो कुछ भी अधिकारी, बुजुर्ग अथवा नियम कहते है वही न्याय है, वही उचित है। जो भी दण्ड अथवा पुरस्कार बडे व्यक्ति देते है वही स्वीकार्य होता है। आज्ञा पालन अच्छा माना जाता है। नैतिक विकास के इस स्तर पर बालक अपने स्वहित के भाव से नियमो का पालन करते है। उनका यह विश्वास होता है कि अत्याचार या बेईमानी करने पर प्रकृति दडित करती है तथा कोई भी बात या तो पूर्णतया सही होती है या पूर्णतया गलत होती है। उद्देश्य के आधार पर नही वरन् परिणाम के आधार पर व्यक्ति के कार्यों को सही अथवा गलत ठहराया जाता है। जिस कार्य का परिणाम जितना अधिक गम्भीर होता है, उसके लिए मिलने वाला दड भी उतना ही अधिक कष्टप्रद होने की आशा की जाती है।

प्याजे के अनुसार नैतिक यथार्थता के दो मूल स्रोत होते है—(i) बालकों की बौद्धिक सरचना तथा (ii) उनके अनुभव। बौद्धिक कारको मे बालको का अह केन्द्रीयकरण (Ego Centerism) तथा उसके विचारो की वास्तविकताये (Realism of Thought) आती हैं। अहम् केन्द्रीयकरण से तात्पर्य बालक की इस मान्यता से है कि सभी व्यक्तियो के घटना के सम्बन्ध में वही विचार है जो मेरे है। विचारों की वास्तविकता से तात्पर्य नियमो तथा विचारो को भौतिक वस्तुओ के समान मानने की प्रवृत्ति से है। आनुभाविक कारको मे बालको के ऊपर प्रौढों का नियन्त्रण व दबाव, बालको व प्रौढों के अधिकारों में अतर तथा बालकों का माता-पिता व बुजुर्गों के प्रति सम्मान आते हैं।

2. **नैतिकता समानता** (Moral Equality) —नैतिक विकास का दूसरा स्तर लगभग सात-आठ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर लगभग 12 वर्ष की आयु तक चलता

है । यह स्तर हम उम्र बच्चो (Peers) के साथ बढती अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है । हम उम्र साथियो के साथ बालक की अन्तर्क्रिया वस्तुत समानता (Equalitarian) तथा लेने-देने के सम्बन्धो (Give and Take Relationships) पर आधारित होती है । इस स्तर पर बालक की दृष्टि मे न्याय मुख्यत व्युतक्रम दड (Reciprocal Punishment) तथा समानता पर केन्द्रित हो जाता है । बालक पारस्परिक सहमति के आधार पर अपने खेल के नियमो का निर्धारण करने लगते है । स्वकेन्द्रित खेलो से हटकर बालक सहयोगात्मक खेलो मे अधिक रूचि लेने लगते है । चार पाँच वर्ष के बालक खेलो के नियमो की भिन्न-भिन्न समझ रखते है, अन्य बालक सही खेल रहे है अथवा गलत, इस पर उनका ध्यान कम होता है, वे नियमो की अपनी समझ के अनुरुप खेलते है । परतु आठ-नौ वर्ष के बालको के खेल का ढग इससे बिल्कुल भिन्न होता है । सभी बालको को खेल के एक समान नियम (Common Set of Rules) ज्ञात रहते है । अन्य बालको के खेल का पारस्परिक निरीक्षण (Mutual Surveillance) करना सामान्य बात होती है । खेल मे ईमानदारी (Honesty) बनाये रखने के लिए सभी भरसक प्रयास करते है । इस आयु के खेलो का अधिकाश समय नियमो तथा बेईमानी के ऊपर तर्क-वितर्क करते हुए गुजर जाता है । तुमने बेईमानी की है ? नही-नही ! मैं तो ठीक खेल रहा हूँ ; तुमने गेद को छू लिया है ? नही, मैने गेद को नही छुआ है, नही-नही ! तुमने गेद को छुआ था, देखो ! यह ठीक नही है, तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए, जैसे तर्क-वितर्क बच्चो के द्वारा खेलते समय करते हुए बच्चो के साथ देखे जा सकते है ।

प्याजे के अनुसार हम उम्र बच्चो मे इस प्रकार के तर्कविर्तको के कारण ही वे स्वकेन्द्रित खेल (Egocentric Play) से सहयोगात्मक खेल (Co-operative Play) की ओर अग्रसर होते है । तर्क-वितर्क के फलस्वरुप बालको मे परस्पर सम्मान तथा सहयोग की भावना विकसित होती है । इस प्रकार का नैतिक विकास तब ही होता है जब बालको मे अन्य व्यक्तियो के दृष्टिकोण को ग्रहण करने तथा जटिल मान्यताओ को समझने की योग्यता विकसित हो रही होती है ।

3. **नैतिक सापेक्षता (Moral Relativism)** —नैतिक विकास का यह स्तर सर्वाधिक विकसित स्तर है । प्याजे ने इसे स्वत नैतिकता (Autonomous Morality) अथवा सहयोगात्मक नैतिकता (Morality of Co-operation) के नाम से भी सम्बोधित किया है । यह स्तर सामान्यत लगभग 12 वर्ष की आयु मे प्रारम्भ होता है । इस स्तर पर न्याय की सकल्पना मुख्यत समानता पर आधारित होती हैं तथा वितरित न्याय की समानता (Equalitarion Concepts of Distributive Justice) का प्रत्यय प्रबल हो जाता है । नैतिकता को पारस्परिक सम्मान पर आधारित स्वीकार किया जाता है । बाह्य दबाव के अभाव मे न्याय के आदर्शों का अनुसरण किया जाता है । परिस्थितियो, उद्देश्यो तथा मनोभावों को नैतिक निर्णय देते समय विशेष रुप से ध्यान मे रखा जाता है । नियमों को सामाजिक अन्तर्क्रिया तथा आम सहमति के आधार पर निर्मित माना जाता है तथा ये नियम आवश्यकतानुसार परिवर्तनीय होते है । इस स्तर पर बालक तथा किशोर नैतिक निर्णयो के सबध मे अपने स्वय के नियम बनाना शुरु कर लेते है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नैतिक यथार्थता स्तर पर बालको मे नियमों का अंध-अनुसरण (Blind-Obedience) करने की प्रवृत्ति होती है, नैतिक समानता स्तर पर नियमो की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है तथा नैतिक सापेक्षता स्तर पर कार्यों की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है। प्याजे के अनुसार सहयोग, पारस्परिक पर-निर्भरता तथा विभिन्न दृष्टिकोणो के प्रति जागरुकता व्यक्ति को स्वत नैतिकता के स्तर तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। नैतिक शिक्षा, घरेलू जीवन तथा अन्य वातावरणीय कारको के काण उनके दृष्टिकोण तथा नैतिक विकास मे अतर आ जाता है। निरपेक्ष नियमो से रहित अत क्रिया वाले समूहो के बालको मे व्यक्तिगत समानता तथा समूह सार्वभौमिकता की भावना प्रोत्साहित होती है तथा नियमों के निर्माण मे सहभागिता बढती है।

कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त (Kohlberg's Theory of Moral Development)

लारेंस कोहलबर्ग (Lawrence Kohlberg) ने प्याजे के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास से सबधित विचारो को विस्तत करके तार्किक चिन्तन के तीन स्तरो, जिनमे से प्रत्येक के कुछ सोपान है, के रूप मे नैतिक विकास के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। दस वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के बालको के सम्मुख कहानियो के रुप मे नैतिक दुविधाओ को (Moral Dilemmas) प्रस्तुत किया तथा इन दुविधाओं पर आधारित साक्षात्कार लिये। इन कहानियो मे नियमों या बडो के निर्देश पालन से सबधित नैतिक दुविधाये प्रस्तुत की गई थीं। इन साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाओ के विश्लेषण से कोहलबर्ग ने नैतिक विकास से निम्नाकित तीन प्रमुख स्तर तथा सात सोपान बताये है—

स्तर (Stage)	सोपान (Levels)
I. पूर्व परम्परागत स्तर (Pre-Conventional Level)	0. आत्मकेन्द्रित निर्णय (Ego Centric Judgement) 1. दड तथा आज्ञा पालन अभिमुखता (Punishment and Obediance Orientaion) 2 यान्त्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrument Relativist Orientation)
II परम्परागत स्तर (Conventional Level)	3. परस्पर एकरुप अभिमुखता (Interpersonal Concordance Orientation 4. अधिकार सरक्षण अभिमुखता (Authority-Maintaining Orientation)

III. उत्तर परम्परागत स्तर (Post-Conventional Level)	5. सामाजिक अनुबंध विधि सम्मत अभिमुखता (Social Contract Legalistic Orientation) 6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुख ता (Universal Ethical Principle Orientation)

पूर्व-परम्परागत स्तर
(Pre-Conventional Level)

इस स्तर पर बालक अपनी आवश्यकताओ के सदर्भ मे चिन्तन करते है । नैतिक दुविधाओ से युक्त प्रश्नो पर उनके उत्तर प्राय. उनको होने वाले लाभ या हानि पर आधारित होते है । नैतिक कार्य अच्छे या बुरे कार्यों मे निहित होते है न कि अच्छे या बुरे व्यक्तियो मे । सामाजिक व सास्कृतिक नियमो जैसे अच्छा या बुरा, सही या गलत आदि की व्याख्या मिलने वाले दड, पुरस्कार अथवा नियमों का समर्थन करने वाले व्यक्तियों की शारीरिक सामर्थ्य अथवा होने वाले स्थूल परिणामो से आकी जाती है । इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नाकित तीन उपसोपानो मे बाटा जा सकता है—

1. आत्मकेन्द्रित निर्णय (Ego Centric Judgement)—इस सोपान मे बालक प्रत्येक उस कार्य को जिसे वे करना पसंद करते हैं अथवा उस वस्तु को जिसे वे प्राप्त करना चाहते है अथवा उस व्यक्ति को जो उनकी सहायता करता है अच्छा समझते हैं । इसके विपरीत कोई भी ऐसा कार्य, वस्तु या व्यक्ति, जिसे वे नापसद करते है, जिसे वे प्राप्त करना नही चाहते हैं अथवा व्यक्ति जो उन्हे हानि पहुँचाता है, उसे खराब समझते हैं । इस स्तर पर बालको मे अपनी इच्छा-अनिच्छा अथवा पसद-नापसंद से अलग हटकर नियमो अथवा दायित्वो का कोई विचार नही होता है ।

2. दंड तथा आज्ञापालन अभिमुखता (Punishment and Obendiance Orientation)—इस सोपान मे बालक बडे व्यक्तियो अथवा अधिकार सम्पन्न व्यक्तियो के द्वारा दिये जाने वाले दड से बचने के प्रति चिन्तित रहते है । वे नियमों तथा उनको तोड़ने से होने वाले दुष्परिणामो को समझते हैं । किसी कार्य के करने पर होने वाले स्थूल परिणाम उस कार्य को अच्छा अथवा बुरा निर्धारित करते है । अधिकार अथवा शक्ति ही कार्य को उचित अथवा अनुचित ठहराते हैं ।

3. यान्त्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrument Relativist Orientation)—नैतिक विकास के इस सोपान मे बालक अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति तब ही करना चाहते है जब वे उनकी पूर्ति कर सकने मे समर्थ होते है । वे स्वलाभ से प्रोत्साहित होते हैं तथा इस बात को समझते हैं कि सबध स्थूल पर-निर्भरता से बनते हैं न कि निष्ठा, न्याय अथवा समपर्ण के भाव से । वे मानते है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयम् को देखना होता है तथा कोई भी व्यक्ति केवल उन व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है जो उसकी सहायता

परम्परागत स्तर
(Conventional Level)

कोह्लबर्ग के अनुसार नैतिक विकास के परम्परागत स्तर पर नैतिक मूल्य अच्छे या बुरे कार्यों को करने मे निहित रहते हैं । बालक बाह्य सामाजिक अपेक्षाओ को पूरा करने मे रुचि लेते है । वे अपने परिवार, अपने समूह अथवा अपने राष्ट्र की अपेक्षाओं को पूरा करने को महत्व देते है तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियो तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुरुप कार्य करते है । उनमे परम्परागत नियमो तथा दायित्वो के प्रति समर्थन तथा औचित्य का भाव रहता है । इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नांकित दो उपसोपानो मे बॉटा जा सकता है—

1. परस्पर एकरुप अभिमुखता (Inter-personal Concordance Orientaion) —इस सोपान मे बालक अच्छा बनकर अन्य व्यक्तियो से प्रशसा प्राप्त करना चाहते है । वे अच्छे बालक अथवा अच्छी बालिका जैसा व्यवहार करने मे रुचि लेते हैं । जो कुछ अन्यो को अच्छा लगे या अन्यो की सहायता करे या अन्यो के द्वारा स्वीकृत हो, वही उत्तम माना जाता है । बालक दूसरे के भावो तथा इरादो (Intentions) का ध्यान रखने की आवश्यकता के प्रति सजग रहते है । सहयोग को सर्वोत्तम आचरण के रुप मे स्वीकार किया जाता है ।

2. अधिकार संरक्षण अभिमुखता (Authority Maintaining Orientation) —इस सोपान मे बालक सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत नियमो तथा दायित्वो के अनुरुप कार्य करने की भावना से प्रोत्साहित रहते है । वे सर्वहित दृष्टि से विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखना चाहते है । वे समझते है कि समाज मे एक व्यापक सामाजिक प्रणाली है जो उसमे रहने वाले व्यक्तियो के व्यवहार को नियन्त्रित करती है । उनके विचार मे नैतिकता का आधार सामाजिक व्यवस्था है तथा व्यक्तिगत हानि की स्थिति मे भी नियमो का पालन किया जाना चाहिए ।

उत्तर-परम्परागत स्तर
(Post-Conventional Level)

नैतिक विकास के इस तृतीय तथा सर्वोच्च स्तर पर बालक उन नैतिक मूल्यो तथा नैतिक सिद्धान्तो को पारिभाषित करने के स्पष्ट प्रयास करने लगते है जिनकी वैधता या उपयोगिता होती है तथा जो परम्परागत मूल्यो, नियमो या सिद्धान्तो से भिन्न होते है । उनमे स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तो के प्रति निष्ठा तथा अनुसरण करने की भावना होती है । नैतिक मूल्य उभयनिष्ठ मानदण्डो, अधिकारो तथा कर्त्तव्यो की पूर्ति मे निहित माने जाते है । इस स्तर पर होने वाले नैतिक विकास को निम्नाकित दो सोपानों मे बांटा जा सकता है—

1. सामाजिक अनुबंध विधि सम्मत अभिमुखता (Social Contract Legalistic Orientation) —इस सोपान के अतर्गत उचित कार्यो को आलोचनात्मक ढग से परखकर समस्त समुदाय के द्वारा स्वीकृत किये गये सामान्य व्यक्तिगत अधिकारो व मानदण्डो के रुप मे परिभाषित करने की प्रवृत्ति आ जाती है । व्यक्तिगत मूल्यो तथा

विचारो के सापेक्षवाद के प्रति जागरुकता के फलस्वरुप आम सहमति पर पहुँचने के लिए कार्यगत नियमो (Pıoceduıal Rules) पर बल दिया जाने लगता है। समाज की आम सहमति क्या है के अलावा नियमो को सामाजिक उपयोगिता के तार्किक विचार विमर्श (Rational Consıdcratıons) के आधार पर परिवर्तित करने की सम्भावना रहती है। विधि सम्मत नियमो के अतिरिक्त स्वतत्र स्वीकारोक्ति या समपर्ण भाव व्यक्ति को अपने दायित्वो का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

2. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता (Universal Ethical Principles Orientation) —इस सोपान मे व्यक्ति उचित-अनुचित का निर्णय ऐसे स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धान्तो के आधार पर करता है जो तार्किक व्यापकता (Logical Comprehensıvness), सार्वभौमिकता (Unıversality) तथा एकरुपता (Consıstancy) से युक्त होते है। ये सिद्धान्त अमूर्त तथा नैतिक बोध से युक्त होते है। वे न्याय के सर्वमान्य प्राकृतिक सिद्धान्त होते है। वे मानव अधिकारो की समानता, परस्परता तथा मानव जाति के प्रति सम्मान की भावना से युक्त होते है।

कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित नैतिक विकास के विभिन्न स्तरो तथा सोपानो के अवलोकन से स्पष्ट है कि तीनो स्तर तथा सातों सोपान नैतिक निर्णय लेने की बढती योग्यता तथा दृष्टिकोणो की बढती व्यापकता व अमूर्तता को इगित करते है। प्रथम स्तर पर बालक आत्केन्द्रित होते है क्योकि वे स्वहित की दृष्टि से ही नैतिक व्यवहार करते है तथा दड से बचना चाहते है। इसके विपरीत तृतीय स्तर मे व्यक्ति बाह्य केन्द्रित हो जाते है तथा वे निष्पक्ष भाव से अन्य व्यक्तियो के सबध मे विचार करने की योग्यता विकसित कर लेते है। कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास के विभिन्न सोपानो पर नैतिक निर्णय प्रक्रिया निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी।

नैतिक प्रश्न : उदाहरणार्थ माना कि आपकी माँ सख्त बीमार है। रात्रि 11 बजे डाक्टर ने इन्हें देने के लिए कोई दवा बताई है। आप बाजार मे दवा खरीदने जाते है, परतु सभी दुकाने बद है। डाक्टर का कहना है कि दवा तुरंत चाहिए वरना आपनी माँ का स्वर्गवास हो सकता है। ऐसी स्थिति मे क्या आप अपने किसी मित्र, जो शहर मे कहीं दूर रहता है, की दुकान का ताला तोडकर दवा लाना चाहेगे ?

नैतिक विकास के विभिन्न सोपानों में उपरोक्त प्रश्न पर बालक के भिन्न भिन्न उत्तर होगे। जिन्हे अग्राकित तालिका मे प्रस्तुत किया गया है।

तालिका

नैतिक विकास के विभिन्न स्तरों पर नैतिक चिन्तन

नैतिक विकास का स्तर व सोपान	उत्तर	कारण
I. पूर्व परम्परागत स्तर 0. आत्मकेन्द्रित निर्णय	हाँ	ऐसी परिस्थिति मे दुकान का ताला तोडकर दवा ले आना चाहिए, जिससे माँ का जीवन बचाया जा सके।

1. दड तथा आज्ञापालन अभिमुखता	नही	किसी भी परिस्थिति मे दूसरे की दुकान का ताला नही तोडना चाहिए, क्योकि ऐसा करने से पुलिस दड देगी।
2. यान्त्रिक सापेक्षिक अभिमुखता	हाँ	ऐसी परिस्थिति में दुकान का ताला तोडकर दवा ले आना चाहिए, क्योंकि माँ का जीवन मुल्य है।
II. परम्परागत स्तर		
3. परस्पर एकरुप अभिमुखता	नही	किसी भी परिस्थिति मे दूसरों की दुकान का ताला नही तोडना चाहिए, ऐसा गलत व्यक्ति ही करते है।
4. अधिकार सरक्षण अभिमुखता	नही	किसी भी परिस्थिति मे दूसरो की दुकान का ताला नही तोडना चाहिए। ऐसा करना सामाजिक प्रणाली के विरुद्ध होगा। हमे व्यक्तिगत हानि सहन करनी चाहिये।
III. उत्तर परम्परागत स्तर 5. सामाजिक अनुबध विधि सम्मत अभिमुखता	हाँ	सामाजिक नियम एक-दूसरे के लाभ के लिए वनाए गए हैं इसलिए परिस्थिति की तात्कालिक आवश्यकता को देखते हुए दुकान का ताल तोडकर दवा ले आनी चाहिए।
6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता	हाँ	किसी भी मानव जीवन को बचाना मुख्य है इसलिए ऐसी सकटकालीन स्थिति मे दुकान का ताला तोडकर ले आनी चाहिए।

प्याजे के द्वारा प्रस्तुत बौद्धिक विकास के स्तरो व नैतिक विकास के सोपानों तथा कोहलबर्ग के द्वारा प्रस्तुत नैतिक विकास के सोपानों मे परस्पर सबध प्रतीत होता है जिसे निम्नाकित तालिका मे प्रस्तुत किया गया है।

तालिका

बौद्धिक तथा नैतिक विकास के सोपानों में संबंध
(Relationship between Logical and Moral Stages)

प्याजे के अनुसार बौद्धिक विकास के सोपान	प्याजे के अनुसार नैतिक विकास के सोपान	कोहलबर्ग के अनुसार नैतिक विकास के सोपान
1. सावेदिक गतिक अवस्था	—	—

2. पूर्व सक्रिया अवस्था	I. नैतिक यथार्थता	0. आत्मकेन्द्रित निर्णय 1. दड तथा आज्ञापालन अभिमुखता
3. मूर्त सक्रिया अवस्था	II. नैतिक समानता	2. यान्त्रिक सापेक्षिक अभिमुखता
4. औपचारिक सक्रिया अवस्था	II. नैतिक सापेक्षिता	3. परस्पर एकरुप अभिमुखता 4. अधिकार सरक्षण अभिमुखता 5. सामाजिक अनुबध विधि सम्मत अभिमुखता 6. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्त अभिमुखता

नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Moral Development)

व्यक्ति के नैतिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है। जैवकीय निर्धारक, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि तथा बौद्धिक कारक बालक के नैतिक व्यवहार को मुख्य रुप से प्रभावित करते है। बालक के नैतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कुछ मुख्य कारक निम्नवत् है—

1. **स्वास्थ्य** (Health) —जैवकीय कारको के अन्तर्गत स्वास्थ्य एक ऐसा कारक हैं जो बालक के नैतिक व्यवहार को विशेष रुप से प्रभावित करता है। जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक स्वास्थ्य व्यक्ति के दृष्टिकोणो तथा आदर्शो पर प्रभाव डालता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व क्रियाशील बालक प्राय वाछनीय व्यवहार को अधिक शीघ्रता से सीख लेता है।

2. **पारिवारिक प्रभाव** (Home Influence)—परिवार नैतिक विकास को प्रभावित करने वाला एक अत्यत महत्वपूर्ण तथा शक्ति शाली कारक है। माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यो के नैतिक विचारो तथा परिवार मे नैतिक अनुशासन व पारिवारिक स्नेह की कमी जैसे कारक बालक के नैतिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

3. **समूह का प्रभाव** (Group Influence) —बालक अथवा व्यक्ति के नैतिक व्यवहर पर उसके समूह के नैतिक दृष्टिकोणों का भी प्रभाव पडता है। बालक के द्वारा किसी कार्य को उचित अथवा अनुचित मानना काफी हद तक उसके समूह के साथियो के द्वारा नियन्त्रित होता है। समूह जिस कार्य को करना उचित समझता है, व्यक्ति भी उसे करना उचित समझता है।

4. **धार्मिक प्रभाव** (Religious Influence) —नैतिक विकास मे धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लगभग सभी धर्म नैतिक मूल्यो के विकास पर बल देते है। बालक धर्म के प्रति जितना अधिक समर्पित होता है उसका नैतिक विकास भी उतना ही अधिक अच्छा होता है।

5. **जनसंचार का प्रभाव** (Mass-Media Influence) —रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन, पुस्तक, पत्र-पत्रिका आदि जनसचार के साधन भी वालक के नैतिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अधिकाश वालको का काफी समय रेडियो सुनने, चलचित्र व दूरदर्शन देखने तथा पुस्तके व पत्रिकाये पढने मे व्यतीत होता है। उत्तम पुस्तके व पत्रिकाये वालको मे नैतिक व्यवहार को विकसित करने मे सहायक हो सकती हैं।

6. **मानसिक योग्यता** (Mental Ability) —नैतिक विकास को व्यक्ति की मानसिक योग्यता भी प्रभावित करती है। बुद्धिमान तथा मूर्ख बच्चो के नैतिक आदर्श, नैतिक मूल्य तथा नैतिक दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होते है। वालक अपने सतत् प्रयासो से अपने चारो ओर के ससार को समझते है तथा अपने सामाजिक अनुभवो के आधार पर नैतिक मूल्यो का विकास करते है। अपने ससार को समझने तथा अनुभव प्राप्त करने की प्रक्रिया व्यक्ति की मानसिक योग्यता से भी प्रभावित होती है, जो कालान्तर मे उसके नैतिक मूल्यो को प्रभावित करती है।

स्पष्ट है कि व्यक्ति के नैतिक व्यवहार को अनेक जैवकीय कारक, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि तथा बौद्धिक क्षमता इत्यादि प्रभावित करती है। बालक के स्वास्थ्य, पारिवारिक वातावरण की समृद्धता एव समूह, सस्कृति व धर्म के योगदान को बढाकर, जनसचार की भूमिका को प्रभावशाली बनाकर तथा मानसिक विकास मे उन्नयन करके उसके नैतिक विकास को वाछित गति दी जा सकती है। परिवार तथा विद्यालय का सहयोग, वालको के समूह का अध्ययन, व्यापक अनुभव, सनातन मूल्यो के प्रति सम्मान तथा मानव कल्याण की भावना का विकास इस दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

---

13 व्यक्तिगत भिन्नतायें
(Individual Differences)

विभिन्न व्यक्तियो मे परस्पर भिन्नता का होना प्रकृति की स्वाभाविक देन है। ससार मे कोई भी दो व्यक्ति पूर्णरुपेण एक दूसरे के समान नही होते, व्यक्तियों में परस्पर कुछ न कुछ अतर अवश्य होते है। यहा तक कि एक ही माता-पिता की सतानों मे भी रग-रुप, शारीरिक गठन, बुद्धि, रुचि आदि मे स्पष्ट रुप से भिन्नता होती है। वास्तव मे प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कुछ व्यक्तिगत विशेषताये होती हैं जो उसे अन्य व्यक्तियो से भिन्न व्यक्ति के रुप मे प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत अध्याय मे व्यक्तिगत भिन्नताओं तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों की चर्चा की गई है।

व्यक्तिगत भिन्नताओं का अर्थ
(Meaning of Individual Differences)

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का इतिहास सम्भवत मानव जाति के इतिहास जितना ही प्राचीन है। सदैव ही व्यक्तियो मे उनकी योग्यताओ तथा सामर्थ्य के आधार पर भेद किया जाता रहा है। प्राचीन काल मे व्यक्ति की शारीरिक सामर्थ्य तथा मानसिक योग्यता के आधार पर भेद करने के स्पष्ट उदाहरण मिलते है। परतु उस समय शारीरिक सामर्थ्य तथा मानसिक योग्यता का मापन करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियाँ अप्रमाणिक (Crude) थी। आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्माण के फलस्वरुप व्यक्तिगत भिन्नता का विचार स्पष्ट रुप से सामने आया। सन् 1796 मे ग्रीनविच वेधशाला के एक कर्मचारी को इसलिए नौकरी से निकाल दिया गया कि उसके कार्य करने की यथार्थता कुछ कम थी। सर फ्रासिस गाल्टन ने सन् 1869 में लिखी अपनी पुस्तक हेरिडटरी जीनियस (hereditary Genius) नामक अपनी पुस्तक में व्यक्तिगत भिन्नताओ का वैज्ञानिक ढग से विवेचन प्रस्तुत किया। बीसवी शताब्दी मे पियरसन्, कैटल, टरमैन आदि मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तिगत भिन्नताओ का विधिवत् अध्ययन किया। आधुनिक काल मे शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तिगत भिन्नताओं को अत्यत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

व्यक्तिगत भिन्नता से तात्पर्य रगरुप, शारीरिक गठन, बुद्धि, रुचि, स्वभाव, व्यक्तित्व आदि गुणो मे एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से भिन्न होने से है। व्यक्तिगत भिन्नताओ की बालको के विकास मे अत्यत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बालक की बुद्धि, रुचि, योग्यताओ आदि के अनुरुप विकास के अवसर मिलने पर ही वह अपने सर्वोत्तम विकास के स्तर को प्राप्त कर सकता है। व्यक्तियो में जिन बातो मे भिन्नता पाई जाती है उनके आधार पर व्यक्तिगत भिन्नताओं के निम्नाकित तीन मुख्य प्रकार हो सकते हैं—

1. **शारीरिक भिन्नताये** (Physical Differences)—विभिन्न व्यक्ति रगरुप, शारीरिक गठन, लम्बाई, भार, लिगभेद आदि मे भिन्न-भिन्न होते है। कुछ व्यक्ति लम्बे होते है, कुछ औसत लम्बाई के होते है तथा कुछ ठिगने कद के होते है। इसी प्रकार से कुछ व्यक्ति मोटे होते है तथा कुछ व्यक्ति दुबले होते है. कुछ व्यक्ति गोरे होते है तथा कुछ व्यक्ति काले होते है, कुछ व्यक्ति कुरुप होते है तथा कुछ व्यक्ति सुन्दर होते है।

2. **मानसिक भिन्नताये** (Mental Differences)—भिन्न-भिन्न व्यक्ति मानसिक गुणो मे भी भिन्न-भिन्न होते है। बुद्धि, रुचि, स्मरणशक्ति जैसे मानसिक गुणो मे व्यक्तियो मे भेद पाया जाता है। कुछ व्यक्ति प्रतिभाशाली होते है, जबकि कुछ व्यक्ति मूर्ख होते है। कुछ बालक पढने मे तेज होते है, जबकि कुछ बालक खेलने मे तेज होते है। कुछ बालक नवीन बातो को शीघ्रता से सीख लेते है, जबकि कुछ बालक नवीन बातो को सीखने मे कठिनाई का अनुभव करते है। कुछ बालक एक बार सुनी बात को दीर्घकाल तक स्मरण रख लेते है, जबकि कुछ बालक बातो को शीघ्र भूल जाते है।

3. **व्यक्तित्व सम्बंधी भिन्नताये** (Personality Differences) —विभिन्न व्यक्तियो का व्यक्तित्व भी भिन्न-भिन्न होता है। कुछ व्यक्ति अन्तर्मुखी होते है, जबकि कुछ व्यक्ति बहिर्मुखी होते है। कुछ व्यक्ति नम्र स्वभाव के होते है, जबकि कुछ व्यक्ति उग्र स्वभाव के होते है। कुछ व्यक्ति हँसमुख व प्रसन्नचित्त होते है, जबकि कुछ व्यक्ति उदार व कठोर होते है।

व्यक्तिगत भिन्नता के कारण
(Causes of Individual Differences)

व्यक्तिगत भिन्नता के लिए अनेक कारको को उत्तरदायी माना जाता है। कुछ प्रमुख कारक अग्रांकित है—

1 **वंशानुक्रम** (Heredity) —व्यक्तिगत भिन्नता का प्रमुख कारण वशानुक्रम है। गाल्टन, पियरसन, टरमैन आदि मनोवैज्ञानिको ने अपने अध्ययनो के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अनेक शारीरिक, मानसिक तथा व्यक्तित्व सबधी विभिन्नताओ के लिए वशानुक्रम काफी सीमा तक उत्तरदायी होता है। किसी व्यक्ति को वशानुक्रम मे अपने माता-पिता से क्या-क्या गुण मिलेगे, यह केवल सयोग पर निर्भर करता है। माता-पिता से प्राप्त होने वाले गुणसूत्रो (Chromosomes) के असख्य भिन्न-भिन्न समुच्चय होने के कारण एक ही माता-पिता की सतानो मे परस्पर भिन्नताये पाई जाती है।

2 **वातावरण** (Environment) —व्यक्तिगत भिन्नता पर वातावरण का भी प्रभाव पडता है। वातावरण कई प्रकार का हो सकता है—जैसे भौगोलिक वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा सास्कृतिक वातावरण आदि। व्यक्ति जिस प्रकार के वातावरण मे रहता है उसी के अनुरुप उसका शारीरिक, मानसिक, सवेगात्मक तथा चारित्रिक विकास होता है। ठडे तथा गर्म देश के बच्चो मे शारीरिक भिन्नताये दिखाई देती है। शिक्षित तथा अशिक्षित परिवारो के बच्चों के आचार-विचार तथा रहन-सहन मे अतर पाया जाता है। ग्रामीण तथा शहरी बच्चो के स्वभाव मे पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

3. **परिपक्वता**(Maturity) —परिपक्वता का सबध प्राय· आयु से होता है। भिन्न-भिन्न आयु के बच्चो मे शारीरिक, मानसिक तथा अन्य दृष्टियो से अतर होता है।

4. **बुद्धि** (Intelligence) —बुद्धि व्यक्तिगत भिन्नतआ का एक अत्यत महत्वपूर्ण कारक है। बुद्धि की भिन्नता व्यक्तियो मे व्यापक अतर कर देती है। बुद्धि-भेद के कारण व्यक्ति की शैक्षिक तथा व्यावसायिक उपलब्धियो मे पर्याप्त अतर आ जाता है।

5. **लिंग भेद**(Sex Difference) —लिंग-भेद के कारण बालक तथा बालिकाओ में शारीरिक गठन, मानसिक तथा सवेगात्मक दृष्टि से अतर पाया जाता है। बालक-बालिकाओ के शारीरिक गठन, स्वभाव तथा व्यक्तित्व सम्बधी गुणो मे भिन्नता पाई जाती है। बालक प्राय कठोर, साहसी होते है, जबकि बालिकाये प्राय कोमल, दयालु, लज्जाशील होती है।

6. **स्वास्थ्य** (Health) —शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के कारण भी व्यक्तियो मे भिन्नताये हो जाती है। कुछ व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट होते है, जबकि कुछ व्यक्ति दुर्बल होते है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी विभिन्न व्यक्तियो मे भिन्नताये होती है। स्वस्थ तथा अस्वस्थ व्यक्तियो मे स्पष्ट अतर दिखाई पडता है।

7. **पृष्ठभूमि** (Background) —सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति के विकास मे महत्वपूर्ण स्थान रहता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमियो मे पालन-पोषण होने पर बच्चो मे विभिन्न गुण भिन्न-भिन्न ढग से विकसित होते है।

8. **जाति तथा प्रजाति** (Caste and Race) —जाति तथा प्रजाति भी व्यक्तिगत भिन्नता के प्रमुख कारणो मे से एक है। भिन्न-भिन्न जाति अथवा भिन्न-भिन्न प्रजाति के व्यक्ति परस्पर काफी भिन्न-भिन्न होते है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण प्राय अध्ययनशील, क्षत्रिय प्राय साहसी तथा वैश्य प्राय व्यापार मे कुशल होते है।

व्यक्तिगत भिन्नताओं का मापन
(Measurement of Individual Differences)

व्यक्तिगत भिन्नता का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक होगा कि उन गुणो को जाना जाय जिनके कारण व्यक्तिगत भिन्नताये होती है। व्यक्तिगत भिन्नता का मापन करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नवत् है—

1 **अवलोकन** (Observation)
2. **परीक्षण** (Test)
3. **मापनी** (Scale)
4. **व्यक्ति इतिहास** (Case History Method)
5. **संचयी अभिलेख** (Cumulative Records)

1. **अवलोकन** (Observation) —अवलोकन व्यक्तियो के गुणों का मापन करने की एक अत्यत प्राचीन तथा सर्वसुलभ विधि है। व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के व्यवहार को

देखकर उनके गुणो का वर्णन करते है। छोटे बच्चो, अनपढ व्यक्तियो, मानसिक रोगियो, विकलागो तथा अन्य भाषा-भाषी व्यक्तियो की व्यक्तिगत भिन्नताओ का मापन करने के लिए अवलोकन एक उपयोगी विधि है।

2. **परीक्षण** (Test) —आधुनिक समय मे व्यक्तिगत भिन्नताओ का मापन करने के लिए परीक्षणो का उपयोग किया जाता है। बुद्धि का मापन करने के लिए बुद्धि परीक्षणो, शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए उपलब्धि परीक्षणो, व्यक्तित्व का मापन करने के लिए व्यक्तित्व परीक्षणो का उपयोग किया जाता है।

3. **मापनी** (Scale) —मापनी व्यक्ति के गुणो का मात्रात्मक विवरण प्रस्तुत करती है। व्यक्तिगत भिन्नताओ के मापन मे मापनियो का प्रयोग भी किया जाता है। अभिवृत्ति का मापन करने के लिए अभिवृत्ति मापनियो का प्रयोग किया जाता है।

4. **व्यक्ति इतिहास विधि** (Case History Method) —इस विधि के द्वारा व्यक्ति के जीवन इतिहास को जानकर उसकी व्यक्तिगत भिन्नताओ का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

5. **संचयी अभिलेख** (Cumulative Records)—सचयी अभिलेख बालको की शैक्षिक प्रगति से सबधित सूचनाये प्रदान करते है। सचयी अभिलेख वास्तव मे छात्रो के शैक्षिक इतिहास को प्रस्तुत करता है।

व्यक्तिगत भिन्नतायें तथा शिक्षा
(Individual Differences and Education)

आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत भिन्नता को अत्यत महत्व देते है। वास्तव मे छात्रो की व्यक्तिगत भिन्नता के तथ्य की अवहेलना नही की जा सकती है। जब छात्र परस्पर एक-दूसरे से अनेक बातो मे भिन्न होते है तब उनके लिए एक समान शिक्षा व्यवस्था करना उचित नही है। कक्षा मे भिन्न-भिन्न योग्यताओ से युक्त छात्र होते है तथा अध्यापक प्राय औसत छात्रो को दृष्टिगत रखकर अपने शिक्षण कार्य को सम्पादित करता है। परिणामत. मद बुद्धि छात्र तथा अत्यधिक प्रतिभाशाली छात्र इस प्रकार के शिक्षण से लाभ नही उठा पाते है। व्यक्तिगत भिन्नताओ के कारण सभी छात्रो को एक ढग से शिक्षा देने से वाछित लाभ सभव नही हो पाता है। अत यह आवश्यक है कि छात्रो को शिक्षा देते समय उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओ को भी ध्यान मे रखा जाये। व्यक्तिगत भिन्नता को दृष्टि गत रखते हुए शिक्षा के क्षेत्र मे निम्नाकित बातो पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा—

1. **कक्षा का सीमित आकार** (Limited Size of the Class)—कक्षा मे छात्रो की सख्या अधिक होने पर अध्यापक न तो उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर पाता है और न ही उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओ को समझ पाता है। कक्षा मे छात्रो की सख्या इतनी ही होनी चाहिये कि अध्यापक उन्हे भली-भाँति समझ सके तथा उनकी आवश्यकता, सामर्थ्य तथा रुचि के अनुरुप उनकी शैक्षिक प्रगति करने मे अपना यथा सम्भव योगदान कर सके।

2. **छात्रों का वर्गीकरण** (Classification of the Students)—कक्षा मे बालको को उनकी व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर सजातीय समूहो (Homo Geneous Groups) मे विभाजित करना चाहिए। मानसिक आयु, शारीरिक प्रौढता तथा सवेगात्मक परिपक्वता को दृष्टिगत रखकर छात्रो को समूहो मे वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

3. **पाठ्यक्रम में विभिन्नता** (Diversification of Curriculum) सभी छात्रो मे एक समान पाठ्यक्रम का अध्ययन करने की सामर्थ्य नही होती है। अत एक निर्धारित स्तर के उपरान्त पाठ्यक्रम का विभेदीकरण करने की आवश्यकता होती है जिससे छात्र अपनी सामर्थ्य तथा आवश्यकता के अनुरुप वैकल्पिक विषयो का चयन कर सकें।

4. **शिक्षण विधियाँ** (Methods of Teaching) —व्यक्तिगत भिन्नताओ के कारण एक ही विधि से सभी छात्रों को शिक्षण देना उचित नही है। व्यक्तिगत भिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए ही विभिन्न योग्यता वाले छात्रों को कुछ शिक्षण प्रदान करने के लिए भिन्न-भिन्न शिक्षण विधियो का प्रतिपादन किया है। प्रोजेक्ट विधि, डाल्टन विधि, व्यक्तिगत शिक्षण, कक्षा रहित विद्यालय शिक्षण, उपचारात्मक शिक्षण आदि विधियों का प्रतिपादन व्यक्तिगत भिन्नताओ के कारण ही किया गया है।

5. **शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन** (Educational and Vocational Guidence) —व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर छात्रों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन देना अत्यत आवश्यक है। किस छात्र की रुचि किस प्रकार के पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय मे है, इसके आधार पर उसे परामर्श देकर उसके भावी जीवन मे सफलता का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

6. **गृह कार्य** (Home Work) —छात्रो को गृहकार्य देते समय उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओ का ध्यान रखना चाहिए। तीव्र बुद्धि छात्रों को कठिन गृहकार्य तथा मदबुद्धि छात्रों को सरल गृहकार्य ही देना चाहिए।

व्यक्तिगत भिन्नता से सबधित उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक बालक की अपनी आवश्यकताये तथा विशेषताये होती है। यही कारण है कि व्यक्तिगत भिन्नताओ को बालक की शिक्षा मे महत्वपूर्ण स्थान देने का प्रश्न उठता है। व्यक्तिगत भिन्नता को दृष्टिगत रखकर यदि शिक्षा का आयोजन किया जायेगा तब ही बालक को सर्वांगीण विकास के सर्वोत्तम अवसर प्रदान किये जा सकते है।

बुद्धि का प्रत्यय
(Concept of Intelligence)

'बुद्धि' शब्द का प्रयोग सामान्य बातचीत मे बहुतायात से किया जाता है। सामान्य वातचीत के दौरान हम कहते है कि अमुक वालक की वुद्धि तीव्र है जवकि अमुक बालक साधारण बुद्धि या मन्द बुद्धि का है। परतु वुद्धि से क्या अभिप्राय है यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सामान्य बोलचाल मे कहने वाला या सुनने वाला दोनो ही बुद्धि के अर्थ को समझते है, परतु इसे परिभाषित करने का कोई प्रयास नही करता है। यदि प्रश्न किया जाए कि आप बुद्धि से क्या समझते है तो वे बुद्धि की कोई स्पष्ट परिभाषा न देकर किसी समानार्थक शब्द जैसे ज्ञान, समझ, चातुर्य, योग्यता, श्रेष्ठता, मस्तिष्क आदि के द्वारा बुद्धि या वुद्धिमान व्यक्ति के अर्थ को समझाना चाहते है। स्पष्ट है कि साधारण बोलचाल मे व्यक्ति बुद्धि को बडे ही हल्के ढग से लेता है, परतु बुद्धि शब्द का वास्तविक अर्थ अत्यत व्यापक तथा जटिल है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने 'बुद्धि' शब्द की व्याख्या अलग-अलग ढग से की है। यद्यपि विगत सौ वर्षो के दौरान बुद्धि प्रत्यय पर काफी चिन्तन मनन हो चुका है तथापि मनोवैज्ञानिक अभी तक इस प्रश्न का कोई सर्वमान्य उत्तर नही खोज पाये है कि बुद्धि किसे कहते है ? वास्तव मे बुद्धि के सम्बन्ध मे इस प्रकार की अस्पष्टता तथा अनिश्चितताके पीछे विभिन्न व्यक्तियो के मस्तिष्क में बुद्धि के सम्बन्ध मे किसी न किसी पूर्वधारणा अथवा पूर्वाग्रहो का होना है। अधिकाश व्यक्ति बुद्धि को किसी स्थूल वस्तु (Concrete Object) के रूप मे देखते है जिसे प्रत्यक्ष रुप मे समझा जा सकता है, जबकि बुद्धि वास्तव मे अमूर्त (Abstract) होती है जिसे छूकर या देखकर नही समझा जा सकता है वरन् इसे व्यक्ति के व्यवहार को देखकर जाना जा सकता है। जिस प्रकार से ईमानदार व्यक्ति के व्यवहार से ईमानदारी परिलक्षित होती है तथा सुन्दर महिला के अवलोकन से सुन्दरता का आभास होता है, ठीक उसी प्रकार से वुद्धिमान व्यक्ति के कार्यो से बुद्धि का आभास होता है। हम ईमानदारी या सुन्दरता को न देखकर वास्तव मे ईमानदार व्यक्ति या सुन्दर महिला को देखते है इसी प्रकार से हम बुद्धि को न देख कर बुद्धिमान व्यक्ति को देखते है। स्पष्ट है कि ईमानदारी तथा सुन्दरता आदि की तरह से ही बुद्धि भी अमूर्त होती है जिसे केवल अप्रत्यक्ष (Indirect) रुप मे समझा जा सकता है। किसी व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्यों के बुद्धिमत्तापूर्ण होने पर ही उस व्यक्ति मे बुद्धि का होना स्वीकार किया जाता है। बुद्धि की अप्रत्यक्षता के कारण ही इसे अनेक प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को जिस रुप मे देखा व समझा, उन्होने उसी रुप मे उसको परिभाषित कर दिया। 'बुद्धि' क्या है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर मनोवैज्ञानिको मे सदैव से मतभेद रहा है। सन् 1905 में बिने के द्वारा बनाए गए प्रथम सफल बुद्धि परीक्षण के निर्माण से लेकर अब तक बुद्धि के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किए जा चुके है। स्वय बिने ने अपने परीक्षण का सशोधन करते समय बार-बार बुद्धि की प्रकृति के सम्बन्ध मे अपने विचारों को सशोधित किया था तथा अन्त मे सन् 1911 मे उसने बुद्धि को बोध पर आधारित तथा उद्देश्यपूर्ण व सही निर्णय से निर्धारित खोजपरकता के रूप मे स्पष्ट किया। सन् 1921 मे जर्नल ऑफ

एजूकेशनल साइकॉलाजी (Journal of Educational Psychology) ने चौदह प्रमुख मनोवैज्ञानिको की बुद्धि की प्रकृति के सम्वन्ध मे लेखो की एक शृखला प्रकाशित की। यद्यपि बुद्धि के सम्वन्ध मे उनमे कुछ सहमति थी, फिर भी यह कहना गलत न होगा कि इन लेखो से बुद्धि के सम्बन्ध मे चौदह भिन्न-भिन्न प्रत्यय उभर कर सामने आए। कुछ मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि की अनुकूलन प्रकृति (Aduptive nature) पर मुख्य वल दिया, कुछ ने बुद्धि को सीखने की योग्यता (Ability to learn) के रुप मे स्वीकार किया, कुछ ने अमूर्त चिन्तन की योग्यता (Ability to think abstractly) को बुद्धि माना, तथा कुछ अन्य ने विगत अधिगम की मात्रा (Degree of past learning) के रुप मे बुद्धि को देखा। फ्रीमैन ने (Freeman) बुद्धि की अनेक परिभाषाओ का विश्लेषण किया तथा कहा कि इन सभी परिभाषाओ को निम्नाकित तीन वर्गो मे बाँटा जा सकता है—

1 **समायोजन करने की योग्यता के रुप में बुद्धि** (Intelligence as an Ability to Adjust) —प्रथम वर्ग की परिभाषाओ मे बुद्धि को वातावरण के साथ समायोजन करने की योग्यता के रुप मे परिभाषित किया गया है। इन परिभाषाओ के अनुसार बुद्धि जीवन मे आने वाली विभिन्न परिस्थितियो तथा नई-नई समस्याओ के साथ अनुकूलन या समायोजन करने की सामान्य मानसिक योग्यता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि बुद्धि वह योग्यता है जिससे व्यक्ति अपने व्यवहार को इस प्रकार से पुर्नगठित (Organize) करता है कि वह नवीन परिस्थितियो मे अधिक उपयुक्त (Appropriately) एव प्रभावपूर्ण (Effective) ढग से कार्य कर सके। इस प्रकार की परिभाषाओ के अनुसार बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो बदलती परिस्थितियो के अनुरुप स्वय को सरलता, सुगमता व शीघ्रता से बदलने मे सक्षम होता है।

स्टर्न के अनुसार—"बुद्धि नई परिस्थितियो के अनुरुप अपने चिन्तन को समायोजित करने की सामान्य योग्यता है।"

Intelligence is a general adaptation to new conditions and problems of life.

—Stern

बर्ट के अनुसार —"बुद्धि अपेक्षाकृत नई परिस्थितियो मे समायोजन करने की क्षमता है।"

Intelligence is the innate capacity to adapt relatively to new situations

—Burt

क्रून के अनुसार—"बुद्धि नई तथा भिन्न परिस्थितियो मे समुचित रूप से समायोजन करने की योग्यता है।"

Intelligence is the ability to adjust adequately to new and different situations

—Cruz

2. सीखने की योग्यता के रुप मे बुद्धि (Intellıgence as an Abılıty to learn) —दूसरे वर्ग की परिभाषाओ मे बुद्धि को सीखने की योग्यता के रुप मे परिभाषित किया गया है। इन परिभाषाओं के अनुसार बुद्धि शीघ्रता व व्यापकता से नवीन ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता है। दूसरे शब्दो मे व्यक्ति के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अधिगम अनुभवो की सम्भाव्य व्यापकता व विस्तृतता ही उसकी बुद्धि की द्योतक है। इस प्रकार की परिभाषाओ के अनुसार बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो अत्यत शीघ्रता से नवीन बातो को आत्मसात कर लेता है।

बकिंघम के अनुसार "—बुद्धि सीखने की योग्यता है।"

Intelligence is the abilıty to learn

—Bukıngham

डियरबोर्न ने कहा है कि—"बुद्धि अधिगम करने की क्षमता या अनुभवो से लाभ प्राप्त करने की योग्यता है।"

Intellıgence ıs the capacıty to learn or to profit by experiece.

—Dearborn

3. अमूर्त चिन्तन के रूप में बुद्धि (Jntelligence as an Abılity to thınk Abstractly) —तीसरे वर्ग की परिभाषाए बुद्धि को अमूर्त चिन्तन करनेकी योग्यता के रूप में परिभाषित करती है। इन परिभाषाओ के अनुसार बुद्धि विभिन्न परिस्थितियो में (विशेषकर उन परिस्थितियो मे जिनके समाधान हेतु शाब्दिक तथा आँकिक सकेतो का प्रयोग आवश्यक होता है) प्रत्ययो, सकेतो तथा प्रतीको का प्रभावपूर्ण ढग से प्रयोग करने की क्षमता है। इस प्रकार की परिभाषाओ के अनुसार बद्धिमान व्यक्ति अमूर्त चिन्तन (Abstract thınking) करने मे अधिक सक्षम होता है। बिने की परिभाषा इसी वर्ग मे आती है।

बिने के अनुसार—"बुद्धि उचित ढग से तर्क करने,उचित ढग से निर्णय करने तथा आत्म विश्लेषक होने की क्षमता है।"

Intelligence may be characterızed as inventıveness dependent upon comprehensıon and marked by purposefullness and corrective judgement.

—Binet

टरमैन ने कहा कि -"व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है जितनी उसमे अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।"

An ındıvidual ıs intellıgent ın proportion as he is able to carry on abstract thınking.

—Terman

बुद्धि की व्यापक परिभाषा (Comprehensıve Definition of Intelligence)—बुद्धि की परिभाषाओ के उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि बुद्धि की

परिभाषाओ के तीनो वर्गों मे मुख्य अतर दृष्टिकोण का है। वास्तव में ये तीनो वर्ग एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। ये तीनो वर्ग बुद्धि की तीन विमाओ—समायोजन योग्यता, अधिगम योग्यता व अमूर्त चिन्तन योग्यता का प्रतिनिधित्व करते है। सीखने की योग्यता व्यक्ति को नवीन तथा बदली हुई परिस्थितियो मे समायोजन करने के लिए आधार प्रदान करती है। जो व्यक्ति नई बातो को शीघ्रता व सुगमता से सीख लेता है वह बदलती हुई परिस्थितियो मे स्वय को सरलता व सहजता मे व्यवस्थित कर लेता है। इसी प्रकार से विभिन्न परिस्थितियो के साथ समायोजन करने की प्रक्रिया मे व्यक्ति अनेक बाते सीखता है। अमूर्त चिन्तन की योग्यता भी सीखने की योग्यता व समायोजन की योग्यता से सम्बन्ध रखती है। व्यक्ति समायोजन करने तथा सीखने की प्रक्रियाओ के दौरान ही अमूर्त चिन्तन की योग्यता मे पारगत होता है। वह सकेतो, प्रतीको व शब्दो को सीखकर ही अमूर्त चिन्तन करता है तथा अमूर्त चिन्तन करके व्यक्ति अपनी परिस्थितियो को शीघ्रता व सुगमता से समझ कर अपने व्यवहार का दायरा विस्तृत कर लेता है जिसमे उसे समायोजन करने मे सहायता मिलती है। स्पष्ट है कि तीनो वर्गो की परिभाषाएँ एक दूसरे की पूरक है तथा प्रत्येक बुद्धि के केवल एक पक्ष पर बल देती है। यदि बुद्धि की कोई व्यापक परिभाषा देनी चाहे तो उसमे इन तीनो योग्यताओ को सम्मिलित करना होगा। वैश्लर (Wechsler) तथा स्टोडार्ड (Stoddard) ने उपरोक्त तीनो पक्षो को सम्मिलित करके बुद्धि की अत्यत व्यापक परिभाषाएँ दी है, जिन्हे मनोवैज्ञानिक जगत मे पर्याप्त मान्यता प्राप्त है। इन दोनो परिभाषाओ की चर्चा करना समोचित ही होगा।

वैश्लर ने बुद्धि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि "बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है।"

Intelligence ıs the aggregate or global capacity of the individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectıvely with his environment

—D. Wechsler

स्टोडार्ड ने बुद्धि को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "बुद्धि कठिनता, अमूर्तता, जटिलता, मितव्ययता, लक्ष्य की अनुकूलता, सामाजिक मूल्य व नवीनता की उत्पत्ति से युक्त क्रियाओ को करने तथा इन क्रियाओ को शक्ति को केन्द्रित करने तथा संवेगात्मक दबावो का प्रतिरोध करने की आवश्यकता वाली परिस्थितियो मे बनाये रखने की योग्यता है।"

Intelligence is the abilıty to undertake actıvitıes that are characterized by difficulty, complexıty, abstractness, ecomomy, adaptiveness to a goal, socıal value and the emergence of originals and to maintain such activitıes under conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces

—G.D.Stoddard

स्टोडार्ड ने इस परिभाषा मे प्रयुक्त विभिन्न प्रत्ययो को भी स्पष्ट किया है। कठिनता से अभिप्राय विभिन्न कार्यो मे आने वाली वास्तविक कठिनाई के अन्तर से है। जटिलता से तात्पर्य विभिन्न प्रकार के कार्यों को सफलतापूर्वक हल करने से है। अमूर्तता से तात्पर्य सकेतो के प्रयोग, विशेषकर विश्लेषण व व्याख्या के स्तर पर से है। मितव्ययता से अभिप्राय मानसिक कार्यो को करने तथा समस्या समाधान की गति से है। लक्ष्य की अनुकूलता का अर्थ है कि विभिन्न क्रियाएँ किसी लक्ष्य की तरफ केन्द्रित है। सामाजिक मूल्य से अभिप्राय व्यक्ति के कार्यो व समस्याओ के समाधान का स्वीकृत सामाजिक मानदण्ड के अनुरुप होने से है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ मनोवैज्ञानिक इस विशेषता को स्वीकार नही करते है। नवीनता की उत्पत्ति से तात्पर्य नवीन एव भिन्न भिन्न विचारो या वस्तुओ के प्रस्तुतीकरण से है।

प्याजे (Piaget) ने बुद्धि को एक बिल्कुल अलग ढग से व्यक्त किया है। उसके अनुसार बुद्धि वातावरण के साथ अनुकूलन करने की प्रक्रिया है। उसकी मान्यता थी कि समय के साथ-साथ बुद्धि मे परिवर्तन होते रहते है। प्याजे ने समस्याओ की कठिनता या उनके उत्तरो के सही होने पर जोर न देकर समस्याओ का समाधान खोजने की प्रक्रिया एव ढग पर बल दिया। उसके अनुसार जो व्यवहार अनुकूलतम सफलता प्रदान करता है वही बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार है। प्याजे के अनुसार बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार करने वाले व्यक्ति ही बुद्धिमान है।

बुद्धि के प्रकार
(Types of Intelligence)

यद्यपि बुद्धि को एक सामूहिक योग्यता के रुप मे परिभाषित किया जाता है तथापि कुछ मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को अनेक प्रकार की बताया है। थॉर्नडाइक ने बुद्धि को तीन वर्गो मे विभाजित किया है—सामाजिक बुद्धि, स्थूल बुद्धि तथा अमूर्त बुद्धि।

सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence) —सामाजिक बुद्धि से अभिप्राय व्यक्तियो को समझने तथा उनके साथ व्यवहार करने की योग्यता से है। दैनिक जीवन की विभिन्न सामाजिक परिस्थितियो मे सामजस्य बनाने मे सामाजिक बुद्धि महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वास्तव मे यह अन्य व्यक्तियो के साथ परस्पर अन्तर्क्रिया करने की योग्यता की द्योतक है। सामाजिक बुद्धि से युक्त व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के साथ शीघ्रता व सुगमता से समायोजन कर लेता है, जबकि सामाजिक बुद्धि के अभाव मे व्यक्ति को सामाजिक सबध बनाने तथा उन्हे बनाए रखने मे कठिनाई होती है।

स्थूल बुद्धि (Concrete Intelligence) —स्थूल बुद्धि से तात्पर्य विभिन्न वस्तुओ को समझने तथा उनका प्रयोग करने की योग्यता से है। यह वास्तविक परिस्थितियो को समझने तथा उनके अनुकूल व्यवहार करने की योग्यता है। दैनिक जीवन मे विभिन्न प्रकार के उपकरणो के प्रयोग मे स्थूल बुद्धि की आवश्यकता होती है।

अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) —अमूर्त बुद्धि से अभिप्राय शाब्दिक तथा गणितीय सकेतो को समझने व प्रयोग करने की योग्यता से है। लिखने, पढने तथा

तार्किक चिन्तन मे अमूर्त बुद्धि की आवश्यकता होती है। अमूर्त बुद्धि का सर्वोच्च रुप गणित व विज्ञान के सूत्रो व समीकरणो मे तथा दार्शनिक विचारो मे परिलक्षित होता है।

बुद्धि को निर्धारित करने वाले कारक
(Factors determining Intelligence)

बुद्धि एक जन्मजात योग्यता है अथवा अर्जित योग्यता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। मनोवैज्ञानिक इस बात पर एकमत नही हो पाए है कि बुद्धि को निर्धारित करने वाला मुख्य कारक वशानुक्रम (Heredıty) है या वातावरण (Envıronment)। बुद्धि वशानुक्रम से निर्धारित होती है या वातावरण से, इस प्रश्न के सवध मे सदैव ही दो मत रहे है। एक मत के अनुयायी मनोवैज्ञानिको का कहना है कि बुद्धि मुख्य रुप से वशानुक्रम से निर्धारित होती है तथा वातावरण की इसमे गौण भूमिका रहती है। इसके विपरीत दूसरे मत के मानने वाले मनोवैज्ञानिको के अनुसार बुद्धि का निर्धारण मुख्य रूप से वातावरण के द्वारा होता है तथा वशानुक्रम का इसमे कोई विशेष महत्व नही है। बुद्धि के सवध मे इस प्रकार के मतभेद को मनोविज्ञान मे प्रकृति-पोषण विवाद (Nature-Nurture Controversy) भी कहा जाता है।

वंशानुक्रम (Heredıty) —व्यक्तिगत भिन्नता के कारको को ज्ञात करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन 19 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे प्रारम्भ हो गए थे। ब्रिटिश वैज्ञानिक सर फ्रासिस गाल्टन (Galton) ने अनेक महान व्यक्तियो के पारिवारिक इतिहास का अध्ययन किया तथा पाया कि उनमे से अनेक व्यक्ति परस्पर रक्त सबधी थे। इस परिणाम के आधार पर उसने कहा कि उच्च कोटि की बुद्धि कुछ विशिष्ट कुलो मे ही पाई जाती है। तब उन्होने व्यक्तिगत भिन्नता की वशानुक्रमी प्रकृति की मान्यता का प्रतिपादन किया। गाल्टन ने 1866 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक मे बुद्धि की विभिन्नता का एक मात्र कारक जैवकीय वशानुक्रम को बताया। उस समय के अधिकाश मनोवैज्ञानिको ने इस विचार को एक स्वीकृत तथ्य के रुप मे ग्रहण कर लिया। बाद मे टरमैन (Terman) तथा गोडार्ड (Goddard) आदि मनोवैज्ञानिको ने भी अनेक व्यक्तियो के परिवारिक इतिहास का अध्ययन करके बुद्धि के वशानुक्रमीय होने की मान्यता की पुष्टि की। जुडवा बच्चो तथा भाई-बहनो पर किये गए अध्ययनो के आधार पर भी इस मान्यता की पुष्टि अनेक मनोवैज्ञानिको के द्वारा की गई है। सन् 1966 मे आर्थर जेनसेन (Arthour Jensen) ने बुद्धिलब्धि पर किए गए अनुसधानो का सर्वेक्षण करके निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि मुख्यत वशानुक्रम से निर्धारित होती है। उसने कहा कि बुद्धि के लगभग 75 से 80 प्रतिशत भाग का निर्धारण जेनेटिक विभिन्नताओ (Genetic Differencces) से होता है, जबकि शेष 20 से 25 प्रतिशत का निर्धारण वातावरणीय प्रभावो (Envıronmental Influence) से होता है।

वातावरण (Envıronment) —बीसवी शताब्दी के चौथे दशक मे आयोवा विश्वविद्यालय (Iowa Universıty) मे किए गए अनुसधान कार्यो से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर बुद्धि तथा वातावरण मे सवध स्थापित किया जाने लगा। अनेक समाजशास्त्रियो तथा मानव व्यवहार वादियो ने भी कहा कि बालक का वातावरण

उसकी मानसिक योग्यता को प्रभावित करता है। वैलमैन (Wellman) व कॉफी (Coffy), स्कील्स व फिलमौर (Skeels and Filmore), विलियम्स (Williams) आदि मनोवैज्ञानिको ने अपने अपने अध्ययनो से वातावरण की महत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया। इन लोगो ने बताया कि अनुकूल वातावरण मे ही मानसिक योग्यता का विकास होता है तथा अनुपयुक्त वातावरण मे रहने से बुद्धि कुठित हो जाती है। इस प्रकार से इन मनोवैज्ञानिको ने मानसिक योग्यता तथा बुद्धि को वातावरण के द्वारा निर्धारित होने वाला गुण बताया तथा वशानुक्रम के महत्व को अस्वीकार कर दिया। बैजामिन ब्लूम (Benjamin Bloom, 1964), कार्ल ब्राइटर व सिगफ्रैड एजिलमैन (Carl Bereiter and Siegfriend Engelmann, 1966) तथा क्लार्क व क्लार्क (Clark and Clarke, 1959) आदि वातावरण वादियो ने बुद्धिलब्धि पर किए गए अनुसधानो के आधार पर बुद्धि को वातावरण मे प्रभावित होने वाला गुण बताया। उनके अनुसार जन्म से चार वर्ष आयु की अवधि मे उत्तम वातावरण प्रदान करके बुद्धिलब्धि को बढाया जा सकता है।

वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तर्क्रिया (Heredity-Environment Interaction) —वशानुक्रमवादियो तथा वातावरणवादियो के द्वारा बुद्धि के सवध मे अपने-अपने पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किए जाने की होड के फलस्वरुप इस प्रकरण पर एक विवाद सा उत्पन्न हो गया। वशानुक्रमवादी मनोवैज्ञानिक वातावरण के प्रभाव को तथा वातावरणवादी मनोवैज्ञानिक वशानुक्रम के महत्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। वास्तव मे अनुसधानो से बुद्धि के वशानुक्रम से या वातावरण से निर्धारित होने के सवध मे कोई निश्चित निष्कर्ष नही प्राप्त हो सका है। कुछ अनुसधानों से बुद्धि के वशानुक्रम से निर्धारित होने के परिणाम प्राप्त हुए है, जबकि कुछ अनुसधान बुद्धि को वातावरण से निर्धारित होने के परिणाम देते है। बुद्धिलब्धि परीक्षणो के निर्माण मे सलग्न अधिकाश मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को जन्मजात स्वीकार किया, जबकि अधिगम सिद्धान्तों के प्रतिपादन मे लगे अधिकाश मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि को वातावरण से प्रभावित होने की धारणा को स्वीकार किया। जैव रसायन, प्रजननशास्त्र, विकास मनोविज्ञान आदि क्षेत्रो मे विकास प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया गया तथा इसके निष्कर्षों के आधार पर वशानुक्रम व वातावरण की अन्तर्क्रिया के दृष्टिकोण का विचार प्रतिपादित किया गया। वर्तमान समय मे यही मत अधिक मान्य है। इस मत के अनुसार वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो ही समान रुप से महत्वपूर्ण एव आवश्यक है। सभी प्रकार का विकास इन दोनो की अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है। बालक के बौद्धिक विकास मे भी वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो का प्रभाव पडता है। वशानुक्रम पर हमारा नियत्रण लगभग नही के बराबर होता है, जबकि वातावरण को हम इच्छानुसार परिवर्तित कर सकते है। स्वस्थ, प्रेरणादायक तथा उत्तेजनापूर्ण वातावरण प्रदान करके बालक की जन्मजात शक्तियो का विकास अधिकतम स्तर तक किया जा सका है। शैशवावस्था मे बालक को प्राप्त अच्छे वातावरण के फलस्वरुप उनकी बुद्धिलब्धि को बढाने के अनेक सफल प्रयोग हो चुके है।

बुद्धि के सिद्धान्त

(Theories of Intelligence)

बुद्धि के सिद्धान्त मे अभिप्राय बुद्धि की प्रकृति तथा सरचना के क्रमबद्ध स्पष्टीकरण से है। मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि की प्रकृति व सरचना को जानने के लिए अनेक विश्लेषणात्मक अध्ययन किए है। इस प्रकार के अध्ययनो का मुख्य उद्देश्य बुद्धि के तत्वो या कारको को ज्ञात करना था जिससे बुद्धि की जटिल प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढग से समझा जा सके। सामान्यत बुद्धि के सिद्धान्तो को उनके द्वारा प्रतिपादित कारको की सख्या के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। सुविधा की दृष्टि से बुद्धि के उपलब्ध सिद्धान्तो को अग्रांकित ढग से वर्गीकृत किया जा सकता है--

1. **एक-कारक सिद्धान्त** (Uni-Factor Theory)
2. **द्वि-कारक सिद्धान्त** (Two-Factor Theory)
3. **बहु-कारक सिद्धान्त** (Multi-Factor Theory)
4. **समूह-कारक सिद्धान्त** (Group-Factor Theory)
5. **पदानुक्रमिक सिद्धान्त** (Hierarchical Theory)
6. **बुद्धि संरचना** (Structure of Intellect)

1. **एक-कारक सिद्धान्त** (Uni-Factor Theory)—बुद्धि का एक-कारक सिद्धान्त सबसे प्राचीन सिद्धान्त है तथा यह सिद्धान्त बुद्धि मापन हेतू परीक्षण निर्माण के प्रथम 35 वर्षो मे अत्यधिक प्रचलित रहा था। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि एक अविभाज्य इकाई (Undivisible Unit) है। जिसके द्वारा समस्त मानसिक क्रियाए नियन्त्रित होती है। बिने (Binet), टरमैन (Terman) तथा स्टर्न (Stern) जैसे मनोवैज्ञानिको ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया था, परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया है।

2. **द्वि-कारक सिद्धान्त** (Two-Factor Theory)—द्वि-कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन अग्रेज मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन (Spearman) महोदय ने 1904 मे किया था। स्पीयरमैन ने कहा कि बुद्धि दो कारकों से मिलकर बनी है। ये दो कारक है—सामान्य योग्यता कारक तथा विशिष्ट योग्यता कारक। उसने सामान्य योग्यता कारक को जी-कारक (G-Factor) का नाम दिया तथा कहा कि यह जन्मजात योग्यता है। इसे सामान्य योग्यता इसलिए कहा गया क्योकि सभी मानसिक क्रियाओ मे इसकी आवश्यकता होती है। विभिन्न व्यक्तियों मे जी-कारक भिन्न-भिन्न मात्रा मे उपस्थित रहता है। दैनिक जीवन के कार्यों मे जी-कारक का उपयोग अधिक होता है। विशिष्ट योग्यता कारक को स्पीयरमैन ने एस-कारक (S-Factor) का नाम दिया। जी-कारक के विपरीत एस-कारक विशिष्ट योग्यताओ का एक समूह होता है। एस-कारक एक अर्जित योग्यता होती है। विभिन्न मानसिक कार्यों मे अलग-अलग विशिष्ट योग्यताओ की आवश्यकता होती है। किसी भी व्यक्ति में विभिन्न विशिष्ट योग्यताएँ अलग-अलग मात्रा में होती हैं। उदाहरण के लिए आंकिक गणना तथा शब्द प्रवाह दोनों ही प्रकार की क्रियाओ मे जी-कारक की महत्वपूर्ण भूमिका है। परतु इसके साथ-साथ आंकिक गणना
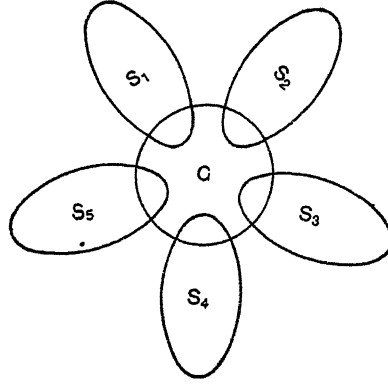
चित्र—18
स्पीयरमैन के द्वि-कारक सिद्धान्त का रेखाचित्र प्रदर्शन

के लिए आकिक योग्यता तथा शब्द-प्रवाह के लिए शाब्दिक योग्यता का होना भी आवश्यक है। जी-कारक तथा एस-कारक दोनो मिलकर ही किसी मानसिक कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते है। स्पीयरमैन ने जी-कारक को वास्तविक मानसिक शक्ति कहा है क्योकि यह सभी मानसिक क्रियाओ के लिए आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है।

3. **बहु-कारक सिद्धान्त** (Multi-Factor Theory) —थॉर्नडाइक (Thorndike) ने बुद्धि के बहुकारक सिद्दान्त का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि असख्य स्वतत्र कारको से मिलकर बनी है। इन स्वतत्र कारको मे से प्रत्येक कारक किसी विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का आशिक प्रतिनिधित्व करता है। किसी
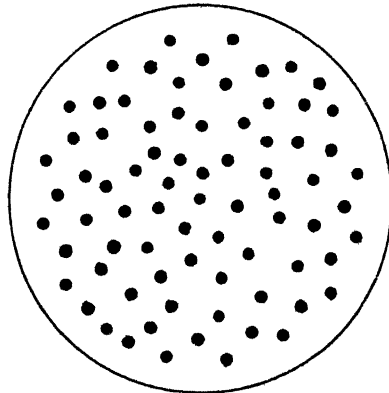
चित्र—19
थॉर्नडाइक के बहु-कारक सिद्धान्त का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

भी मानसिक कार्य को करने मे ऐसे अनेक छोटे-छोटे कारक एक साथ मिलकर कार्य करते है। विभिन्न मानसिक कार्यो मे इन छोटे-छोटे कारको के भिन्न-भिन्न समूहो की आवश्यकता होती है। यदि कोई दो मानसिक कार्य एक-दूसरे से सवधित होते है तो वहु-कारक सिद्धान्त के अनुसार, इसका कारण दोनो मानसिक कार्यो को करने मे कुछ कारको का उभयनिष्ठ होना है। यह सिद्धान्त सामान्य बुद्धि जैसे किसी कारक के अस्तित्व को स्वीकार नही करता है। थॉर्नड़ाइक का यह सिद्धान्त वास्तव मे बुद्धि का आणविक सिद्धान्त प्रतीत होता है। थॉर्नडाइक ने यह भी स्वीकार किया कि कुछ मानसिक क्रियाओ मे काफी तत्व उभयनिष्ठ रहते है जिसके कारण इस प्रकार की मानसिक क्रियाओ को किसी एक वर्ग मे रखकर विशिष्ट नाम देना व्यावहारिक दृष्टि से लाभप्रद हो सकता है। शब्दार्थ, शब्द-प्रवाह, गणना, स्मृति आदि मानसिक क्रियाओ के कुछ वर्ग हो सकते है।

4. **समूह-कारक सिद्धान्त** (Group-Factor Theory)—स्पीयरमैन का द्वि-कारक सिद्धान्त तथा थॉर्नडाइक का बहुकारक सिद्धान्त बुद्धि के सम्बन्ध मे दो पूर्णतया विपरीत विचार प्रस्तुत करते है। इन दोनो सिद्धान्तो के बीच का सिद्धान्त समूह-कारक सिद्धान्त है। थर्सटन (Thurstone) के द्वारा प्रतिपादित बुद्धि के समूह-कारक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि न तो मुख्य रुप से सामान्य कारक से निर्धारित होती है तथा न ही असख्य सूक्ष्म व विशिष्ट तत्वो से मिलकर बनी है। वरन् कुछ प्राथमिक कारको से मिलकर बनी होती है। उसके अनुसार एक जैसी मानसिक क्रियाओ मे कोई एक प्राथमिक कारक
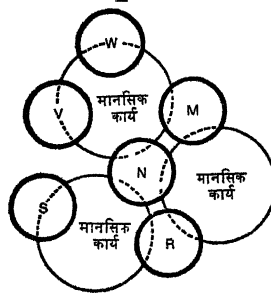
चित्र—20
थर्सटन के समूह-कारक सिद्धान्त का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

उभयनिष्ठ होता है जो उन सभी क्रियाओ को मनोवैज्ञानिक व कार्यवाहक दृष्टि से समाकलित करता है तथा यही प्राथमिक कारक उन क्रियाओ का अन्य मानसिक क्रियाओं से विभेद स्पष्ट करता है। इस प्रकार से कुछ मानसिक क्रियाये एक समूह का निर्माण करती है जिनमे कोई एक प्राथमिक कारक या समूह कारक प्रमुख भूमिका अदा करता

है। मानसिक क्रियाओं के किसी दूसरे समूह मे कोई दूसरा प्राथमिक कारक होता है तथा किसी तीसरे समूह मे कोई तीसरा कारक होता है। इस प्रकार से मानसिक क्रियाओं के अनेक समूह होते हैं तथा प्रत्येक समूह का एक अलग प्राथमिक कारक होता है जो उस समूह की क्रियाओं को समन्वय व समिष्टिता प्रदान करके उन्हे कार्यवाहक इकाई बनाता है। ये प्राथमिक कारक एक दूसरे से पृथक व स्वतन्त्र होते है। थर्सटन तथा उसके सहयोगियो ने तत्व विश्लेषण नामक साख्यिकी प्राविधि का प्रयोग करके छ प्राथमिक कारको का पता लगाया जिन्हे उन्होंने प्राथमिक मानसिक योग्यताओ (Primary Mental Abilities) के नाम से पुकारा, ये है—आकिक कारक (Numerical Factor—N), शाब्दिक कारक (Verbal Factor—V), स्थानिक कारक (Spatial Factor—S), वाकपटुता कारक (Word Fluency—W), तार्किक कारक (Reasoning Factor—R), तथा स्मृति कारक (Memory Factor—M)। थर्सटन ने इन्हे प्राथमिक मानसिक योग्यताए कहा है क्योकि प्रत्येक जटिल मानसिक कार्य मे इन छहों कारको की कुछ न कुछ आवश्यकता पडती है। किसी मानसिक कार्य में इनमे से कुछ कारको का अधिक उपयोग होता है, जबकि किसी अन्य कार्य मे दूसरे कारको का अधिक उपयोग हो सकता है।

5. **पदानुक्रमिक सिद्धान्त** (Hierarchical Theory)—फिलिप वर्नन (Philip Vernon) ने सन् 1960 मे मानवीय योग्यताओ की सरचना प्रस्तुत करते हुये कहा कि मानवीय योग्यताएँ एक क्रमिक (Hierarchical) रुप मे व्यवस्थित होती है। इस क्रमबद्ध व्यवस्था मे क्रमश सामान्य कारक (General Factor), मुख्य समूह कारक (Major Group Factors), लघु समूह कारक (Minor Group Factors) तथा विशिष्ट कारक (Specific factors) होते है। सामान्य कारक (g) सर्वाधिक व्यापक कारक है तथा सभी मानसिक कार्यों मे सहायक होता है। सामान्य कारक (g) को दो मुख्य समूह कारकों—शाब्दिक व शैक्षिक योग्यतायें (v :ed) तथा प्रयोगात्मक व निष्पादक योग्यताये (k : m)— मे विभक्त किया गया है। इन दोनो मुख्य समूह कारको
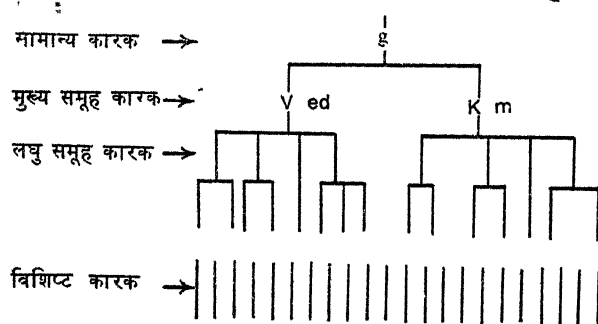
चित्र—21
वर्नन के पदानुक्रमिक सिद्धान्त का रेखाचित्रिय प्रदर्शन

को पुन शाब्दिक, आकिक, स्थानिक जैसे लघु समूह कारकों मे बाँटा जा सकताहै। लघु समूह कारको को विशिष्ट मानसिक कार्यों से सम्बन्धित विशिष्ट कारकों के रुप मे

विभक्त किया जा सकता है। कैटल (R. B. Cattell) ने सन् 1963 मे द्रवीकृत वुद्धि (Fluid intelligence) तथा घनीकृत (Crystallized intelligence) मे अन्तर करते हुए कहा कि द्रवीकृत वुद्धि व्यक्ति के वशानुक्रम से निर्धारित होती है जबकि घनीकृत वुद्धि व्यक्ति के वातारण से सम्वन्धित होती है। स्पष्ट है कि कैटल का द्रवीकृत-घनीकृत वुद्धि का प्रत्यय वर्नन के v : ed—k : m के समकक्ष ही है। वनर्न का v : ed मुख्य समूह कारक कैटल के घनीकृत वुद्धि के तथा k : m मुख्य कारक द्रवीकृत वुद्धि के समान है।

6. **बुद्धि संरचना** (Structure of Intellect) —जे० पी० गिलफोर्ड (J. P. Guilford) तथा उसके सहयोगियो ने वुद्धि का त्रि-विमीय प्रारुप (Three dimensional model) प्रस्तुत किया। गिलफोर्ड के अनुसार वुद्धि को तीन विमाओ के रुप मे देखा जा सकता है। प्रथम विमा को उसने मानसिक कार्य करते समय निहित विषय-वस्तु या सामग्री (Contents) के रुप मे परिभाषित किया तथा कहा कि विभिन्न मानसिक कार्यो मे चार प्रकार की विषय वस्तु (Contents) निहित हो सकती है। विषय वस्तु के ये चार प्रकार है—आकृतिक (Figural), साकेतिक (Symbolic), शाब्दिक (Semantic), तथा व्यावहारिक (Behavioural)। आकृतिक विषय वस्तु का सम्बन्ध आकृतियो या चित्रो से होता है। साकेतिक विषय वस्तु सकेतो, प्रतीकों, चिह्नो, अको, अक्षरो आदि से सम्बन्धित होती है। शाब्दिक विषय वस्तु के अन्तर्गत भाषा के द्वारा प्रस्तुत विचार होते है जबकि व्यावहारिक विषय वस्तु व्यक्तियो के वाह्य व आन्तरिक व्यवहार से सम्बन्धित होती है। गिलफोर्ड के अनुसार बुद्धि की दूसरी विमा मानसिक कार्यो को करने मे निहित सक्रिया (Operations) हैं। सक्रियाओं को पाँच प्रकारों मे बाँटा जा सकता है—सज्ञान (Cognition), स्मरण (Memory),
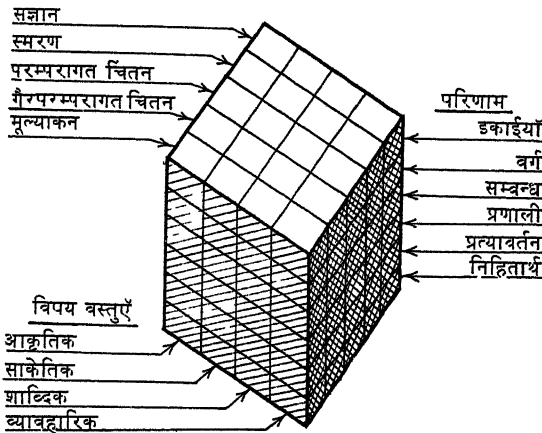
चित्र-22.
गिलफोर्ड के वौद्धिक सरचना माडल का रेखाचित्रिय प्रदर्शन

परम्परागत चितन (Convergent Thinkingy), अपरम्परागत चिन्तन (Divergent Thinking) तथा मूल्याकन (Evaluation) । संज्ञान सीखने का प्रथम चरण है जबकि स्मरण सीखे गए ज्ञान को धारण करना है । परम्परागत चिन्तन परम्परागत ढंग से विचार करना है जबकि गैरपरम्परागत चिन्तन नवीन ढग से सोचने का ढंग है जो सृजनशीलता को भी इंगत करता है । मूल्याकन उपलब्ध सूचनाओ के आधार पर निर्णय लेने व निष्कर्ष पर पहुँचने की क्रिया है । गिलफोर्ड माडल की तीसरी विमा परिणाम या उत्पादन (Products) है जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विषय वस्तुओं के साथ विभिन्न मानसिक सक्रियाओ के करने के फलस्वरुप प्राप्त होते हैं । परिणामो को गिलफोर्ड ने छ प्रकारो मे बाँटा है । ये छ प्रकार हैं—सूचनाओ की ईकाइयाँ (Units of Information), ईकाइयो के वर्ग (Classes of Units), ईकाइयो में सम्बन्ध (Relations between Units), सूचना प्रणाली (Systems of (Inmformations), प्रत्यावर्तन प्रणाली (Systems of Transformations), तथा निहितार्थ प्रणाली (Systems of Implications) । मानसिक कार्यो मे निहित उपरोक्त वर्णित चार प्रकार की विषय वस्तु, पाँच प्रकार की सक्रियाये तथा छ प्रकार के परिणामों के आधार पर गिलफोर्ड ने कहा कि कुल 120 ($4 \times 5 \times 6 = 120$) भिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताएँ हो सकती है जो 120 भिन्न-भिन्न कार्यों मे सलग्न होती है ।

बुद्धि का मापन
(Measurement of Intelligence)

मानव हमेशा से ही अपने सगी-साथियो की योग्यताओ को जानने का इच्छुक रहा है । आदिम युग मे शारीरिक शक्ति तथा पहेली बूझने जैसी अपरिपक्व विधियो से दूसरे व्यक्तियों की योग्यताओ का मापन किया जाता था । सभ्यता के विकास तथा वैज्ञानिक विधियों के विकास के साथ-साथ योग्यता मापन की विधियाँ भी परिष्कृत होती गई । मानसिक परीक्षण का वर्तमान दौर बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे प्रारम्भ हुआ था । सन् 1905 मे बिने ने अपने सहयोगी साइमन के साथ मिलकर सबसे पहला सफल बुद्धि परीक्षण तैयार किया था । बुद्धिमापन के ऐतिहासिक विकासक्रम को तीन काल खण्डो मे बाँटा जा सकता है —

(i) **बिने पूर्व काल** (Pre-Binet Period)

(ii) **बिने काल** (Binet Period)

(iii) **बिने उत्तर काल** (Post-Binet Period)

बिने पूर्व काल (Pre-Binet Period) —जैसा कि चर्चा की जा चुकी है, व्यक्तियो के बौद्धिक तथा अन्य मनोवैज्ञानिक गुणो मे एक दूसरे से भिन्न-भिन्न होने के तथ्य को शताब्दियों पूर्व स्वीकार किया जा चुका था । परन्तु केवल लगभग 200 वर्ष पूर्व ही इस तरह की विभिन्नताओं का प्रथम विधिवत तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया जा सका था । सन् 1796 मे ग्रीनविच वेधशाला (Greenwich Observatory) के एक कर्मचारी के द्वारा टेलीस्कोप के पर्दे को तारो (Stars) के द्वारा पार करने में लिए गए समय को ज्ञात करने में त्रुटि करने के कारण उस कर्मचारी की योग्यताओं का विधिवत् अध्ययन किया

गया। इसके पश्चात् अमेरिका तथा ब्रिटेन मे मानसिक योग्यताओं के मापन पर पर्याप्त कार्य हुआ। वेबर (Weber 1795-1818), गाल्टन (Galton 1822-1911), तथा कैटल (Cattell, 1860-1944) के द्वारा किये गए प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। परन्तु इसके बावजूद भी बुद्धि परीक्षण का सबसे बडा तथा सफल कार्य फ्रास मे हुआ।

मानसिक परीक्षण (Mental Tests) शब्द का प्रयोग सबसे पहले सन् 1890 मे कैटल (Cattel) ने किया था। उसने अपनी प्रयोगशाला मे स्मरण, शुद्धता, निर्णय आदि अनेक मानसिक क्रियाओं का प्रयोग करके व्यक्तिगत विभेद करने का प्रयास किया। सन् 1891 में बोल्टन (Bolton), 1893 मे जैस्ट्रो (Jastrow), सन् 1894 मे गिलबर्ट (Gilbert) तथा सन् 1895 में ओहर्न (Oehrn) ने अपने-अपने परीक्षणो के द्वारा मानसिक योग्यताओं का मापन करने का प्रयास किया। सन् 1895 मे बिने ने स्मृति, ज्योमितिय डिजाइन, पाठन, निर्देश ग्रहणशीलता, नैतिक भाव आदि से सम्बन्धित प्रश्नो की सूची तैयार की थी। यह सूची ही बाद में बिने साइमन परीक्षण का आधार बनी।

बिने काल (Binet Period) —बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे फ्रासीसी शिक्षा अधिकारियों का ध्यान अपने यहाँ के प्राथमिक विद्यालयो मे अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की बडी सख्या की तरफ आकर्षित हुआ। अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रो की यह विशाल संख्या क्या छात्रों के द्वारा कठिन परिश्रम न करने का परिणाम है अथवा छात्रो की जन्मजात योग्यता मे कोई कमी है ? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये फ्रास के जन शिक्षा मन्त्री (Minister for Public Instruction) ने सन् 1904 मे एक आयोग का गठन किया। इस आयोग ने अल्पबुद्धि छात्रों का पता लगाने के लिए वस्तुनिष्ठ बुद्धि परीक्षण की आवश्यकता महसूस की। जिसके परिणामस्वरुप प्रथम बुद्धि परीक्षण का निर्माण हुआ तथा जिसे 1905 की बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण कहते है। बिने (Binet) तथा साइमन (Simon) उस आयोग के सदस्य थे। बुद्धि का मापन करने के लिए विभिन्न सम्भाव्य विधियों पर विचार करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सबसे उपर्युक्त विधि यह रहेगी कि अनेक छोटे-छोटे मानसिक कार्यों का चयन किया जाये तथा फिर यह देखा जाये कि विभिन्न आयु के बालक उनमें से किन-किन को कर पाते है। तब इन्होने निर्णय, स्मृति, तर्क, आकिक जैसे मानसिक कार्यों से सम्बन्धित अनेक प्रश्न तैयार किये। इन प्रश्नो को अनेक बालकों पर प्रशासित करके उन्होने कुल 30 प्रश्नों का चयन किया तथा उन्हे कठिनता के बढ़ते क्रम मे व्यवस्थित करके बुद्धि परीक्षण का रुप दिया। इस परीक्षण की सहायता से बिने तथा साइमन ने बालको को बुद्धि के अनुरुप अधिक वस्तुनिष्ठ ढग से वर्गीकृत करने मे सफलता प्राप्त की।

बिने तथा साइमन ने अपने परीक्षण मे सुधार करके सन् 1908 में इसे नवीन रुप मे प्रस्तुत किया। सन् 1908 में प्रश्नो की सख्या 59 कर दी तथा इन्हे आयुवार (3 वर्ष से 13 वर्ष तक) बाँटा गया। प्रत्येक आयु वर्ग के लिए कुछ प्रश्नों को निश्चित किया गया। मानसिक आयु (Mental Age) के प्रत्यय का प्रतिपादन भी बिने ने इन परीक्षण मे किया। उसने कहा कि कुछ ऐसी मानसिक क्रियाओ का चयन किया जा सकता है जिनकी किसी दी गई आयु के सामान्य बालक से सफलतापूर्वक करने की अपेक्षा की जा सकती है। जिस आयु के लिए निर्धारित मानसिक कार्यों को कोई बालक सफलतापूर्वक

कर लेता है, उस बालक की मानसिक आयु उतने ही वर्ष कहलायेगी, भले ही उसकी वास्तविक आयु कम या अधिक क्यो न हो। जैसे यदि कोई बालक 7 वर्ष के सामान्य बालको के द्वारा की जाने वाली मानसिक क्रियाओ को कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु 7 वर्ष कही जायेगी। सन् 1908 वाले परीक्षण मे बेलेजियम, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, स्विटजरलैण्ड, अमेरिका आदि देशो के मनोवैज्ञानिको ने पर्याप्त रुचि ली तथा उन्होने उस पर अनेक सुझाव दिये। इन सुझावो के आधार पर सन् 1911 मे बिने-साइमन परीक्षण को पुन सशोधित किया गया। इस सशोधन मे कुछ प्रश्नो को बदला गया तथा कुछ को निकाल दिया गया। अकन विधि मे सुधार किया गया। बिने के अनुसार जिस बालक की मानसिक आयु उसकी वास्तविक आयु के बराबर होती है उसे बुद्धि की दृष्टि से सामान्य बालक कहा जायेगा। मानसिक आयु के वास्तविक आयु से अधिक होने पर तीव्र बुद्धि बालक तथा कम होने पर मन्द बुद्धि बालक कहा जायेगा। श्रेष्ठता या पिछड़ेपन की मात्रा मानसिक आयु व वास्तविक आयु के अन्तर पर निर्भर करती है। इसके एक वर्ष के दौरान ही विलियम स्टर्न (Wıllıum Stern) ने बुद्धि लब्धि (Intellıgence Quotıent) का प्रयोग करने का सुझाव दिया जिसका आज सर्वत्र उपयोग किया जाता है। बिने की मृत्यु सन् 1911 मे हो गई। बिने ने बुद्धि मापन के क्षेत्र मे दो महत्वपूर्ण योगदान किये। प्रथम, उसने बुद्धि परीक्षण के मानकीकरण की विधि का प्रतिपादन किया तथा द्वितीय, उसने मानसिक आयु के प्रत्यय को प्रस्तुत किया।

बिने उत्तर काल (Post Bınet Period) —बिने बुद्धि परीक्षण का निर्माण फ्रेंच बालको के लिए किया गया था। अन्य राष्ट्रो के बालकों के लिए परीक्षण का प्रयोग करने के लिए इसका अनुवाद तथा आवश्यक परिवर्तन करना जरुरी था। बिने परीक्षण की उपयोगिता को देखते हुए लगभग सभी देशो मे इस परीक्षण के अनुकूलन किये गये। इन अनुकूलनो मे अमेरिका के स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय मे प्रो० टरमन (Terman) व उनके सहयोगियो द्वारा 1916, 1937, व 1960 मे किये गये अनुकूलन अधिक प्रसिद्ध हुए। इन परीक्षणो को स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण के नाम से जाना जाता है। भारत मे भी सन् 1912 मे श्री सी० एच० राइस (C H. Rıce) ने बिने परीक्षण का भारतीय अनुकूलन करके 'हिन्दुस्तानी बिने परीक्षण' तैयार किया। सन् 1939 मे वैश्लर (Wechsler) ने बुद्धिमापन के लिए शाब्दिक तथा अशाब्दिक, दोनों ही प्रकार के, प्रश्नों वाला बुद्धि परीक्षण तैयार किया। इस परीक्षण के पीछे आधारभूत सिद्धान्त था कि बुद्धि न केवल सकेतो, अमूर्तता, व प्रत्ययो के प्रयोग की क्षमता है वरन् मूर्त वस्तुओ के प्रयोग वाली परिस्थितियो मे तथा समस्याओं के साथ समायोजन की योग्यता भी है। सन् 1955 मे उसने इसका सशोधित रुप प्रस्तुत किया जिसे वैश्लर प्रौढ बुद्धि परीक्षण (WAIS) के नाम से जाना जाता है। सन् 1949 मे उसने बालको के लिए वैश्लर बुद्धि परीक्षण (WISC) का निर्माण भी किया था। इसके अतिरिक्त भी अनेक शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणो का निर्माण विभिन्न आयु के बालकों व व्यक्तियों के लिए किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ओटिस (Otıs) महोदय के प्रयासो के फलस्वरुप आर्मी एल्फा स्केल (Army Alpha Scale), जो शाब्दिक था, तथा आर्मी बीटा स्केल (Army Beta Scale) जो अशाब्दिक था, का निर्माण समूह परीक्षण के रुप मे किया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय आर्मी सामान्य बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया गया । इसके बाद अनेक समूह परीक्षण तैयार किये गये । रेवन (Reven) तथा कैटल (Cattell) के द्वारा तैयार किये गये अशाब्दिक परीक्षण भी काफी प्रसिद्ध हुए । भारत मे भाटिया द्वारा निर्मित मानसिक योग्यता परीक्षण, मनोविज्ञान शाला, इलाहाबाद द्वारा तैयार किया गया सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण तथा प्रयाग मेहता का सामूहिक बुद्धि परीक्षण अधिक प्रसिद्ध हुए ।

बुद्धि मापन की तकनीक

(Technique of Intelligence Measurement)

बुद्धि परीक्षणो के ऐतिहासिक विवेचन से बुद्धि मापन के सम्वन्ध मे कुछ तथ्य स्पष्ट होते है । बुद्धि परीक्षण के परिणाम अको के रूप मे प्राप्त होते है परन्तु इन अको के आधार पर बुद्धि के सम्वन्ध मे कुछ भी स्पष्ट नही कहा जा सकता है । ऐतिहासिक विवेचन मे मानसिक आयु तथा बुद्धिलब्धि गुणाक की चर्चा की जा चुकी है । वास्तव मे बुद्धि परीक्षण से प्राप्त प्राप्ताको को मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि ही किसी व्यक्ति की उच्चवुद्धि, सामान्य वुद्धि या निम्न बुद्धि के द्योतक होते हैं । अत. मानसिक आयु तथा बुद्धिलब्धि गुणाक की विस्तृत चार्च समोचित प्रतीत होती है ।

मानसिक आयु (Mental Age)—जैसी कि चर्चा की जा चुकी है, मानसिक आयु के प्रत्यय का प्रतिपादन विने (Binet) के द्वारा किया गया था । बुद्धि परीक्षण के निर्माण के दौरान विने के सामने प्रश्न आया कि बुद्धि का मापन कैसे तथा किस इकाई मे किया जाये । कोई व्यक्ति बुद्धि परीक्षण के कितने प्रश्नो को सही हल करता है, इस आधार पर उसे अक तो प्रदान किये जा सकते है । परन्तु इन अको के आधार पर उसकी बौद्धिक योग्यता या मानसिक विकास के सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव नही है । जैसे यदि कोई व्यक्ति या बालक किसी बुद्धि परीक्षण पर 65 अक प्राप्त करता है । तो इस 65 के आधार पर उसकी बुद्धि के सम्वन्ध मे कुछ भी कहना सम्भव नही होगा । किसी परीक्षण पर 10 वर्ष, 15 वर्ष व 25 वर्ष के व्यक्ति के द्वारा 65 अक प्राप्त करना, एक जैसी बुद्धि का परिचायक नही है । बिने का विचार था कि मानसिक योग्यता का ठीक-ठीक ज्ञान तव हो सकता है जव हमे यह ज्ञात हो कि किसी निश्चित आयु के वालको को क्या अक प्राप्त हुए है । बिने ने विभिन्न आयु के लिए मानक अक तैयार करने के स्थान पर विभिन्न आयु के लिए मानक प्रश्नो का चयन किया तथा उन प्रश्नो को सही हल कर सकने के आधार पर मानसिक आयु के प्रत्यय की कल्पना की । स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति की मानसिक आयु उस व्यक्ति के मानसिक विकास की अवस्था को बताती है तथा इसके आधार पर वालको तथा व्यक्तियो को मन्द बुद्धि, सामान्य बुद्धि तथा तीव्र बुद्धि जैसे वर्गों से विभाजित किया जा सकता है ।

विने के अनुसार मानसिक आयु किसी व्यक्ति के मानसिक विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके द्वारा किये जा सकने वाले मानसिक कार्यो से ज्ञात की जा सकती है तथा जिसकी उस आयु विशेष के सामान्य बालकों से अपेक्षा रहती है । विने ने विभिन्न आयु के वालको के लिए कुछ प्रश्नो को निर्धारित किया । जिस आयु के लिए निर्धारित

प्रश्नो को बालक सही ढग से हल कर देता है उस बालक की मानसिक आयु उतने ही वर्ष मानी जाती है। जैसे यदि कोई बालक 8 वर्ष के लिए निर्धारित प्रश्नो को सही हल कर देता है तो उसकी मानसिक आयु 8 वर्ष मानी जायेगी। मानसिक आयु ज्ञात करते समय बालक जिस उच्चतम आयु स्तर के समस्त प्रश्नो को सही हल करता है उसके साथ-साथ उसे इससे अधिक आयु स्तरो के उन समस्त प्रश्नो के लिए भी क्रेडिट (Credit) मिलता है जिन्हें वह सही हल करता है। जिस उच्चतम आयु स्तर के सभी प्रश्नों का बालक सही हल करता है उसे बेसल वर्ष (Basal Year) कहते है तथा जिस आयु स्तर का कोई भी प्रश्न वह हल नही कर पाता है उसे बालक के लिए टर्मिनल वर्ष (Terminal year) कहते हैं। स्पष्ट है कि आयु बुद्धि परीक्षण (Age Intelligence Scale) के प्रशासन के समय तब तक उच्च आयु के प्रश्नो की ओर आगे बढते है जब तक टर्मिनल वर्ष नही प्राप्त हो जाता है। बालक की मानसिक आयु ज्ञात करने के लिए बेसल तथा टर्मिनल वर्षो के बीच जितने प्रश्न बालक हल करता है उनका क्रेडिट बेसल वर्ष मे जोड देते है। मानसिक आयु का वास्तविक आयु से कोई सम्बन्ध नही है। 8 वर्ष के बालक की मानसिक आयु 8 वर्ष से कम या अधिक हो सकती है। मानसिक आयु बालक की मानसिक परिपक्वता की स्थिति को प्रदर्शित करती है। मानसिक आयु की तुलना वास्तविक आयु से करने पर बालक के मानसिक विकास की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यदि मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो बालक को कुशाग्र बुद्धि का कहा जाता है। इसके विपरीत यदि मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो बालक को मन्द बुद्धि वाला बालक कहा जाता है। यदि मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु एक दूसरे के बराबर होती है तो बालक को सामान्य बुद्धि का कहा जायेगा। स्पष्ट है कि मानसिक आयु व वास्तविक आयु का अन्तर एवं दिशा बुद्धि की श्रेष्ठता व निष्कृष्टता के परिणामो को इंगित करता है।

बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient) —मानसिक आयु बुद्धि या मानसिक विकास की स्थिति का कोई निरपेक्ष मान न होकर सापेक्ष मान है। मानसिक आयु (Mental Age) की सहायता से बुद्धि के सम्बन्ध मे कोई निर्णय लेने के लिये वास्तविक आयु (Chronological Age) के ज्ञान की आवश्यकता पडती है। इस कठिनाई को देखते हुए स्टर्न (Stern) तथा कुहलमान (Kuhlmann) ने सन् 1912 मे बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient), जिसे सक्षेप में आई० क्यू० (I. Q.) कहते हैं, का प्रयोग करने का सुझाव दिया। परन्तु इसका प्रयोग सन् 1916 मे टरमैन के द्वारा स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण के प्रकाशन के उपरान्त ही प्रचलित हो पाया था। बुद्धि लब्धि व्यक्तियों या बालको के मानसिक विकास या बुद्धि को व्यक्त करने वाला एक ऐसा निरपेक्ष मान है जिसकी सहायता से बालक या व्यक्ति के कुशाग्र, सामान्य या मन्द बुद्धि होने का पता तो चलता ही है, साथ ही साथ उसकी तुलना अन्य बालको या व्यक्तियो से सरलता से की जा सकती है। बुद्धि लब्धि वास्तव मे मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु का अनुपात है जिसमे दशमलव बिन्दु हटाने के लिए 100 से गुणा कर देते है। अत:

$$\text{बुद्धि लब्धि (I. Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु (M.A.)}}{\text{वास्तविक आयु (C.A.)}} \times 100$$

स्पष्ट है कि यदि मानसिक आयु वास्तविक आयु के बराबर होती है तो बुद्धि लब्धि 100 के बराबर होती है । मानसिक आयु के अधिक होने पर यह गुणाक 100 से अधिक होता है । मानसिक आयु वास्तविक आयु से जितनी अधिक होती है, बुद्धिलब्धि 100 से उतनी ही अधिक होती है । इसके विपरीत मानसिक आयु के वास्तविक आयु से कम होने पर बुद्धिलब्धि का मान 100 से कम प्राप्त होती है मानसिक आयु जितना कम होती है इस गुणाक का मान भी उतना कम होता है । सोलह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियो के लिए बुद्धि लब्धि की गणना करते समय सूत्र मे वास्तविक आयु का मान सोलह ही रखते है ।

टरमैन ने सन् 1916 के स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण के साथ बुद्धि लब्धि के वितरण की तालिकाएँ भी तैयार की थी जिनमे विभिन्न बुद्धि लब्धि गुणाकों के लिए बालको व व्यक्तियो की प्रतिशत सख्याएँ भी दी थी । सामान्य तौर पर किसी बडे समूह के लिए बुद्धि लब्धि का वितरण सामान्य प्रायिकता वक्र (N.P.C.) का अनुगमन करता है जिसे आगे दिया जा रहा है ।

बुद्धि लब्धि का वितरण
(Distribution of I. Qs)

बुद्धि लब्धि I.Q.	प्रतिशत %	वर्ग Category
140 से अधिक	1	प्रतिभाशाली(Genius)
121-140	5	प्रखर बुद्धि (Superior)
111-120	14	तीव्र बुद्धि (Above Average)
91-110	60	सामान्य बुद्धि (Average)
81-90	14	मन्द बुद्धि (Feeble minded)
71-80	5	अल्प बुद्धि (Dull)
71 से कम	1	जड़ बुद्धि (Idiot, Imbecile, Morone)

बुद्धि मापन में प्रयुक्त मानसिक कार्य
(Mental Takes used in Measurement of Intelligence)

बुद्धि मापन के लिए बुद्धि परीक्षणो में विभिन्न प्रकार के कार्यों (Tasks) का प्रयोग किया जाता है । परीक्षार्थियो के द्वारा इन कार्यो को पूरा करने के आधार पर उन्हे अक प्रदान किये जाते है । परीक्षार्थियो द्वारा प्राप्त कुल अक उसकी मानसिक योग्यता या बुद्धि की मात्रा के परिचायक होते है । बुद्धि परीक्षणो मे प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ कार्य सम्प्राप्ति परीक्षणो मे प्रयुक्त किये जाने वाले कार्यो के समान होते है । समस्या समाधान, गणना कार्य, भाषा योग्यता जैसे अनेक प्रकरणों को विद्यालयो मे पढाये जाने तथा इनका बुद्धि के अग (Factors of Intelligence) होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि बुद्धि परीक्षणों तथा सम्प्राप्ति परीक्षणों मे लगभग एक प्रकार के कुछ कार्य पाये जाते है ।

इसके बावजूद भी बुद्धि परीक्षणो मे कुछ ऐसे कार्यो को भी सम्मलित किया जाता है जो प्राय सम्प्राप्ति परीक्षणों मे नही रखे जाते है। उदाहरण के लिए समतुल्यता समस्याएँ, वर्गीकरण समस्याएँ आदि को बुद्धि परीक्षणो मे रखा जाता है परन्तु प्राय सम्प्राप्ति परीक्षणों मे नही। वास्तव मे इस प्रकार के कार्यो को करना बालको को विद्यालय मे औपचारिक ढग से प्राय नहीं सिखाया जाता है वरन स्कूल मे, खेल मे, घर मे या अन्य स्थानो व परिस्थितियों मे बालक इनको अनौपचारिक ढग से सीखते रहते है। परन्तु बुद्धि के अग होने के कारण, बुद्धि मापन के लिए बुद्धि परीक्षणों मे इनको सम्मिलित किया जाता है। बुद्धि परीक्षणो मे सम्मिलित किये जाने वाले कार्यो को छ प्रमुख भागों मे बाँटा जा सकता है। इन छ प्रमुख भागो को पुन कुछ उपभागो मे विभक्त किया जा सकता है। ये कार्य तथा उपकार्य अग्राकित सारणी मे प्रस्तुत किये गये है —

तालिका

बुद्धि मापन में प्रयुक्त मानसिक कार्य

(A) सूचना कार्य	(i) सामान्य सूचना (ii) सामान्य बोध (iii) विसगति खोज
(B) शाब्दिक कार्य	(iv) शब्द विस्तार (v) समानार्थक शब्द (vi) विलोम शब्द (vii) शाब्दिक सादृश्यता (viii) वाक्य पूर्ति (ix) वाक्य रचना (x) वाक्य व्याख्या (xi) निर्देश पालन
(C) आंकिक कार्य	(xii) अक विस्तार (xiii) अक श्रृखला (xiv) अकगणितीय सक्रियाए (xv) अकगणितीय तर्क
(D) अमूर्त चिन्तन कार्य	(xvi) सापेक्षिक मात्रा (xvii) समानता (xviii) अन्तर (xix) वर्गीकरण (xx) क्रम (xxi) कूट भाषा
(E) आकृतिक कार्य	(xxii) आकृतिक अर्थ (xxiii) आकृति पूर्ति (xxiv) आकृति सादृश्यता (xxv) मैट्रिक्स श्रखला

	(xxvi) भूल-भूलैया (xxvii) आकृति रचना (xxviii) आकृति सयोजन
(F) स्थूल सामग्री कार्य	(xxix) वस्तु नाम (xxx) वस्तु गिनना (xxxi) वस्तु सयोजन

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
(Types of Intelligence Tests)

सन् 1905 मे बिने के द्वारा प्रथम परीक्षण के निर्माण के बाद अनेक बुद्धि परीक्षणो का निर्माण हुआ। कुछ बुद्धि परीक्षणो को एक ही समय मे केवल एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जाता है जबकि कुछ बुद्धि परीक्षणो को एक साथ अनेक व्यक्तियो पर प्रशासित किया जा सकता है। अत बुद्धि परीक्षणो को प्रशासन की दृष्टि से निम्न दो भागो मे बाँटा जा सकता है —

(i) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Tests)

(ii) सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Tests)

कुछ बुद्धि परीक्षण मे भाषा के द्वारा समस्याएँ प्रस्तुत की जाती है तथा परीक्षार्थी को भाषा के द्वारा ही उत्तर देने होते है, जबकि कुछ अन्य परीक्षणो मे चित्रो या स्थूल सामग्री की सहायता से समस्याएँ प्रस्तुत की जाती है जिनमे परीक्षार्थी को कुछ करके उत्तर देने होते है। अत बुद्धि परीक्षणो को प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से दो भागो मे बाँटा जा सकता है —

(i) शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Tests)

(ii) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Intelligence Tests)

बुद्धि परीक्षणो के इस द्विआयामी विभाजन को सारणी के रूप मे निम्न ढग से प्रस्तुत कर सकते है —

सारणी
बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

प्रस्तुतीकरण प्रशासन	भाषा के द्वारा	चित्र या स्थूल सामग्री के द्वारा
एक व्यक्ति पर	शाब्दिक-व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक-व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
अनेक व्यक्तियो पर	शाब्दिक-सामूहिक बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक-सामूहिक बुद्धि परीक्षण

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बुद्धि परीक्षण कुल चार प्रकार के हो सकते है—(1) शाब्दिक-व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण, (2) शाब्दिक-सामूहिक बुद्धि परीक्षण, (3) अशाब्दिक-व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण, तथा (4) अशाब्दिक-सामूहिक बुद्धि परीक्षण। विभिन्न प्रकार के बुद्धि परीक्षणो का सक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण

(Individual Intelligence Tests)

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणो को एक समय मे केवल एक व्यक्ति पर प्रशासित किया जाता है। परीक्षणकर्त्ता एक बार मे केवल एक ही व्यक्ति के सम्मुख परीक्षण समस्याओं को प्रस्तुत करता है तथा उसकी प्रतिक्रियाओ के आधार पर उसकी बुद्धि का मापन करता है। व्यक्तिगत परीक्षण के प्रशासन मे कुशलता व दक्षता की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि केवल प्रशिक्षित परीक्षणकर्त्ता ही व्यक्तिगत परीक्षणो का समुचित ढग से उपयोग कर सकताहै। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण के प्रशासन के समय परीक्षणकर्त्ता को परीक्षार्थी के साथ घनिष्ठ व आत्मीय सम्बन्ध तथा उचित सामजस्य स्थापित करना पडता है। घनिष्ठ व आत्मीय सम्बन्ध तथा सामजस्य के उपरान्त ही परीक्षार्थी प्रश्नो का ठीक ढग से उत्तर दे पाता है तथा परीक्षण की औपचारिकता के कारण कर्तव्यविमूढ नही होता है। व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणो मे शाब्दिक या अशाब्दिक प्रश्न हो सकते है। शाब्दिक प्रश्नो वाले व्यक्तिगत परीक्षण को शाब्दिक व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहते है। अशाब्दिक प्रश्नो वाले व्यक्तिगत परीक्षण को अशाब्दिक -व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहते हैं। कुछ व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणो में शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनो ही प्रकार के प्रश्न होते हैं। इन्हे शाब्दिक-अशाब्दिक व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहा जा सकता है। बिने-साइमन परीक्षण, स्टैनफोर्ड-टरमन सशोधन, गुडएनफ ड्रा ए मैन परीक्षण (Goodenough draw a man Test), भाटिया बैटरी, वैश्लर बुद्धि परीक्षण आदि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण है।

विशेषताएँ (Characteristics) —चूँकि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण मे परीक्षणकर्ता तथा परीक्षार्थी के बीच उचित व घनिष्ठ सामजस्य हो जाता है इसलिए इनसे व्यक्ति के व्यवहार का गहन व गूढ अध्ययन सम्भव हो जाता है। भलीभाति प्रशिक्षित विशेषज्ञों के द्वारा परीक्षण किये जाने से इनकी विश्वसनीयता तथा वैधता बढ जाती है। इन परीक्षणों मे परीक्षार्थियो के द्वारा धोखा देने की सम्भावना भी कम रहती है। शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनो ही प्रकार के प्रश्नो को सम्मिलित किया जा सकने तथा परीक्षणकर्ता के प्रत्यक्ष अवलोकन के कारण इनसे व्यक्ति की कार्य प्रणाली, सामाजिक व सवेगात्मक पक्षो, व्यक्तित्व के गुणात्मक पहलुओ का मापन सम्भव होता है। शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन के लिए, मानसिक निदान के लिए, तथा छोटे बच्चो, पिछडे व मन्द बुद्धि व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत परीक्षण विशेष रुप से उपयोगी होते हैं।

सीमाएँ (Limitations) —जहाँ व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षणो मे अनेक विशेषताएँ हैं, वही दूसरी ओर इनकी कुछ ऐसी सीमाएँ भी हैं जिनके कारण इनका प्रयोग कुछ

सीमित होता जा रहा है । प्रशिक्षित परीक्षणकर्ता के द्वारा एक समय मे केवल एक ही व्यक्ति पर प्रशासित हो सकने के कारण ये समय, धन व मानव श्रम की दृष्टि से अत्यधिक व्यय साध्य होते है, विशेषकर जब किसी बडे समूह का बुद्धि परीक्षण करना होता है । व्यक्तिगत परीक्षणो का मानक तैयार करना भी कठिन कार्य है । वास्तव मे मानकीकरण तथा प्रशासन दोनो ही दृष्टियो से व्यक्तिगत प्रशिक्षण जटिल होते है । व्यक्तिगत परीक्षणो के अकन की विश्वसनीयता भी कम होती है । परीक्षण से पूर्व परीक्षणकर्ता तथा परीक्षार्थी मे यदि सामजस्य नही स्थापित हो पाता है तो परीक्षार्थी उदासीन या अनिच्छुक हो जाता है जिससे परीक्षण के परिणाम प्रभावित हो जाते है । इन कमियो के कारण व्यक्तिगत परीक्षणो का प्रयोग सीमित होता जा रहा है ।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण

(Group Intelligence Tests)

सामूहिक बुद्धि परीक्षणो का प्रारम्भ प्रथम विश्व युद्ध के समय मे प्रारम्भ हुआ । तब सेना मे सैनिको तथा अधिकारियों की भर्ती के लिए इच्छुक हजारो लाखो व्यक्तियो की मानसिक योग्यता का मापन करने के लिए ऐसे बुद्धि परीक्षण की आवश्यकता प्रतीत हुई जो एक साथ अनेक व्यक्तियो पर प्रशासित किया जा सके । इसके फलस्वरुप आर्मी एल्फा परीक्षण तथा आर्मी बीटा परीक्षणो का निर्माण हुआ । आर्मी एल्फा परीक्षण अंग्रेजी भाषा जानने वालों के लिए तथा आर्मी बीटा परीक्षण अग्रेजी न जानने वालो व अशिक्षितो के लिए था । सामूहिक बुद्धि परीक्षण एक समय मे अनेक व्यक्तियो पर प्रशासित किया जा सकता है । इस प्रकार के परीक्षणो का प्रशासन तथा अकन सरल होता है तथा अल्प प्रशिक्षण के उपरान्त सामान्य व्यक्ति इनका प्रशासन कर सकता है । सामूहिक बुद्धि परीक्षण भी शाब्दिक या अशाब्दिक दोनो ही प्रकार के हो सकते है । छात्रों व कर्मचारियो के चयन मे इनका व्यापक रुप से उपयोग किया जाता है । जलोटा, टन्डन व मेहता के सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण है ।

विशेषताएँ (Characteristics) —सामूहिक बुद्धि परीक्षण व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी है । एक साथ अनेक व्यक्तियो पर प्रशासित हो सकने के कारण ये समय, धन व श्रम की दृष्टि से अत्यधिक मितव्ययी होते हैं । इनके प्रशासन के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता न होने के कारण साधारण अध्यापकगण भी इनका सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं । सामूहिक बुद्धि परीक्षणो का मानकीकरण व अकन अपेक्षाकृत सरल व सुगम होता है । ये परीक्षण अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं । व्यक्तियो के चयन तथा वर्गीकरण में इनका उपयोग प्राय· अधिक किया जाता है ।

सीमाएँ (Limitations) —सामूहिक बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग छोटे बच्चों तथा मन्द बुद्धि व समस्याग्रस्त व्यक्तियो के साथ करना सम्भव नही होता । इन परीक्षणों के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का गूढ़ व गहन अध्ययन किया जाना सम्भव नही हो पाता है । सामूहिक परीक्षणो में नकल व धोखे की सम्भावना अधिक रहती है । इनकी विश्वसनीयता तथा वैधता प्रायः कम होती है । यदि बालक या व्यक्ति सामूहिक बुद्धि परीक्षण के प्रति संवेदनशील नही होते हैं तो इनसे प्राप्त परिणाम व्यर्थ होते है ।

उपरोक्त दोनो प्रकार के बुद्धि परीक्षणो की तुलना निम्नांकित सारणी से स्पष्ट हो सकेगी।

तालिका

व्यक्तिगत तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षणों की तुलना

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण	सामूहिक बुद्धि परीक्षण
1. इन्हें एक समय मे केवल एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है।	1. इन्हे एक साथ अनेक व्यक्तियो पर प्रशासित किया जा सकता हैं।
2. ये प्रशासन व समय की दृष्टि से अधिक व्ययसाध्य।	2. ये प्रशासन व समय की दृष्टि से मितव्ययी होते है।
3. इनके प्रशासन के लिए निपुण व प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है।	3. सामान्य व्यक्ति भी इनका प्रशासन अल्प प्रशिक्षण के उपरान्त कर सकते है।
4. इनका अकन अपेक्षाकृत कम वस्तुनिष्ठ (Semi-objective) होता है।	4. इनका अकन वस्तुनिष्ठ (Objective) होता है।
5. इनमे प्राय: समय सीमा नही होती है।	5. इनमे प्राय समय सीमा निर्धारित होती है।
6. इन पर प्राप्त अको की गुणात्मक व्याख्या भी सम्भव है।	6. इन पर प्राप्त अको की मानको की सहायता से व्याख्या की जाती है।
7. इन्हे व्यापक समूहो या विस्तृत आयु वर्गो के लिए तैयार किया जाता है।	7. इनका मानकीकरण किसी विशिष्ट समूह या आयु वर्ग या शिक्षा स्तर के लिए किया जाता है।
8. इनकी वैधता सन्तोषप्रद होती है।	8. इनकी भी वैधता सन्तोषप्रद होती है।
9. ये कम उम्र के बच्चो के लिए अधिक उपयुक्त होते है।	9. ये परिपक्व आयु के व्यक्तियों के लिए अधिक उपयुक्त है।
10. ये प्राय मौखिक होते है।	10. ये लिखित होते है।
11. ये अधिक विश्वसनीय होते है।	11. ये कुछ कम विश्वसनीय होते है।
12. ये गुणात्मक व मात्रात्मक दोनो ही पक्षो की जानकारी प्रदान करते है।	12. ये केवल मात्रात्मक पक्ष की जानकारी प्रदान करते है।
13. इनमे परीक्षक आवश्यकतानुसार प्रश्नो का क्रम या प्रश्नो मे परिवर्तन कर सकता है।	13. इनमे कोई परिवर्तन सम्भव नही है।
14. इनमें नकल की कोई गुजाइश नही होती है।	14. इनमे नकल किये जाने की सभावना रहती है।
15. अनपढ लोगो पर भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।	15. इनका प्रयोग पढे लिखे व्यक्तियो पर ही किया जा सकता है।
16. इनमे अनौपचारिकता रहती है।	16. ये औपचारिक माहौल उत्पन्न कर देते है।

17. इनमे परीक्षार्थी को प्रोत्साहित किया जा सकता है ।	17. इनमे परीक्षार्थियो को केवल सामान्य प्रोत्साहन दिया जा सकता है ।
18. इन पर परीक्षार्थी अपनी योग्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकते है ।	18. इन पर कभी-कभी योग्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन सम्भव नही हो पाता है ।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

(Verbal Intelligence Tests)

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणो से तात्पर्य उन परीक्षणो से है जिनमे शब्दो या भाषा के माध्यम से प्रश्नो या समस्याओ को प्रस्तुत किया जाता है तथा परीक्षार्थी भी शब्दो या भाषा के माध्यम से इन प्रश्नो या समस्याओ का उत्तर प्रदान करते है । दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि जिन परीक्षणो मे भाषा का प्रयोग किया जाता है उन्हे शाब्दिक परीक्षण कहा जाता है। शाब्दिक परीक्षण प्राय कागज-कलम परीक्षण (Paper-Pencil Tests) या लिखित परीक्षण होते हैं फिर भी कभी-कभी इनको मौखिक रुप मे भी प्रयुक्त किया जाता है । शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत भी हो सकते है, तथा सामूहिक भी हो सकते है । बिने साइमन परीक्षण तथा जलोटा, टडन व मेहता के बुद्धि परीक्षण शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के कुछ उदाहरण है ।

विशेषताएँ (Characteristics)—शाब्दिक बुद्धि परीक्षणो का प्रशासन अधिक सरल व सुगम होता है। इन परीक्षणो का अकन वस्तुनिष्ठ होता है। इनकी विश्वसनीयता तथा वैधता अधिक होती है । शाब्दिक बुद्धि परीक्षण अल्पव्ययी होते है । इनका उपयोग प्राय व्यक्तिगत परीक्षण तथा सामूहिक परीक्षण के रूप मे किया जा सकता है । छात्रो की बुद्धि का मापन करने के लिए शाब्दिक बुद्धि परीक्षणो का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है ।

सीमाएँ (Limitations) —भाषा के प्रयोग के कारण शाब्दिक बुद्धि परीक्षणो का क्षेत्र सीमित हो जाता है । परीक्षण मे प्रयुक्त भाषा का लिखना तथा पढना जानने वाले व्यक्तियो पर ही शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है । छोटे बच्चो, अशिक्षितो तथा मन्द बुद्धि व्यक्तियो के लिए इनका प्रयोग सम्भव नही होता है। सास्कृतिक कारको, सामाजिक परिस्थितियो, आर्थिक स्थिति तथा वातावरणीय हीनता के कारण इन परीक्षणो पर व्यक्तियो की बुद्धि का मापन प्रभावित हो जाता है ।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

(Non-verbal Intelligence Tests)

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण से अभिप्राय उन परीक्षणो से है जिनमे शब्दो या भाषा का प्रयोग न करके चित्रो व अन्य निर्जीव वस्तुओ के माध्यम से समस्याएँ प्रस्तुत की जा है । दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों मे चित्रो या सामग्री की सहायता से प्रश्नो की रचना की जाती है तथा परीक्षार्थी को सही वस्तु छाँटकर अथवा कुछ क्रिया करके अपने उत्तर को व्यक्त करना होता है । इस के परीक्षण व्यक्तिगत भी हो सकते है तथा सामूहिक भी हो सकते है । अशाब्दि

परीक्षण के निर्देश कभी-कभी भाषा के माध्यम से व्यक्त किये जाते है । अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं— (i) कागज-कलम परीक्षण (Paper-Pencil Tests) तथा (ii) निष्पादन परीक्षण (Performance Tests) । कागज-कलम परीक्षणो को लिखित परीक्षण भी कहा जाता है तथा इस प्रकार के परीक्षणो मे चित्रो, आकृतियो या सख्याओ आदि की सहायता से कागज पर समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं जिनका उत्तर परीक्षार्थी कागज पर ही देता है । इसके विपरीत निष्पादन परीक्षणो मे निर्जीव वस्तुओ जैसे विभिन्न प्रकार के लकडी के गुटके आदि की सहायता से समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं । परीक्षार्थीगण इन गुटको को व्यवस्थित करके अपनी-अपनी मानसिक योग्यता का प्रमाण देते है । निष्पादन परीक्षण प्राय व्यक्तिगत परीक्षण होते है । रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स कागज-कलम प्रकार का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है जबकि भाटिया बैटरी निष्पादन प्रकार का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है ।

विशेषताएँ (Characteristics) —अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग छोटे बच्चों, अशिक्षितो, अन्य भाषा जानने वाले व्यक्तियो तथा अल्पबुद्धि के लिए किया जा सकता है । भाषायी योग्यता मे पिछडे व्यक्तियों तथा वातावरणीय हीनता के कारण पिछडे व्यक्तियो के लिए तो अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण विशेषरुप से प्रभावशाली होते है । सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक कारको से अप्रभावित होने के कारण अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण अधिक विश्वसनीय तथा वैध होते हैं । ये परीक्षण व्यक्ति की योग्यता के सम्बन्ध मे विस्तृत व अपरोक्ष सूचना प्रदान कर सकते है ।

सीमाएँ (Limitations) —भाषा का प्रयोग न होने के कारण अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यवहारिक दृष्टि से कम उपयोगी होते है । इनका निर्माण व प्रयोग अधिक व्ययसाध्य होता है । इनकी रचना व प्रशासन कुशल व प्रशिक्षित व्यक्तियो के द्वारा ही किया जा सकता है । निष्पादन परीक्षणो का अकन व्यक्तिनिष्ठ होने की सम्भावना रहती है ।

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक विवेचन निम्नाकित सारणी मे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

तालिका

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों की तुलना

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
1. इनमे भाषा के द्वारा मानसिक समस्याये प्रस्तुत की जाती है ।	1. इनमें चित्रो या स्थूल सामग्री के द्वारा मानसिक समस्याये प्रस्तुत की जाती है ।
हो 15. इनमे प्रश्नों के उत्तर भाषा के माध्यम से होते है ।	2. इनमे सही चित्र या वस्तु को छाँटकर या कुछ करके उत्तर दिए जाते है ।
किया 16. इन का प्रयोग केवल पढ़े लिखे व्यक्तियों सम्भव है ।	3. इनका प्रयोग निरक्षर, मन्द बुद्धि, छोटे बालकों या विदेशियो पर भी किया जा सकता है ।

4. इन परीक्षणों के परिणाम परीक्षार्थी की सास्कृतिक पृष्ठभूमि (Cultural background) से प्रभावित रहते है । 5. ये कम व्यय साध्य होते है ।	4. इन परीक्षणो के परिणाम परीक्षार्थी की सास्कृतिक पृष्ठभूमि से अप्रभावित रहते है । 5. ये अपेक्षाकृत अधिक व्यय साध्य होते हैं ।

आयु तथा बिन्दु मापदण्ड
(Age and Point Scales)

बुद्धि परीक्षणों को परिणामो के आधार पर दो भागों मे बॉटा जा सकता है है—आयु मापदण्ड (Age Scales) तथा बिन्दु मापदण्ड (Point Scales) । आयु मापदण्ड से तात्पर्य उन बुद्धि परीक्षणो से है जिनके द्वारा व्यक्तियो अथवा बालको की सीधे-सीधे मानसिक आयु ज्ञात होती है । इसके विपरीत बिन्दु मापदण्ड से अभिप्राय उन बुद्धि परीक्षणों से है जिनमे प्राप्ताक प्रदान किए जाते है । बिने के द्वारा तैयार किया गया बुद्धि परीक्षण आयु मापदण्ड है क्योकि इसकी सहायता से परीक्षार्थी की मानसिक आयु ज्ञात की जाती है । वैश्लर के द्वारा तैयार बुद्धि परीक्षण बिन्दु मापदण्ड का उदाहरण है क्योकि इस पर परीक्षार्थी को अक प्रदान किए जाते है । बिन्दु मापदण्ड पर प्राप्त अकों को आयु मानकों की सहायता से आयु मापदण्ड मे परिवर्तित किया जा सकता है ।

आयु मापदण्डो मे सम्मिलित किए जाने वाले प्रश्नो का चयन आयु के साथ मानसिक विकास होने को ध्यान मे रखकर किया जाता है तथा भिन्न-भिन्न आयु के लिए भिन्न-भिन्न प्रश्नो को निर्धारित किया जाता है । परीक्षार्थी किस आयु के लिए निर्धारित प्रश्नो का सफलतापूर्वक उत्तर दे पाते है, यह ज्ञात करना आयु माप दण्ड का प्रमुख कार्य होता है । बिन्दु मापदण्ड मे ऐसे प्रश्नों को रखा जाता है जिनका प्रयोग व्यापक आयु-प्रसार वाले समूहो पर किया जा सके तथा प्रश्नो को आयुवार व्यवस्थित न करके कठिनाई स्तर के अनुरुप क्रमबद्ध किया जाता है । परीक्षार्थी द्वारा सही हल किए गए प्रश्नो की सहायता से परीक्षार्थी का प्राप्ताक ज्ञात किया जाता है तथा इसकी मानको को सहायता से व्याख्या की जाती है ।

बुद्धि परीक्षणों का उपयोग
(Use of Intelligence Tests)

शिक्षा मनोविज्ञान मे बुद्धि परीक्षणो का अत्यन्त महत्वपूर्ण एव व्यापक ढग से उपयोग किया जाता है । मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रो यथा शिक्षा, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, सेना, अनुसंधान आदि मे तथा सामान्य जीवन मे भी बुद्धि परीक्षणों के उपयोग की आवश्यकता पडती है । बुद्धि परीक्षणो के कुछ प्रमुख उपयोग संक्षेप मे निम्नवत है—

शैक्षिक उपयोग (Educational Use) —सम्भवत बुद्धि परीक्षणो का सर्वाधिक उपयोग शैक्षिक क्षेत्र मे किया जाता है । शिक्षा प्राप्त करने मे छात्रो की सफलता जानने, उनके समायोजन को सुनिश्चित करनेतथा उन्हे सफलता के नवीन आयाम प्रदान करने के लिए शिक्षा सस्थाओ मे कार्यरत अध्यापकगण व प्रधानाचार्य तथा शिक्षाशास्त्री, प्रशासक वर्ग व अनुसन्धानकर्ता बुद्धि परीक्षणो का उपयोग करते है । छात्रो को प्रवेश देने के लिए, पाठ्यविषयो के चयन के लिए, छात्रो का वर्गीकरण करने के लिए, पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिए, शिक्षण विधियो का निश्चय करने के लिए, छात्रवृत्ति प्रदान करने के लिए, छात्रों की प्रतिभा व बुद्धि दौर्बल्य पता लगाने के लिए, छात्रो को निर्देशन देने के लिए, छात्रो को कक्षोन्नति देने के लिए, अनुसधान कार्य करने के लिए तथा अन्य अनेक कार्यो मे बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है ।

व्यावसायिक उपयोग (Vocational Use) —व्यवसाय के क्षेत्र मे भी बुद्धि परीक्षणो का उपयोग किया जाता है । विभिन्न रोजगारो, व्यवसायो तथा नौकरियों के लिए उपयुक्त व्यक्ति या कर्मचारी छाँटने के कार्य मे बुद्धि परीक्षणो का उपयोग किया जाता है । बुद्धि परीक्षणो की सहायता से नियोक्ता अभ्यर्थियों की मानसिक योग्यता का मापन करके सर्वोत्तम व्यक्ति का चयन कर सकता है । पदोन्नति तथा वर्गीकरण मे भी बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग लाभप्रद होता है । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सेना के लिए सैनिको तथा अधिकारियों का चयन करने के लिए तो विशेषरुप से आर्मी एल्फा परीक्षण तथा आर्मी बीटा परीक्षण बनाये गये थे । द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भी आर्मी सामान्य योग्यता परीक्षण का निर्माण किया गया था ।

नैदानिक उपयोग (Diagnostic Use) —बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग नैदानिक उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है । बालको की बुद्धि का ज्ञान करके उनकी शैक्षिक प्रगति, समायोजन तथा अधिगम आदि को अधिक अच्छी तरह से सचालित किया जा सकता है । शैक्षिक समस्याओं के निदान तथा मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने मे बुद्धि परीक्षण उपयोगी हो सकते है ।

अनुसंधान उपयोग (Research Use) —शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुसधान कार्यो मे भी बुद्धि का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है । बुद्धि से सम्बन्धित कारको के ज्ञान, बुद्धि के सिद्धान्तो के प्रतिपादन, बुद्धि से प्रभावित होने वाली क्रियाओ आदि अनुसधान कार्यों में बुद्धि मापन के लिए बुद्धि परीक्षणो का उपयोग किया जाता है ।

व्यावहारिक उपयोग (Practical Use) —मानव के व्यावहारिक जीवन मे भी बुद्धि परीक्षण उपयोगी भूमिका अदा कर सकते है । व्यक्ति की मानसिक योग्यताओ के आधार पर उन्हे वस्तुनिष्ठ ढंग से उच्च बुद्धि, सामान्य या मन्द बुद्धि मे वर्गीकृत करने के लिए बुद्धि परीक्षणो का प्रयोग किया जा सकता है ।

---

15 व्यक्तित्व तथा इसका मापन
(Personality and its Measurement)

शिक्षा मनोविज्ञान मे व्यक्तित्व का प्रत्यय एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिए व्यक्तित्व का मापन करने की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत अध्याय मे व्यक्तित्व का अर्थ, प्रकृति तथा व्यक्तित्व मापन की विधियो की चर्चा की गई है।

व्यक्तित्व का अर्थ
(Meaning of Personality)

साधारण बातचीत के दौरान व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। साधारण बातचीत मे प्रयुक्त 'व्यक्तित्व' शब्द किसी ऐसे गुण या विशेषता को इगित करता है जिसे लगभग सभी व्यक्ति पारस्परिक सम्बन्धो की दृष्टि से विशेष महत्व देते है। राकेश का व्यक्तित्व अत्यन्त मोहक है, जोजफ मधुर व्यक्तित्व वाला है, करीम का व्यक्तित्व काफी आकर्षक है, नीलम का व्यक्तित्व कितना अच्छा है, शाहीना बडे खराब व्यक्तित्व की है, रमेश का व्यक्तित्व अजीब सा है, किरन का तो कोई व्यक्तित्व ही नही है,जैसे वाक्याश आम बोलचाल के दौरान प्राय सुनने को मिलते रहते है। यद्यपि सामान्य बोलचाल मे व्यक्तित्व शब्द को परिभाषित करने का प्रयास नही किया जाता है, परन्तु फिर भी सभी समझते है कि इस प्रकार के वाक्याशो का क्या अभिप्राय है। स्पष्ट है कि सामान्य अर्थो मे व्यक्तित्व से तात्पर्य शारीरिक गठन, रगरुप, वेशभूषा, बातचीत के ढग जैसे बाह्य गुणो से होता है। व्यक्तित्व शब्द के अग्रेजी पर्याय **'पर्सनालिटी'** (Personality) का शाब्दिक अर्थ भी बाह्य गुणों या बाह्य आवरण को इगित करता है। **'पर्सनालिटी'** शब्द लैटिन भाषा के शब्द पर्सोना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ है मुखौटा (Mask)। प्राचीन काल मे पर्सोना शब्द से अभिप्राय उस पहनावे या वेशभूषा से था जिसे पहनकर नायक के पात्र रगमच पर किसी अन्य व्यक्ति का अभिनय करते थे। अत 'पर्सनालिटी' शब्द का शाब्दिक अर्थ व्यक्ति का बाह्य दिखावा मात्र है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि उस समय व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यक्ति के बाह्य गुणो से लगाया जाता है। परन्तु व्यक्तित्व शब्द का यह अर्थ एक सकुचित अर्थ है। व्यक्तित्व एक अत्यन्त व्यापक शब्द है तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका अर्थ पर्याप्त भिन्न है। मनोवैज्ञानिको की दृष्टि मे व्यक्तित्व एक अत्यन्त जटिल, भ्रामक तथा अस्पष्ट प्रत्यय है जिसकी पूर्णतया यथार्थ एवं स्पष्ट परिभाषा देना न केवल एक कठिन बल्कि लगभग असम्भव कार्य है। मनोविज्ञान के साहित्य में व्यक्तित्व शब्द की अनेक परिभाषाये मिलती हैं तथा उनमे पर्याप्त भिन्नतायें पाई जाती है। सभी परिभाषाये किसी एक विन्दु पर

सहमत नही होती है। वास्तव मे व्यक्तित्व एक परोक्ष विशेषता है तथा विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व के प्रत्यय को अपने अलग-अलग ढग से देखा तथा उसी के अनुरुप परिभाषित किया है।

गिलफोर्ड के अनुसार—"व्यक्तित्व गुणो का समन्वित रुप है।"

Personality is an integrated pattern of traits.

—Guilford

वुडवर्थ के शब्दों में—"व्यक्ति के व्यवहार की एक समग्र विशेषता ही व्यक्तित्व है।"

Personality is the total quality of an individual's behaviour.

—Woodworth

डेशील के अनुसार—"व्यक्तित्व व्यवहार प्रवृत्तियो का एक समग्र रुप है जो व्यक्ति के सामाजिक समायोजन मे अभिव्यक्त होता है।"

Personality is the sum total of behaviour trends manifested in his social adjustment.

—Deshiell

ड्रेवर के शब्दों में—"व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणो के उस एकीकृत तथा गत्यात्मक सगठन के लिए किया जाता है जिसे व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान मे व्यक्त करता है।"

Personality is the term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental, moral and social qualities of the individual as that manifest itself to other people, in the give and take of social life."

—Drever.

बिग तथा हण्ट के शब्दों में—"व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान . . . इसकी समस्त विशेषताओं के योग को व्यक्त करता है।"

Personality refers to the whole behavioural pattern of an individual . . . to the totality of its characteristics'.

—Bigge and Hunt

आलपोर्ट (Allport) ने सन् 1937 मे व्यक्तित्व की लगभग 50 परिभाषाओं का विश्लेषण व वर्गीकरण किया तथा निष्कर्ष निकाला कि 'व्यक्तित्व व्यक्ति के अन्दर उन मनोशारीरिक गुणो का गत्यात्मक सगठन है जो वातावरण के साथ उसका एक अनूठा समायोजन स्थापित करते है।"

Personality is the dynamic organization within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment.

—G. W. Allport

आलपोर्ट के द्वारा प्रस्तुत की गई इस परिभाषा को मनोविज्ञान मे सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। इस परिभाषा के ऊपर विश्लेषणात्मक दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि यह व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे तीन बातो की तरफ सकेत करती है

(i) व्यक्तित्व की प्रकृति सगठनात्मक तथा गत्यात्मक है।

(ii) व्यक्तित्व मे मनो तथा शारीरिक दोनो ही प्रकार के गुण समाहित है।

(iii) व्यक्तित्व वातावरण के साथ समायोजन से अभिलक्षित होता है।

व्यक्तित्व की प्रकृति के सगठनात्मक होने से तात्पर्य है कि व्यक्तित्व किसी एक गुण या गुणों के अलग-अलग समूहो से व्यक्त नही होता है वरन सभी गुणो के एक मिले जुले या समन्वित रुप से अभिव्यक्त होता है। व्यक्तित्व गुणो का समग्र रुप है। व्यक्तित्व का गत्यात्मक पक्ष बताता है कि व्यक्तित्व कोई जड या स्थिर विशेषता नही है बल्कि इसमे एक प्रकार की परिवर्तनशीलता तथा नम्यता होती है। दूसरे शब्दो मे, व्यक्तित्व कोई स्थायी विशेषता न होकर, एक परिवर्तन-शील विशेषता है। परिस्थितियो के प्रभाव से व्यक्तित्व मे परिवर्तन सम्भव है। परन्तु व्यक्तित्व के गत्यात्मक रुप का अर्थ यह भी नही है कि व्यक्तित्व तेजी से बदलता रहता है तथा आज कोई व्यक्तित्व है कल कोई दूसरा व्यक्तित्व होगा। व्यक्तित्व काफी लम्बे अन्तराल मे अन्य परिस्थितियो से प्रभावित होकर गतिशील होता है। व्यक्ति के तात्कालिक गुण उसके व्यक्तित्व का सही-सही प्रदर्शन करते है।

व्यक्तित्व मे शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनो ही प्रकार के गुण निहित रहते हैं। विभिन्न शारीरिक तथा मनोवैज्ञनिक गुण मिलकर किसी व्यक्तित्व की रचना करते हैं। इस प्रकार से व्यक्तित्व के प्रत्यय में स्वास्थ्य, शारीरिक गठन, वेशभूषा, वाणी जैसे शारीरिक गुण तथा मैत्रीभाव, परोपकार, समाजसेवा, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र जैसे मनोवैज्ञानिक गुण समाहित रहते है। केवल शारीरिक गुणों या केवल मनोवैज्ञानिक गुणो के आधार पर व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे कुछ भी कहना, व्यक्तित्व के अधूरे पक्ष को प्रस्तुत करना होगा।

वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने मे व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वास्तव मे वातावरण के साथ समायोजन करने की प्रक्रिया के दौरान ही व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुरुप वातावरण से एक अनूठे ढग से समायोजन करता है। समायोजन का यह अनूठा ढग ही उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचायक होता है।

व्यक्तित्व के सिद्धान्त
(Theories of Personality)

व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रस्तुत करते समय डोनाल्ड ई० सुपर ने लिखा है कि "तत्कालीन मनोविज्ञान मे व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रचलित, चुनौतीपूर्ण, महत्वपूर्ण, तथा भ्रामक प्रकरणो मे से एक है।" अत व्यक्तित्व की प्रकृति को भलीभाँति समझ लेना आवश्यक ही होगा। व्यक्तित्व की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है।

व्यक्तित्व के सिद्धान्तो मे मुख्य विभेद व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे वनाई गई मान्यताओ मे अन्तर के कारण है। विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने अपनी ज्ञानात्मक पृष्ठभूमि (background knowledge) के अनुरुप मान्यताओ की रचना की तथा उसी के अनुरुप सैद्धान्तिक सन्दर्भ व आधार का निर्माण करके मानव व्यवहार की व्याख्या स्पष्ट करने की कोशिश की है। व्यक्तित्व के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं

(1) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psycho-analytical Theory)

(2) शरीर रचना सिद्धान्त (Constitutional Theory)

(3) विशेषक सिद्धान्त (Trait Theory)

(4) मॉग सिद्धान्त (Need Theory)

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त

(Psycho-Analytical Theory)

व्यक्तित्व के प्रथम व्यापक सिद्धान्त की रचना करने का श्रेय फ्रायड (Freud) को दिया जाता है। फ्रायड ने व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के दो मुख्य प्रत्यय है (1) अचेतनता तथा (2) इद, अह व अत्यह। फ्रायड ने अचेतन (Unconscious) को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया। उसने कहा कि किसी व्यक्ति की मानसिक क्रियायें उस व्यक्ति के चेतन रुप में सजग होने से कही अधिक व्यापक तथा जटिल होती हैं। उसने मानसिक क्रियाओ के चेतन तथा अचेतन पक्षो की तुलना पानी पर तैरते बर्फ के टुकडे से करते हुए कहा कि जिस प्रकार से बर्फ के टुकडे का जितना हिस्सा पानी के बाहर नजर आता है कही उससे अधिक हिस्सा पानी के अन्दर रहता है ठीक उसी प्रकार से चेतन पक्ष की तुलना मे अचेतन पक्ष अधिक व्यापक व जटिल होता है। फ्रायड के अनुसार अचेतन अनेक अनजानी परन्तु शक्तिशाली व जीवन्त शक्तियो का सचय होता है जो व्यक्ति के चेतन व्यवहार पर नियन्त्रण रखता है।
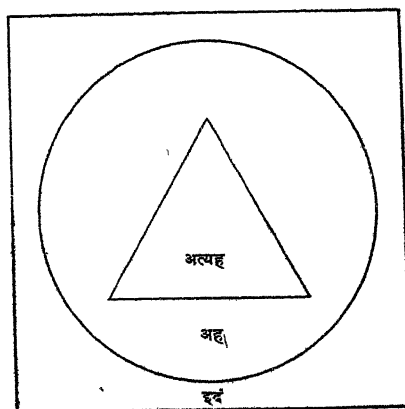
चित्र—23
फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व की सरचना

फ्रायड ने व्यक्तित्व की सरचना मे इद (id), अह् (ego) तथा अत्यह् (Super ego) नाम के तीन घटको को विशेष महत्व दिया। उसके अनुसार यदि ये तीनो घटक एक सुसगठित तथा समरस इकाई के रुप मे कार्य करते हैं तो व्यक्ति अपने वातावरण के साथ प्रभावशाली ढग से समायोजन कर लेता है तथा ऐसे व्यक्ति को सुसमायोजित व्यक्ति कहा जाता है। इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति के ये तीनो सघटक अग एक दूसरे से सघर्ष की अवस्था मे रहते है तो वह व्यक्ति व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनो ही क्षेत्रो मे समुचित ढग से समायोजन करने मे असमर्थ रहता है।

इद जन्मजात प्रकृति का होता है तथा इसमे व्यक्ति की मूल वासनाये, प्रवृतियाँ तथा दमित इच्छाये आती है। इद किसी भी तरह का तनाव नही सह सकता है तथा तत्काल सुख व सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है। इद पूर्णतया अचेतन मे कार्य करता है। इद के विपरीत अह् वास्तविक से सम्बन्ध रखता है तथा अत्यह् सामाजिक मान्यताओ, सस्कारो, व आदर्शो से सम्बन्धित होता है। इद व्यक्ति को दमित इच्छाओ की पूर्ति तुरन्त करने के लिए प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है जबकि अत्यह् सामाजिक मान्यताओ व परम्पराओ के अनुरुप कार्य करने की प्रेरणा देता है। अह् इन दोनो के मध्य वास्तविक धरातल पर तालमेल बैठाता है। इस प्रकार से इद पाशविक इच्छाओ का, अह् वास्तविक जगत का, तथा अत्यह् सामाजिक नियन्त्रण का प्रतिनिधित्व करते है। इद तथा अत्यह् के बीच सघर्ष का होना सामान्य बात है परन्तु अह् के दृढ तथा क्रियाशील होने से यह सघर्ष अस्थायी रहता है तथा व्यक्ति समायोजन कर लेता है। इसके विपरीत यदि अह् दुर्बल तथा निष्क्रिय होता है तो व्यक्ति को समयोजन करने मे कठिनाई होती है। इस प्रकार से फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व वास्तव मे इद, अह् तथा अत्यह् के बीच परस्पर समायोजन का परिणाम है।

शरीर रचना सिद्धान्त

(Constitutional Theory)

जीव विज्ञान की पृष्ठभूमि वाले मनोवैज्ञानिको ने मानव व्यवहार तथा व्यक्तित्व के गुणो को एक बिल्कुल अलग ढग से देखा तथा शारीरिक गठन व शरीर की रचना के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या की। इस प्रकार से व्यक्तित्व सिद्धान्त के क्षेत्र में जैवकीय कारको ने प्रवेश किया। इस प्रकार की विचारधार के प्रमुख प्रवर्तक शैल्डन (W. H. Sheldon) थे। उसने शरीर रचना तथा व्यक्तित्व के बीच सम्बन्ध का अध्ययन किया तथा पाया कि शरीर रचना व व्यक्तित्व के गुणों मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीरमिति (Somatometry) के आधार पर शैल्डन ने व्यक्तित्व को तीन भागो मे विभाजित किया। ये तीन भाग थे—गोलाकृति (Endomorphy), आयताकृति (Mesomorphy), तथा लम्बाकृति (Ectomorphy) । गोलाकृति वाले व्यक्ति प्राय भोजन प्रिय, आराम पसन्द, शौकीन मिजाज, परम्परावादी, सहनशील, सामाजिक तथा हसमुख प्रकृति के होते है। आयताकृति वाले व्यक्ति प्राय रोमाच प्रिय, प्रभुत्ववादी, जोशीले, उद्देश्य केन्द्रित तथा क्रोधित प्रकृति के होते हैं। लम्बाकृति के व्यक्ति प्राय गुमसुम, एकान्तप्रिय, अल्पनिद्रा वाले, एकाकी, जल्दी थक जाने वाले तथा
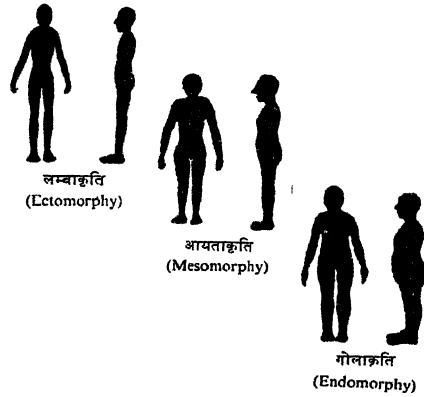
चित्र—24
शरीरमिति के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार

निष्ठुर प्रकृति के होते है। क्रेचमर (Kretschmer) ने शरीर रचना की दृष्टि से व्यक्तियो को तीन भागो मे विभक्त किया—लम्बकाय (Asthenic), सुडौलकाय (Athletic) तथा गोलकाय (Picnic)।

विशेषक सिद्धान्त
(Trait Theory)

व्यक्तित्व के विशेषक सिद्धान्त का प्रतिपादन कैटिल (R.B.Cattell) ने किया था। उसने कारक विश्लेषण (Factor Analysis) नाम की सांख्यिकीय प्राविधि का उपयोग करके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने वाले कुछ सामान्य गुणो को ज्ञात किया तथा इन्हे व्यक्तित्व विशेषक (Personality Traits) के नाम से सम्बोधित किया। कैटिल के बताये कुछ कारक है धनात्मक चरित्र, सवेगात्मक स्थिरता, बुद्धि, सामाजिकता।

कैटिल ने व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए कहा कि व्यक्तित्व वही है जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि किसी दी गई परिस्थिति मे व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा। उसके अनुसार व्यक्तित्व विशेषक एक मानसिक सरचना है तथा इसे व्यक्ति के व्यवहार प्रक्रिया की निरन्तरता तथा नियमितता के द्वारा जाना जा सकता है। कैटिल का विश्वास था कि कुछ सामान्य विशेषक होते है जो सभी व्यक्तियों मे कुछ न कुछ मात्रा मे पाये जाते हैं तथा कुछ विशिष्ट विशेषक होते है जो कुछ विशेष व्यक्तियो मे उपस्थित होते है। कैटिल ने विशेषको को दो प्रकार का बताया—सतही विशेषक (Surface Traits) तथा स्रोत विशेषक (Source Traits)। सतही विशेषक व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त किये जा रहे व्यवहार से परिलक्षित होते है जबकि स्त्रोत विशेषक व्यक्ति के व्यवहार के पीछे छिपे रहते है तथा अभिव्यक्त व्यवहार को नियन्त्रित व निर्धारित करते हैं। स्पष्टतः स्रोत विशेषकों का महत्व सतही विशेषकों से अधिक होता है। जैसा कि बताया जा चुका है, इन विशेषको की जानकारी के लिए कैटिल ने कारक विश्लेषण

साख्यिकीय प्राविधि का उपयोग किया था । कैटिल के अनुसार विभिन्न सतही व स्रोत विशेषको के परस्पर आन्तरिक सम्बन्ध अत्यन्त जटिल होते है । व्यक्ति के तात्कालिक उद्देश्यो से सम्बन्धित विशेषक उसके मुख्य तथा अन्तिम उद्देश्यो से सम्बन्धित विशेषको के अधीन रहते है ।

कैटल के द्वारा बनाये गये प्रसिद्ध 16 पी० एफ० प्रश्नावली (16PF Questionnaire) मे व्यक्तित्व के 16 द्वि-ध्रुवीय कारको को सम्मिलित किया गया है । व्यक्तित्व के इन सोलह कारको को सारणी में प्रस्तुत किया गया है ।

सारणी

16 पी० एफ० प्रश्नावली में प्रयुक्त व्यक्तित्व कारक

क्रम कारक SN Factors		कारकों के दो विपरीत ध्रुव Two Extreme Poles of Factors		
1.	ए A.	उत्साही Outgoing	— —	एकाकी Reserved
2.	बी. B.	अधिक बुद्धिमान More Intelligent	— —	कम बुद्धिमान Less Intelligent
3.	सी C	स्थिर Stable	— —	संवेगात्मक Emotional
4	सी E	दृढ Assertive	— —	नम्र Humble
5.	एफ F	हसमुख Happy-go-lucy	— —	सौम्य Sober
6.	जी G	आध्यात्मिक Conscientious	— —	सासारिक Expedient
7.	एच H	सामाजिक Venturesome	— —	सकोची Shy
8.	आई I	सवेदनशील Tender-minded	— —	निष्ठुर Tough-minded
9.	एल L	शकालू Suspicious	— —	विश्वस्त Trusting
10.	एम M	कल्पनावादी Imaginative	— —	यथार्थवादी Practical

11. एन N	व्यवहारकुशल Shrewd	— —	सामान्य Forthright
12. ओ O	चिन्तित Apprehensive	— -	आत्मविश्वासी Placid
13. क्यू-1 Q	आधुनिक Experimenting	— —	रुढ़िवादी Conservative
14. क्यू-2 Q_2	स्व० पर्याप्त Self-sufficient	— —	समूह नियन्त्रित Group-tied
15. क्यू-3 Q_3	नियन्त्रित Controlled	— —	अन्तर्द्वन्दी Causal
16. क्यू-4 Q_4	तनावयुक्त Tense	— —	तनावमुक्त Relaxed

मांग सिद्धान्त

(Need Theory)

हेनरी ए० मुरे (Henry A. Murray) के द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का माँग सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि मानव एक प्रेरित जीव है जो अपनी अन्तर्निहित आवश्यकताओं (Internal Needs) तथा दवावो (External Press) के कारण जीवन मे उत्पन्न तनाव को कम करने का सतत प्रयास करता रहता है। माँग-दवाव (Need-Press) की परिस्थिति व्यक्ति मे हमेशा एक प्रकार के तनाव को उत्पन्न करती रहती है तथा व्यक्ति इस तनाव को कम करने के लिये न केवल पुराने उद्देश्यो की पूर्ति को बनाये रखता है वरन् नये-नये रचनात्मक कार्य भी करने को प्रेरित रहता है। मुरे ने व्यक्ति की आन्तरिक मागों के आधार पर व्यक्तित्व को स्पष्ट किया। उसने कहा कि व्यक्ति जिस वातावरण मे रहता है, उस वातावरण के दबावों का समग्र रूप उसके अन्दर कुछ माँगों को उत्पन्न कर देता है तथा ये माँगे ही व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार को निर्धारित करती है। मुरे ने इस प्रकार की लगभग 40 मागे ज्ञात की तथा इन्हे व्यक्तित्व माँग (Personality Needs) का नाम दिया। उसके अनुसार कोई माँग मानव मस्तिष्क की एक परिकल्पित शक्ति है जो व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, अन्तर्वोध तथा मानसिक व शारीरिक क्रियाओ को इस तरह से सगठित करती है कि वह व्यक्ति असन्तुष्टि की परिस्थिति से निकल सकें। सम्प्राप्ति की माँग (Need of Achievement), प्रदर्शन की माँग (Need of Exhibition), सान्निध्य की माँग (Need of Affiliation), परोपकार की माग (Need of Nurtrance), स्वायतत्ता की माँग (Need of Autonomy) कुछ प्रमुख व्यक्तित्व माँगे हैं।

व्यक्तित्व के प्रकार
(Types of Personality)

व्यक्तित्व को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न ढगो से वर्गीकृत किया है। वर्गीकरण मे इस वैभिन्य का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिको के द्वारा अलग-अलग दृष्टिकोणो से व्यक्तियो के प्रकारो को देखना है। कुछ प्रमुख वर्गीकरण निम्नवत् हैं—

शरीर-रचना दृष्टिकोण
(Constitutional View-point)

शरीर रचना की दृष्टि मे क्रेचमर (Kretschmer) ने व्यक्तियों को तीन प्रमुख प्रकारो मे वर्गीकृत किया है।

(i) **लम्बकाय** (Asthenic) —ऐसे व्यक्ति लम्बे तथा दुबले-पतले शरीर वाले होते हैं। ये दूसरों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने से बचते हैं तथा अपने क्रोध को सीधे-सीधे ढग से अभिव्यक्त नही कर पाते है।

(ii) **सुडौलकाय** (Athletic)—ऐसे व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ शरीर वाले होते है। ये सामान्य व्यक्तित्व वाले होते है।

(iii) **गोलकाय** (Picnic) —ऐसे व्यक्ति नाटे तथा मोटे होते है। ये खुशी व दुख, क्रियाशील व निष्क्रिय, उत्साह व निरूत्साह आदि के बीच झूलते रहते हैं। कभी खुश कभी दुखी, कभी क्रियाशील कभी निष्क्रिय,कभी उत्साही कभी उत्साह विहीन रहते हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण
(Social View-point)

जुग (Jung) के अनुसार सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) की दृष्टि से व्यक्तियो को तीन भागो मे बॉटा जा सकता है।

(i) **अन्तर्मुखी** '(Introvert)—ऐसे व्यक्ति सकोची, लज्जाशील, एकान्तप्रिय, मितभाषी, घबराने वाले, आत्मकेन्द्रित, अध्ययनशील, आत्मचिन्तक, असामाजिक होते है।

(ii) **बहिर्मुखी** (Extrovert) —ऐसे व्यक्ति व्यवहार कुशल, चिन्तामुक्त सामाजिक, आशावादी, साहसिक, आक्रामक, लोकप्रिय होते है।

(iii) **उभयमुखी** (Ambivert) —इस प्रकार के व्यक्तियो मे कुछ गुण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के तथा कुछ गुण बहिर्मुखी व्यक्तित्व के होते है।

मूल्य दृष्टिकोण
(Values View-point)

मूल्यों के आधार पर स्प्रेन्जर (Spranger) ने व्यक्तियो को छ भागो में वर्गीकृत किया है।

(i) **सैद्धान्तिक** (Theoretical) —ऐसे व्यक्तियो मे ज्ञान की पिपासा होती है। ये अपने सिद्धान्तो के अनुरूप कार्य करते है तथा बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों व विद्वानो को पसन्द करते है।

(ii) **आर्थिक** (Economic) —ऐसे व्यक्ति धन, ऐश्वर्य, भौतिक सम्पदा व भौतिक सुख के इच्छुक होते है।

(iii) **धार्मिक** (Religious) —ऐसे व्यक्ति ईश्वर मे विश्वास रखने वाले, दैवीय विपदाओ से डरने वाले तथा धार्मिक नियमो के अनुरूप कार्य करने वाले होते है।

(iv) **राजनैतिक** (Political) —ऐसे व्यक्ति राजनैतिक विचारो के होते है। ये प्राय किसी न किसी राजनैतिक दल के सदस्य बन जाते है।

(v) **सामाजिक** (social) —ऐसे व्यक्ति दयालु, सहानुभूतिपूर्ण , त्यागी, परोपकारी तथा समाजसेवी होते हैं। ये जनहित मे अपने व्यक्तिगत हित का ध्यान नही रखते है।

(vi) **कलात्मक** (Asthetic) —ऐसे व्यक्ति सौन्दर्य के पुजारी होते है। इनको ललित कलाओ, सगीत, काव्य, नृत्य चित्रकला, प्राकृतिक सौन्दर्य, बागवानी, सजावट आदि से विशेष लगाव होता है।

भारतीय दृष्टिकोण

(Indian View-point)

भारतीय दर्शन की सर्वोच्च रचना **श्रीमद् भागवत्** गीता मे व्यक्तियो के तीन गुणों—सत्व गुण, रजगुण व तमगुण की चर्चा की गई है। अध्याय 14 के श्लोक 9 मे कहा गया है कि सत्वगुण सुख मे लगाता है, रजगुण कर्म मे लगाता है तथा तमगुण प्रमाद मे लगाता है। इन गुणों के आधार पर व्यक्तियो को तीन प्रकारों मे बॉटा जा सकता है।

(i) **सात्विकी** (Satviki)—ऐसे व्यक्तियों मे सत्वगुण की प्रधानता होती है। ये ज्ञानी, शान्त, निर्मल, धार्मिक व सौम्य स्वभाव के होते है।

(ii) **राजसी** (Rajasi)—ऐसे व्यक्तियो मे रजगुण की अधिकता होती है। ये साहसी, वीर, दबग तथा कामना व आसक्ति की प्रवृत्ति से युक्त होते हैं।

(iii) **तामसी** (Tamasi)—ऐसे व्यक्तियो मे तमगुण की बहुलता होती है। ये प्रमादी, आलसी, क्रोधी तथा लडाई झगडा करने वाले होते है।

अच्छे व्यक्तित्व की विशेषतायें

(Characteristics of Good Personality)

पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यक्तित्व के अतर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक, चारित्रिक आदि अनेक प्रकार के गुण आते है, परतु किन गुणो से युक्त व्यक्तित्व को एक अच्छा व सतुलित व्यक्तित्व कहा जाए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। विभिन्न मनोवैज्ञानिको के द्वारा स्वीकृत अच्छे व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषताए होती है :—

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अन्य लोगो से भिन्न रहता है। व्यक्ति का रगरुप, कदकाठी, भार तथा स्वास्थ्य काफी सीमा तक जन्म के समय ही वशानुक्रम के द्वारा निर्धारित हो जाते है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात व्यक्ति के शारीरिक या जैवकीय गुणो के द्वारा उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो के विकास पर प्रभाव डालना है। व्यक्ति का स्नायुमडल तथा अन्त स्त्रावी ग्रथियाँ भी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करती है। अन्त स्त्रावी ग्रथियाँ हारमोन छोडती हैं। थाइराइड, पैराथाइराइड, पिट्यूटरी, थाइमस, एडरनल आदि अन्त स्त्रावी ग्रथियो के द्वारा छोडे जाने वाले हारमोन्स की मात्रा आवश्यकता से कम या अधिकं होने पर शरीर का समुचित विकास नही हो पाता है जिससे सम्पूर्ण व्यक्ति परोक्ष अथवा अपरोक्ष रुप से प्रभावित होता है। स्नायु मडल भी व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं का सचालन स्नायुमडल के सुचारु ढग से कार्य करने पर ही निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के स्नायुविक रोग जैसे हकलाना, तुतलाना, हिस्टीरिया, बहरापन, शब्द अन्धापन आदि व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते है। लिंगभेद, बुद्धि, मूल प्रवृत्तियाँ, विशिष्ट योग्यताएँ जैसे जैवकीय कारक भी व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालते हैं।

वातावरणीय कारक
(Environmental Factors)

वातावरणीय कारको के अतर्गत व्यक्ति के वातावरण से सम्बन्धित सभी कारक आ जाते हैं। वातावरण को दो भागो मे बाटा जा सकता है—भौतिक वातावरण तथा सामाजिक वातावरण। भौतिक वातावरण से अभिप्राय जलवायु, भूमि, कृषि, उपजे, भौतिक ससाधनो की उपलब्धता आदि से है। भौतिक वातावरण के कारण व्यक्ति की
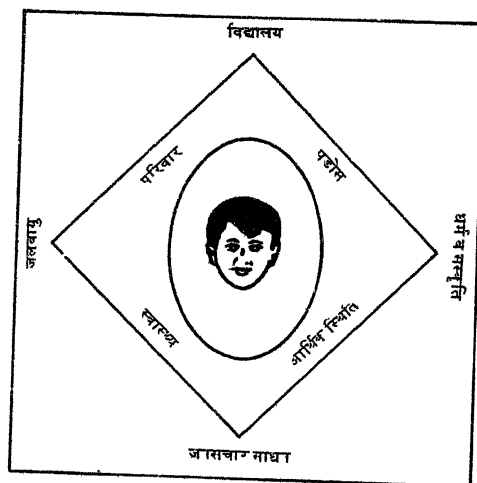
चित्र—25
व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक

कदकाठी, रगरुप, स्वास्थ्य, रहन सहन की आदतों मे काफी अन्तर आ जाता है। माँ के द्वारा गर्भ धारण करने के साथ ही गर्भस्थ शिशु पर अपने चारो ओर के वातावरण का प्रभाव पडना प्रारम्भ हो जाता है। माँ के द्वारा ली गई खुराक, मादक द्रव्य, किया गया श्रम तथा माँ की सवेगात्मक स्थिति का गर्भस्थ शिशु पर जो प्रभाव पडता है वह आने वाले वर्षो मे भी बना रहता है। जन्म के उपरान्त घर गाँव व शहर के भौतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर पडता है।

सामाजिक वातावरण से तात्पर्य व्यक्ति को उपलब्ध सामाजिक अन्तर्क्रिया की गुणवत्ता तथा सम्भावना से है। इसके अन्तर्गत परिवार, पडोस, विद्यालय, जनसचार साधन, धर्म तथा सस्कृति आदि आते हैं। मनोवैज्ञानिको की मान्यता है कि सामाजिक वातावरण का प्रभाव जैवकीय वातावरण से कही अधिक व्यापक होता है। अत. सामाजिक कारकों की विस्तृत चर्चा आवश्यक प्रतीत होती है।

1. **परिवार (Family)**—परिवार के विभिन्न सदस्यो के व्यक्तित्व तथा उनकी परस्पर अन्तर्क्रिया का बालक के व्यक्तित्व पर जन्म से ही प्रभाव पडना प्रारम्भ हो जाता है। बालक जन्म से ही एक सामाजिक प्राणी होता है तथा सबसे पहले वह अपने परिवारजनो के सम्पर्क मे आता है। इसलिए पारिवारिक पृष्ठभूमि का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य परिवारजनो यहाँ तक कि घर के नौकर आदि के द्वारा की जाने वाली क्रियाओ, लाड-दुलार, तिरस्कार, ईर्ष्या, द्वेष आदि का प्रभाव बालक पर पडता है। परिवार मे कलह होने या परिवार की सघर्षपूर्ण जीवन शैली तथा परिवारजनो की प्रवृत्तियाँ, महत्वकाँक्षा, रुचि, दृष्टिकोण, क्षमता, तथा आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक स्थिति आदि भी बालक के व्यक्तित्व के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

2. **पास-पड़ोस** (Neighbourhood) —जैसे-जैसे बालक का विकास होता जाता है उसका सामाजिक दायरा बढता जाता है। बालक अपने पास-पडोस के व्यक्तियो, तथा अन्य बालकों से सम्पर्क स्थापित करता है। इन सभी व्यक्तियो का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर पडता है। सामाजिक अनुकरण के द्वारा वह अनेक बातें सीखता है। साथियो के साथ खेल-खेल मे बालक अनुशासन, आत्मविश्वास, नेतृत्व, वाक्कौशल, सामाजिकता जैसे अनेक गुण सीख लेता है।

3. **आर्थिक स्थिति** (Economic Status)—परिवार की आर्थिक स्थिति का भी बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पडता है। आर्थिक दृष्टि से कमजोर परिवार के बच्चों में हीन-भावना तथा भग्नाशा उत्पन्न हो जाती है। गरीब परिवारो के बच्चे परिस्थितिजन्य कारणों की वजह से चोरी, झूठ बोलना, चरित्रपतन तथा अन्य अनेक अनैतिक कार्यों के आदी हो जाते हैं।

4. **विद्यालय** (School)—विद्यालय को व्यक्तित्व के विकास का एक औपचारिक केन्द्र माना जाता है। विद्यालय मे बालक के द्वारा प्राप्त शैक्षिक तथा अन्य अनुभव व्यक्तित्व के विकास मे सार्थक भूमिका अदा करते है। विद्यालय मे छात्रो को अपना शैक्षिक, नैतिक, सामाजिक, शारीरिक,बौद्धिक, सवेगात्मक तथा मानसिक विकास करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं, जिससे वे अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकें।

शैक्षिक कार्यक्रमो, वादविवाद प्रतियोगिताओ, खेलकूद, अभिनय, सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लेने से अनुशासन, नेतृत्व, समूह भावनाओं, आत्म-अभिव्यक्ति, स्वाभिमान जैसे गुणो का विकास सम्भव होता है।

5. **जनसंचार माध्यम** (Mass Media) —वर्तमान युग मे जनसचार साधनों की भूमिका भी अत्यत महत्वपूर्ण है। रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र, पत्रिकाये, समाचार पत्र जैसे जनसचार के साधन जीवन के सभी पक्षो को प्रभावित कर रहे है। मानव व्यक्तित्व भी इनके प्रभाव से अछूता नही है। जनसचार के विभिन्न साधन मानव व्यक्तित्व को प्राय अपरोक्ष रुप से किन्तु काफी अधिक प्रभावित करते हैं। इनमे वर्णित विभिन्न कथानको, अभिनेताओ के व्यवहारो व पोशाको, रीति रिवाजो, दृष्टिकोणो, जीवन शैली आदि का बालक अन्धानुसरण करते है। वर्तमान समय मे छात्रो की असामाजिक, हिसक व अलगाववादी प्रवृत्तियो का कारण काफी सीमा तक इन्ही जनसचार साधनो के द्वारा प्रस्तुत अधकच्चा साहित्य है।

6. **धर्म व संस्कृति** (Religion and Culture) —व्यक्तित्व के विकास मे धर्म व सस्कृति का भी योगदान रहता है। प्रत्येक धर्म की अपनी कुछ मूलभूत मान्यताये होती है जिन्हे उस धर्म के अनुयायी दिल व दिमाग से स्वीकार करते है तथा उन्ही के अनुरुप कार्य करते हैं। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारो, गिरजाघरों मे जाकर सुने धार्मिक प्रवचनो का प्रभाव भी व्यक्तित्व पर पडता है। सास्कृतिक परम्पराओ तथा रीति-रिवाजो के प्रति आस्था का भाव भी बालक के व्यक्तिव को प्रभावित करता है। गुरुभक्ति, आज्ञापालन, देशप्रेम, दयाभाव, आदरभाव, कर्त्तव्यपालन, सहनशीलता, ईमानदारी, जैसे गुण बालक काफी सीमा तक अपने धर्म व सस्कृति से सीखता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्ति के विकास मे जैवकीय तथा वातावरणीय दोनो ही प्रकार के कारको का योगदान रहता है। वशानुक्रम तथा वातावरण दोनो की अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरुप व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अत यह आवश्यक है कि बालक के व्यक्तित्व के सतुलित विकास के लिए जैवकीय तथा वातावरणीय दोनो ही प्रकार के कारको पर पर्याप्त ध्यान दिया जाये।

व्यक्तित्व मापन की विधियां

(Methods of Personallity Measurement)

मानव प्राचीन काल से ही अपने साथियो व परिचितो के व्यक्तित्व का मापन करने का प्रयास करता रहा है। प्राचीन काल मे व्यक्तित्व मापन के लिए अत्यन्त अपरिपक्व विधियो जैसे आकृति विधि या हस्तरेखा विधि को अपनाया जाता था। आधुनिक काल मे मनोवैज्ञानिको ने इन विधियो को अनुपयुक्त पाया तथा इसलिए इन्हे त्याज्य कर नवीन विधियो का विकास कर लिया। व्यक्तित्व मापन की विधियो को कुछ लेखक तीन भागो मे वर्गीकृत करते हैं— (i) आत्मनिष्ठ विधियाँ (ii) वस्तुनिष्ठि विधियाँ तथा (iii) प्रक्षेपीय विधियाँ। व्यक्तित्व मापन की जिन विधियों में निर्णायकों के व्यक्तिगत विचार, पसन्द, रुचियों, या पूर्वधारणायें आदि मापन के परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं उन्हे व्यक्तित्व मापन की आत्मनिष्ठ विधियाँ कहते हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत जीवन इतिहास, अवलोकन, साक्षात्कार आते हैं। इसके ठीक विपरीत जिन विधियों के द्वारा प्राप्त

परिणाम निर्णायको के स्व के द्वारा प्रभावित नही होते है उन्हे वस्तुनिष्ठ विधियाँ कहते हैं। निर्धारण मापनी, समाजमिति, सूची परीक्षण तथा परिस्थिति परीक्षण व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ठ विधियाँ है। जब किसी व्यक्ति के द्वारा किसी वस्तु, चित्र, वाक्य या कहानी का अर्थ लगाने या पूरा करने मे अनजाने ढग से अपने व्यक्तित्व को प्रक्षेपित करने के आधार पर व्यक्तित्व का मापन किया जाता है तो इसे व्यक्तित्व मापन की प्रेक्षेपीय विधि कहते है। इसके अन्तर्गत रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण, वाक्य व कहानी पूर्ति परीक्षण, प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण आदि आते है।

अवलोकन, साक्षात्कार तथा जीवन इतिहास विधियो को आत्मनिष्ठ विधियो के रुप में स्वीकार किया जाता है तथा इनसे प्राप्त परिणामो की विश्वसनीयता तथा वैधता भी प्राय सदिग्ध रहती है। इसलिए इनका शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक मापन में अपेक्षाकृत सीमित प्रयोग किया जाता है। प्रक्षेपीय विधियाँ निर्माण, प्रशासन तथा अकन की दृष्टि से जटिल होती है, इसलिए इनका उपयोग भी कुछ सीमित ही रहता है। निर्धारण मापनी, प्रश्नावली या परिसूची तथा परिस्थिति परीक्षणो को वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व मापन उपकरणो के रुप मे बहुतायत से प्रयुक्त किया जाता है।

निर्धारण मापनी

(Rating Scales)

किसी व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियो के गुणो का निर्धारण करने की विधि अत्यन्त प्राचीन विधि है। आधुनिक शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक मापन उपकरण के रुप मे निर्धारण मापनी उसी प्राचीन विधि का एक उदाहरण है जिसमे अक्षरो, अको, शब्दो आदि की सहायता से व्यक्तियो मे उपस्थिति गुणो का आकलन किया जाता है। निर्धारण मापनी का प्रयोग प्राय. यह जानने के लिए किया जाता है कि कोई व्यक्ति अपने साथियो अथवा अपने परिचितो के समक्ष अपने सम्बन्ध मे क्या छवि या छाप (Impression) छोडता है। निर्धारण मापनी वास्तव मे किसी व्यक्ति मे उपस्थित गुणो की मात्रा, उनकी तीव्रता तथा वारम्वारता के सम्वन्ध मे अन्य व्यक्तियो के आकलन को प्राप्त करने का साधन है। निर्धारण मापनी मे निर्धारक (Rater) किसी व्यक्ति के विभिन्न गुणो की मात्रा, तीव्रता अथवा बारम्बारता का निर्धारण करता है। व्यक्तित्व मापन के लिए निर्धारण मापनी अपनी विश्वसनीयता, वैधता तथा सुगमता के कारण काफी प्रचलित हैं। शिक्षा, मनोविज्ञान, निर्देशन, उद्योग आदि क्षेत्रो मे निर्धारण मापनी का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है। निर्धारण मापनी विधि का सूत्रपात मनोभौतिकी के क्षेत्र में फैकनर के द्वारा किया गया था। परन्तु गाल्टन को प्रथम निर्धारण मापनी के प्रकाशन का श्रेय दिया जाता है। उसने सन् 1883 में मानसिक बिम्ब सृष्टि से सम्बन्धित निर्धारण मापनी (Scale of Mental Imagery) का प्रकाशन किया। सन् 1906-7 में पीर्यसन ने बुद्धि का मापन करने के लिए निर्धारण मापनी का प्रयोग किया। वर्तमान समय में निर्धारण मापनी का प्रयोग विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक चरों का मापन करने के बहुतायत से किया जाता है।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा अन्य गुणो का मापन करने के लिए निर्धारण मापनी को अध्यापकों, सहयोगियों, नियोक्ताओं, अभिभावको, मित्रो अथवा अन्य ऐसे

व्यक्तियो जिनके साथ मापित किये जाने वाले व्यक्ति का घनिष्ठ सम्पर्क हो, को दी जाती है। ये व्यक्ति जिन्हे निर्धारक (Raters) कहते है, व्यक्ति के सम्बन्ध मे अपनी राय प्रस्तुत करते है। प्राय. किसी व्यक्ति के बारे मे जानने के लिए अनेक निर्धारको से निर्धारण कराया जाता है जिससे निर्धारण की वैधता तथा निष्पक्षता को बढाया जा सके। निर्धारण मापनी की सहायता से विभिन्न प्रकार के गुणो जैसे नेतृत्व, सहयोग, समय की पावन्दी, नियमितता, ईमानदारी, सवेगात्मक नियत्रण, अध्ययन आदतें, व्यक्तिगत सम्मोहन इत्यादि का मापन किया जा सकता है। निर्धारण मापनी छ प्रकार की हो सकती है—

1. चैक लिस्ट (Check List)
2. आकिक मापनी (Numerical Rating Scale)
3. ग्राफिक मापनी (Graphic Rating Scale)
4. क्रमिक मापनी (Ranking Rating Scale)
5. स्थिति मापनी (Positional Rating Scale)
6. बाध्य चयन मापनी (Forced-Choice Rating Scale)

चेकलिस्ट (Check list) —चेकलिस्ट की सहायता से किसी व्यक्ति मे उपस्थित अथवा अनुपस्थित गुणों को ज्ञात किया जाता है। चेकलस्टि मे प्राय. कुछ कथन दिए हुए होते है जो मापे जाने वाले गुणों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का संकेत करते है। निर्धारक को किसी व्यक्ति के सम्बन्ध मे यह निर्णय करना होता है कि चेकलिस्ट मे दिए गए कथन उस व्यक्ति के सदर्भ मे सही है अथवा गलत है। निर्धारक कथनो के आगे सही अथवा गलत का निशान लगाकर अपने निर्णयो को इगित करता है। निर्धारक के द्वारा विभिन्न कथनो पर लगाए सही अथवा गलत के निशानो के आधार पर व्यक्ति मे उपस्थित गुणो का मापन किया जाता है। स्पष्ट है कि चेकलिस्ट मे हाँ तथा नही के रुप में गुणो की उपस्थिति या अनुपस्थिति का निर्धारण किया जाता है।

चैकलिस्ट को व्यक्तिगत या सामूहिक दोनो ही रुप मे प्रयुक्त किया जा सकता है। चैकलिस्ट मे गुणो को व्यक्त करने वाले वाक्याश या कथनों का भी प्रयोग किया जा सकता है। चैकलिस्ट को अधिक विभेदक बनाने के लिए निर्धारक (Rater) को गुण की मात्रा अथवा कथनो के प्रति सहमति की सीमा को बताने के लिए भी कहा जा सकता है। इसके लिए यथोचित शब्दो (Qualifying terms) की किसी शृखला का प्रयोग विभिन्न पदो या कथनो के लिए किया जाता है।

आंकिक मापनी (Numerical Rating Scale) —चेकलिस्ट की तरह से आकिक मापनी मे भी गुणो के सम्बन्ध मे कुछ कथन दिये जाते है, परन्तु कथनो के सम्बन्ध मे निर्धारक को हाँ अथवा नही के रुप मे निर्णय नही देना होता है बल्कि कथनो के प्रति अपनी सहमति अथवा असहमति की मात्रा (Intensity) को कुछ अको की सहायता से अभिव्यक्त करना होता है। दूसरे शब्दो मे निर्धारक किसी व्यक्ति के सदर्भ मे कथनो से सहमत होने अथव असहमत होने की सीमा को अंको की सहायता से प्रकट करता है। प्राय· इन अको को तीन, पाँच, सात आदि के सातत्य (Continuum) पर रखा जाता है। जिसमे प्राय: मध्य बिन्दु अर्थात् शून्य सामान्य व्यक्ति (Average Person) को

व्यक्त करता है, धनात्मक अक अर्थात् +1, +2, +3 आदि औसत से अधिक को व्यक्त करते है, तथा ऋणात्मक अक अर्थात् −1, −2, −3 आदि औसत से कम को व्यक्त करते है। ऋण चिन्ह को समाप्त करने के लिए कभी-कभी, सभी अक धनात्मक रखे जाते है। तब सबसे छोटा अक निम्नतम को व सबसे बडा अक उच्चतम को इगित करता है। जैसे 5 बिन्दु मापनी मे 1, 2, 3, 4 व 5 क्रमश बिल्कुल नही, औसत से कम, सामान्य, सामान्य से अधिक व अधिकतम को इगित करेगे।

ग्राफिक मापनी (Graphic Rating Scale) —ग्राफिक मापनी वास्तव मे आकिक मापनी का ही एक परिवर्तित रुप है, जिसमे सहमति/असहमति की सीमाओं को बिन्दु से प्रकट न करके एक क्षैतिज रेखा का जो सहमति/असहमति के सातत्य की अभिव्यक्ति करती है, उपयोग किया जाता है। निर्धारक इस प्रकार की क्षैतीज रेखाओं पर निशान लगाकर व्यक्ति के सम्बन्ध मे अपनी निर्णयों को बताता है। इन निशानों की स्थिति के आधार पर व्यक्ति के गुणो का पता लगाया जाता है।

क्रमिक मापनी (Ranking Rating Scale) —क्रमिक मापनी के अन्तर्गत निर्धारक को व्यक्ति मे उपस्थित किसी गुण विशेष के सम्बन्ध मे निर्णय नही देना होता है वरन् अनेक गुणो अथवा उपगुणो को किसी व्यक्ति विशेष के सदर्भ मे एक क्रम मे निर्धारित करना होता है। निर्धारक पहले यह निर्णय करता है कि किसी व्यक्ति मे सूचीबद्ध गुण किस मात्रा मे उपस्थित है तदुपरान्त गुणों की मात्रा के आधार पर वह इन गुणो को एक क्रमबद्ध रुप मे प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि क्रमिक मापनी की सहायता से व्यक्ति विशेष के सदर्भ मे गुणो की सापेक्ष स्थिति को जाना जाता है।

स्थिति मापनी (Position Rating Scale) —स्थिति मापनी अथवा स्थानिक मापनी मे किसी व्यक्ति मे उपस्थित गुणो की मात्रा का मापन उनको स्थान सूचक मान जैसे दशाक (Deciles) अथवा शताक (Percentiles) प्रदान करके किया जाता है। स्थानिक मापनी के अन्तर्गत निर्धारक को यह निर्णय करना होता है कि व्यक्ति विशेष में दिये गये गुणो की स्थिति किसी समूह विशेष के सदर्भ मे क्या है। स्पष्ट है कि स्थानिक मापनी की सहायता से निर्धारक किसी समूह के व्यक्तियो के सम्बन्ध मे यह निर्धारित करता है कि उनका समूह मे किसी गुण विशेष की दृष्टि से क्या स्थान है।

बाध्य चयन मापनी (Forced-Choice Scale) —बाध्य चयन मापनी मे प्रत्येक प्रश्न के लिए दो या दो से अधिक कथन अथवा गुण होते है। निर्धारक से पूछा जाता है कि इन कथनों अथवा गुणो मे से कौन सा कथन अथवा गुण किसी व्यक्ति विशेष के सदर्भ मे अधिक उपयुक्त है। प्रत्येक प्रश्न में सम्मिलित किये गये विभिन्न कथन अथवा गुण वाछनीय भी हो सकते है, अवाछनीय भी हो सकते है। आवश्यकतानुसार कुछ गुण वांछनीय तथा कुछ गुण अवांछनीय भी हो सकते है।

निर्धारण मापनी की सीमाएं (Delimitations of Rating Scales)—यद्यपि निर्धारण मापनी का उपयोग व्यक्तित्व मापन के लिए बहुतायत से किया जाता है तथा इसे विश्वसनीय तथा वैध मापन उपकरणो के रुप मे स्वीकार किया जाता है। फिर भी यदि निर्धारण मापनी की रचना उचित ढग से न की गई हो अथवा निर्धारको का चयन उचित न हो तो इनसे प्राप्त परिणाम अविश्वसनीय तथा अवैध हो सकते हैं। इसलिए

मापनी के प्रयोग के समय निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना महत्वपूर्ण होगा—

(1) मापे जाने वाले गुण को स्पष्ट रुप से परिभाषित करना चाहिए। जिससे सभी निर्धारक गुण के सम्बन्ध मे स्पष्ट तथा एक समान (Uniform) विचार बना सके।

(2) गुणो की मात्रा की सीमाओं को भी भलीभाँति स्पष्ट कर देना चाहिए। निर्धारण मापनी के अन्तर्गत प्राय 3, 5 अथवा 7 बिन्दुओ वाले सातत्य पर गुणो का निर्धारण कराया जाता है। सातत्य के ये बिन्दु स्पष्ट तथा परस्पर भिन्न रुपो मे परिभाषित किये जाने चाहिऐ। यदि इन बिन्दुओ की सख्या बहुत अधिक होती है, तो इन बिन्दुओ को परस्पर भिन्न करना कठिन हो जाता है। अप्रशिक्षित निर्धारको के लिए बिन्दुओ की सख्या कम होनी चाहिए क्योकि वे बिन्दुओ का सूक्ष्म विभेद करने मे प्राय असमर्थ होते है।

(3) किसी एक निर्धारक के द्वारा किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध मे दी गई राय पक्षपात पूर्ण हो सकती है। इसलिए अनेक निर्धारको के द्वारा व्यक्त किये गये निर्णयो के मध्यमान या मध्याक के द्वारा व्यक्ति के गुणों को व्यक्त करना चाहिए।

(4) निर्धारको के मानसिक विकास, बौद्धिक स्तर, पूर्वाग्रह आदि का भी उनके निर्णयो पर प्रभाव पडता है। कुछ निर्णायक मध्यमार्गी दृष्यिकोण अपनाते है, जबकि कुछ निर्णायक अत्याधिक उच्च दृष्टिकोण या निम्न दृष्टिकोण अपनाते है। कुछ निर्णायक अपने परिचितों, मित्रो व सतानों के सदर्भ मे उदारतापूर्वक निर्णय लेते हैं। कुछ निर्णायक गोपनीयता भग हो जाने की आशका के भय से किसी के सम्बन्ध मे कोई भी ऋणात्मक निर्णय देने से बचते हैं। पुरुष निर्णायक प्राय महिलाओ के सम्बन्ध मे अधिक उदार होते है। स्वनिर्धारण की स्थिति मे निर्णय गुण के सामाजिक वाछनीय अथवा अवाछनीय होने से भी प्रभावित होते हैं। व्यक्ति प्राय सामाजिक दृष्टि से वाछनीय गुणो को स्वय मे बढ़ा-चढाकर बताते हैं जबकि अवाछनीय गुणो को छिपाने की कोशिश करते हैं।

(5) वाह्य गुणो का निर्धारण आतरिक गुणो की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय ढग से सम्भव होता है। यह सर्वविदित है कि निर्धारक किसी व्यक्ति के उन्ही गुणो का ठीक-ठीक ढग से आकलन कर सकता है, जिन्हे बाह्य व्यवहार (Covert Behaviour) द्वारा जाना जा सकता है। इसलिए वाह्य गुणो का निर्धारण विश्वसनीय होता है। इसके विपरीत आतरिक गुणो को सीधे-सीधे देख पाने के अभाव मे उनका निर्धारण कम विश्वसनीय होता है।

निर्धारण मापनी विधि की अनेक परिसीमाएँ होने के बावजूद भी निर्माण तथा प्रशासन मे सुविधाजनक होने तथा व्यक्तित्व का मापन विश्वसनीय व वैध ढग से करने मे सक्षम होने के कारण निर्धारण मापनी का प्रयोग व्यक्तित्व मापन के लिए बहुतायत से किया जाता है। परिपक्व, अनुभवी, उच्च बौद्धिक स्तर वाले, पूर्वाग्रह से रहित तथा प्रशिक्षित निर्धारको के द्वारा निर्धारण मापनी विधि से व्यक्तियो के गुणो का मापन करने पर परिणाम अधिक वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध प्राप्त होने की सम्भावना बढ जाती है।

परिसूची या प्रश्नावली

(Inventory or Questionnaire)

व्यक्त्वि मापन के लिए परिसूची अथवा प्रश्नावली का वर्तमान समय मे वहुतायत से प्रयोग किया जा रहा है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि निर्धारण मापनी के प्रयोग से यह सूचना मिलती है कि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियो (Raters) के ऊपर अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे किस प्रकार का प्रभाव छोड रहा है। इसके विपरीत परिसूची अथवा प्रश्नावली के द्वारा व्यक्ति न केवल अपने बाह्य व्यवहार बल्कि अपने बारे मे अपने विचारो को अभिव्यक्त करता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि परिसूचियो अथवा प्रश्नावलियो के माध्य से कोई व्यक्ति अपने स्वय के व्यक्तित्व के सम्बन्ध सूचनाए प्रदान करता है तथा उसके द्वारा प्रदत्त इन सूचनाओ के आधार पर मनोवैज्ञानिक गण उस व्यक्ति के व्यवहार का आकलन करके है। परिसूची अथवा प्रश्नावली वास्तव मे कथनो अथवा प्रश्नो का एक सकलन होता है जिनके द्वारा विभिन्न परिस्थितियो मे व्यक्ति अपने व्यवहार के सम्बन्ध मे सूचना प्रदान करता है। व्यक्तित्व परिसूची अथवा प्रश्नावली का प्रारम्भ यद्यपि फ्रासिस गाल्टन ने सन् 1880 मे किया था, परन्तु व्यक्तित्व मापन के लिए आर० एस० वुडवर्थ के द्वारा सन् 1918 मे बनाई गई व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र (Personal Data Sheet) से व्यक्तित्व सूचियो व प्रश्नावलियो का वास्तविक प्रारम्भ माना जाता है। इसके बाद अनेक मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व के विभिन्न शील गुणो का मापन करने के लिए अनेको व्यक्तित्व सूचियो तथा प्रश्नावलियो का निर्माण किया। आज व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र मे सूचियो तथा प्रश्नावलियो का प्रयोग व्यापकता के साथ किया जा रहा है। फ्रीमैन ने व्यक्तित्व सूचियो को निम्न पॉच प्रकारो मे विभक्त किया है—

(i) विशिष्ट शील गुणो (Traits) का मापन करने वाली परिसूची।

(ii) वातावरण के विभिन्न पक्षो के साथ समायोजन का मूल्याकन करने वाली परिसूचियॉ

(iii) विभिन्न चिकित्सीय समूहो (Clinical Groups) मे वर्गीकृत करने वाली परिसूचियॉ।

(iv) व्यक्तियो को दो या तीन समूहो मे बाटने वाली परिसूचियाँ।

(v) रुचि, मूल्य तथा अभिवृत्ति का मूल्याकन करने वाली परिसूचियॉ।

फ्रीमैन के द्वारा उपरोक्त पॉच भागो मे परिसूचियो को बॉटने का अभिप्राय यह नही है कि किसी एक प्रकार की परिसूचियो का दूसरे प्रकार की परिसूचियो से कोई सम्बन्ध नही है। परिसूचियो के विभिन्न प्रकारो का विभेद परिसूचियो के उद्देश्यो, सगठन, विषयवस्तु तथा फलाकन पर आधारित होता है। सभी परिसूचियो का आधारभूत सिद्धान्त यही है कि किसी व्यक्ति का व्यवहार तथा व्यक्तित्व कुछ न कुछ अशो मे उस व्यक्ति के शील गुणो का प्रकट रुप है तथा इन शील गुणो की मात्रा को व्यक्ति के प्रकट व्यवहार से जाना जा सकता है। शील गुणो से तात्पर्य व्यवहार के सामान्यीकृत रुप से है। शीलगुण समान प्रकार की परिस्थितियो मे एक ही प्रकार के (Consistant) व्यवहार को करने की तत्परता है। शीलगुण को आदत (Habit) से अलग समझना चाहिए। व्यक्ति मे किसी कार्य को किसी परिस्थिति मे करने की आदत हो सकती है।

परन्तु यदि वह आदत उसके समस्त तथा सभी प्रकार की परिस्थितियों में परिलक्षित नही होती है तो उसे शील गुण नही कहा जा सकता है। व्यक्तित्व परिसूचियो की सहायता से व्यक्ति मे उपस्थित व्यक्तित्व के शील गुणों की परिस्थिति तथा मात्रा को कुछ प्रश्नो या कथनो की सहायता से जानने का प्रयास किया जाता है। यह कथन अथवा प्रश्न उन विभिन्न प्रकार की परिस्थितियो का प्रतिदर्श होते हैं जिनसे व्यक्ति के सामान्यीकृत व्यवहार (Generalised mode) का ज्ञान हो सकता है।

व्यक्तित्व परिसूचियो अथवा प्रश्नावली मे सम्मिलित किए जाने वाली विषयवस्तु के निर्धारण के लिए प्राय चार विधियो का प्रयोग किया जाताहै। ये है—

(i) विषयवस्तु वैधकरण (Content Validation)

(ii) ज्ञात समूह (Known Groups)

(iii) प्रत्यय अथवा अन्वय वैधकरण (Concept or Construct Validation)

(iv) अवयव विश्लेषण तकनीक (Factor Analysis Technique)

परिसूची निर्माण के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न विधियो मे विषयवस्तु वैधकरण की विधि सर्वाधिक पुरानी है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सेना के प्रयोग के लिए वुडवर्थ के द्वारा तैयार की गई व्यक्तिगत सूचना सूची (Personal Data Sheet) के लिए विषयवस्तु वैधकरण विधि का ही प्रयोग किया गया था। विषयवस्तु वैधकरण की इस विधि मे मापे जाने वाले शील गुणों से सम्बन्धित समस्त सम्भव व्यवहारो को परिसूची मे सम्मिलित करने का प्रयास किया जाता है।

ज्ञात समूहों के आधार पर प्रश्नों अथवा कथनो का चयन करना मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के निर्माण की एक प्रचलित विधि है। व्यक्तित्व परिसूची या प्रश्नावली के निर्माण के लिए प्राय दो विपरीत समूहों का चयन कर लिया जाता है। इन समूहो को प्रश्नो या कथनो के सकलन को उत्तर देने के लिए किया जाता है। विभिन्न प्रश्नो पर दिये गये उत्तरो के आधार पर समूह विभिन्नताएँ ज्ञात की जाती है। जो प्रश्न दोनो समूहो मे साख्यिकीय दृष्टि से विभेद करते हैं उनका चयन कर लिया जाता है तथा अन्यो को छोड दिया जाता है। इस प्रकार से बनाई गई परिसूचिया संक्षिप्त (Short) परन्तु उपयोगी सिद्ध होती है तथा इनकी वैधता इस बात पर निर्भर करती है कि परिसूची के निर्माण के लिए चयनित किए गए समूह कितने उपयुक्त थे।

प्रत्यय अथवा अन्वय वैधकरण मे परिसूची निर्माता मापे जाने वाले शील गुणो को विस्तार से परिभाषित करता है तथा ऐसे प्रश्नो का निर्माण करता है, जो उसकी परिभाषा के अनुरुप होते हैं।

अव्यव विश्लेषण तकनीकी मे परिसूची निर्माता अधिक संख्या मे प्रश्नो की रचना करता है तथा अव्यव विश्लेषण तकनीक का प्रयोग करके समान प्रकार के प्रश्नो को (Homogeneous Items) की सख्या को कम करने की कोशिश करता है।

परिसूची के लिए विषयवस्तु का चयन करने की उपरोक्त वर्णित चारो विधियो के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि ये चारों विधियाँ परस्पर पूर्णत· भिन्न-भिन्न नही है तथा किसी भी एक या अनेक विधियों का प्रयोग करके परिसूची का निर्माण किया जा सकता है।

प्रश्नावलियों की परिसीमायें (Limitations of Questionaires)—यद्यपि व्यक्तित्व प्रश्नावलियों की सहायता से व्यक्तित्व का मापन एक अपेक्षाकृत सरल कार्य है, तथा इसीलिए व्यक्तित्व मापन के लिए अनेक परिसूचियाँ अथवा प्रश्नावलियाँ तैयार की जा चुकी है। फिर भी इनकी कुछ अपनी परिसीमाये है तथा इन परिसीमाओ को ध्यान मे रखकर ही इनका प्रयोग उचित ढग से किया जाना चाहिये। व्यक्तित्व परिसूचियो की प्रमुख परिसीमाये निम्नवत् है—

(i) परिसूची अथवा प्रश्नावली मे व्यक्ति को अपने स्वय के सम्बन्ध में ही सूचनाये देनी होती है। ऐसी परिस्थिति मे व्यक्ति कुछ बातों को अपने तक ही सीमित रखने का इच्छुक हो सकता है। उदाहरणार्थ काम (Sex) सम्बन्धी प्रश्नो का उत्तर देने मे व्यक्ति संकोच का अनुभव करके गलत उत्तर दे सकता है। परिणामत परिसूची के द्वारा प्रदत्त सूचनाएँ त्रुटिपूर्ण हो जायेगी।

(ii) परिसूची मे व्यक्ति आत्म अवलोकन के आधार पर सूचनाएँ प्रदान करता है। इसलिए अचेतन अथवा अर्द्धचेतन स्थिति मे किये गये व्यवहार तथा बहुत समय पूर्व किये गये विस्मृत व्यवहारो के सम्बन्ध मे वह सही उत्तर नही दे सकता है।

(iii) परिसूची के प्रश्नो का उत्तर देते समय व्यक्ति सामाजिक वाछनीय (Social Desirability) कारक से भी प्राभावित हो सकता है।

(iv) परिसूची अथवा प्रश्नावली की सहायता से व्यक्तित्व का मापन करते समय व्यक्ति के द्वारा स्वय मे मौजूद बताये शील गये गुणो का पता चलता है न कि उसमे वास्तविक रुप से उपस्थित शील गुणो का।

(v) परिसूची अथवा प्रश्नावली का उत्तर देने वाले सामान्य व्यक्ति होते है जो प्रश्नों में सम्मिलित किये गये तकनीकी शब्दों के अर्थ को समझने मे कठिनाई का अनुभव करते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न समझ सकते हैं।

(vi) परिसूची अथवा प्रश्नावली का प्रयोग अशिक्षितों, छोटे बच्चो, मनोरोगियों के ऊपर करना सम्भव नही है।

परिस्थिति परीक्षण

(Situtation Tests)

परिस्थिति परीक्षण का उपयोग जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे कार्यरत व्यक्ति के व्यवहार को जानने के लिए अथवा जीवन से सम्बन्धित विभिन्न परिस्थितियो का सामना करने के ढंग को जानने के लिए किया जाता है। इसमे व्यक्ति अन्य व्यक्तियो के प्रति अपने विचारो को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार के परीक्षणो मे व्यक्ति के सम्मुख कोई वास्तविक अथवा काल्पनिक परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उस परिस्थिति मे व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले व्यवहारो का मूल्याकन उसके साथीगण अथवा निर्णायक करते है। परिस्थिति परीक्षण रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण अथवा प्रासगिक बोध परीक्षण की तरह से असंरचित नही होते है, परन्तु फिर भी काफी सीमा तक इन्हे प्रक्षेपीय तकनीको के समान माना जा सकता है। परिस्थिति परीक्षणो में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के गुणों को अन्य व्यक्तियों के प्रति अपनी पसन्द अथवा नापसन्द के द्वारा अथवा जीवन की परिस्थितियों का सामना करने की विधियो के द्वारा

अभिव्यक्त करता है। समाजमिति (Sociometry) तथा मनोनाटक (Psycho-Drama) परिस्थिति परीक्षण के दो प्रमुख उदाहरण है।

समाजमितीय विधि (Sociometric Method) —समाजमितीय विधि मे किसी समूह के व्यक्तियो के द्वारा अन्य व्यक्तियो के प्रति की गई स्वीकृतियो अथवा अस्वीकृतियो के आधार पर समूह की सामाजिक सरचना को ज्ञात किया जाता है। समाजमिति वास्तव मे पारस्परिक सम्बन्धो को जानकर समूह मे विभिन्न व्यक्तियो की स्थिति को ज्ञात करना है। इस विधि का प्रतिपादन जे० एल० मोरिनो (J L. Moreno) ने सन् 1934 मे किया था। यह विधि अत्यन्त सरल है। समूह का प्रत्येक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा दृष्टि (View-Point) से समूह के किसी एक या अधिक व्यक्तियो के नाम बताता है। समूह के सभी सदस्यो से नाम ज्ञात करने के उपरान्त विभिन्न व्यक्तियों की पसन्द का विश्लेषण करके समूह मे विभिन्न व्यक्तियो की स्थिति, समूह का सगठन तथा समूह मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण व महत्व विहीन व्यक्तियो का ज्ञान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी कक्षा के छात्रो से कहा जा सकता है कि वे साथ बैठने के लिए प्रथम व द्वितीय पसन्द बताये अथवा कक्षा मानीटर के लिये वे अपनी प्रथम व द्वितीय पसन्द बताये। व्यक्तित्व मापन के लिए भी समाजमितीय विधियो का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। जैसे छात्रो से कहा जा सकता है कि वे अपनी कक्षा के उस छात्र का नाम बताएँ, जो किन्ही दिये हुए व्यक्तित्व गुणो को रखता है। इसके लिये शब्द चित्रो (Word pictures) की एक शृखला तैयार की जा सकती है तथा समूह के प्रत्येक छात्र से कहा जा सकता है कि वे अपने समूह मे विभिन्न शब्द चित्रो के लिये सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति का नाम शब्द चित्रो के आगे लिख दे। व्यक्तित्व के प्रत्येक शील गुण के दो विपरीत ध्रुवो (Extremes) को अभिव्यक्त करने के
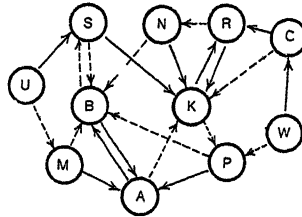
चित्र—26
समाजमिति में प्रयुक्त सोशियो ग्राम का उदाहरण

लिए दो शब्द चित्रो या प्रश्नो या कथनो का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे कक्षा मे एक ऐसा छात्र है, जो शान्त नही बैठ सकता है तथा कक्षा मे एक ऐसा छात्र है, जो शान्त रहकर अपना कार्य करता रहता है। शील गुणो के विपरीत ध्रुवो को अभिव्यक्त करने के लिये कथनो के स्थान पर शब्दो का प्रयोग भी किया जा सकता है जैसे शात-अशात। समूह के जितने व्यक्तियो के द्वारा किसी व्यक्ति को जिस शील गुण के अनुरुप बताया

जाता है, वह सख्या उस व्यक्ति के उस शील गुण की मात्रा को अभिव्यक्त करती है जिसे प्रतिशत या अनुपात के रुप मे परिवर्तित करके भी व्यक्त किया जा सकता है ।

मनोनाटक (Psycho-drama) —व्यक्तित्व के अध्ययन तथा मनोचिकित्सा के क्षेत्र मे मनोनाटक को एक उपयोगी विधि स्वीकार किया जाता है । इस विधि मे व्यक्ति को किसी दी गई परिस्थिति मे दी गई भूमिका का अभिनय करना होता है । मनोनाटक मे दो या दो से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होते है तथा यह इसमे सम्मिलित व्यक्तियो के जीवन की किसी सार्थक परिस्थिति से सम्बन्धित होता है । मनोनाटक की सहायता से व्यक्तित्व का मापन करने के लिए मनोनाटक का निदेशक तथा अन्य विशेषज्ञगण व्यक्ति के द्वारा किए जा रहे अभिनय का सूक्ष्म अवलोकन एव विश्लेषण करते है तथा जिसके आधार पर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का अदाजा लगाते है । मनोनाटक के लिए अनेक विभिन्न परिस्थितियो को चुना जा सकता है । परिस्थितियो का चयन काफी हद तक मनोनाटक मे सम्मिलित किए जाने वाले व्यक्तियो की प्रकृति पर निर्भर करता है । उदाहरणार्थ—सामाजिक स्थिति, आर्थिक समस्याओ, पारिवारिक सम्बन्धो, आकाक्षा आदि विचारो (Themes) की सहायता से मनोनाटको के आयोजन किए जा सकते है । मनोनाटक का कुछ परिवर्तित रुप सामाजिक नाटक (Socio-drama) कहलाता है । इन दोनो मे मुख्य अन्तर इनके उद्देश्य मे है । मनोनाटक जहाँ समायोजन समस्याओ से अधिक सम्बन्धित होता है, वही सामाजिक नाटक समूह सरचना तथा समूह मूल्यो आदि से अधिक सम्बन्धित होता है । मनोनाटक विधि का प्रतिपादन सन् 1946 मे हो जाने के बावजूद भी मनोनाटक अधिक प्रचलित नही हो पाया है । इसके दो मुख्य कारण है । प्रथम, मनोनाटक समय तथा विशेषज्ञो की उपलब्धता आदि दृष्टियो से कुछ कम व्यावहारिक है । द्वितीय, मनोनाटक विधि की वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता तथा वैधता के सम्बन्ध मे स्पष्ट प्रमाणो का अभाव है ।

प्रक्षेपीय विधियाँ

(Projective Methods)

प्रक्षेपीय विधियो की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता व्यक्ति के अचेतन को जानना है । प्रक्षेपण से अभिप्राय उस अचेतन प्रक्रिया से है जिसमे व्यक्ति अपने विचारो, दृष्टिकोणो, सवेगो, गुणो, आवश्यकताओ आदि को अन्य व्यक्तियो या वस्तुओ के माध्यम से परोक्ष ढग से अभिव्यक्त करता है । प्रक्षेपीय विधियो मे व्यक्ति के सम्मुख किसी उद्दीपक परिस्थिति को प्रस्तुत किया जाता है तथा व्यक्ति को इस बात के अवसर दिये जाते है कि वह अपने विचारो, दृष्टिकोणो, सवेगो, गुणो, आवश्यकताओ आदि को उस परिस्थिति मे आरोपित (Impose) कर सके । प्रक्षेपण प्राविधि मे प्रस्तुत किये जाने वाले उद्दीपक असरचित होते है तथा इनकी प्रतिक्रियाएँ सही या गलत न होकर व्यक्ति की सहज व्याख्यायें या रचनाये होती है । व्यक्तित्व सरचना को जानने के लिये अनेक प्रक्षेपण परीक्षणो का विकास किया जा चुका है । प्रक्षेपीय विधियो मे व्यक्ति के द्वारा दी जाने वाली प्रक्रियाओ के आधार पर प्रक्षेपीय विधियो को पाच प्रकार मे बाँटा जा सकता है—

(i) साहचर्य तकनीके (Association Technqiues)

(ii) रचना तकनीके (Construction Technqıues)
(iii) पूर्ति तकनीके (Completıon Technıques)
(iv) क्रम या पसन्द तकनीके (Orderıng or Choıce Techniques)
(v) अभिव्यक्ति तकनीके (Expressıve Technıques)

साहचर्य तकनीक मे व्यक्ति को अपने सम्मुख प्रस्तुत उद्दीपको से सम्बन्धित कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत करनी होती है। प्रस्तुत किये गये उद्दीपको के आधार पर साहचर्य तकनीके भी कई प्रकार की हो सकती है जैसे शब्द साहचर्य तकनीक, चित्र साहचर्य तकनीक तथा वाक्य साहचर्य तकनीक, जिनमे क्रमश शब्दो, चित्रो तथा वाक्यो को उद्दीपक के रुप मे प्रस्तुत किया जाता है तथा उन पर व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ प्राप्त की जाती है।

रचना तकनीक मे व्यक्ति को अपने सामने प्रस्तुत उद्दीपकों के आधार पर कोई रचना तैयार करनें के लिये कहा जाता है। जैसे किसी उद्दीपक के आधार पर कहानी लिखवाकर अथवा चित्र बनवा कर इस तकनीक का उपयोग किया जा सकता है।

पूर्ति तकनीक के अन्तर्गत किसी अधूरी रचना को उद्दीपक के रुप मे प्रस्तुत किया जाता है तथा व्यक्ति से उस अधूरी रचना को पूर्ण करने के लिए कहा जाता है। वाक्य पूर्ति, कहानी पूर्ति तथा चित्र पूर्ति इस तकनीक के प्रयोग के कुछ मुख्य उदाहरण है।

क्रम तकनीक मे व्यक्ति के सम्मूख कुछ शब्द, कथन, विचार, भाव, चित्र, वस्तुएँ इत्यादि प्रस्तुत की जाती हैं तथा उससे इन वस्तुओ को अपनी पसन्द के अनुरुप किसी क्रम से व्यवस्थित करने के लिए कहा जाता है।

यद्यपि उपरोक्त वर्णित विभिन्न प्रकार के प्रक्षेपीय तकनीको के आधार पर अनेक प्रक्षेपीय परीक्षणो का निर्माण किया जा चुका है तथापि रोशा का मसि लक्ष्य परीक्षण (Rorschach's Ink Bolt Test) तक मुरे का प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Murray's Thematic Apperception Test-TAT.) दो सर्वाधिक प्रचलित प्रक्षेपीय प्राविधियाँ है। वैसे इसके अतिरिक्त बाल अन्तर्बोध परीक्षण (CAT), शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Associatıon Test), मोजाइक परीक्षण (Mosaıc Test), शाब्दिक पूर्ति परीक्षण (Verbal Completion Test), ड्रा ए मैन परीक्षण (Draw a Man Test) आदि के द्वारा भी व्यक्तित्व को प्रक्षेपीय प्राविधि से मापा जाता है। रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण तथा मुरे प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण का सक्षिप्त वर्णन आगे किया गया है।

रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण (Rorschach Ink Blot Test)—रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण व्यक्तित्व को प्रक्षेपीय विधि से नापने वाला एक प्रसिद्ध तथा बहुतायत से प्रयुक्त किया जाने वाला परीक्षण है जिसका निर्माण हरमन रोशा (Harman Rorschach) नाम के स्विस मनोवैज्ञानिक ने बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे किया था। यद्यपि रोशा मसि लक्ष्य का प्रयोग करने वाला प्रथम व्यक्ति नही था, फिर भी इस दिशा मे उसका कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा व्यापक था जो सन् 1911 से 1921 तक लगभग 10

वर्षो तक चला। रोशा ने व्यक्तित्व मापन के लिए मसि लक्ष्यो का उपयोग करने की तकनीक को सफलता पूर्वक विकसित किया। मसि लक्ष्यो की सहायता से व्यक्तित्व का मापन करने की तकनीक के पीछे उसकी मान्यता थी कि व्यक्ति का प्रत्येक कार्य उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होता है तथा यदि यह कार्य अपरम्परागत उद्दीपक परिस्थितियो से सम्बन्धित हैं, जिसमे व्यक्ति अपनी व्यक्तिगतता को सप्रयास छुपा नही सकता है, तो ऐसे कार्य उसके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करते है। मसि लक्ष्यो के प्रति प्रतिक्रिया देते समय व्यक्ति इस बात से अनभिज्ञ होता है कि उसके द्वारा देखी जा रही बातों की रिपोर्ट मे वह क्या कुछ बता रहा है। फिर भी, उसके द्वारा बताई बातो से उसके व्यक्तित्व की झलक मिल जाती है।

रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण (Rorschach Ink Blot Test) मे कुल दस कार्ड होते हैं, जिनमे से प्रत्येक पर एक सममित मसि लक्ष्य (Ink Blot) बना होता है। पॉच कार्डो पर काले सफेद मे, दो पर काले सफेद व लाल रग मे तथा तीन पर अनेक रगों मे मसि लक्ष्य बने होते है। कार्ड सख्या 1, 4, 5, 6, व 7 पर काले सफेद मे, कार्ड सख्या 2 व 3 पर काले सफेद व लाल रग मे तथा कार्ड सख्या 8, 9 व 10 पर कई रगो मे मसि लक्ष्य बने होते हैं। ये कार्ड एक-एक करके एक निश्चित क्रम मे व्यक्ति के सामने प्रस्तुत किये जाते है तथा पूछा जाता है कि मसि लक्ष्य मे उसे क्या दिखाई दे रहा है या मसि लक्ष्य किस आकृति जैसा लग रहा है। व्यक्ति के द्वारा दिये गये उत्तरो के विश्लेषण के आधार पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे निष्कर्ष ज्ञात किये जाते है।
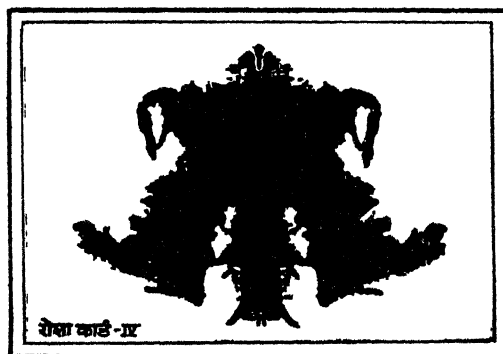
चित्र—27
रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण मे प्रयुक्त कार्डो का नमूना

रोशा ने मसि लक्ष्य परीक्षण के लिए किसी समय सीमा का निर्धारण नही किया था तथा कार्डो के लिए प्रतिक्रियाओ की कोई निश्चित सख्या भी ज्ञात नही की थी। परीक्षार्थी जितनी भी अधिक से अधिक प्रतिक्रियाये देना चाहे, दे सकते है। परीक्षक को परीक्षार्थी के व्यवहार के विभिन्न पक्षो का अक्षरश लेखन करना होता है। अर्थात् कार्ड के प्रति दी गई प्रतिक्रियाये, विभिन्न प्रतिक्रियाओ के बीच समय अन्तराल (Reaction Time), प्रत्येक कार्ड के प्रति दी गई प्रतिक्रियाओ मे लगा कुल समय, कार्ड को किस तरह

से हाथ मे पकडकर उसके प्रति प्रतिक्रिया दी गई है, आदि बातो को यथासम्भव विस्तार से लिपिबद्ध कर लिया जाता है। दसो कार्डो पर प्रतिक्रियाये जानने के बाद परीक्षण के दूसरा सोपान जिसे जाच (Inquiry) कहते है, का अनुसरण किया जाता है। जाच के दो मुख्य उद्देश्य है। प्रथम, मसि लक्ष्य के उन भागो अथवा पक्षो को जानना, जिन्होने परीक्षार्थी को प्रतिक्रिया देने के लिए अभिमुख (Initiate) किया अर्थात् पूर्ण मसि लक्ष्य अथवा उसके भाग, छोटे-छोटे अश, स्थिति, रग, शेड, गतिशीलता जैसी सूचनाएँ जिनकी अकन मे आवश्यकता होती है, को जाना जाता है। द्वितीय, जाच परीक्षार्थी को अपनी प्रतिक्रियाओ को बढाने अथवा उनमे सशोधन करने अथवा उन्हे स्पष्ट करने के अवसर देती है, परन्तु यह अवसर परीक्षार्थी के लिए पूर्णत स्व स्फूर्त (Spontaneous) होने चाहिये तथा परीक्षक के द्वारा किसी भी प्रकार के सुझाव से रहित होने चाहिए। परीक्षक को केवल ऐसे प्रश्न पूछने होते है, जो अकन की दृष्टि से आवश्यक तथा सार्थक हो। परीक्षक के द्वारा बहुत अधिक प्रश्न पूछने पर अथवा इगित करने वाले प्रश्न (Leading questions) पूछने पर परीक्षार्थी ऐसे उत्तर दे सकता है, जो उसके मनोभावो की अभिव्यक्ति न होकर परीक्षक के द्वारा सुझाई गई बातो से उभर कर सामने आये हो।

रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण मे परीक्षार्थी की विभिन्न कार्डो पर अनुक्रियाएँ प्राप्त करने के उपरान्त अनुक्रियाओ का अकन किया जाता है। इसके लिए अनुक्रियाओ से सम्बन्धित चार मुख्य बातो, अर्थात् स्थिति (Location), निर्धारक (Determinants), विषयवस्तु (Content) तथा लोकप्रिय व मौलिक प्रतिक्रियाओ (Popular and Original Responses) पर ध्यान दिया जाता है।

प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test)—प्रासगिक अन्तर्बोध परीक्षण (TAT) व्यक्तिव मापन की एक अन्य प्रसिद्ध प्रक्षेपीय विधि है। इसकी रचना सन् 1935 मे सी० डी० मोर्गन (C. D. Morgen) तथा एच० ए० मुरे (H. A. Murray) ने की थी। इस परीक्षण की निर्देश पुस्तिका (Test manual) बाद मे मुरे के नाम से सन् 1943 मे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुई। इस परीक्षण की आधारभूत मान्यता है कि जब व्यक्ति के सम्मुख कोई अस्पष्ट सामाजिक परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उससे उस परिस्थिति के अनुरूप कोई कल्पनात्मक कहानी बनाने के लिए कहा जाता है तो उस कहानी के विभिन्न पात्रो के द्वारा वह व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की विशेषताओ को अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त कर देता है। कहानी के कथानक से उस व्यक्ति की आवश्यकताओ, चिन्ताओ, इच्छाओ, विचार प्रक्रियाओ, परिपक्वता स्तर, आत्म प्रतिमा, सामाजिक समायोजन, दृष्टिकोण आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस परीक्षण मे कुल 31 कार्ड होते है जिनमे से 30 कार्डो पर अस्पष्ट काले सफेद रग से चित्र बने होते है, जबकि एक कार्ड सादा होता है। ये चित्र जीवन की साधारण घटनाओ से सम्बन्धित होते है। प्रयोज्य के यौन भेद तथा परिपक्वता के अनुरूप 20 या इससे कम कार्डो का प्रयोग व्यक्तित्व मापन के लिये किया जाता है। कुछ कार्ड लडको के लिए होते है, कुछ कार्ड लड़कियो के लिए होते है, कुछ कार्ड 14 वर्ष से अधिक आयु के पुरूषों के लिए होते है, कुछ कार्ड 14 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओ के लिए होते है, जबकि कुछ कार्ड सभी के लिए होते है। लडकों वाले कार्ड को B से, लडकियो वाले कार्ड को G से, पुरूषो

वाले कार्ड M से तथा महिलाओ वाले कार्ड को F से इगित कर दिया जाता है। इस प्रकार से चिह्नित कुछ 31 कार्ड निम्नवत् होते है।

1, 2, 3 BM, GF, 4, 5, 6 BM, 6 GF, 7 BM, 7 GF, 8 BM, 8 GF, 9 BM, 9 GF, 10, 11, 12 M, 12 F, 12 BG, 13 MF, 13 B, 13 G, 14, 15, 16, 17 BM, 17 GF, 18 BM, 18 GF, 19, 20

स्पष्ट है कि 11 कार्ड सभी के लिए, 7 कार्ड लडको व पुरुषो के लिए, 7 कार्ड लडकियो व महिलाओ के लिए, एक कार्ड लडके व लडकयो के लिए, एक कार्ड पुरूषो के लिए, एक कार्ड महिलाओ के लिये, एक कार्ड पुरूषो व महिलाओ के लिए, एक कार्ड लडको के लिए तथा एक कार्ड लडकियो के लिए है। स्पष्ट है कि प्रयोज्य की आयु तथा यौन भेद के आधार पर उपरोक्त 31 कार्डो मे से उचित कार्डो का चयन करना होताहै। प्रयोज्य को ये कार्ड एक-एक करके दिखाये जाते है तथा उनसे कहा जाता है कि कार्ड मे दिखाये दृश्य को ध्यान मे रखकर वे कोई छोटी सी कहानी बनाये। प्रत्येक कार्ड के लिए अलग-अलग कहानी बनानी होती है, तथा प्राय प्रत्येक कहानी के लिए पॉच मिनट का समय दिया जाता है। कहानी बनाते समय प्रयोज्य को चार बातो का ध्यान रखने के लिए कहा जाता है— (i) चित्र मे दिखायी घटना से पहले क्या बाते घटित हुई होगी ? (ii) इस समय चित्र मे क्या घटित हो रहा है ? (iii) चित्र मे दिखाये पात्र क्या सोच व

चित्र 28
टी० ए० टी० मे प्रयुक्त कार्डो का नमूना

अनुभव कर रहे है ? तथा (iv) इसका क्या अन्त होगा ? अन्त मे खाली कार्ड दिया जाता है तथा प्रयोज्य से कहा जाता है कि वह इस पर जो चित्र चाहे सोचे तथा उस पर कहानी बनाये। कहानी प्रयोज्य से लिखवाई भी जा सकती है तथा बोल कर सुनी भी जा

सकती है जिसे परीक्षणकर्ता नोट कर सकता है । समूह के रुप मे TAT का प्रशासन करते समय चित्रो को एक-एक करके परदे पर प्रोजेक्टर के माध्यम से दिखाया जा सकता है तथा परीक्षार्थी से कहानी लिखवाई जा सकती है । पूरे परीक्षण मे लगभग एक घन्टे का समय लगता है तथा इसे दो सत्रो मे विभक्त किया जा सकता है । परीक्षण प्रशासन के बाद प्रयोज्य से उसके द्वारा बनाई कहानियो के सम्बन्ध मे पूछताछ की जाती है । इसके अन्तर्गत असाधारण सूचनाओ, पात्रो के नामो, तिथियो, स्थानो आदि के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की जाती है । यह जानकारी परीक्षार्थी के द्वारा सभी कहानियो को बनाने के उपरान्त ही ली जाती है अन्यथा परीक्षार्थी कहानी बनाते समय सचेत (Conscious) हो सकता है तथा उसके द्वारा बनाई जाने वाली कहानियो मे उसके भावो के प्रक्षेपण मे बाधा आ सकती है ।

प्रयोज्यो के द्वारा बनाई गई कहानियो का अकन तथा विश्लेषण करके उनके व्यक्तित्व का आकलन करने का प्रयास किया जाता है । TAT के अकन की कोई एक निश्चित विधि निर्धारित नही है। विभिन्न उद्देश्यो के अनुरुप भिन्न-भिन्न अकन विधियो का प्रयोग किया जाता है । मुरे ने कहानी के नायक की माँगो (Needs) तथा वातावरण के दवावो (Press) के आधार पर कहानियों का विश्लेषण करने का सुझाव दिया है ।

16 मानसिक स्वास्थ्य
(Mental Health)

स्वस्थ शरीर के साथ-साथ स्वस्थ मस्तिष्क का होना व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यत आवश्यक है। व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का उसके समायोजन पर प्रभाव पडता है। मानसिक उलझनो से ग्रस्त व्यक्ति अपने दैनिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियो से उचित समायोजन करने मे कठिनाई का अनुभव करते है। प्राय देखा जाता है कि ससार मे शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति ही सफलताये प्राप्त करते है। अत मानव जीवन मे शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी अत्यत आवश्यक है। शिक्षा मनोविज्ञान बालको के मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। वास्तव मे बालको का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब वे शारीरिक तथा मानसिक दोनो ही दृष्टियो से पूर्णरूपेण स्वस्थ हो। शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य को तथा मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य को परस्पर प्रभावित करते रहते हैं। शिक्षा प्रक्रिया का सम्वन्ध बालको के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास से है। मानसिक दृष्टि से स्वस्थ अध्यापक ही अपने छात्रो का सर्वांगीण विकास करने मे समर्थ हो सकता है इसलिए शिक्षा प्रक्रिया की सफलता के लिए अध्यापक तथा छात्र दोनो का ही मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना अत्यत आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय मे मानसिक स्वास्थ्य की चर्चा की गई है।

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ
(Meaning of Mental Health)

मानव एक मनो-शारीरिक (Psycho-Physical) प्राणी है। उसका व्यवहार शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के अनेक कारको पर निर्भर करता है। इसलिए स्वास्थ्य से अभिप्राय केवल शारीरिक स्वास्थ्य से नही होता है वरन् शारीरिक तथा मानसिक दोनो ही प्रकार के स्वास्थ्य से होता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि जब शरीर तथा मन दोनो प्रभावशाली तथा समन्वित ढग से कार्य करते है तब ही व्यक्ति को पूर्णरुपेण स्वस्थ कहा जा सकता है। जैसा कि शब्दो से स्पष्ट है, मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति की उस मनो स्थिति से है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियो मे सामाजिक तथा व्यक्तिगत समायोजन करने मे समर्थ होता है। मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिको ने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाये दी है। कुछ परिभाषाये अग्राकित है—

हैडफील्ड के अनुसार—"सामान्य भाषा मे हम कह सकते है कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व की समन्वित क्रियाशीलता है।"

In general terms we may say that mental health is the harmonious functioning of the whole personality.

—Headfield

लैडेल के अनुसार—"मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ वास्तविकता के धरातल पर वातावरण के साथ उचित समायोजन करने की योग्यता है।"

Mental Health means the ability to make adequate adjustments to the environment on the plane of reality.

—Ladell

जॉन्स, सुटन तथा वेबस्टर के शब्दों में—"मानसिक स्वास्थ्य जीवन का एक सकारात्क परतु सापेक्षिक गुण है। यह वह दशा है जो ऐसे औसत व्यक्ति की विशेषता होती है जो अपनी सामर्थ्य तथा सीमाओ के आधार पर जीवन की आवश्यकताओ को पूरा करता है।"

Mental health is a positive but relative quality of life. It is a condition which is characteristic of the average person who meets the demands of life on the basis of his own capacities and limitations.

—Johns, Sutton, and Webster

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के द्वारा समायोजन करने की योग्यता का परिणाम होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओ, महत्वाकाक्षाओ, आदर्शों आदि को जीवन की वास्तविकताओ के अनुरूप ढाल कर अपने तथा वातावरण के मध्य एक सतोषजनक सम्बध स्थापित कर लेता है तब उसे समायोजित व्यक्ति कहा जा सकता है। समायोजन सदैव सुखदायक होता है। समायोजन से व्यक्ति को मानसिक सघर्षों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ
(Meaning of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को मानसिक आरोग्य के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को प्रारम्भ करने का श्रेय सी० डब्लू० बीयर्स (C. W. Beers) को दिया जाता है। बीयर्स ने चौबीस वर्ष की आयु मे आत्महत्या करने का असफल प्रयास किया था। बाद में मानसिक रुप से स्वस्थ हो जाने पर उन्होंने अपनी आत्मकथा के रुप मे सन् 1908 मे "ए माइंड दैट फाउड इटसैल्फ" (A Mind that Fouds Itself) नामक पुस्तक लिखी जिससे मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के आदोलन का सूत्रपात हुआ। बीयर्स की इस पुस्तक का मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के क्षेत्र मे विशेष प्रभाव पडा जिसके फलस्वरुप अमेरिका मे सन् 1908 मे मानसिक आरोग्य समिति (Association of Mental Hygience) की स्थापना हुई। इस समिति के प्रयासो के फलस्वरुप मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृत प्राप्त हो गई तथा लगभग सभी देशो में मनोचिकित्सा केन्द्र खुल गए।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का शाब्दिक अर्थ है—मस्तिष्क को स्वस्थ अथवा निरोग रखने वाला विज्ञान। जिस प्रकार से शारीरिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति के शरीर को स्वस्थ व रोगमुक्त रखने के नियमो तथा उपायो का अध्ययन करता है ठीक उसी प्रकार से मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति के मन को स्वस्थ्य तथा रोगमुक्त रखने के नियमो व उपायो का अध्ययन करता है। मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का सतुलित विकास करके उसे जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे भलीभाँति समायोजन करने के लिए समर्थ बनाता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ निम्नाकित परिभाषाओ से स्पष्ट हो सकेगा—

ड्रेवर के अनुसार —"मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ मानसिक स्वास्थ्य के नियमो की खोज करना तथा उसे बनाए रखने के उपाय करने से है।"

Mental hygiene means investigation of the laws of mental health and the taking of measures for its preservation.

—Drever

हैडफील्ड के शब्दों में —"मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सबध मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा मानसिक असतुलन को रोकने से है।"

Mental hygiene is concerned with the maintenance of mental health and the prevention of mental disorders.

—Headfield

शेफर के अनुसार —"मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे सुखमय, समन्वित तथा प्रभावशाली अस्तित्व की प्राप्ति मे सहायता करना है।"

The aim of mental hygiene is to assist every individual in the attainment of a fuller, happier, more harmonious and more effective existence.

—L.F Shaffer

उपरोक्त परिभाषाओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक साधन है तथा जिसका साध्य मानसिक स्वास्थ्य है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता से व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने, मानसिक कुसमायोजन से बचाए रखने तथा मानसिक रोगों का उपचार करने के उपाय किए जाते है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्य
(Aims of Mental Hygiene)

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने, मानसिक विकारो से बचाए रखने तथा मानसिक रोगो के उपचार से सम्बन्धित है, इसलिए इसके उद्देश्यो को निम्नाकित तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

1. मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करना
   (Maintenance of Mental Health)

2. मानसिक रोगो तथा विकारो की रोकथाम करना
   (Prevention of Mental Diseases or Disorders)
3. मानसिक रोगो का उपचार करना
   (Treatment of Mental Disorders)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उपरोक्त उद्देश्यों से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के दो प्रमुख पक्ष हैं— (i) सकारात्मक पक्ष (Positive Aspect) तथा (ii) नकारात्मक पक्ष (Negative Aspect)। मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के नियमो को बताकर विषम परिस्थितियो में समायोजन को प्रोत्साहित करना, इसका सकारात्मक पक्ष है, जबकि मानसिक रोगों से बचाव करना तथा मानसिक रोगो का उपचार करना इसका नकारात्मक पक्ष है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए क्या करना चाहिए, यह मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सकारात्मक पक्ष है, जबकि क्या नही करना चाहिए, यह मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का नकारात्मक पक्ष है। कुछ विद्वान मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के तीन उद्देश्यो के अनुरुप इसके निम्नाकित तीन पक्ष बताते है—

1. सरक्षणात्मक पक्ष (Preservative Aspect)
2. निषेधात्मक पक्ष (Preventive Aspect)
3. उपचारात्मक पक्ष (Curative Aspect)

इन तीनो पक्षो का तात्पर्य स्वस्पष्ट होने के कारण इसकी चर्चा करना अनावश्यक है।

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण
(Characteristics of Good Mental Health)

मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति की विशेषताओ का ज्ञान किसी सुसमायोजित व्यक्ति के लक्षणो से ज्ञात हो सकता है। प्राय अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के निम्नाकित लक्षण होते है—

1. नियमित दिनचर्या
(Regular Life)

मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्ति नियमित जीवन व्यतीत करते है। उनके रहन-सहन, खान-पान, सोने-जागने आदि की कुछ निश्चित आदतें होती हैं, जिन्हे वे स्वाभाविक ढग से पूरा करते है।

2. समायोजन योग्यता
(Ability to Adjust)

मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्तियो मे अपने भौतिक तथा सामाजिक वातावरण के साथ शीघ्र समायोजन करने की योग्यता होती है। वे नये भौतिक परिवेश तथा अन्य व्यक्तियों के विचारो परेशानियो व समस्याओ को भलीभाँति समझकर उनके साथ उचित समायोजन कर लेते है।

3. संवेगात्मक परिपक्वता

(Emotional Maturity)

ऐसे व्यक्ति सवेगात्मक दृष्टि से परिपक्व होते है अर्थात् उनमे अपने सवेगो को नियत्रित रखने तथा वाछनीय ढग से व्यक्त करने की क्षमता होती है। वे क्रोध, भय, ईर्ष्या, प्रेम, घृणा आदि सवेगो से अस्त-व्यस्त नही होते है वरन् विपरीत परिस्थितियो मे भी सभी कार्यो को प्रसन्नता के साथ करते है।

4. आत्मविश्वास

(Self Confidence)

मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्तियो मे आत्मविश्वास की भावना अधिक होती है। उन्हे यह विश्वास होता है कि वे विभिन्न कार्यो को उचित ढग से सफलतापूर्वक कर सकते है। किये जाने वाले कार्य की सफलता के प्रति वे अनावश्यक रुप से सदिग्ध या उद्विग्न नही होते है।

5. सहनशीलता

(Tolerance)

मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्तियो मे सहनशीलता अधिक होती है। वे जीवन मे निराश नही होते है। वे विपरीत परिस्थितियो का सामना सहनशीलता से करते है। धैर्य और सहनशीलता के कारण वे विषम परिस्थितियो मे कष्ट का कम अनुभव ग रते है तथा मानसिक असतुलन से बचे रहते है।

6. निर्णय करने की योग्यता

(Ability to Decide)

ऐसे व्यक्तियो मे उचित निर्णय लेने की योग्यता पाई जाती है। वे स्पष्ट रुप से विचार करके विभिन्न कार्यो के सबध मे उचित निर्णय लेते है। स्वय निर्णय लेकर निर्धारित की गई बातो को वे सफलतापूर्वक क्रियान्वित करते है।

7. वास्तविकता की स्वीकृति

(Acceptance of Reality)

सुसमायोजित व्यक्ति काल्पनिक ससार मे नही वरन् वास्तविक ससार मे विचरण करते है। उनका जीवन दर्शन वास्तविकता पर आधारित होता है। उनका व्यवहार कल्पनाओ अथवा इच्छाओ से निर्देशित न होकर वास्तविक रूप से विद्यमान बातो से निर्देशित होता है।

8. आत्ममूल्यांकन की क्षमता

(Capacity of Self Evaluation)

ऐसे व्यक्ति अपने स्वय का मूल्याकन ठीक ढग से करते है। वे अपने गुणो, दोषो, विचारो, इच्छाओ आदि की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता को भली-भाँति समझते है। वे निष्पक्ष रूप से अपने व्यवहार के औचित्य का निर्णय करते है। उन्हे अपने दोषों को स्वीकार करने मे कोई सकोच नही होता है।

9. कार्य संतुष्टि

(Work Satisfaction)

ऐसे व्यक्ति अपने कार्य तथा व्यवसाय मे रुचि लेते है तथा सतुष्टि का अनुभव करते हैं। इनमें अपने कार्य के प्रति लगाव होता है। वे कार्यों मे रुचि लेते है। अपने उत्तरदायित्वो का पालन ऐसे व्यक्ति प्रसन्नता से करते है।

उपरोक्त लक्षणो से युक्त व्यक्तियो को मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति समझा जा सकता है। इसके विपरीत मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्तियों मे संवेगात्मक अस्थिरता, आत्मविश्वास की कमी, निराशा आदि उत्पन्न हो जाती है। जब व्यक्ति अपने वातावरण के साथ भलीभाँति समायोजन स्थापित नही कर पाता है अर्थात् उसकी इच्छाओं, क्षमताओं, रुचियों आदि का वास्तविक परिस्थितियो मे सामञ्जस्य नही हो पाता है तब उसका व्यवहार असतुलित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप उसमे अनेक मानसिक विकार जैसे भग्नाशा, (Frustration), मानसिक द्वद (Conflict), तनाव (Tension), भावना ग्रंथियाँ (Complexes), चिन्ता (Anxiety) आदि उत्पन्न हो जाते है।

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Mental Health)

मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले अनेक कारक हो सकते है। ये कारक व्यक्ति की समायोजन शक्ति को क्षीण करके उसे कुसमायोजन की ओर अग्रसित कर देते हैं। मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक अग्राकित है—

1. वंशानुक्रम

(Heredity)

कभी-कभी बालक वशानुक्रम मे अपने पूर्वजों से कुछ मानसिक विकारो को प्राप्त करता है जो उसे मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ बना देते है। दोषपूर्ण वंशानुक्रम के कारण बालक में मानसिक दुर्बलता या स्नायु सबधी रोग हो सकते हैं जिनके कारण उसका समायोजन कठिन हो जाता है।

2. शारीरिक स्वास्थ्य

(Physical Health)

शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सबध होता है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्राय अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को आधार माना जाता है। शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ, रोगी या कमजोर व्यक्तियो मे नई परिस्थितियो से समायोजन करने की क्षमता कम होती है।

3. शारीरिक विसंगतियाँ

(Physical Defects)

जन्मजात अथवा दुर्घटना के कारण आई शारीरिक विसंगतियाँ भी मानसिक

समायोजन मे कठिनाई उत्पन्न करती है। शारीरिक दोष के कारण बालकों मे हीन भावनाये पैदा हो जाती है तथा वे अपने साथियों के साथ समायोजन करने मे कठिनाई का अनुभव करते है।

4. परिवार का वातावरण
(Family Environment)

बालक का विकास परिवार मे होता है। परिवार बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है। पारिवारिक अनुशासन, आर्थिक स्थिति, उच्च महत्वाकाक्षाये, परिवार के सदस्यो के परस्पर सबध आदि बालक के मानसिक स्वास्थ को प्रभावित करते है। अत्यधिक अनुशासन अथवा अनुशासनहीनता, आवश्यक भौतिक वस्तुओ का अभाव अथवा अत्यधिक सम्पन्नता, असम्भावित महत्वाकाक्षाये अथवा योग्यता को नकारना, परिवार मे टूटते सबध, कलह, भेदभावपूर्ण व्यवहार आदि के कारण बालकों मे प्राय कुसमायोजन हो जाता है।

5. समाज
(Society)

बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर समाज का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। सामाजिक वातावरण अथवा सामाजिक सगठन के दोषपूर्ण होने पर बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर उसका विपरीत प्रभाव पडता है। समाज के आतरिक झगडे, जातीय सघर्ष, धार्मिक उन्माद, राजनैतिक दॉवपेच, ऊँचनीच व अमीर-गरीब की भावना, सामाजिक कुरीतियाँ, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व सुरक्षा का अभाव जैसी बातें बालकों में मानसिक तनाव उत्पन्न कर सकती है जो उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

6. विद्यालय
(School)

विद्यालय भी बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। विद्यालय का वातावरण, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, परीक्षा प्रणाली, अध्यापक का व्यवहार आदि बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते है। विद्यालय मे भय, आतक तथा अवरुद्ध वातावरण के होने, पाठ्यक्रम के अत्यधिक बोझिल होने, शिक्षण विधियों के अमनोवैज्ञानिक होने, परीक्षा प्रणाली के उचित न होने तथा शिक्षक के सहानुभूतिपूर्ण व सहयोगात्क व्यवहार के अभाव मे बालक मानसिक रुप से अस्वस्थ से हो जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वशानुगत दोष, कमजोर शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक विसँगतियाँ, परिवार का कलहपूर्ण वातावरण, विखण्डित सामाजिक परिवेश तथा भय व आतक से युक्त बोझिल स्कूल वातावरण बालको के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के उपाय
(Measures to Keep Good Mental Health)

मानसिक स्वास्थ को प्रभावित करने वाले कारको के अवलोकन से स्पष्ट है कि मानसिक स्वास्थ को बनाए रखने मे परिवार, विद्यालय तथा समाज तीनो की ही महत्वपूर्ण भूमिकाये होती है। निम्नाकित उपायो को करके बालको के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने का प्रयास किया जा सकता है।

1. परिवार के कार्य
(Functions of Family)

मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के कार्य मे परिवार का सर्वाधिक महत्व होता है। प्राय परिवार ही बालक को मानसिक स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य की ओर अग्रसित करता है। निम्नाकित उपायो को करके परिवार बालक के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा मे सहायता प्रदान कर सकता है।

(i) परिवार को बालक की शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उत्तम परिस्थितियाँ प्रदान करना चाहिए।

(ii) मानसिक दृष्टि से स्वस्थ बने रहने के लिए परिवार का वातावरण शातिपूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है। परिवार के सभी सदस्यो मे परस्पर प्रेम तथा सद्भावना होनी चाहिए।

(iii) माता-पिता का बच्चो के प्रति उचित व्यवहार बालकों के मानसिक स्वास्थ्य मे महत्वपूर्ण योगदान करता है। माता-पिता को बच्चो के साथ प्रेम तथा सुरक्षा से परिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। बच्चो से अत्याधिक प्रेम तथा अनावश्यक सुरक्षा अथवा बच्चों की अवहेलना दोनो ही उनके मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव छोडते है।

2. विद्यालय के कार्य
(Functions of School)

बालको के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने मे विद्यालय महत्वपूर्ण सहायता कर सकता है। बालको के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने की दृष्टि से निम्नाकित बाते महत्वपूर्ण हैं—

(i) विद्यालय का अच्छा वातावरण तथा शान्त सौम्य परिवेश शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है।

(ii) बालको के प्रति अध्यापको का स्नेहपूर्ण सहयोगात्मक व्यवहार उनके मानसिक स्वास्थ्य का उन्नयन करता है।

(iii) भय, दण्ड, दमन तथा कठोरता पर आधारित अनुशासन बालको के मानसिक स्वास्थ्य को नष्ट करता है, जबकि जनतत्रीय सिद्धान्तों पर आधारित स्वानुशासन बालको के मानसिक स्वास्थ्य मे निरतर उन्नति करता है।

(iv) बालको की रुचि, आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुरुप लचीले पाठ्यक्रम उनको समयोजन करने मे सहायक होते हैं।

(v) विद्यालय मे बालको को अत्यधिक गृहकार्य देने से उनमे कुसमायोजन हो जाता है। अत विद्यालय मे बालको को यथासम्भव कम गृहकार्य देना चाहिए।

(vi) विद्यालय मे खेलकूद, मनोरजन, स्काउटिग, सास्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। इन क्रियाओ के द्वारा बालकों की प्रवृत्ति, प्रेरणा व इच्छा आदि की अभिव्यक्ति हो जाती है।

(vii) विद्यालय मे बालको को व्यक्तिगत, शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे बालक अपनी विभिन्न समस्याओ का उचित समाधान कर सके।

3. समाज के कार्य

(Functions of Society)

मानव एक सामाजिक प्राणी है अत समाज उसके मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र मे समाज अग्राकित कार्य कर सकता है—

(i) बालको को स्वस्थ व सुरक्षात्मक सामाजिक वातावरण प्रदान करके उनके मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखना चाहिए।

(ii) सामाजिक विद्वेष, राजनैतिक प्रपच, धार्मिक उन्माद, जातीय सघर्ष, सामाजिक कुरीतियों आदि की समाप्ति से बालको को स्वस्थ सामाजिक परिवेश उपलब्ध कराया जा सकता है।

(iii) परस्पर सौहार्द, भाईचारे की भावना तथा भावात्मक एकता को बढाया जाना चाहिए।

अपने-अपने स्तर पर आवश्यक उपायो को करके परिवार, विद्यालय तथा समाज बालको के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है। मानसिक स्वास्थ्य के उपचारत्मक पक्ष का सबध मुख्यत मनोचिकित्सको से है। प्रस्तुत पुस्तक के विषय क्षेत्र से बाहर होने के कारण इसकी चर्चा करना यहाँ सम्भव नही है।

---

17 अधिगम
(LEARNING)

सीखना एक निरन्तर चलने वाली सार्वभौमिक प्रक्रिया है। व्यक्ति जन्म से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है तथा मृत्युपर्यन्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। सीखने की गति परिस्थिति के अनुरुप घटती-बढती रहती है। सीखने के लिए कोई स्थान विशेष निश्चित नही होता है। व्यक्ति कही भी, किसी भी समय, किसी से भी, कुछ भी सीख सकता है। सीखने को अधिगम भी कहते है। प्रस्तुत अध्याय मे सीखने तथा अधिगम को पर्यायवाची शब्दो के रूप मे प्रयुक्त किया गया है। सीखना अथवा अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे न केवल शिक्षा मनोविज्ञान मे वरन् मनोविज्ञान की समस्त शाखाओं मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार सीखने के प्रकरण को मनोविज्ञान के क्षेत्र मे सबसे अधिक आधारभूत माना जाता है। वास्तव मे शिक्षा प्रक्रिया का एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण अग सीखना ही है। शिक्षा मनोविज्ञान मे तो सीखने की प्रक्रिया को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। कुछ जन्मजात प्रवृत्तियो तथा सहज प्रतिक्रियाओ के अतिरिक्त मनुष्य के अन्य समस्त व्यवहार सीखे हुए होते है। प्रस्तुत अध्याय मे अधिगम की प्रकृति तथा सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है।

अधिगम का प्रत्यय
(Concept of Learning)

'अधिगम या सीखना' वैसे तो एक सामान्य बोलचाल मे प्रयुक्त होने वाला शब्द है तथा लगभग सभी व्यक्ति सीखने शब्द के अर्थ को समझते होगे। परतु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार करना उपयुक्त होगा कि 'अधिगम' शब्द से क्या अभिप्राय है ? अधिगम से अभिप्राय अनुभवो के द्वारा व्यवहार मे परिवर्तन लाने की प्रक्रिया से है। अधिगम अर्थात सीखना शब्द का अर्थ मनोवैज्ञानिको द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाओ के अवलोकन से अधिक स्पष्ट हो सकेगा। इसलिए अधिगम की कुछ परिभाषाये आगे दी जा रही है—

वुडवर्थ के अनुसार —"नवीन ज्ञान तथा नवीन प्रतिक्रियाओ का अर्जन करने की प्रक्रिया अधिगम प्रक्रिया है।"

The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning.

—Woodworth

गेट्स व अन्यों के शब्दों मे —"अनुभव तथा प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार का उन्नयन अधिगम है।

Learning ıs the modification of behavıour through experıence and trainıng.

—Gates and Others

क्रोनबेक के अनुसार —"अधिगम की अभिव्यक्ति अनुभव के परिणामस्वरुप व्यवहार मे परिवर्तन के रुप मे होती है।"

Learning is shown by a change ın behavıour as a result of experıence.

—Cronback

स्किनर के अनुसार —"अधिगम व्यवहार मे उत्तरोत्तर अनुकूलन की प्रक्रिया है।"

Learning ıs a proces of progressive behavıour adaptation.

—Skinner

गिलफोर्ड ने कहा है कि —"व्यवहार के कारण व्यवहार मे आया कोई भी परिवर्तन अधिगम है।"

Learning is any change ın behaviour resulting from behaviour.

—Guılford

क्रो एवं क्रो के अनुसार —"आदतो, ज्ञान तथा अभिवृत्तियो का अर्जन ही अधिगम है।"

Learnıng ıs the acquısıtıon of habıts, knowledge and attıtudes.

—Crow and Crow

उपरोक्त परिभाषाओ के विश्लेषण तथा व्याख्या से स्पष्ट है कि अधिगम प्रक्रिया मे निम्न चार बातें निहित रहती हैं—

1. अधिगम व्यवहार मे परिवर्तन है। परन्त् बीमारी, थकान, सवेगात्मक स्थिति, परिपक्वता, मादक द्रव्यों के सेवन आदि के कारण व्यवहार मे उत्पन्न होने वाले परिवर्तन अधिगम में सम्मिलित नही किये जाते हैं।

2. अधिगम प्रक्रिया की अभिव्यक्ति व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के द्वारा होती है।

3. अधिगम लगभग स्थायी प्रकृति का परिवर्तन होता है।

4. अधिगम अभ्यास, प्रशिक्षण तथा अनुभव पर आधारित होता है।

अधिगम की विशेषताऐं
(Characteristics of Learning)

अधिगम की प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझने के लिए इसकी विषेताओं को समझना आवश्यक है। यॉकम (Yoakam) तथा सिम्पसन (Simpson) ने अधिगम की निम्नाकित सामान्य विशेताओं की चर्चा की है—

(i) अधिगम विकास है। (Learning is growth)

(ii) अधिगम समायोजन है। (Learning is adjustment)

(iii) अधिगम अनुभवो का सगठन है। (Learning is organization of experiences)

(iv) अधिगम सोददेश्य है। (Learning is purposeful)

(v) अधिगम विवेकपूर्ण व सृजनशील है। (Learning is intelligent and creative)

(vi) अधिगम क्रियाशील है। (Learning is active)

(vii) अधिगम व्यक्तिगत व सामाजिक दोनो है। (Learning is both individual and social)

(viii) अधिगम वातावरण के परिणामस्वरुप होता है। (Learning is a product of environment)

(ix) अधिगम व्यक्ति के आचरण को प्रभावित करता है। (Learning affects the conduct of the learner)

मैककाव (McCaw) के अनुसार अधिगम की निम्नाकित विशेषताऐं होती है—

(i) अधिगम व्यवहार मे सतत् परिवर्तन है जो जीवन पर्यन्त चलता है।

(ii) अधिगम सर्वांगीण है। मानव जीवन के सभी पक्षो मे अधिगम की प्रक्रिया चलती रहती है।

(iii) अधिगम मे व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से (शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक आदि) सम्मिलित रहता है।

(iv) अधिगम अधिकाशत व्यवहार के सगठन मे परिवर्तन होता है।

(v) अधिगम विकासात्मक है।

(vi) अधिगम प्रोत्साहन (Incentives) की प्रतिक्रिया होती है।

(vii) अधिगम उद्देश्यपरक होता है।

(viii) अधिगम व रुचि परस्पर सबधित होती है।

(ix) अधिगम तैयारी व अभिप्रेरणा (Motivation) पर निर्भर करता है।

अधिगम को अनेक प्रकारो मे विभक्त किया जा सकता है जिनमे से तीन प्रमुख प्रकार है—शाब्दिक अधिगम (Verbal Learning), गत्यात्मक अधिगम (Motor Learning), तथा समस्या समाधान अधिगम (Problem solving Learning)।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors affecting Learning Process)

अधिगम की प्रक्रिया अनेक कारको से प्रभावित हो सकती है। अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारको का वर्णन आगे किया गया है—

1. पूर्व अधिगम
(Previous Learning)

बालक कितनी शीघ्रता से अथवा कितनी अच्छी तरह से सीखता है, यह इस बात

पर निर्भर करता है कि वह पहले से क्या सीख चुका है । अधिगम की प्रक्रिया शून्य से प्रारम्भ नही होती है वरन् बालक द्वारा पूर्वअर्जित ज्ञान से प्रारम्भ होती है । बालक के ज्ञान की आधारशिला जितनी सुदृढ तथा व्यापक होती है, उसके ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारू ढग से चलती है । अत अध्यापको को 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' के शिक्षण सिद्धान्त सिद्धान्त के अनुरुप शिक्षण कार्य करना चाहिए ।

2. विषयवस्तु

(Subject Matter)

अधिगम की प्रक्रिया पर सीखी जाने वाली विषयवस्तु का भी प्रभाव पडता है । कठिन व असार्थक बातो की अपेक्षा सरल व सार्थक बातें बालक शीघ्रता व सुगमता से सीख लेता है । विषय सामग्री की व्यक्तिगत उपादेयता भी सीखने मे महत्वपूर्ण योगदान करती है । यदि सीखने वाली विषय सामग्री बालक के लिए व्यक्तिगत उपयोग तथा महत्व रखती है तो बालक उसे सरलता से सीख लेता है । अत: बालक के जीवन से सबधित तथा महत्वपूर्ण विषय सामग्री को पाठ्यक्रम मे प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए ।

3. शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता

(Physical Health and Maturity)

शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व परिपक्व बालक सीखने मे रुचि लेते है जिससे वे शीघ्रता से नवीन बातो को सीख लेते है । इसके विपरीत कमजोर, बीमार व अपरिपक्व बालक सीखने मे कठिनाई का अनुभव करते है । छोटी कक्षाओ मे पढने वाले बालको के लिए शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता का विशेष महत्व है जिससे वे पुस्तक, कलम, कापी आदि ठीक ढग से पकड सके । इसलिए बालको के शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता के अनुरुप ही उन्हे नवीन बातें सिखानी चाहिए ।

4. मानसिक स्वास्थ्य व परिपक्वता

(Mental Health and Maturity)

मानसिक रुप से स्वस्थ व परिपक्व बालको मे सीखने की क्षमता अधिक होती है । अधिक बुद्धिमान बालक कठिन बातो को शीघ्रता से तथा सरलता से सीख लेता है । मानसिक रोगो से पीडित या कम बुद्धि वाले बालक मन्दगति से नवीन बातो को सीख पाते है । बडी कक्षाओ मे पढने वाले छात्रो के सीखने में उनकी बुद्धि तथा मानसिक परिपक्वता का विशेष महत्व होता है ।

5. अधिगम की इच्छा

(Will to Learn)

अधिगम सीखने वाले की इच्छा पर भी निर्भर करता है । यदि बालक मे किसी बात को सीखने की दृढ इच्छा शक्ति होती है तो वह प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी उस बात को सीख लेता है । इसके विपरीत यदि कोई बालक किसी बात को सीखना ही नही चाहता है तो उसे जबरदस्ती सिखाया नही जा सकता है । अत अध्यापको व अभिभावको को सिखाने से पहले बालको मे दृढ इच्छा शक्ति को उत्पन्न करना चाहिए ।

6. प्रेरणा
(Motivation)

प्रेरणा का अधिगम की प्रक्रिया मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यदि बालक सीखने के लिए प्रेरित नही होता है तो वह सीखने के कार्य मे रुचि नही लेता है। अत अध्यापको को चाहिए कि सीखने से पहले बालको को सीखने के लिए प्रेरित करे। प्रशसा व प्रोत्साहन के द्वारा तथा प्रतिद्वन्दिता व महत्वाकाक्षा की भावना उत्पन्न करके बालको को प्रेरित किया जा सकता है।

7. थकान
(Fatigue)

थकान सीखने की प्रक्रिया मे बाधा उत्पन्न करती है। थकान की स्थिति मे बालक पूर्ण मनोयोग से सीखने की क्रिया मे रत नही हो पाता है तथा उसका ध्यान विकेन्द्रित होता रहता है जिससे थकान की स्थिति मे सीखना सदिग्ध हो जाता है। प्रात काल बालक स्फूर्ति से युक्त रहते है जिसके कारण प्रात काल मे सीखने मे सुगमता रहती है। धीरे-धीरे बालको की स्फूर्ति मे शिथिलता आती जाती है जिसके कारण बालको की सीखने की गति मन्द होती जाती है। अत बालको के पढने की समय-सारणी बनाते समय विश्राम की व्यवस्था रखने का भी ध्यान रखना चाहिए।

8. वातावरण
(Atmosphere)

अधिगम की प्रक्रिया पर वातावरण का भी प्रभाव पडता है। शान्त, सुविधाजनक, नेत्रप्रिय, उचित प्रकाश तथा वायु वाले वातावरण मे बालक प्रसन्नता से व एकाग्रचित होकर सीखता है। इसके विपरीत शोरगुल वाले अनाकर्षक तथा असुविधाजनक वातावरण मे बालक के सीखने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। ऐसे वातावरण में बालक जल्दी ही थकान का अनुभव करने लगता है। अत अभिभावको, अध्यापको तथा प्राचार्यों को घर, कक्षा व विद्यालय के अदर सीखने मे सहायक वातावरण तैयार करने का प्रयास करना चाहिए।

9. सीखने की विधि
(Learning Methods)

सीखने की विधि का भी अधिगम की क्रिया मे महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुछ विधियो से सीखा ज्ञान अधिक स्थायी होता है। खेल विधि या करके सीखना विधि जैसी मनोवैज्ञानिक व आधुनिक विधियो से ज्ञान शीघ्रता व सुगमता से प्राप्त किया जाता है तथा यह ज्ञान अधिक स्थायी होता है। इसके विपरीत अमनोवैज्ञानिक विधियो से यदि बालको को जबर्दस्ती सिखाया जाता है तो बालक सीखने मे रुचि नही लेता है। अत. बालको को सीखाते समय उपयुक्त विधि का चयन करना चाहिए ।

अधिगम विधियाँ
(Learning Methods)

अधिगम के लिए अनेक प्रकार की विधियो का प्रयोग किया जाता है। अधिगम

की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नाकित हैं—

1. **करके सीखना** (Learning by Doing) —करके सीखने मे व्यक्ति किसी कार्य को स्वय करने का अभ्यास करता है तथा जिसके परिणामस्वरुप वह उस कार्य को सीख जाता है।

2. **निरीक्षण करके सीखना** (Learning by Obesrvation) —इसके अतर्गत व्यक्ति निरीक्षण करके नवीन बातो को सीखता है।

3. **परीक्षण करके सीखना** (Learning by Experimentation) —परीक्षण करके सीखने के अतर्गत व्यक्ति स्वय परीक्षण करता है तथा नवीन कार्यो को अपने अनुभवो के आधार पर सीखता है।

4. **वाद-विवाद विधि** (Discussion Method) —वाद-विवाद विधि मे व्यक्ति अन्य व्यक्तियो से वाद-विवाद करने के दौरान सीखता है।

5. **वाचन विधि** (Recitation Method) —वाचन विधि के अतर्गत पाठ का सस्वर वाचन करके उसे याद किया जाता है।

6. **अनुकरण विधि** (Imitation Method) —अनुकरण विधि मे व्यक्ति दूसरो का अनुकरण करके सीखता है।

7. **प्रयास एवं त्रुटि विधि** (Trial and Error Method) —प्रयास एव त्रुटि विधि मे व्यक्ति अन्तर्दृष्टि के द्वारा कार्य करने का प्रयास करता है तथा बार बार प्रयास करके सीखता है।

8. **पूर्ण विधि** (Whole Method)—पूर्ण विधि मे पाठ को एक साथ सम्पूर्ण ढग से याद किया जाता है।

9. **अंश विधि** (Part Method) —अश विधि मे पाठ को कुछ अशों मे बाँटकर एक-एक अश को याद किया जाता है।

10. **अन्तराल विधि** (Interval Method) —अन्तराल विधि मे पाठ को थोडे-थोडे अन्तर के बाद याद किया जाता है।

11. **सतत् विधि** (Continuous Method) —सतत् विधि मे पाठ को एक ही बैठक मे याद किया जाता है।

सीखने की उपरोक्त वर्णित विधियाँ परस्पर एक-दूसरे से भिन्न नही है। व्यक्ति आवश्यकतानुसार इनमे से कुछ विधियो को एक साथ मिला कर सीखने मे प्रयुक्त कर सकते है। सीखने की कौन सी विधि अधिक श्रेष्ठ है यह एक कठिन प्रश्न है। वास्तव मे किसी भी एक विधि को सर्वश्रेष्ठ कहना उचित नहीं है। पाठ्य सामग्री, बालक की शारीरिक व मानसिक स्थिति तथा अन्य वातावरणीय कारको के अनुरुप कोई एक विधि अन्य विधियो से श्रेष्ठ हो सकती है। यहाँ इस बात को भी स्पष्ट रुप से समझ लेना उचित ही होगा कि सीखने की उपरोक्त वर्णित विधियो मे से अनेक विधियाँ वास्तव मे स्मरण करने की विधियाँ हैं तथा प्राय वाचिक अधिगम के लिए इन विधियो का प्रयोग किया जाता है।

अधिगम के वक्र
(Learning Curves)

सीखने की मात्रा तथा समय (अथवा प्रयास) के परस्पर सम्बन्ध को चित्राकित करने पर जो वक्र रेखा प्राप्त होती है उसे अधिगम वक्र रेखा कहा जाता है । अधिगम वक्र से समय के साथ सीखने मे होने वाली सफलता का ज्ञान होता है । अधिगम वक्र चार प्रकार के हो सकते है— (1) सरल रेखीय वक्र (Straight Lıne Curve), (2) उन्नतोदर वक्र (Convex Curve), (3) नतोदर वक्र (Cocave Curve) तथा (4) मिश्रित वक्र (Combintion type Curve) ।

सरल रेखीय वक्र को समानोपलब्धि वक्र (Curve of Equal Returns) भी कहा जाता है । जब समय के साथ-साथ अधिगम की मात्रा मे सामान वृद्धि होती है तब सरल रेखीय वक्र प्राप्त होता है । सरल रेखीय वक्र प्राय· बहुत कम परिस्थितियों मे पाया जाता है ।

उन्नतोदर वक्र मे समय के साथ अधिगम की मात्रा धीरे-धीरे कम होने लगती है तथा अन्त मे वक्र एक क्षैतिज रेखा अथवा पठार के रूप मे हो जाता है जो इगित करता है कि अब अभ्यास करने पर भी सीखने की मात्रा मे उन्नति सम्भव नही है । उन्नतोदर वक्र को घटनशील उपलब्धि वक्र (Curve of Decreasıng Returns) अथवा नकारात्मक गति वक्र (Negatıve Accelerated Curve) भी कहा जाता है । प्राय अधिगम के उन्नतोदर वक्र ही प्राप्त होते हैं ।

नतोदर वक्र मे समय अथवा प्रयासो के साथ अधिगम की मात्रा मे अधिक वृद्धि होती जाती है । इस प्रकार के वक्र को वर्द्धनशील उपलब्धि वक्र (Curve of Increasing Returns) अथवा सकारात्मक गति वक्र (Positive Accelerated Curve) भी कहा जाता है ।

मिश्रित वक्र वास्तव मे नतोदर तथा उन्नतोदर वक्र का मिलाजुला रूप होता है । इसे एस प्रकार का वक्र (S-Shaped Curve) भी कहते है । इस प्रकार के अधिगम वक्रों मे अधिगम प्रयासो के प्रारम्भ तथा अन्त मे प्रति प्रयास अधिगम की मात्रा कम होती है, जबकि बीच के प्रयासो में प्रति प्रयास अधिगम की मात्रा अधिक होती है । इन चारों प्रकार के वक्रो का उदाहरण चित्र 29 मे प्रस्तुत किया गया है ।
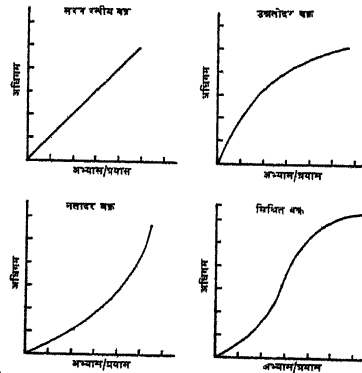
चित्र 29 चार प्रकार के अधिगम वक्र

अधिगम वक्र का प्रारम्भिक भाग अधिगम की गति के मद अथवा तीव्र होने का सूचक होता है। जब अधिगमकर्ता अधिगम के लिए पहले से तत्पर होता है तब अधिगम मे प्रारम्भिक तेजी होती है तथा अधिगम वक्र प्रारम्भ से ही उठता हुआ प्रतीत होता है। इसके विपरीत जब अधिगमकर्ता अधिगम के लिए तत्पर नही होता अथवा अधिगम करने मे उसे कठिनाई का अनुभव होता है तब अधिगम वक्र का प्रारम्भिक भाग कम उठता हुआ प्रतीत होता है। अधिगम वक्र का मध्य भाग मध्यवर्ती अधिगम प्रक्रिया की सफलता की मात्रा को बताता है। अधिगम वक्र का अतिम भाग सीखने की अतिम अवस्था मे अधिगम सफलता का प्रदर्शन करता है। अधिगम वक्र के उतार-चढ़ाव (Fall and Rise) के अनेक कारण हो सकते है। सीखने को प्रभावित करने वाले कारको जैसे उत्तेजना (Excitement), तत्परता (Readiness), प्रेरणा (Motivation), सतुलन (Adaptation), थकान (Fatigue), अभ्यास (Practice), प्रोत्साहन (Incentive) आदि के फलस्वरूप प्रति अभ्यास अधिगम की मात्रा कम और अधिक होती रहती है तथा जिसके परिणामस्वरूप अधिगम वक्रों से कभी उतार व कभी चढाव आता रहता है।

अधिगम के पठार
(Plateaus of Learning)

अधिगम वक्रो मे कभी-कभी देखा जाता है कि अधिगम वक्र का कुछ भाग अत्यत कम उन्नति को प्रदर्शित करता है। नगण्य उन्नति को प्रदर्शित करने वाले इस प्रकार के भाग अधिगम के पठार (Plateaus of Learning) कहलाते हैं। वास्तव मे सीखने की प्रक्रिया के दौरान एक ऐसी अवस्था आती है जिसमे सीखने मे या तो कोई प्रगति नही होती अथवा नगण्य प्रगति होती है। अधिगमकर्ता को कितना ही अभ्यास क्यो न कराया जाये, परतु उसके सीखने मे कोई प्रगति नही होती है। यदि अधिगम की मात्रा को उर्ध्वाधर अक्ष (Y-Axis) पर तथा समय या अभ्यास को क्षैतिज अक्ष (X-Axis) पर प्रदर्शित किया जाये तो अधिगम वक्र मे X अक्ष के लगभग समानान्तर वाला भाग अधिगम के पठार को इगित करता है। अधिगम पठार बनने के अनेक कारण हो सकते है। जब अधिगमकर्ता मे ध्यान, रूचिं, उत्साह तथा प्रोत्साहन की कमी होती है तब बहुधा अधिगम वक्र मे पठार बन जाते है। वातावरणीय व्यवधान, सवेगात्मक तनाव, थकान, मनोशारीरिक सीमा, अधिगम विधि, पाठ्यसामग्री आदि के कारण भी अधिगम के पठार बन सकते है। बालको की रूचि, प्रेरणा अथवा उत्साह मे कमी के कारण बनने वाले पठारो को उनकी रूचि, प्रेरणा तथा उत्साह को बढ़ा कर दूर किया जा सकता है। दूषित अधिगम विधियाँ अथवा बुरी आदतो के कारण बनने वाले पठारो को भी आवश्यक ध्यान देकर दूर किया जा सकता है। अध्ययन सामग्री की जटिलता के कारण बनने वाले पठारों को भी पाठ्यसामग्री का उचित ढग से सगठन करके रोका जा सकता है। वातावरण सम्बधी कारको जैसे शोरगुल, प्रकाश, तापमान आदि के कारण अथवा नशीले पदार्थो के सेवन के कारण बनने वाले अधिगम पठारो का निराकरण अत्यत सरलतापूर्वक किया जा सकता है। मनोशारीरिक सीमाओ के कारण बनने वाले पठारो को दूर करना कठिन होता है। मनोशारीरिक सीमाओ से तात्पर्य व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं की उच्चतम स्थिति मे है। कोई भी व्यक्ति अपनी शारीरिक तथा मानसिक सीमाओं से अधिक नही सीख सकता है। अत जब तक व्यक्ति की

मनोशारीरिक सीमाओ मे वृद्धि न की जाने तब तक उसके मनोशारीरिक सीमाओ के द्वारा बनने वाले पठारो को दूर नही किया जा सकता है। अध्यापको तथा अभिभावको को स्मरण रखना चाहिए कि सीखने के पठारो को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। अत उन्हे सीखने के पठारो पर ध्यान देना चाहिए तथा उन्हे दूर करने के प्रयास करने चाहिए।
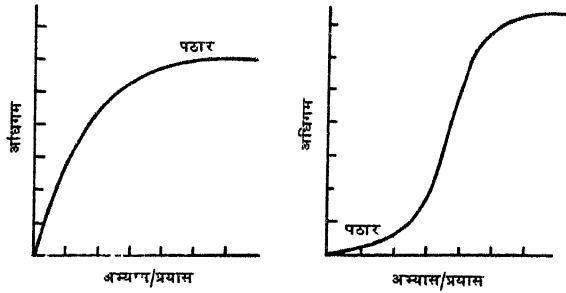
चित्र 30 अधिगम वक्र मे अधिगम पठार

अधिगम सिद्धान्त
(Learning Theories)

अधिगम के अनेक सिद्धान्त है। एक ही सिद्धान्त से सभी मनोवैज्ञानिक सहमत नही हो सके। अत उन्होंने व्यवहार के अध्ययन की अपनी विधि के अनुरूप अलग-अलग सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया। विभिन्न सिद्धान्त अलग-अलग मान्यताओ के ऊपर आधारित है तथा उन्ही के अनुरूप सीखने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते है। सीखने के प्रमुख सिद्धान्त अग्रांकित हैं—

1. अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त (Conditioned Response Theory)
2. उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्त (Stimulus-Response Theory)
3. पुनर्बलन सिद्धान्त (Reinforcement Theory)
4. गेस्टाल्ट सिद्धान्त (Gestalt Theory)

अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त
(Conditioned Response Theory)

अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त के प्रतिपादक इवान पी० पावलव (Ivan P. Pavlav) नामक रूसी मनोवैज्ञानिक थे। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति या जीव कुछ जन्मजात प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ (Tendencies), प्रतिक्रियायें (Reactions) या अनुक्रियाये (Responses) रखता है तथा ये प्रवृत्तियाँ, प्रतिक्रियाये या अनुक्रियाये किसी उपयुक्त प्राकृतिक उद्दीपन (Natural Stimulus) के उपस्थित होने पर प्रकट

होती है। जैसे भूखा होने पर भोजन के सामने आने पर मुँह मे लार का आना या तेज शोर से डर जाना प्राकृतिक या स्वाभाविक अनुक्रियाये है जिनका उपयुक्त उद्दीपक (भोजन या शोर) के सामने होने पर व्यक्ति के द्वारा व्यक्त करना पूर्णत स्वाभाविक है। जब किसी अन्य अप्राकृतिक उद्दीपक (Unnatural Stimulus) को किसी प्राकृतिक उद्दीपक (Natural Stimulus) के साथ बार-बार प्रस्तुत किया जाता है तो अप्राकृतिक उद्दीपक का प्राकृतिक उद्दीपक की प्राकृतिक अनुक्रिया के साथ सम्बन्ध जुड जाता है तथा बाद मे केवल अप्राकृतिक उद्दीपक के प्रस्तुत होने पर व्यक्ति या जीव प्राकृतिक उद्दीपक की प्राकृतिक अनुक्रिया, जिसे अनुकूलित अनुक्रिया कहते है, देने लगता है। तब कहा जाता है कि व्यक्ति या जीव अप्राकृतिक उद्दीपक से अनुकूलित हो गया है।

पावलव का प्रयोग (Pavlav's Experiment)—अनुकूलित अनुक्रिया के सिद्धान्त को भलीभाँति समझने के लिए इस सिद्धान्त के प्रतिपादक इवान पी० पावलव (Ivan P. Pavlav) के प्रयोगो को समझना होगा। पावलव रुसी मनोवैज्ञानिक था तथा उसने कुत्तो के ऊपर अनेक प्रयोग किये थे। अपने प्रयोगो के दौरान उसने पाया कि कुत्तो के लिए खाना लाने वाले नौकरो की पदचाप सुनकर कुत्तो के मुँह मे लार (Saliva) आने लगती थी। खाने से पूर्व ही लार आने की प्रक्रिया ने ही सीखने के अनुकूलित-अनुक्रिया सिद्धान्त को जन्म दिया। पावलव ने अपने प्रयोगो के आधार पर अनुक्रियाओ को दो भागो मे विभाजित किया—(i) प्राकृतिक अनुक्रियाये, जो जन्मजात (Innate) व जैवकीय (Physiological Reflexes) होती है, तथा (ii) अप्राकृतिक अनुक्रियाये, जो अर्जित (Acquired) व मनोवैज्ञानिक (Psychic Reflexes) होती है। पावलव का प्रयोग मुँह मे लार आने से सम्बन्धित है इसलिए लार आने के सबध मे कुछ बातें स्पष्ट होना आवश्यक है। मुँह मे भोजन रखने पर ही लार ग्रथियाँ मुँह मे लार छोडती है तथा यह जन्मजात, जैवकीय तथा हमेशा होने वाली प्रतिक्रिया है। इसलिए भोजन को प्राकृतिक या अ-अनुकूलित उद्दीपक (Unconditioned Stimulus) तथा लार आने को प्राकृतिक या अ-अनुकूलित अनुक्रिया (Unconditioned Response) कहा जाता है। भोजन अअनुकूलित उद्दीपक (UCS) इसलिए है क्योकि इसकी अनुक्रिया किसी
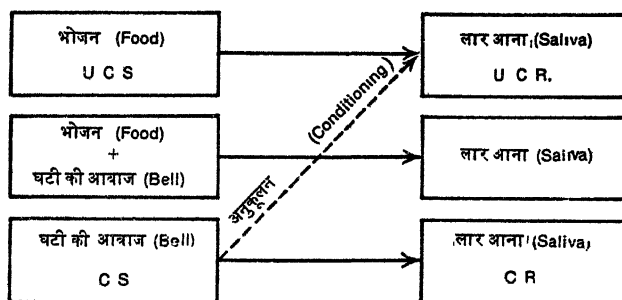
चित्र 31 पावलव का प्रयोग (Pavlov's Experiment)

अन्य बात से सबधित नही है तथा लार का आना अअनुकूलित अनुक्रिया (UCR) इसलिए कहा जाता है क्योकि भोजन की उपस्थिति मे यह प्राकृतिक, जन्मजात व स्वाभाविक क्रिया है जिसके लिए किसी विशेष दशा की आवश्यकता नही है। पावलव ने अपने प्रयोग के दौरान कुत्तो को भोजन देते समय घटी की आवाज करनी प्रारम्भ की। अनेक बार ऐसा करने के बाद उसने केवल घटी की आवाज की तथा खाना नही दिया। ऐसा करने पर उसने पाया कि केवल घटी की आवाज सुनकर ही कुत्तो के मुँह मे लार आ गई। इससे पावलव ने निष्कर्ष निकाला कि कुत्तो ने घटी की आवाज को लार के आने से सबधित या अनुकूलित कर लिया है। तब घटी की आवाज को अनुकूलित उद्दीपक तथा लार को अनकूलित अनुक्रिया कहेगे। इस प्रयोग को निम्न ढग से समझा जा सकता है।
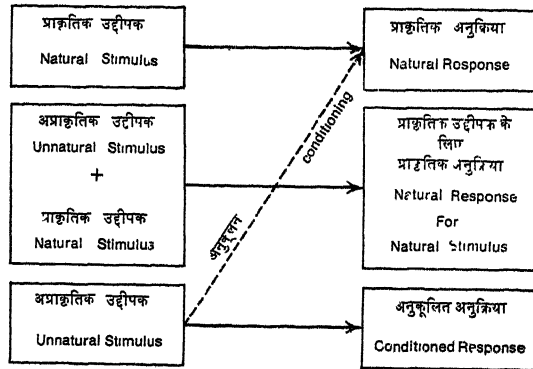
चित्र 32 अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धान्त

उपरोक्त प्रयोग से स्पष्ट है जब अप्राकृतिक उद्दीपक (Neutral Stimulus) को किसी प्राकृतिक उद्दीपक (Natural Stimulus) के साथ बार-बार प्रस्तुत किया जाता है, तो अप्राकृतिक उद्दीपक मे प्राकृतिक उद्दीपक के गुण आ जाते है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि केवल अप्राकृतिक उद्दीपक के प्रस्तुत करने पर ही जीव प्राकृतिक उद्दीपक की अनुक्रिया देने लगता है।

अनुकूलन की दशाये (Conditions for Conditioning)—अधिगम के अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार अनुकूलन के लिए अग्रांकित चार दशाये महत्वपूर्ण है—

(1) अप्राकृतिक उद्दीपक, प्राकृतिक उद्दीपक व अनुक्रिया का एक निश्चित क्रम होना चाहिए। पहले अप्राकृतिक उद्दीपक तदुपरान्त प्राकृतिक उद्दीपक प्रस्तुत करना चाहिए तथा इसके उपरान्त अनुक्रिया होनी चाहिए। अप्राकृतिक उद्दीपक के लगभग

उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त
(Stimulus-Response Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ई० एल० थॉर्नडाइक (E. L. Thorhdike) ने किया था । उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार अधिगम की प्रक्रिया के दौरान उद्दीपक (Stimulus) तथा अनुक्रिया (Response) के बीच बधन (Bonds) अथवा सबध (connections) बनते है जिन्हे उद्दीपन-अनुक्रिया बधन (S-R Bonds) कहते है। इन बधनो के बनने की प्रक्रिया अनेक बातो पर निर्भर करती है । परिणामो की सतुष्टि से ये बधन सुदृढ होते है तथा विषाद से कमजोर होते है । जब किसी विशेष उद्दीपक तथा विशेष अनुक्रिया के बीच बधन बन जाता है तब उस विशेष उद्दीपक के प्रस्तुत होने पर जीव उससे सबधित विशेष अनुक्रिया करता है । इस प्रकार से उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) का बनना ही सीखना है । इसलिये इस सिद्धान्त को सम्बन्धवाद (Connectionism) का सिद्धान्त या बधन (Bond) सिद्धान्त के नाम से भी पुकारा जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना 'प्रयास व त्रुटि' का परिणाम है । दूसरे शब्दो मे यह सिद्धान्त सीखने को प्रयास व त्रुटि अधिगम (Trial and Error Learning) के रुप मे स्पष्ट करता है ।

थॉर्नडाइक का प्रयोग (Thorndike's Experiment)—उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त को समझने के लिए इस सिद्धान्त के प्रतिपादन ई० एल० थॉर्नडाइक (E. L Thorndike) के द्वारा किये गये प्रयोगो को समझाना उचित ही होगा । थॉर्नडाईक एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक था तथा इसने बिल्लियो के ऊपर प्रयोग करने के उपरान्त सीखने का उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त (S-R Theory) तथा सीखने के नियमो (Learning Laws) का प्रतिपादन किया था । थॉर्नडाइक का मुख्य प्रयोग एक भूखी बिल्ली के ऊपर था । उसने एक भूखी बिल्ली को एक ऐसे पिंजरे (Puzzle Box) मे बन्द कर दिया जिसका दरवाजा एक खटके को दबाने से खुलता था । पिंजरे के बाहर एक तश्तरी मे खाना इस प्रकार से रख दिया गया कि बिल्ली खाने को देख व सूँघ सके तथा खाना प्राप्त करने लिए पिजरे से बाहर आने के लिए प्रयास करे । बिल्ली ने पिंजरे मे इधर से उधर दौड लगाई व तरह-तरह की उछलकूद की तथा अन्त मे वह अनजाने मे ही खटके को दबाने मे सफल हो गई, जिससे पिजरे का दरवाजा खुल गया । बिल्ली ने बाहर आकर भोजन खा लिया । थार्नडाइक ने शीघ्रता से दूसरे प्रयास के लिए बिल्ली को पुन पिजरे मे बद कर दिया । बिल्ली ने पुन उछलकुद की तथा जल्दी ही खटके को दबाकर पिजरे का दरवाजा खोलने मे सफल हो गई । थॉर्नडाइक ने पुन बिल्ली को पिजरे मे बद कर दिया । ऐसा अनको बार किया गया । थॉर्नडाइक ने देखा कि कुछ प्रयासों के बाद बिल्ली शीघ्रता से खटके को दबाकर दरवाजा खोलने मे निपुण हो गई । उसने बिल्ली के द्वारा पिजरा खोलना सीखने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए निष्कर्ष निकाला कि उद्दीपक व वाछित अनुक्रिया के बीच एक बधन (Bond) बन गया है । थॉर्नडाइक ने बिल्ली के द्वारा सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया तथा सीखने के लिए दो महत्वपूर्ण बातो पर जोर दिया— (i) बिल्ली भूखी होनी चाहिए अर्थात् सीखने के लिए प्रेरणा का होना आवश्यक है तथा (ii) बिल्ली की भूख को सतुष्ट करने के लिए भोजन का होना जरुरी है जो पुनर्वलन का कार्य कर सके । दूसरे शब्दो, मे सीखने के लिए पुनर्वलन केन्द्रिय

तत्व हैं तथा अनुक्रिया का परिणाम उद्दीपक-अनुक्रिया बन्धन (S-R Bond) को सुदृढ कर सकता है। क्योकि इस सिद्धान्त के अनुसार जीव प्रयास व त्रुटि करके सीखता है इसलिए इसे 'प्रयास व त्रुटि का सिद्धान्त भी कहते हैं।
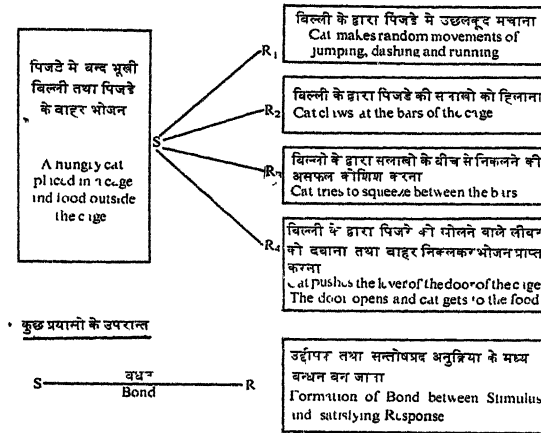
चित्र—34

(थॉर्नडाइक का अधिगम सम्बधी प्रयोग)

अपने अधिगम सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करने व व्यापक बनाने की दृष्टि से तथा अपने प्रयोगो के आधार पर थॉर्नडाइक ने सीखने के निम्नलिखित तीन नियमो का भी प्रतिपादन किया है।

1 **अभ्यास का नियम** (Law of Exercise)—थॉर्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित अभ्यास के नियम के अनुसार "अन्य बातो के समान होने पर अभ्यास से उद्दीपक व अनुक्रिया के बीच का बन्धन (S-R Bond) सुदृढ होता है। इसके विपरीत अभ्यास अथवा पुनरावृत्ति की कमी (Lack of Exercise) इस बधन को शिथिल (Week) करती है।" सीखने का यह नियम मनोवैज्ञानिको के द्वारा लगभग सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है तथा प्राणियो के दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापो मे अभ्यास के इस नियम को स्पष्ट रुप से परिलक्षित होते देखा जा सकता है। गणित, विज्ञान, भाषा आदि विषयो के पाठो को याद करते समय यदि छात्रगण पाठो को बार-बार दोहराते है तो उन्हे वे पाठ याद हो जाते है, परतु यदि याद किए गए पाठो को समय-समय पर पुन दोहराया नही जाता है तो छात्र पाठो को विस्मृत करने लगते है। पाठ की बार-बार आवृत्ति से उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) दृढ होते जाते है, जिसके परिणामस्वरुप

सीखना सरल, स्थायी तथा सफल हो जाता है। इसके विपरीत दीर्घकाल तक पाठ के दोहराने का अभाव उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) को शिथिल कर देता है जिसके फलस्वरुप पाठ विस्मृत होने लगता है। रटन्त स्मरण, चित्रकारी, सगीत, क्रिकेट, हाकी, टकण, साईकिल चलान, तथा पशु-पक्षी को प्रशिक्षण देने जैसी अनेकानेक क्रियाओ मे अभ्यास के सीखने का नियम स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है।

शिक्षा के क्षेत्र मे सीखने के इस नियम का बहुत ही महत्व है। अध्यापक तथा अभिभावकगण इस नियम का उपयोग बालको को अधिगम के लिए प्रेरित करने के लिए कर सकते है। बालको से कहा जा सकता है कि पाठ्यवस्तु को बार-बार दोहराने से सीखने का कार्य सरल, स्थायी तथा अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। इसके साथ-साथ दीर्घकाल तक अधिगम को स्थायी रुप देने के लिए बालको को याद किये गये पाठो को समय-समय पर दोहराने का निर्देश दिया जा सकता है। शिक्षा सस्थाओ मे प्रशासकवर्ग तथा अध्यापकगण ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते है कि बालको को दोहराने या अभ्यास के अधिकाधिक अवसर मिल सके। स्पष्टत सीखने के इस नियम का शैक्षिक निहितार्थ अत्यत महत्वपूर्ण तथा व्यावहारिक दृष्टि से अत्यत उपयोगी है।

पाठको के लिए यह जानना भी आवश्यक होगा कि कुछ विद्वान अभ्यास के इस नियम को दो उपनियमो—उपयोग का नियम (Law of Use) तथा अनुपयोग का नियम (Law of Disuse) मे विभक्त करके प्रस्तुत करते हैं।

2. **प्रभाव का नियम** (Law of Effect)—थॉर्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित प्रभाव का नियम कहता है कि "जब किसी उद्दीपक तथा अनुक्रिया के मध्य कोई ऐसा परिवर्तनीय बधन (Modifiable S-R Bond) बनता है जिसके साथ अथवा उपरान्त कोई सतोषप्रद परिस्थिति उत्पन्न होती हो, तब अन्य बातों के समान रहने पर यह उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) सुदृढ होता है जबकि उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S. R. Bond) के साथ अथवा उपरान्त असन्तोषप्रद परिस्थिति उत्पन्न होने पर यह बधन (S-R Bond) शिथिल हो जाता है।" सीखने के इस नियम से स्पष्ट है कि जिस अनुक्रिया को करने से अथवा करने के उपरान्त प्राणी को सुखद अनुभूति होती है उस अनुक्रिया तथा सबधित उद्दीपन के मध्य का बधन दृढ़ होता है अर्थात् तब प्राणी उद्दीपक के प्रस्तुत करने पर अनुक्रिया को प्रस्तुत करना सरलता व शीघ्रता से सीख जाता है। इसके विपरीत दुखद अनुभूति प्रदान करने वाली अनुक्रियाओ को प्राणी कठिनता से सीख पाता है।

शैक्षिक दृष्टि से सीखने के प्रभाव के नियम का भी अत्यत महत्व है। यह नियम बालको के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सहज बनाने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है। माता-पिता तथा अध्यापको को बालकों के सम्मुख सीखने की परिस्थितियाँ इस प्रकार से प्रस्तुत करनी चाहिए कि बालक सीखने मे तथा सीखने के उपरान्त सुख व सतोष की अनुभूति करे। अवाछनीय अथवा बुरी बातो को विस्मृत कराने के लिए बालको के द्वारा उनको करने पर दुखद अनुभूति देने वाली परिस्थतियो को उत्पन्न करना चाहिए। पुरस्कार तथा दड की व्यवस्था इस नियम के व्यावहारिक प्रयोग का एक अच्छा उदाहरण है। पुरस्कार से सतोष की प्राप्ति होती है जिसकी वजह से व्यक्ति बार-बार ऐसे कार्य करना चाहता है कि वह पुरस्कृत हो सके। दण्ड से असतोष मिलता है। यही

कारण है कि व्यक्ति दण्डनीय कार्यो से बचना चाहता है। अत ऐसी परिस्थितियो को उत्पन्न करना चाहिए कि व्यक्ति वाछनीय कार्यो को सीखने पर सतोष की अनुभूति कर सके तथा अवाछनीय कार्यो को असन्तोष के भय से सीखने से वचित हो सके।

3 **तत्परता का नियम** (Law of Readiness)—तत्परता के नियम को तैयारी के नियम के नाम से भी पुकारा जाता है। थॉर्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित तत्परता का नियम स्नायुतत्र तथा उसकी सवहन इकाईयो (Nervous System and its Conductive Units) की शारीरिक रचना क्रियाप्रणाली (Physiological Functioning) से सबधित है। थॉर्नडाइक के अनुसार जब कोई उद्दीपक-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) बनता है तब न्यूरॉन तथा इनके सम्पर्क अगो (Neurons and their Synapses) के विशिष्ट समुच्चय वाली एक सवहन इकाई (Conduction Unit)का निर्माण होता है। इन सवहन इकाइयो मे परिस्थिति के अनुरूप कार्य करने की तत्परता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। जब कोई सवहन इकाई सवहन के लिए तत्पर होती है, तब उसके लिए ऐसा करना सतोषप्रद होता है, जबकि जो सवहन इकाई सवहन के लिए तत्पर नही होती है उसके लिए ऐसा करना कष्टप्रद होता है। स्पष्ट है कि सवहन इकाई के तत्परक होने पर उद्दीपन-अनुक्रिया बधन (S-R Bond) का बनना कष्टप्रद होगा। यही कारण है कि प्राणी जब सीखने के लिए तत्पर होता है, तब सीखने की क्रिया उसके लिए सतोषप्रद होती है तथा वह सरलता, शीघ्रता व स्थायी रुप से सीख लेता है। इसके ठीक विपरीत जब प्राणी सीखने के लिए तत्पर या इच्छुक नही होता है तब उसके लिए सीखना कष्टप्रद होता है तथा वह अनेक प्रयासो के वावजूद भी ठीक ढग से सीखने मे प्राय असफल रहता है।

सीखने का यह नियम भी शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण है। इस नियम का शैक्षिक निहितार्थ यह है कि बालको को शिक्षा प्रदान करने से पूर्व ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए कि बालक मे नवीन ज्ञान को अर्जित करने के लिए रुचि, जिज्ञासा व इच्छा जाग्रत हो सके तथा वे सीखने के लिए तत्पर हो जाये। 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' का शिक्षण सूत्र अथवा 'पूर्व पाठ से कुछ प्रश्न पूछकर नवीन पाठ को प्रारम्भ करने की परम्परा' सीखने के तत्परता के नियम के व्यावहारिक उपयोग को स्पष्ट रूप से इगित करते है।

उपरोक्त वर्णित सीखने के तीनो नियम परस्पर पूर्णरुपेण भिन्न-भिन्न नही है। वरन् ये तीनो नियम एक दूसरे से घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित तथा परस्पर आधारित है। सीखने के इन तीन नियमो के अतिरिक्त सीखने के निम्नाकित पाँच गौण नियमो की भी चर्चा मिलती है—

1. वहु-अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple-Response)
2. मनोवृत्ति का नियम (Law of Mental Set)
3. आशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity)
4. आत्मीकरण का नियम (Law of Assimilation)
5. साहचर्यात्मक परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)—उद्दीपक-अनुक्रिया सबध

का सिद्धान्त शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त का अनुसरण करके तथा सीखने के नियमो पर ध्यान देकर अध्यापक छात्रो को विभिन्न प्रकरणो को सरलता से सिखा सकता है। इस सिद्धान्त के प्रमुख निहितार्थ निम्नवत् है—

1. मद बुद्धि बालको को पढाने मे इस सिद्धान्त का प्रभावशाली ढग से उपयोग किया जा सकता हे।

2. यह सिद्धान्त बालको मे जागरूकता, धैर्य व सतत् परिश्रम जैसे गुणो को विकसित करने मे सहायक है।

3 यह सिद्धान्त गलती से प्राप्त अनुभवो का लाभ उठाने के महत्व पर बल देता है।

4. यह सिद्धान्त सीखने सीखाने से पहले सीखने वाले को मानसिक रूप से तैयार करने की आवश्यकता बताना है।

5. यह सिद्धान्त सीखे गए ज्ञान का अभ्यास करने पर बल देता है।

6. यह सिद्धान्त गम्भीर चिन्तन वाले विषयो जैसे गणित, विज्ञान, दर्शन, समस्या समाधान आदि मे उपयोगी है।

7. यह सिद्धान्त प्रोत्साहन व प्रेरणा की प्रभावशीलता को स्पष्ट करता है।

8 यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि सीखना प्रत्यक्ष, गत्यात्मक, ज्ञानात्मक व भावात्मक अगो का एकीकृत पुज है।

पुनर्बलन सिद्धान्त
(Reinforcement Theory)

सीखने के पुनर्बलन सिद्धान्त का प्रतिपादन क्लार्क एल० हल (Clark L. Hull) ने किया था। इस सिद्धान्त को गणितीय सिद्धान्त (Mathematical Theory), परिकल्पित निगमन सिद्धान्त (Hypothetical Deductive Theory), आवश्यकता अवकलन सिद्धान्त (Need Reduction Theory), जैवकीय अनुकूलन सिद्धान्त (Biological Adaptation Theory) तथा उद्देश्य प्रवणता सिद्धान्त (Goal Gradient Theory) के नाम से भी जाना जाता है। हल का सिद्धान्त व्यवहार के सम्बन्ध मे कुछ स्वयसिद्ध मान्यताओं (Postulates) पर आधारित है। उसने व्यवहार का विस्तृत अध्ययन करके सोलह स्वयसिद्ध मान्यताओ का प्रतिपादन किया। ये मान्यताये जीव की जैविक सरचना पर आधारित है। हल के अनुसार जीव वास्तव मे एक स्वसचालित समस्या समाधान प्रणाली (Automatic Problem-Solving System) है। उसने पाया कि अधिकतर जीव, विशेषकर पशु व पक्षी अपनी जैवकीय समस्याओ (Biological Problems) के समाधान मे लगे रहते है। उदाहरण के लिए प्रत्येक जीव को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। यदि उसे भोजन मिल जाता है तो उसकी तत्कालीन जैवकीय समस्या हल हो जाती है। स्पष्ट है कि भोजन उसकी आवश्यकता को कम करेगा तथा उस जीव के लिए पुनर्बलन (Reinforcement) का कार्य करेगा। दूसरे शब्दो मे जीव की वह अनुक्रिया जिससे उसे भोजन प्राप्त हुआ था, सीखने मे परिणित हो जायेगी। इस प्रकार के अवलोकन के आधार पर हल ने कहा कि जीव की आवश्यकताऐ उसे व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है तथा जो व्यवहार जीव की आवश्यकताऐ को कम करता है जीव उस व्यवहार

को सीख लेता है । प्रत्येक प्रकार के व्यवहार का आधार जीव की जैवकीय आवश्यकताये होती है । छोटी आयु के बच्चो तथा पशु-पक्षियो की जैवकीय आवश्यकताये अत्यधिक प्रवल (Dominating) होती है । मानव के द्वारा किये जाने वाले जटिल व्यवहार का मूल कारण भी जैवकीय आवश्यकताये होती है । कोई जैवकीय आवश्यकता वास्तव मे जीव की वह स्थिति है जिसमे वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक जैवकीय परिस्थितियो को पुन प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस करता है । जब कोई आवश्यकता जागृत होती है तो जीव उस आवश्यकता को कम करने या समाप्त करने के लिए क्रिया करता है ।

हल का सीखने का सिद्धान्त वास्तव मे S—R अनुकूलन सिद्धान्त है । परतु उसने पुनर्वलन (Reinforcement) को विशेष महत्व दिया । उसके अनुसार जैवकीय आवश्यकता की स्थिति मे उत्पन्न चालक (Drive) इस बात का द्योतक है कि जीव के अस्तित्व के लिए आवश्यक दशाये ठीक ढग से नही है । जब इस प्रकार की कोई आवश्यकता अपने चालक उद्दीपक (Drive Stimulus) के साथ उत्पन्न हो जाती है तो जीव सक्रिय होता है तथा जब कोई विशेष किया उस आवश्यकता की पूर्ति कर देती है तो जीव के जैवकीय अनुकूलन के रुप मे उस क्रिया के घटित होने की प्रवृत्ति बढ जाती है । इस प्रकार से हल ने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक प्रकार के सीखने को चाहे वह अनुकूलित अनुक्रिया की तरह का हो या उद्दीपन-अनुक्रिया सवध निर्माण की तरह का हो, जैवकीय अनुकूलन के कारण हुए पुनर्बलन की प्रक्रिया के रुप मे स्पष्ट किया जा सकता है ।

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)—हल ने सीखने की प्रक्रिया की एक नये ढग से विवेचना प्रस्तुत की थी । उसने सीखने को जीव की आवश्यकताओ से जोडा तथा सीखने मे पुनर्बलन के महत्व को स्थापित किया । हल के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त से शैक्षिक परिस्थितियो के सुधार करने के कार्य मे लाभ उठाया जा सकता है । इस सिद्धान्त के कुछ प्रमुख शैक्षिक निहितार्थ निम्नाकित है—

1. यह सिद्धान्त आवश्यकताओ पर अधिक बल देता है । अत सीखना तब ही सार्थक हो सकता है, जबकि यह छात्रो की आवश्यकताओ की पूर्ति करे ।
2. छात्रो की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर ही विभिन्न कक्षाओ का पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए ।
3. विद्यालयो मे पुनर्बलन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ।
4. यह सिद्धान्त बालको के सीखने मे प्रेरणा पर अत्याधिक बल देता है ।

गेस्टाल्ट सिद्धान्त
(Gestalt Theory)

सीखने के गेस्टाल्ट सिद्धान्त को पूर्णाकार सिद्धान्त, समग्र सिद्धान्त, पूर्णाकृति सिद्धान्त, अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त (Insight Theory) आदि नामो से भी पुकारा जाता है । सीखने के गेस्टाल्ट सिद्धान्त का उद्भव बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जर्मनी मे हुआ था । इस सिद्धान्त के प्रतिपादको मे चार जर्मन मनोवैज्ञानिक—मैक्स वरथीमर (Max Wertheimer) , वोल्फगैग कोहलर (Wolfgang Kohler), कुर्ट कोफका (Kurt Koffka) तथा कुर्ट लेविन (Kurt Lewin) प्रमुख थे । ये चारो मनोवैज्ञानिक बाद मे अमेरिका चले गए थे । गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का शब्द है जिसका तात्पर्य सम्पूर्ण

अथवा पूर्णाकृति सरचना से है। गेस्टाल्ट एक ऐसा समग्र है जिसकी विशेषता का पता उसके सम्पूर्ण गुणो से चलता है न कि उसके अवयवो के गुणो से। गेस्टाल्टवादियो के अनुसार जीव सम्पूर्ण परिस्थिति को एक समग्र रुप मे देखता है। जब कोई समस्या आती है तब जीव उद्दीपक को अनुक्रिया से सम्बन्धित करके नही सीखता है वरन् वह सम्पूर्ण परिस्थिति को देखकर समस्या का समाधान खोजता है। व्यक्ति समस्या का समाधान अपनी अन्तर्दृष्टि (Insight) से खोजता है। दूसरे शब्दो मे, सीखने का केन्द्रीय बिन्दु अन्तर्दृष्टि है। अन्तर्दृष्टि से तात्पर्य किसी परिस्थिति मे विभिन्न पक्षो के बीच सम्बन्धो को देखने अथवा परिस्थिति के केन्द्रीय भाव को समझ लेने से है। अन्तर्दृष्टि से व्यक्ति यह समझ जाता है कि किस प्रकार से कार्य करके वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है। अन्तर्दृष्टि अधिकतर अचानक आती है। गेस्टाल्टवादियो के अनुसार नवीन अन्तर्दृष्टि की क्षमता विकसित करने अथवा पुरानी अन्तर्दृष्टि को सुधारने की प्रक्रिया को सीखना कहा जाता है। इसके अतर्गत व्यक्ति सम्पूर्ण परिस्थिति (Gestalt) के प्रत्यक्षीकरण के प्रति अनुक्रिया करता है अत इस सिद्धान्त को गेस्टाल्ट सिद्धान्त कहा जाता है। इसके अतिरिक्त क्योकि व्यक्ति अपनी अन्तर्दृष्टि से सीखता है इसलिए इस सिद्धान्त को अन्तर्दृष्टि के नाम से भी पुकारा जाता है। कोहलर के द्वारा किये गये प्रयोग से इस सिद्धान्त को अच्छी तरह से समझा जा सकेगा।

कोहलर का प्रयोग (Kohlar's Experiment)—कोहलर के द्वारा किया गया
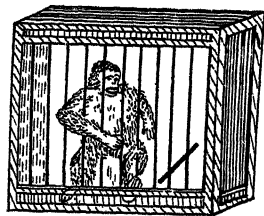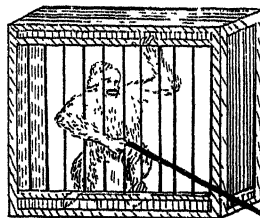
चित्र 35 कोहलर का प्रयोग (Kohlar's Experiment)

यह प्रयोग सुल्तान नाम के चिम्पाँजी पर था। कोहलर ने सुल्तान को एक पिजरे मे बद कर दिया तथा पिजरे के अदर एक छोटी छडी डाल दी। पिजरे के बाहर एक बडी छडी व एक केला इस तरह से रखा कि सुल्तान छोटी छडी से बडी को तो खीच सके किन्तु केले को न खीच सके। बडी छडी से केले को पिजरे मे खीचा जा सकता था। सुल्तान को जब भूख लगी तो उसने केला खाने के लिए पिंजरे से बाहर आना चाहा। असफल होने पर हाथ बाहर निकालकर केला उठाना चाहा, इसमे भी असफल होने पर उसने पिजरे मे उछलकूद करना प्रारम्भ कर दिया। तब उसने छोटी छडी की सहायता से केले से अपने पास खीचना चाहा। इस बार भी असफल होने पर वह पिंजरे मे बैठ गया। अचानक वह उठा तथा उसमे छोटी छडी से बडी छडी को अपने पास खीच लिया तथा फिर बडी छडी से केले को अपने पास खीच कर केला प्राप्त कर लिया।

कोहलर ने इस प्रक्रिया की विवेचना करते हुए कहा कि छडी के सम्बन्ध मे सुल्तान के पूर्व अनुभवो तथा छोटी छडी, बडी छडी व केले को रखने के ढग ने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि सुल्तान को छडी व केले के बीच सबध स्थापित करने के लिए अन्तर्दृष्टि मिल गई। कोहलर ने कहा कि सीखना वास्तव मे विचारो की पुर्नव्यवस्था है जो कि नये सबधो के प्रत्यक्षीकरण के द्वारा प्राप्त अन्तर्दृष्टि की सहायता से सम्पन्न होती है।
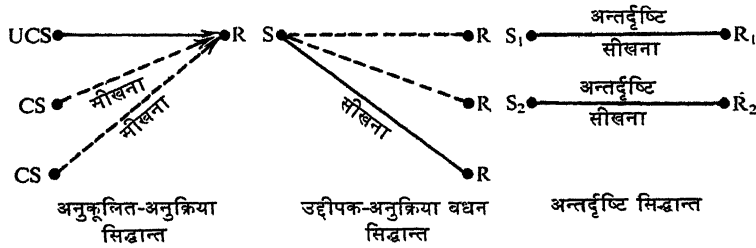
चित्र-36 सीखने के सिद्धान्तो की तुलना

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Inplications)—जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि सीखने का गेस्टाल्ट सिद्धान्त अनुभवो की सम्पूर्णता पर बल देता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग करके बालकों का मानसिक विकास किया जा सकता है। गेस्टाल्ट सिद्धान्त का शिक्षा के क्षेत्र मे निम्न उपयोग सम्भव है—

(1) यह सिद्धान्त वातावरण की महत्ता स्थापित करता है। अध्यापकों को बालको के सम्मुख ऐसा वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए कि बालको मे अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो सके।

(2) यह सिद्धान्त बुद्धि, सृजनात्मकता, कल्पना तथा तर्क शक्ति आदि का विकास करने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(3) यह सिद्धान्त सीखने में यांत्रिकता के महत्व को नकारता है।

(4) यह सिद्धान्त बालक के द्वारा स्वय परिस्थितियो का अवलोकन करने तथा सूझ के द्वारा खोज करके सीखने पर बल देता है।

(5) यह सिद्धान्त नवीन ज्ञान की सार्थकता पर भी बल देता है।

18 अधिगम अन्तरण
(Transfer of Learning)

प्राय देखा जाता है कि किसी कार्य को सीख लेने के उपरान्त उसी प्रकार के कार्यो को सीख लेना अथवा करना सरल व सुबिधाजनक हो जाता है । वास्तव मे व्यक्ति जब कोई नवीन कार्य करता है अथवा सीखता है तो उसके द्वारा कार्य को करने अथवा कार्य कोई नवीन कार्य करता है अथवा सीखता है तो उसके द्वारा उस कार्य को करने अथवा उस कार्य को सीखने मे उसके पूर्व ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । यही कारण से दूसरी परिस्थिति मे कुछ न कुछ अन्तरण अवश्य होता है । विद्यालय मे बालको को जो कुछ भी सिखाया जाता है उसका तभी कोई महत्व अथवा उपयोगिता होती है जब बालको के द्वारा सीखा गया ज्ञान उनके भावी जीवन के विभिन्न कार्यों मे अन्तरित हो जाता है । विद्यालय मे पढाये जाने वाले विभिन्न विषयो जैसे भाषा, गणित, सामाजिक विषय आदि के ज्ञान का उपयोग बालक अपने भावी वास्तविक जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने मे प्रयुक्त करते हैं । गणित के ज्ञान का उपयोग बालक दैनिक जीवन तथा व्यवसायिक जीवन मे आने वाली गणितीय समस्याओ को समझने तथा उनका समाधान करने मे करते है । भाषा सबधी ज्ञान का प्रयोग अपनी बात को सम्प्रेषित करने तथा अन्यो की बातों को समझने के लिए किया जाता है । विज्ञान के ज्ञान का उपयोग दैनिक जीवन मे प्रयुक्त होने वाले विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणो का समुचित उपयोग करने के लिए किया जाता है । सामाजिक विषयों के ज्ञान का उपयोग विभिन्न पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओ के समाधान करने मे किया जाता है । सीखे गए ज्ञान का अन्य परिस्थितियो मे प्रयोग करना ही सीखने का अन्तरण है । शिक्षा प्रक्रिया मे सीखने के अन्तरण का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है । शिक्षा प्रक्रिया को सरल, प्रभावशाली तथा शीघ्रगामी बनाने के लिए सीखने के अन्तरण का उपयोग किया जा सकता है । प्रस्तुत अध्याय मे सीखने के अन्तरण की चर्चा की गई है ।

अधिगम अन्तरण का अर्थ
(Meaning of Transfer of Learning)

प्राय अधिगम अन्तरण या सीखने के अन्तरण को प्रशिक्षण अन्तरण अथवा प्रशिक्षण स्थानान्तरण (Transfer of Training) भी कहा जाता है । प्रस्तुत अध्याय मे अधिगम अन्तरण तथा प्रशिक्षण अन्तरण को समानार्थक शब्दो के रूप मे प्रयुक्त किया गया है । अधिगम अन्तरण का अर्थ है—किसी विषय, कार्य अथवा परिस्थिति मे अर्जित ज्ञान का उपयोग किसी अन्य विषय, कार्य अथवा परिस्थिति मे करना । अत जब एक विषय का ज्ञान दूसरे विषय के अध्ययन मे सहायक अथवा घातक होता है तो उसे सीखने

का अन्तरण कहा जाता है । सीखने के अन्तरण को विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने निम्न ढग से परिभाषित किया है—

अंडरवुड के अनुसार —"वर्तमान क्रियाओ पर पूर्व अनुभवो के प्रभाव को प्रशिक्षण अन्तरण कहते है ।"

The ınfluence of prevıous experıence on current performance defines transfer of traınıng.

—B. J. Underwood

हिलगार्ड एवं एटकिन्सन के शब्दों में —"एक कार्य को सीखने का आगामी कार्यो को सीखने अथवा करने पर पडने वाले प्रभाव को प्रशिक्षण अन्तरण कहते है ।"

The ınfluence that learning one task may have on the subsequent learnıng or performance of another task is called transfer of traınıng.

—E R. Hılgard and R.G Atkınson

सोरेन्सन के अनुसार —"स्थानान्तरण एक परिस्थिति मे अर्जित, ज्ञान, परीक्षण तथा आदतो का दूसरी परिस्थिति मे अन्तरण होना है ।"

Transfer refers to the transfer of knowledge, traınıng and habits aquired ın one situation to another.

—Sorenson

क्रो एवं क्रो के अनुसार —"सीखने के एक क्षेत्र मे अर्जित चिन्तन, अनभूति या कार्य करने की आदतो, ज्ञान अथवा कौशलो का सीखने के किसी दूसरे क्षेत्र मे प्रयोग करना ही प्राय प्रशिक्षण का अन्तरण कहा जाता है ।"

The carryover of habits of thınking, feeling or working of knowledge, or skills from one learnıng area to another, ıs usually referred to as the transfer of training.

—Crow and Crow

कैन्डलैंड के अनुसार —"अन्तरण पूर्व सीखे गए व्यवहार का वर्तमान मे सीखे गए व्यवहार पर पडने वाले प्रभाव से सबधित होता है ।"

Transfer is concerned wıth the effect of previously learned behaviour on more recently acquired behaviour.

—Candland

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सीखने के अन्तरण से तात्पर्य किसी सीखे गए व्यवहार का किसी नवीन व्यवहार पर पडने वाले प्रभाव से है । दूसरे शब्दों मे हम कह सकते है कि सीखने का अन्तरण किसी एक परिस्थिति मे अर्जित ज्ञान, कौशल, आदतो, विचारो आदि का किसी अन्य परिस्थिति मे प्रयोग करता है । जब किसी कार्य को करने की योग्यता, ज्ञान अथवा अनुभव किसी दूसरे कार्य को करने के ज्ञान, अनुभव तथा योग्यता को प्रभावित करते है तब हम इसे सीखने का अन्तरण कहेगे ।

अन्तरण के प्रकार
(Types of Transfer)

सीखने का अन्तरण मुख्यत· दो प्रकार का हो सकता है—धनात्मक अन्तरण (Positıve Transfer) तथा ऋणात्मक अन्तरण (Negative Transfer)। कुछ विद्वान अन्तरण के एक तीसरे प्रकार शून्य अन्तरण (Zero Transfer) की भी चर्चा करते है। शून्य अन्तरण वास्तव मे अन्तरण न होकर अन्तरण की अनुपस्थिति है। अर्थात् जब किसी कार्य को करने की योग्यता अथवा ज्ञान का अन्य कार्यो को करने की योग्यता पर कोई प्रभाव नही पडता है तब उसे शून्य अन्तरण कहेगे। स्पष्ट है कि शून्य अन्तरण मे पूर्ववर्ती ज्ञान का अन्तरण होता ही नही है। अत इसे अन्तरण का तीसरा प्रकार मानना उचित प्रतीत नही होता है। आगे धनात्मक तथा ऋणात्मक अन्तरण की चर्चा की जा रही है।

1. धनात्मक अन्तरण
(Positive Transfer)

धनात्मक अन्तरण को सकारात्मक अन्तरण भी कहते है। जब पूर्व अर्जित ज्ञान नवीन ज्ञान को अर्जित करने मे सहायक होता है तो उसे धनात्मक अन्तरण कहते है। धनात्मक अन्तरण मे पूर्व ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण नई बातो को सीखने मे सहायता प्रदान करता है। स्पष्ट है कि किसी कार्य को करने का ज्ञान, योग्यता अथवा अनुभव जब दूसरे कार्यो को करने मे सहायक होता है, तब इसे सीखने का धनात्मक अन्तरण माना जाता है।

2. ऋणात्मक अन्तरण
(Negative Transfar)

ऋणात्मक अन्तरण को निषेधात्मक अन्तरण भी कहते है। जव पूर्व अर्जित ज्ञान नवीन ज्ञान को अर्जित करने मे बाधक होता है तो उसे ऋणात्मक अन्तरण कहते है। ऋणात्मक अन्तरण मे पूर्व ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण नई बातो को सीखने में व्यवधान उत्पन्न करता है। स्पष्ट है कि किसी कार्य को करने का ज्ञान, योग्यता अथवा अनुभव जब दूसरे कार्यो को करने मे घातक होता है तब इसे सीखने का ऋणात्मक अन्तरण कहा जाता है।

अन्तरण को क्षैतिज अन्तरण (Horızontal Transfer), उर्ध्व अन्तरण (Vertical Transfar) तथा द्विपार्शिविक अन्तरण (Bılateral Transfer) मे भी बाटा जा सकता है।

1. क्षैतिज अन्तरण
(Horizontal Transfer)

जब किसी परिस्थिति मे अर्जित ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण का उपयोग उसी प्रकार की परिस्थिति मे किया जाता है तो इसे क्षैतिज अन्तरण कहते है।

2. उर्ध्व अन्तरण

(Vertical Transfer)

जब किसी परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण का उपयोग अन्य प्रकार की परिस्थितियो में किया जाता है तब इसे उर्ध्व अन्तरण कहते है।

3. द्विपार्शिविक अन्तरण

(Bilateral Transfer)

मानव शरीर को दो भागो—दायाँ भाग (Right Portion) तथा बायाँ भाग (Left Portion) में बाँटा जा सकता है। जब मानव शरीर के एक भाग को दिए गए प्रशिक्षण का अन्तरण दूसरे भाग में होता है तो इसे द्विपार्शिविक अन्तरण कहते है। जैसे दाये हाथ से लिखने की योग्यता का लाभ जब व्यक्ति बाये हाथ से लिखना सीखने मे करता है तो इसे द्विपार्शिविक अन्तरण कहेगे।

अन्तरण के सिद्धान्त
(Theories of Transfer)

सीखने के अन्तरण के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिकों की रूचि अत्यत प्रारम्भ से ही रही है। मनोवैज्ञानिको ने अन्तरण से सम्बधित अनेक प्रयोग करके सीखने के अन्तरण के अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया । सीखने के अन्तरण के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

1. मानसिक अनुशासन का सिद्धान्त (Theory of Mental Discipline)
2. समान अवयव का सिद्धान्त (Theory of Identical Elements)
3. सामान्यीकरण का सिद्धान्त (Theory of Generalization)
4. आरोपण का सिद्धान्त (Theory of Transposition)
5. सीखना सीखने का सिद्धान्त (Theory of learning to learn)

1. मानसिक अनुशासन का सिद्धान्त

(Theory of Mental Discipline)

मानसिक अनुशासन का सिद्धान्त अन्तरण का अत्यत प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तरण स्वत होता है। अन्तरण के लिए केवल मानसिक क्रियाओ का विकास एव अभ्यास होना चाहिए। जैसे यदि तर्क शक्ति का विकास हो गया है तो व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र मे तर्क शक्ति का उपयोग कर सकेगा, यदि स्मृति का विकास हो गया है तो व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र मे उसका उपयोग कर सकेगा, यदि निरीक्षण शक्ति का विकास हो गया है तो व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र मे उसका उपयोग कर सकेगा। अभ्यास के द्वारा विभिन्न मानसिक शक्तियो का विकास किया जा सकता है। सीखने की सामग्री या विषयवस्तु के कठिन होने पर तथा उसका अधिक अभ्यास करने पर मानसिक शक्तियो का विकास अधिक होता है। लैटिन, ग्रीक, सस्कृत, गणित जैसे विषयो को मानसिक शक्तियो के विकास की दृष्टि से अधिक उपयुक्त माना जाता था। इस सिद्धान्त के अनुसार मानसिक शक्तियों के विकसित हो जाने पर व्यक्ति मे एक मानसिक कार्यप्रणाली बन जाती है जो सभी परिस्थितियों मे सीखने मे सहायक होती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त को स्वीकार नही करते है। विलियम जेम्स ने सन् 1890 मे सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का खडन किया। उसने स्मृति योग्यता के स्थानान्तरण के सम्बन्ध मे प्रयोग किया। विलियम जेम्स ने विक्टर ह्यूगो द्वारा रचित 'सैटायर' (Satyr) नामक काव्य की 158 पक्तियो को याद किया जिसमे उसे 32 मिनट का समय लगा। पिर उसने मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' (Paradise Lost) नामक काव्य को अडतीस दिन तक 20 मिनट प्रतिदिन याद करने का अभ्यास किया। तत्पश्चात उसने विक्टर ह्यूगो के 'सैटायर' (Satyr) की अन्य 158 पक्तियो को याद किया। इस बार उसे 52 मिनट का समय लगा। इस प्रकार से विलियम जेम्स ने देखा कि स्मरण करने के अभ्यास से स्मरण करने की योग्यता मे कोई वढोत्तरी नही होती है।

थार्नडाइक ने भी सन् 1924 मे अपने अध्ययन मे पाया कि लैटिन या फ्रैच सीखने वाले छात्र शरीर विज्ञान पढने वाले छात्रो से अधिक योग्य नही थे। वेसमैन (Wesman) ने भी सन् 1945 मे निष्कर्ष निकाला कि सीखने के स्थानान्तरण पर पाठ्यविषयो की उत्कृष्टता (Superiority) का प्रभाव नही पडता है।

2. समान अवयवों का सिद्धान्त

(Theroy of Identical Elements)

समान अवयवो के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थॉर्नडाइक ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे अन्तरण उसी अनुपात मे होता है जिस अनुपात मे दोनो स्थितियो की विषयवस्तु, दृष्टिकोण, विधि, उद्देश्य आदि समान होते हैं। दूसरे शब्दो मे कह सकते है कि सीखने का अन्तरण उस सीमा तक हो सकता है जिस सीमा तक सीखने की दोनो क्रियाओ मे समानता होती है। यदि समानता अधिक होती है तो अन्तरण भी अधिक होता है। यदि समानता कम होती है तो अन्तरण भी कम होता है। दो कार्यो, विषयो अथवा अनुभवो मे जितनी अधिक समानता होती है, उतना ही अधिक वे एक दूसरे के अध्ययन मे सहायक होते है। अन्तरण की प्रक्रिया मे विषयवस्तु (Matter) तथा विधि (Method) नामक दो कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इन दोनो की समानता अथवा असमानता ही अन्तरण की मात्रा को निर्धारित करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार पियानो बजाने के प्रशिक्षण का लाभ टकण (Type) करने मे, कार चलाने का ज्ञान ट्रक चलाने में, साईकिल चलाने का ज्ञान स्कूटर चलाने मे, सस्कृत पढने का ज्ञान हिन्दी पढने मे, गणित पढने का ज्ञान भौतिक शास्त्र पढने मे, भूगोल का ज्ञान इतिहास पढने मे इसलिए सहायक होता है क्योकि इनमे परस्पर काफी समानता होती है।

3. सामान्यीकरण का सिद्धान्त

(Theory of Generalization)

सामान्यीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1908 मे सी एच जुड (C. H. Judd) ने किया था। जुड के अनुसार सीखने का अन्तरण वास्तव मे छात्रो के द्वारा कुछ सामान्यीकृत सिद्धान्तों के निर्माण के फलस्वरुप होता है। छात्र अपने ज्ञान तथा अनुभवों के आधार पर कुछ सामान्य नियम या सिद्धान्त बना लेते है तथा उनका उपयोग अन्य

परिस्थितियो मे करते है। किसी एक परिस्थिति मे सीखे अथवा विकसित किये गए सिद्धान्तो के ज्ञान अथवा बोध का उपयोग छात्र अन्य परिस्थितियो में तभी कर सकते है जब दोनो परिस्थिति मे कुछ समानता होती है।

जुड ने एक प्रयोग किया उसने छात्रो के दो समूहो को पानी मे डूबी किसी वस्तु का निशाना लगाने का अभ्यास कराया। तत्पश्चात उसने एक समूह को अपवर्तन के नियमों का प्रशिक्षण दिया, परतु दूसरे समूह को ऐसा कोई प्रशिक्षण नही दिया। अब अत मे उसने पानी मे डूबी वस्तु की गहराई को परिवर्तित करके उस पर निशाना लगाने का परीक्षण लिया। उसने देखा कि जिस समूह को अपवर्तन के नियमो का प्रशिक्षण दिया गया था, उसके निशाने अधिक सही थे। जुड ने इस परिणाम की व्याख्या करते हुए कहा कि अपवर्तन सबंधी नियमो का प्रशिक्षण प्राप्त समूह इसलिए निशानो को सही लगाने मे अधिक श्रेष्ठ था क्योकि उसने अपवर्तन के सिद्धान्तो का अन्तरण नवीन परिस्थितियो मे कर लिया।

4. आरोपण का सिद्धान्त

(Theory of Transposition)

अन्तरण के आरोपण के सिद्धान्त का प्रतिपादन गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको के द्वारा किया गया। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको का मानना है कि जब एक गेस्टाल्ट दूसरे गेस्टाल्ट पर आरोपित हो जाता है तभी अन्तरण होता है। अन्तरण के इस सिद्धान्त के अनुसार एक परिस्थिति मे अर्जित अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ का उपयोग व्यक्ति दूसरी परिस्थितियो की समस्याओ का समाधान करने के लिए करता है।

5. सीखना सीखने का सिद्धान्त

(Theory of Learning to Learn)

इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति एक ही प्रकार के कार्यो को करते-करते उस प्रकार के कार्यो को करना सीख लेता है। जैसे कोई मोटर मैकेनिक नए प्रकार के इजन को भी सरलता से समझ लेता है अथवा घडीसाज नई तकनीक पर आधारित घडी को खोलना सरलता से सीख लेता है या गणित मे एक प्रकार की सम्सयाओ को हल करने मे कुशल छात्र गणित की दूसरे प्रकार की समस्याओ को हल करना सरलता से सीख जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योकि व्यक्ति अथवा छात्र ने सीखना सीख लिया है।

इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए वार्ड (Ward) ने सन् 1937 मे एक अध्ययन लिया। उसने निरर्थक शब्दो की सूचियाँ बनाई। प्रत्येक सूची मे बारह शब्द थे तथा कठिनाई की दृष्टि से विभिन्न सूचियाँ समान रुप से कठिन थी। छात्रो को एक दिन मे एक सूची याद करने के लिए कहा गया। पहली सूची को याद करने के लिए छात्रो ने 38 बार दोहराया, जबकि सातवी सूची को याद करने के लिए छात्रो ने 20 बार ही दोहराया तथा 16 वी सूची को छात्रो ने मात्र 14 बार दोहराया। स्पष्ट है कि छात्रो ने शब्दों को याद करना सीख लिया था जिसके परिणामस्वरुप बाद की सूचियो को याद करने मे उन्हे कम समय लगा।

अन्तरण की दशायें
(Conditions of Transfer)

सीखने का अन्तरण कुछ निश्चित परिस्थितियो मे ही सम्भव होता है। जब अन्तरण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होती है तभी सीखने का अन्तरण सम्भव होता है। अन्तरण की मात्रा भी उपलब्ध परिस्थितियो पर निर्भर करती है। अन्तरण को प्रभावित करने वाली कुछ प्रमुख दशाये निम्नवत् है—

1. सीखने वाले की इच्छा
(Learner's Will)

अन्तरण काफी सीमा तक सीखने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। जब सीखने वाला सीखने के लिए इच्छुक होता है तब उसके सीखने पर पूर्वअर्जित अधिगम का अधिक अन्तरण होता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति मे सीखने की इच्छा नही होती है तो सीखने का अन्तरण नही हो पाता है।

2. सीखने वाले की मानसिक योग्यता
(Learner's Mental Ability)

सीखने वाले की मानसिक योग्यता अर्थात् बुद्धि जितनी अधिक होती है, सीखने का अन्तरण उतना ही अधिक होता है। गैरेट (Garrett) ने अपने अध्ययन मे देखा कि निम्न सामान्य बुद्धि वाले छात्रो की तुलना मे उच्च सामान्य बुद्धि वाले छात्रो में अन्तरण करने की योग्यता 20 गुना अधिक होती है।

3. सीखने वाले की शैक्षिक उपलब्धि
(Learner's Educational Achievement)

सीखने वाले की शैक्षिक उपलब्धि जितनी विस्तृत होती है, उसमे उतना ही अधिक अन्तरण की सम्भावनाये होती हैं। शैक्षिक योग्यता का तात्पर्य विषयों का रटन्त अध्ययन नही है, वरन् सोच समझकर प्राप्त ज्ञान से है। रटकर अर्जित किए गए ज्ञान का अन्तरण नही होता है।

4. सीखने वाले की सामान्यीकरण की योग्यता
(The Learner's Ability to Generalize)

सामान्यीकरण की योग्यता अन्तरण के लिए आवश्यक है। सीखने वाले मे अपने कार्यों तथा अनुभवो को जितना अधिक सामान्यीकृत करने की योग्यता होती है उसमे उतना ही अधिक अन्तरण करने की सम्भावनाये होती हैं। वास्तव मे अन्तरण उसी सीमा तक हो पाता है जिस सीमा तक सामान्यीकरण किया जा सके।

5. विषयवस्तु की समानता
(Similarity in Subject Matter)

जब दो विषय परस्पर समान होते है तब अन्तरण अधिक होता है इसके विपरीत यदि विषयों मे समानता नही होती है तब अन्तरण नही होता है। जैसे गणित का ज्ञान भौतिक शास्त्र के अध्ययन मे तो सहायक होता है किन्तु भाषा के अध्ययन मे किसी प्रकार की सहायता नही करता है।

6. अध्ययन विधियों की समानता

(Similarity in Methods of Study)

अध्ययन विधियो के समान होने पर अन्तरण सरलता से हो जाता है । किन्तु जिन विषयो की अध्ययन विधियाँ परस्पर भिन्न होती है, उनमे अन्तरण नही हो पाता है । भौतिक शास्त्र तथा रसायनशास्त्र की अध्ययन विधियाँ समान होने के कारण अन्तरण सम्भव होता है, परतु भौतिक शास्त्र तथा इतिहास की अध्ययन विधियो मे समानता न होने के कारण इनमे प्राय अन्तरण नही हो पाता है ।

7. विषयों के अन्तरण मूल्य

(Transfer Value of Subjects)

विभिन्न विषयो के ज्ञान के अन्तरण की सम्भावनाये भिन्न भिन्न होती है । जैसे गणित तथा विज्ञान मे अन्तरण का गुण अधिक होता है, जबकि सामाजिक विषयो के ज्ञान मे अन्तरण होने का गुण कम होता है । यही कारण है कि गणित तथा विज्ञान के ज्ञान का अन्तरण होता है जबकि सामाजिक विषयो के ज्ञान का अन्तरण कम होता है ।

8. प्रशिक्षण

(Training)

सीखने के अन्तरण पर प्रशिक्षण का प्रभाव भी पडता है । प्रशिक्षण से अन्तरण की क्षमता को बढाया जा सकता है । जैसे यदि गणित पढाते समय छात्रो को गणित के ज्ञान का उपयोग अन्य विषयो मे करना सिखाया जाए तो वे गणित का उपयोग विभिन्न परिस्थितियो मे करना सीख लेते है ।

अन्तरण का शैक्षिक महत्व

(Educational Importance of Transfer)

शैक्षिक दृष्टि से सीखना का अन्तरण अत्यत महत्वपूर्ण है । अन्तरण के फलस्वरुप बालको की अधिगम कुशलता मे वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरुप वे नवीन बातो को सरलता व शीघ्रता से सीख लेते है । अत शिक्षा प्रक्रिया के नियोजको तथा सचालकों को सीखने के अन्तरण से सबधित ज्ञान का उपयोग बालको की शिक्षा को सरल, सुगम तथा प्रभावशाली बनाने के लिए करना चाहिए। सीखने के अन्तरण के महत्व को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है ।

पाठ्यक्रम निर्माण में अन्तरण का महत्व

(Importance of Transfer in Curriculum Construction)

पाठ्यक्रम के निर्माण मे सीखने के अन्तरण का विशेष महत्व है । सीखने का अन्तरण किस प्रकार से होता है तथा किन-किन कारको से प्रभावित होता है, इसे ध्यान मे रखकर ही पाठ्यक्रम की रचना की जानी चाहिए । पाठ्यक्रम के विभिन्न विषय तथा इकाईयाँ छात्रो की परिस्थितियो तथा आवश्यकताओ व रुचियो के अनुरुप होनी चाहिए । पाठ्यवस्तु छात्रो के भावी जीवन से सबधित होनी चाहिए । पाठ्यवस्तु अध्यापको की दृष्टि से उपयोगी होनी चाहिए । पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो छात्रो की भावी व्यावसायिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे समर्थ हो सके ।

शिक्षण विधियों की दृष्टि से अन्तरण का महत्व

(Importance of Transfer in Teaching Methods)

अध्यापक के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली शिक्षण विधि अन्तरण की मात्रा को प्रभावित करती है। अत अध्यापक को ऐसी शिक्षण विधियो का प्रयोग करना चाहिए जिनसे अन्तरण अधिकतम हो सके। शिक्षण विधि का चयन अन्तरण प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली विभिन्न दशाओ को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

अध्यापकों के लिए अन्तरण का महत्व

(Importance of Transfer for Teachers)

शिक्षा प्रक्रिया के वास्तविक सचालक अध्यापक होते है। अध्यापको के लिए सीखने के अन्तरण की प्रक्रिया का ज्ञान अत्यत लाभप्रद हो सकता है। निम्न बातो को ध्यान मे रखकर अध्यापक शिक्षा प्रक्रिया मे अन्तरण का सार्थक उपयोग कर सकता है—

(1) अध्यापक को कक्षा मे अपने छात्रो को विशिष्ट समस्याओ की अपेक्षा सामान्य सिद्धान्तो का ज्ञान देना चाहिए।

(2) अध्यापक को विभिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित अनेक उदाहरण देकर अपनी बात को स्पष्ट करना चाहिए।

(3) अध्यापक को पढाए जाने वाले प्रकरण के मुख्य बिन्दु को भली भाति स्पष्ट करना चाहिए।

(4) अध्यापक को शिक्षण कार्य करते समय वास्तविक परिस्थितियो तथा शिक्षण कार्यो मे सामञ्जस्य बनाना चाहिए।

(5) अध्यापक को वास्तविक परिस्थितियो से सम्बन्धित ज्ञान तथा समस्यायो को कक्षा मे प्रस्तुत करना चाहिए।

(6) यदि पढाये जाने वाले प्रकरण के लिए कोई पूर्व ज्ञान आवश्यक है तो अध्यापक को देख लेना चाहिए कि छात्र आवश्यक पूर्व ज्ञान रखते है।

---

19 अभिप्रेरणा

(Motivation)

व्यक्ति किन्ही विशेष व्यवहारो को क्यो करता है ? यह मनोवैज्ञानिको के लिए सदैव ही एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियो (Instincts) के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार को स्पषट करने का प्रयास किया। परतु आधुनिक मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्तियो को व्यवहार का कारण स्वीकार नही करते। उनके अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ किसी जाति (Species) विशेष के व्यवहार प्रतिमानो (Behavioural Patterns) को व्यक्त करती है जो जाति विशेष के समस्त सदस्यो मे विद्यमान होती है तथा उस जाति विशेष के सदस्य उन्हे अपने वशजो से जन्म के साथ ही प्राप्त करते है। आधुनिक मनोवैज्ञानिको के अनुसार प्राणी के विभिन्न व्यवहारो को सचालित (Activate), निर्देशित (Direct) तथा सगठित (Organize) करने वाली शक्ति अभिप्रेरणा है। प्राणियो के द्वारा किये जाने वाले विभिन्न व्यवहारो को समझने तथा उनसे सबधित समस्याओ का समाधान करने मे अभिप्रेरणा का ज्ञान महत्वपूर्ण सहायता प्रदान कर सकता है। वास्तव मे प्राणी के व्यवहारो को समझने के लिए अभिप्रेरणा के प्रत्यय का अध्ययन करना अत्यत आवश्यक हैं। प्रस्तुत अध्याय मे अभिप्रेरणा की चर्चा की गई है।

अभिप्रेरणा का प्रत्यय
(Concept of Motivation)

अभिप्रेरणा वास्तव् मे एक परिकल्पित प्रक्रिया है जो प्राणी के व्यवहार के निर्धारण व सचालन से सबधित होती है। व्यवहार को अनुप्रेरित, सक्रिय, प्रारम्भ अथवा बनाए रखने वाले कारको को अभिप्रेरणात्मक कारक (Motivational Factors) कहा जाता है। अभिप्रेरणा शब्द प्राणी की सभी प्रकार की अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाओ को इगित करता है। अभिप्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति होती है जो प्राणी को किसी विशिष्ट प्रकार के कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है। अभिप्रेरणा को प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा देखा जाना सम्भव नही होता है। यह एक अदृश्य शक्ति होती है जिसके प्रभावो का निरीक्षण करना ही सम्भव होता है। प्राणी के व्यवहार का अवलोकन करके अभिप्रेरणा को समझा जा सकता है। अभिप्रेरणा वास्तव मे क्यो के प्रश्न का उत्तर देती है। व्यक्ति खाना क्यो खाता है ? व्यक्ति दूसरो से क्यो लडता है ? व्यक्ति वस्तु का सग्रह क्यो करना चाहता है ? व्यक्ति अधिक धन अर्जित क्यों करना चाहता हैं ? जैसे प्रश्नो का उत्तर अभिप्रेरणा से संबधित है। मनोवैज्ञानिको ने "अभिप्रेरणा" शब्द को भिन्न-भिन्न ढग से परिभाषित किया है। अभिप्रेरणा शब्द की

कुछ परिभाषाओ के आगे प्रस्तुत किया गया जिनके अवलोकन से अभिप्रेरणा को प्रत्यय का अर्थ स्पष्ट हो सकेगा ।

गुड के अनुसार —"अभिप्रेरणा किसी कार्य को प्रारम्भ करने, जारी रखने अथवा नियन्त्रित करने की प्रक्रिया है ।"

Motivation is the process of arousing, sustaining and regulating activity.

—Good

ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन के अनुसार —"अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है जिसमे सीखने वाले व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियाँ अथवा आवश्यकताये उसके वातावरण के विभिन्न लक्ष्यो की ओर निर्देशित होती है ।"

Motivation is a process in which the learner's internal energies or needs are directed towards various goal objects in his environment.

—Blair, Jones and Simpson

मैकडोनाल्ड के अनुसार —"अभिप्रेरणा व्यक्ति के अदर शक्तिपरिवर्तन है जो भावात्मक जागृति तथा पूर्व अपेक्षित उद्देश्य सम्बध से निर्धारित होता है ।"

Motivation is an energy change within the person characterized by affective arousal and anticipatory goal relation

—F J Mcdonald

एटकिन्सन के अनुसार —"अभिप्रेरणा का सम्बन्ध किसी एक अथवा अधिक प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए व्यक्ति मे कार्य करने की प्रवृत्ति को उद्वेलित करने से होता है ।"

The term motivation refers to the arousal of a tendency to act, to produce one or more effects.

—Atkinson

ड्रेवर के अनुसार —"अभिप्रेरणा एक भावात्मक-क्रियात्मक कारक है जो चेतन अथवा अचेतन ढग से किसी लक्ष्य की ओर व्यक्ति के व्यहार को निर्धारित करने के लिए क्रियाशील होता है ।"

Motivation is an affective conative factor which operates in determining the direction of an individual's behaviour towards an end or goal apprehended consciously or unconsciously.

—James Drever

उपरोक्त परिभाषाओ के अवलोकन से स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा प्राणी मे वह आन्तरिक स्थिति अथवा तत्परता है जो उसे किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को प्रारम्भ करने तथा उसे कोई निश्चित दिशा देने के लिए प्रवृत्त करती है । अभिप्रेरणा की प्रमुख विशेषताये निम्नवत् है—

(i) अभिप्रेरणा मे व्यक्ति का व्यवहार लक्ष्यनिर्देशित (Goad Directed) होता है अर्थात् अभिप्रेरित व्यवहार का कोई न कोई लक्ष्य अथवा उद्देश्य अवश्य होता है तथा

प्राणी इस उद्देश्य को प्राप्ति करने के लिए प्रयासरत रहता है।

(ii) अभिप्रेरित व्यवहार अधिक प्रबल (Dominated) होता है अर्थात् अभिप्रेरित अवस्था मे प्राणी अधिक उत्तेजित (Stimulated), क्रियाशील (Activate) तथा ऊर्जित (Energized) होता है।

(iii) अभिप्रेरित व्यवहार चयनात्मक (Selective) होता है अर्थात् अभिप्रेरित अवस्था मे प्राणी लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुछ चयनित प्रतिक्रियाये ही करता है।

(iv) अभिप्रेरित व्यवहार मे निरन्तरता (continuity) होती है अर्थात् अभिप्रेरित व्यवहार एक बार उत्पन्न होने के बाद तब तक निरन्तर चलता रहता है जब तक प्राणी वाछित उद्देश्य की प्राप्ति नही कर लेता है।

अभिप्रेरणा के संघटक
(Components of Motivation)

अभिप्रेरणा के प्रत्यय की चर्चा के दौरान प्राय आवश्यकता (Needs), अन्तर्नोद या चालक (Drives), प्रोत्साहन या प्रलोभन (Incentives) तथा प्रेरक (Motives) शब्दो का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। इन चारो को अभिप्रेरणा के सघटक (Components) अथवा कारक (Factors) अथवा स्रोत (Sources) के नाम से भी सबोधित किया जाता है। अत इनकी चर्चा करना उचित ही प्रतीत होता है।

आवश्यकतायें
(Needs)

आवश्यकता वास्तव मे शारीरिक असतुलन (Physical Disbalance) अथवा कमी (Deficiency) की ओर सकेत करती हैं। प्रत्येक प्राणी की अपनी कुछ मूलभूत आवश्यकताये होती हैं जिनके अभाव में उसका अस्तित्व सदिग्ध होता है। भोजन की आवश्यकता इसलिए होती है क्योकि भोजन की कमी से शरीर में तनाव उत्पन्न हो जाता है। प्राणी भोजन की खोज के लिए क्रियाशील होता है तथा भोजन की प्राप्ति पर पूर्ववत सामान्य स्थिति मे आ जाता है।

अन्तर्नोद
(Drives)

अन्तर्नोद को चालक भी कहते है। अन्तर्नोद आवश्यकताओ पर आधारित प्रत्यय है। प्राणी की आवश्यकताये अन्तर्नोद को जन्म देती है। किसी आवश्यकता को पूरी करने या दूर करने के लिए व्यवहार करने की प्रवृत्ति ही अन्तर्नोद है। अन्तर्नोद प्राणी को एक विशेष प्रकार के व्यवहार अथवा क्रिया करने के लिए क्रियाशील करता है। आवश्यकता मूलत शारीरिक होती है, जबकि अन्तर्नोद व्यवहार से सबधित रहता है। जैसे—भोजन, भूखे प्राणी की आवश्यकता है जो उसमे भूख अन्तर्नोद (Hunger Drive) को जन्म देती है तथा यह भूख अन्तर्नोद प्राणी को भोजन की खोज करने के लिए क्रियाशील बनाता है।

प्रोत्साहन
(Incentives)

जिस वस्तु से आवश्यकता अथवा अन्तर्नोद की समाप्ति होती है उसे प्रोत्साहन कहते हैं। अत प्रोत्साहन वह उद्दीपक (Stimulus) है जो अन्तर्नोद या अभिप्रेरक को जागृत करता है। प्रोत्साहन लक्ष्य वस्तु है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अभिप्रेरित होता है। उदाहरण के लिए, भूख अन्तर्नोद को भोजन से सतुष्टि मिलती है इसलिए भूख अन्तर्नोद के लिए भोजन प्रोत्साहन है।

स्पष्ट है कि आवश्यकता, अन्तर्नोद एव प्रोत्साहन परस्पर सबधित है। हिलगार्ड (Hilgard) ने अभिप्रेरणा को आवश्यकता-अन्तर्नोद-प्रोत्साहन सूत्र से व्यक्त करते हुए लिखा है कि आवश्यकता अन्तर्नोद को जन्म देती हैं। अन्तर्नोद बढे हुए तनाव की स्थिति है जो क्रिया तथा प्रारम्भिक व्यवहार की ओर अग्रसित करता है। प्रोत्साहन बाह्य वातावरण की कोई वस्तु है जो आवश्यकता की सतुष्टि करती है तथा क्रिया के द्वारा अन्तर्नोद को समाप्त करती है।

अभिप्रेरक
(Motives)

अभिप्रेरक क्या है? इस सबध मे मनोवैज्ञानिको मे एकमत नही है। कुछ मनोवैज्ञानिक इन्हे शारीरिक तथा मानसिक दशाये मानते है, कुछ इन्हे प्राणी की आवश्यकताए मानते है तथा कुछ इन्हे विशिष्ट प्रकार से कार्य करने की प्रवृत्ति मानते हैं। परतु प्राय· सभी मनोवैज्ञानिक इस बात पर सहमत है कि अभिप्रेरक प्राणी को विशिष्ट प्रकार के व्यवहार अथवा क्रिया को करने के लिए उत्तेजित करते है। अभिप्रेरक एक अति व्यापक शब्द (Term) है जिसके अतर्गत आवश्यकता, अन्तर्नोद तथा तनाव जैसे अनेक शब्द समाहित रहते है। अभिप्रेरक तीन कार्य करते है—(i) क्रिया को प्रारम्भ करते है, (ii) क्रियाओं को गति देते है तथा (iii) उद्देश्य प्राप्ति तक क्रियाओ की निरन्तरता को बनाए रखते है। कुछ मनोवैज्ञानिक अर्जित लक्ष्यो को अभिप्रेरक कहते है। उनके अनुसार लक्ष्य की इच्छा के कारण ही व्यक्ति अभिप्रेरित होता है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अभिप्रेरको को निम्न ढग से परिभाषित किया गया है।

मैकडूगल के अनुसार —"अभिप्रेरक व्यक्ति के अदर वे शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दशायें है जो उसे किसी कार्य को निश्चित ढग से करने के लिए प्रवृत्त करती है।"

Motives are conditions physiological and psychological within the organism that dispose it to act in certain ways.

—McDougall

ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन के अनुसार —"अभिप्रेरक हमारी आवश्यकताओ से उत्पन्न होने वाली वे शक्तियाँ है जो व्यवहार को दिशा तथा उद्देश्य प्रदान करती हैं।"

Arising from our needs, motives are the energies which give direction and purpose to behaviour.

—Blair, Jones and Simpson.

अत कहा जा सकता है कि अभिप्रेरक कार्य करने की प्रवृत्ति है जो किसी

आवश्यकता अथवा अन्तर्नोद से प्रारम्भ होती है तथा समायोजन तक समाप्त हो जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आवश्यकता, अन्तर्नोद, प्रोत्साहन तथा अभिप्रेरक शब्दो का प्रयोग अभिप्रेरणा के सन्दर्भ मे ही किया जाता है। आवश्यकता व्यक्ति की किसी कमी या असतुलन को इगित करती है। आवश्यकताओ के उत्पन्न होने से उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव को अन्तर्नोद कहा जाता है। अन्तर्नोद आवश्यकता से उत्पन्न होता है और प्राणी को क्रिया क ने के लिए अग्रसर करता है। वातावरण का वह तत्व जो अन्तर्नोद की सतुष्टि करता है, प्रोत्साहन कहलाता है। उदाहरण के लिए जब शरीर मे भोजन की कमी होती है तो भूख लगती है तथा भोजन प्राप्ति पर भूख सतुष्ट हो जाती है। अत भूख अन्तर्नोद है तथा भोजन उसका प्रोत्साहन। जब आवश्यकता तथा अन्तर्नोद के साथ-साथ लक्ष्य का भाव भी समाहित हो जाता है तो उसे अभिप्रेरक कहते हैं। अभिप्रेरक मे व्यक्ति की आवश्यकताए तथा अन्तर्नोद सक्रिय होकर उसे लक्ष्य की ओर क्रियाशील होने के लिए प्रेरित करते है।

अभिप्रेरकों के प्रकार
(Kinds of Motives)

अभिप्रेरको का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। मॉसलो (Maslow) के अनुसार अभिप्रेरको को जन्मजात अभिप्रेरक (Innate Motives) तथा अर्जित अभिप्रेरक (Acuired Motives) मे बॉटा जा सकता है। थाम्पसन (Thompson) महोदय के अनुसार अभिप्रेरको को स्वाभाविक अभिप्रेरक (Natural Motives) तथा कृत्रिम अभिप्रेरक (Artificial Motives) में बॉटा जा सकता है। गैरेट (Garrett) के अनुसार अभिप्रेरको को जैविक अभिप्रेरक (Biogenic Motives), मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक (Psychogenic Motives) तथा सामाजिक अभिप्रेरक (Social Motives) मे बाटा जा सकता है।

जन्मजात अभिप्रेरक (Innate Motives)—जन्मजात अभिप्रेरक वे अभिप्रेरक हैं जो व्यक्ति में जन्म से पाए जाते हैं। जैसे—भूख, प्यास, विश्राम, निद्रा आदि।
व्यक्ति मे जन्म से पाए जाते है। जैसे—भूख, प्यास, विश्राम, निद्रा आदि।

अर्जित अभिप्रेरक (Acquired Motives) —वे प्रेरक जिन्हे प्राणी अपने प्रयासो से प्राप्त करता है अर्जित अभिप्रेरक कहते है। जैसे—सामाजिकता, रुचि, प्रतिष्ठा आदि।

स्वाभाविक अभिप्रेरक (Natural Motives) —स्वाभाविक अभिप्रेरक व्यक्ति मे स्वभाव से पाए जाते है। जैसे—खेलना, सुख प्राप्त करना आदि।

कृत्रिम अभिप्रेरक (Artificial Motives) —ये प्रेरक प्राणी के कार्य अथवा व्यवहार को नियन्त्रित करने, प्रोत्साहित करने अथवा वाछित दिशा देने के लिए स्वाभाविक अभिप्रेरकों के पूरक के रुप मे प्रयुक्त किए जाते है। जैसे—पुरस्कार, प्रशसा, दड आदि।

जैविक अभिप्रेरक (Biogenic Motives) —जैविक अभिप्रेरक प्राणी की **जैविकी** आवश्यकताओ के फलस्वरुप उत्पन्न होते है । इसके अतर्गत प्राय सवेगो को रखा जाता है । जैसे—क्रोध, भय, प्रेम आदि ।

सामाजिक अभिप्रेरक (Sociogenic Motives) —सामाजिक अभिप्रेरक सामाजिक मान्यताओ, सम्बन्धो, परिस्थितियो, आदर्शो आदि के कारण उत्पन्न होते है। जैसे—प्रतिष्ठा, सुरक्षा, रचनात्मकता आदि ।

अभिप्रेरको के उपरोक्त वर्णित वर्गीकरण एक दूसरे से पूर्णत भिन्न नही है। जन्मजात अभिप्रेरक तथा स्वाभाविक अभिप्रेरक काफी मिलते-जुलते है तथा इनका आधार शारीरिक होता है इसलिए इनको कभी-कभी शारीरिक अभिप्रेरक (Physiological Motives) भी कहा जाता है ।

सीखने में अभिप्रेरणा
(Motivation in Learning)

शिक्षा प्रक्रिया मे अभिप्रेरणा का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है । अभिप्रेरणा के प्रत्यय का उचित प्रयोग करके अध्यापक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढग से सम्पादित कर सकता है । अभिप्रेरित बालक ज्ञानार्जन के लिए तत्पर होते है तथा वे शीघ्रता, सरलता व सुगमता से सीख सकते है । इसके विपरीत अअभिप्रेरित बालको की रुचि सीखने मे नही होती है तथा वे सीखने मे कठिनाई का अनुभव करते है । अध्यापक आवश्यकतानुसार अभिप्रेरको का उपयोग करके बालको को शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है । शिक्षा प्रक्रिया मे अभिप्रेरणा की उपयोगिता स्वस्पष्ट ही है। कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त अन्य शैक्षिक परिस्थितियो मे छात्रो के व्यवहारों को नियत्रित करने के कार्य मे भी अभिप्रेरणा महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। चरित्र-निर्माण मे भी अभिप्रेरणा सहायक होती है । अध्यापक बालको को उत्तम चारित्रिक गुणों तथा आदर्शो को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है।

बालको को शिक्षा की महत्ता बता कर शिक्षा की आवश्यकता स्पष्ट की जा सकती है जिससे वे अपने लिए शिक्षा की आवश्यकता को महसूस कर सके तथा शिक्षा प्राप्ति की ओर अभिप्रेरित हो सके। पढते समय पाठ्य-वस्तु पर ध्यान केन्द्रित कराने मे अभिप्रेरणा का उपयोग किया जा सकता है। अभिप्रेरणा पाकर बालको मे अध्ययन करने की गति बढ़ जाती है इसलिए शिक्षा प्रदान करते समय अध्यापक को छात्रो को ज्ञान प्राप्ति की ओर अभिप्रेरित करना चाहिए । छात्रो मे अभिप्रेरणा जितनी अधिक होगी, शिक्षा प्रक्रिया के सफल होने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होगी ।

शिक्षा प्रागणो मे अनुशासनहीनता की समस्या वर्तमान समय की एक ज्वलत समस्या है । इस समस्या का काफी सीमा तक समाधान अभिप्रेरणा द्वारा किया जा सकता है । यदि बालको को विभिन्न प्रकार के शैक्षिक, सामूहिक, सामाजिक तथा अन्य पाठ्य-सहगामी क्रियाओ मे भाग लेने के लिए अभिप्रेरित किया जाये, अच्छे कार्यो के लिए पुरस्कार व प्रशसा तथा अवाछित कार्यों के लिए निदा व दड का प्रयोग उचित ढग से किया जाये तो शिक्षा प्रागणों मे अनुशासन को बनाए रखना सम्भव हो सकेगा ।

पाठ्यक्रम रचना, शिक्षण विधियो के चयन आदि मे भी अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है । पाठ्यक्रम रचना तथा शिक्षण विधियो के चयन मे इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्यचर्या ऐसी हो जो बालको को अभिप्रेरित कर सके । अध्यापक को अपनी शिक्षण विधि का चयन भी अभिप्रेरणा को ध्यान मे रखकर करना चाहिए जिससे छात्र अधिकाधिक अभिप्रेरित हो सके ।

अभिप्रेरणा के द्वारा बालको के व्यवहार मे वाछित परिवर्तन लाए जा सकते है । पुरस्कार, प्रशसा, निन्दा, भर्त्सना जैसे कृत्रिम अभिप्रेरको का उचित ढग से उपयोग करके अध्यापक बालको के व्यवहार को वाछित दिशा मे निर्देशित कर सकता है । छात्रो को अभिप्रेरित करने की दृष्टि से निम्नाकित बाते महत्वपूर्ण है—

1 **सीखने की इच्छा** (Will to Learn) —अभिप्रेरणा प्रदान करने का प्रथम कदम बालको मे सीखने की इच्छा जागृत करना है । सीखने की प्रक्रिया तब ही सरल, शीघ्र तथा स्थायी होती है जब व्यक्ति सीखने का इच्छुक होता है । यद्यपि कभी-कभी बालक बिना इच्छा के भी कुछ बाते सीख जाते है, परतु सीखने की इच्छा सीखने की प्रक्रिया मे महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है । इच्छा एक अत्यत साधारण अभिप्रेरक हैं तथा अध्यापक इसका उपयोग सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को गति प्रदान करने मे अत्यन्त सहजता से कर सकता है ।

2. **सीखने में आवेष्टन** (Involvement in Learning) —किसी कार्य मे आवेष्टित हो जाने पर व्यक्ति उस कार्य को सफलतापूर्वक करने का यथासम्भव प्रयास करता है । आवेष्टन से तात्पर्य किए जाने वाले कार्य मे मानसिक रूप से समाविष्ट हो जाने से है । यदि बालको का लगाव सीखने की प्रक्रिया मे होता है तब वे सरलता व शीघ्रता से नवीन बातो को सीख लेते है ।

3. **आकांक्षा स्तर** (Level of Aspiration) —आकाक्षा स्तर सीखने की प्रक्रिया मे एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का कार्य करता है । आकाक्षा स्तर व्यक्ति के जीवन लक्ष्यो को इगित करता है । व्यक्ति अपने आकाक्षा स्तर के अनुरुप ही प्रयास करता है । सफलता प्राप्त हो जाने पर उसका भावी आकाक्षा स्तर प्राय ऊँचा हो जाता है, जबकि असफलता प्राप्त करने पर व्यक्ति का आकाक्षा स्तर नीचा हो जाता है । अध्यापक छात्रों के आकाक्षा स्तर को ऊँचा करा कर उन्हे अधिकाधिक अध्ययन करने के लिए अभिप्रेरित कर सकते हैं ।

4. **प्रतियोगिता** (Competition) —अभिप्रेरणा प्रदान करने की एक अन्य विधि बालको मे प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करना है । अध्यापक को अपने छात्रो मे स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करनी चाहिए । परतु ईर्ष्या, क्रोध, घृणा आदि पर आधारित प्रतिद्वदिता को सराहनीय नही माना जाता है । प्रतियोगिता के फलस्वरुप बालक कठिन कार्यो को भी करने के लिए अभिप्रेरित होता है तथा प्राय सफलता प्राप्त करते है ।

5. **सफलता का ज्ञान** (Knowledge of Success) —सफलता का ज्ञान भी व्यक्ति को अभिप्रेरित करता है । यदि बालको को यह पता है कि उन्होने क्या सफलताये प्राप्त की है तो वे आगे बढने के लिए अभिप्रेरित होते है । परीक्षा के उपरान्त बालको को

अपनी शैक्षिक उपलब्धि का ज्ञान परीक्षाफल के द्वारा कराया जाता है। सफल छात्र अधिकाधिक सफलता प्राप्त करने के लिए तथा असफल छात्र अपनी कमियो को दूर करने के लिए अभिप्रेरित होते है।

6. **पुरस्कार (Reward)**—पुरस्कार प्रशसा का अधिक स्पष्ट व प्रखर रुप है। किसी वस्तु, धन, छूट आदि के रुप मे दिये जाने वाले पुरस्कार प्राय बालको के लिए अत्यत शक्तिशाली अभिप्रेरक सिद्ध होते है। किन्तु पुरस्कारो का प्रयोग अत्यत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। ऐसा न हो कि बालक पुरस्कार प्राप्ति के लिए अनुचित तरीको का प्रयोग करने लगे।

7. **दंड (Punishment)**—दड भी निदा की तरह से एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है जो निदा से अधिक प्रखर होता है। दड से तात्पर्य मानसिक अथवा शारीरिक पीडा देने से है, जिससे बालक भविष्य मे उन कार्यो को न करे। दड वास्तव मे भय पर आधारित होता है इसलिए इसका प्रयोग बडी सावधानी से करना चाहिए।

8 **प्रतिष्ठा (Prestige)**—प्रतिष्ठा प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है वह चाहता है कि अपने समूह मे अधिकाधिक प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त करे तथा इसके लिए वह सतत् चेष्टा करता है। बालक भी कक्षा तथा विद्यालय मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते है। प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न छात्रो की अपेक्षाये भिन्न-भिन्न होती है। बालक अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुरुप कक्षा मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है।

9. **प्रशंसा (Praise)**—प्रशसा एक सकारात्मक अभिप्रेरणा है यदि किसी छात्र के अच्छे कार्यों की प्रशसा की जाती है तो उसके द्वारा उस प्रकार के कार्य को करने की सम्भावना बढ जाती है। वास्तव मे अपने से बडे तथा मान्य व्यक्तियो के द्वारा की जाने वाली प्रशसा बालक को वाछित कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है। उचित समय तथा स्थान पर की जाने वाली प्रशसा अभिप्रेरणा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

10. **निंदा (Blame)—निदा एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है। निदा को एक** प्रकार का सामाजिक व मानसिक उत्पीडन माना जा सकता है। निंदा के परिणामस्वरुप बालक अपने व्यवहार मे सुधार लाते है। अभिप्रेरक के रुप मे निन्दा का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

पुरस्कार तथा दंड
(Reward and Punishment)

पुरस्कार तथा दड मनोवैज्ञानिक ढग से अभिप्रेरणा प्रदान करने वाले अभिप्रेरक हैं। पुरस्कार सकारात्मक प्रेरक है तथा दड निषेधात्मक प्रेरक है। व्यक्ति पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है तथा दड से बचना चाहता है। विद्यालयों मे पुरस्कार तथा दड दोनों ही अभिप्रेरकों का प्रयोग बहुतायात से किया जाता है, इसलिए इनकी चर्चा कुछ विस्तार से करना उचित ही प्रतीत होता है।

पुरस्कार
(Reward)

पुरस्कार प्राप्त करना एक आनन्ददायक तथा सुखद अनभूति है जिसके द्वारा वाछित कार्यो को आनन्ददायक तथा आकर्षक बनाया जाता है। पुरस्कार प्राप्त करने पर व्यक्ति आनन्द की अनुभूति करता है तथा इस आनन्द से अभिप्रेरित होकर इसी प्रकार के व्यवहार को बार-बार करना चाहता है। स्पष्ट है कि पुरस्कार का उद्देश्य व्यक्ति को सुखद तथा आनन्द दायक परिस्थिति मे रखना है जिससे व्यक्ति वाछित व्यवहारो को करके पुरस्कार प्राप्त करने की आनन्ददायक भावना को बार बार महसूस

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हलार्क ने पुरस्कार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—"पुरस्कार वाछित कार्य के साथ सुखद साहचर्य वनाने का साधन है।"

रायबर्न के अनुसार —"पुरस्कार व्यक्ति मे अच्छा कार्य करने की भावना जागृत करता है।"

शिक्षा सस्थाओ में पुरस्कार को एक उपयोगी साधन के रुप मे प्रयुक्त किया जा सकता है। छात्रो को अनुशासनप्रिय बनाने, उनमे अध्यापको के प्रति आदर भाव उत्पन्न करने, उनमे अच्छी आदतो, नैतिक मूल्यो, सामाजिक आदर्शो तथा राष्ट्रीय भावना को विकसित करने तथा रुचि, उत्साह व लगन से अध्ययन करने की भावना विकसित करने के लिए पुरस्कार का उपयोग किया जा सकता है।

पुरस्कार के प्रकार (Kinds of Rewards) —पुरस्कार दो प्रकार के हो सकते है—भौतिक पुरस्कार (Material Rewards) तथा सामाजिक पुरस्कार (Social Rewards)। भौतिक पुरस्कारो के अन्तर्गत कोई भौतिक सामग्री जैसे पुस्तके, पोशाक, धनराशि, मेडल आदि आते है, जबकि सामाजिक पुरस्कारो के अन्तर्गत सामाजिक स्वीकृति जैसे पदोन्नति, उपाधि, प्रशसा, सम्मानजनक प्रमाणपत्र आदि आते है।

पुरस्कारो को मूर्त पुरस्कार (Concrete Rewards) तथा अमूर्त पुरस्कार (Abstract Rewards) में भी बॉटा जा सकता है। मूर्त पुरस्कारो के अतर्गत प्रगति पत्र (Progress Report), प्रमाण-पत्र (Certificate), छात्रवृत्ति (Scholarship), पुस्तके (Books), मैडल (Medels), कप व शील्ड (Cup and Shield) तथा सम्मानित पद आदि आते है। अमूर्त पुरस्कारो के अतर्गत प्रशसा तथा कृपादृष्टि आदि आते हैं। प्राय· देखा गया है कि मूर्त पुरस्कारो की अपेक्षा अमूर्त पुरस्कारो का अधिक प्रभाव पडता है। अमूर्त पुरस्कार छात्रों की प्रसन्नता, आत्मसतोष, आत्मविश्वास तथा मनोबल को बढाते है जिससे उन्हे कार्य करने की अभिप्रेरणा मिलती है।

पुरस्कारो को व्यक्तिगत पुरस्कार (Individual Rewards) तथा सामूहिक पुरस्कार (Group Rewards) के रुप मे भी बॉटा जा सकता है। व्यक्तिगत पुरस्कार किसी एक छात्र को दिया जाता है, जबकि सामूहिक पुरस्कार किसी समूह अथवा टोली को दिया जाता है।

पुरस्कार के लाभ (Advantages of Rewards) —पुरस्कार एक ऐसा अभिप्रेरक हैं जो छात्रों के आचरण तथा व्यवहार पर नियत्रण कर सकता है। पुरस्कार स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, मर्यादा, प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति

आदि को विकसित करता है। इसके परिणामस्वरुप छात्र मर्यादित आचरण करते है तथा अच्छी आदते सीखते है। विद्यालयी परिस्थितियो मे पुरस्कार देने के निम्नवत् लाभ है—

1. पुरस्कार प्राप्त करने की इच्छा छात्रो को अधिक रुचि तथा उत्साह से अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती है।

2. पुरस्कार छात्रो मे आत्मसम्मान तथा आत्मगौरव की भावना विकसित करने मे सहायक होते है।

3. पुरस्कार प्राप्ति की इच्छा छात्रो को अपने आचरण व व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए प्रेरित करती है।

4. पुरस्कार छात्रो मे स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना विकसित करता है।

5. पुरस्कार प्राप्त करना एक आनन्ददायक अनुभूति होती है जो शिक्षा के उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायता प्रदान करती है।

6. पुरस्कार छात्रो को क्रियाशील बनाए रखते है।

7. पुरस्कार अभिभावको तथा अध्यापको को शिक्षण-अधिगम कार्य को अधिक लगन व परिश्रम से करने के लिए अभिप्रेरित करते है।

पुरस्कार से हानि (Disadvantages of Rewards)—निस्सदेह पुरस्कार देने के अनेक लाभ है। परतु यदि पुरस्कार देने मे सावधानी नही रखी जाती है, तो पुरस्कारो का हानिकारिक प्रभाव भी हो सकता है। पुरस्कार देने से निम्नलिखित हानियाँ हो सकती है—

1. पुरस्कारो से छात्रो मे ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, हानिकारक प्रतिद्वदिता आदि की भावना उत्पन्न हो सकती है।

2. पुरस्कार केवल योग्य छात्रो को अभिप्रेरित करते है, जबकि निम्न स्तरीय छात्र निराशा की भावना से ग्रसित हो सकते है।

3. छात्र अध्ययन के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने के स्थान पर केवल पुरस्कार प्राप्त करने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते है।

4. छात्र पुरस्कार प्राप्त करने के लिए अवाछित अनुचित साधनों का प्रयोग करने की चेष्टा कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि पुरस्कार देने के जहाँ कुछ लाभ है, वही कुछ हानियाँ भी है, परतु यदि पुरस्कारो का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाये तो इनकी हानि से बचते हुए इनके लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

पुरस्कार देते समय विचारणीय बातें (Considerations while giving Rewards)—पुरस्कार देने से होने वाले लाभो तथा हानियो को दृष्टिगत रखते हुए भी मनोवैज्ञानिक पुरस्कार देने का समर्थन करते हैं। वास्तव मे पुरस्कार देने से होने वाले लाभ शिक्षा प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। पुरस्कार देते समय अध्यापकों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. पुरस्कार निष्पक्ष ढग से योग्य छात्रो को ही दिया जाना चाहिए।

2. पुरस्कार किसी अच्छे कार्य के लिए ही दिया जाना चाहिये।

3. साधारण कार्यों के लिए पुरस्कार देना उचित नही होता है। सराहनीय

परिश्रम, तत्परता, विशिष्ट योग्यता, सहयोग व रचनात्मक कार्यो के लिए ही पुरस्कार देने चाहिए।

4. बडी कक्षाओ मे बहुत अधिक पुरस्कार नही दिये जाने चाहिए।

5.पुरस्कार अच्छा कार्य करने पर तुरत देना चाहिए।

6. व्यक्तिगत पुरस्कारो की अपेक्षा सामूहिक पुरस्कार देना प्राय अधिक अच्छा होता है।

7. पुरस्कार इस प्रकार दिये जाने वाली चाहिए कि अन्य छात्रो मे ईर्ष्या, वैमनस्य आदि की भावना उत्पन्न न हो।

8. पुरस्कार मे दी जाने वस्तुये अधिक मूल्य की नहीं होनी चाहिए।

9. किसी विषय विशेष मे कमजोर छात्रो को उस विषय के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उनकी प्रशसा करके पुरस्कृत करना चाहिए।

10. मूर्त पुरस्कारों की अपेक्षा अमूर्त पुरस्कारो का अधिक मात्रा मे दिया जाना चाहिए।

दंड
(Punishment)

दड एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है जिसके द्वारा छात्रो को अवाछित कार्यो को करने से रोका जाता है। दड से भय उत्पन्न होता है। पुरस्कार से व्यक्ति को सुखद स्थिति मे रखा जाता है परन्तु इसके विपरीत दड के द्वारा व्यक्ति को दुखद स्थिति मे रखा जाता है। अनुचित कार्यो से छात्रो को विमुख करने के लिए उन्हे दड दिया जाता है। थाम्पसन के अनुसार दड अवाछित कार्यो के साथ दुखद भावना को सम्वन्धित करके अवाछित कार्यो को रोकने का साधन है। छात्रो के आचरण मे सुधार करने के लिए दड देने की प्रथा अत्यत प्राचीन है। पहले शारीरिक दड देने का अधिक प्रचलन था परंतु शिक्षा मे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरुप वर्तमान समय मे दड का स्वरुप मनोवैज्ञानिक हो गया है।

दंड के प्रकार (Kinds of Punishment) —दड अनेक प्रकार का हो सकता है जैसे—शारीरिक दड (Corporal Punishment), आर्थिक दड (Economic Punishment), सामाजिक दड (Social Punishment), मानसिक श्रम दड (Mental Labour Punishment), मनोवैज्ञानिक दड (Psychological Punishment) तथा वैधानिक दड (Legal Punishment) आदि। शारीरिक दड देने से तात्पर्य बालको को शारीरिक कष्टप्रद स्थिति मे रखने से है। कान खीचना, बेत मारना, खडे रखना, दण्ड-बैठक लगवाना, मुर्गा बनवाना आदि शारीरिक दड के अतर्गत आते है। आधुनिक मनोविज्ञान शारीरिक दड देने का विरोध करता है। आर्थिक दड के अतर्गत छात्रों को अवाछित कार्य करने पर धनराशि देनी होती है। क्योकि आर्थिक दड मे धनराशि अभिभावको को देनी पडती है इसलिए इस दड को शैक्षिक दृष्टि से उचित नही माना जाता है। सामाजिक दड से तात्पर्य बालको को सामाजिक दृष्टि से कष्टप्रद स्थिति में रखने से है। कक्षा से बाहर निकाल देना, कक्षा मे सबसे अत मे बैठाना, खेलकूद मे भाग न लेने देना, सबके समक्ष ही डॉटना अथवा सामाजिक बहिष्कार करना आदि

सामाजिक दड के कुछ उदाहरण है। मानसिक श्रम दड मे छात्रो से मानसिक परिश्रम कराया जाता है। जैसे अनेक बार पाठ को लिखवाना मानसिक दड का एक उदाहरण है। मनोवैज्ञानिक दड से तात्पर्य बालक की भावनाओ पर आघात करने से है। डाँटना, फटकारना, झिडकना, अपमानित करना या सुविधाओ से वचित करना मनोवैज्ञानिक दड के कुछ उदाहरण है। वैधानिक दड प्राय शिक्षा सस्थाओ मे नही दिया जाता है। किसी कानून के उल्लघन पर अदालत के द्वारा दिये जाने वाले दड वैधानिक दड होते है।

दंड के लाभ (Advantages of Punishment)—छात्रो के व्यवहार मे सुधार करने के लिए दड एक उपयोगी निषेधात्मक अभिप्रेरक का कार्य करता है। अनुशासन भग करने, अध्यापको व छात्रो के साथ दुर्व्यवहार करने, गृहकार्य न करने जैसी स्थितियो मे दड देकर बालको के व्यवहार को सुधारा जा सकता है। दड के प्रमुख लाभ निम्नवत् है—

1. दड से छात्रो के अवाछित व्यवहार मे सुधार आता है।
2. दड विद्यालय मे अनुशासन स्थापित करने मे सहायक होता है।
3. दड भविष्य मे अपराध को दोहराने तथा बुरा आचरण करने की सभावना को कम करता है।
4. दड बुरी आदतो को छुडवाने मे उपयोगी व लाभप्रद होता है।

दड से हानि (Disadvantages of Punishment)—दड से अनेक हानियाँ भी हो सकती है। दड से होने वाली कुछ हानियाँ निम्नलिखित है—

1. दड का सम्बध भय से होता है। दड के भय से बालक का सवेगात्मक संतुलन बिगड सकता है।
2. बार-बार दड मिलने से बालक मे आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है जो उसके व्यक्तित्व के विकास मे बाधक होती है।
3. अत्यधिक दड देने से बालक इसके अभ्यस्त हो जाते है तथा उन पर दड का कोई प्रभाव नही पडता है।
4. दड का प्रभाव अस्थायी होता है। दड के भय से बालक कुछ समय तक उचित व्यवहार करते है, परतु बाद मे पूर्ववत् अवाछित व्यवहार करने लगते है।
5. दड पाने वाले बालको के मन मे दड देने वाले के प्रति ईर्ष्या, द्वेष व प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो सकती है।
6. अत्याधिक दड देने से बालक जिद्दी हो सकते हैं तथा उद्दण्ड बन कर रोके जाने वाले कार्य को जानबूझकर करने की चेष्टा करते है।

स्पष्ट है कि जहाँ दड से कुछ लाभ है वहाँ कुछ हानियाँ भी है। यदि सर्तकता पूर्वक इसका उपयोग किया जाये, तो इसके वाछित परिणाम सामने आ सकते है।

दंड देते समय विचारणीय बाते (Considerations while giving Punishment)—अध्यापक को दड देते समय निम्नाकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—

1. अध्यापक को दड देते समय गम्भीर मुद्रा मे रहना चाहिए। हँसते-हँसते दड देने

का बालको पर कोई प्रभाव नही पडता है।

2. दड का प्रकार तथा मात्रा अपराध के अनुरूप होनी चाहिए। छोटी त्रुटियो पर कडा दड नही देना चाहिए।

3. दड निष्पक्ष भाव से बालको के व्यवहार मे सुधार करने की दृष्टि से दिया जाना चाहिए।

4. दड पाने वाले बालक को दड का कारण स्पष्ट रुप से बताना चाहिए तथा सभी छात्रो के साथ पक्षपातरहित व्यवहार करना चाहिए।

5. बालको को उनकी प्रकृति के अनुरुप दड देना चाहिए। भावुक तथा सवेदनशील बालको को सरल दड देना चाहिए, जबकि कठोर स्वभाव वाले बालको को कठोर दड दिया जाना चाहिए।

6. दड सामूहिक रुप मे न देकर व्यक्तिगत रुप मे दिया जाना चाहिए।

7. कक्षा मे शोर होने पर पूरी कक्षा को दड न देकर केवल उन्ही छात्रो को दड दिया जाना चाहिए जो शोर कर रहे हो।

8. दड अच्छी तरह से सोच-विचार कर देना चाहिए कि बालक का अपराध क्या है तथा उसे जो दड दिया जा रहा है क्या वह दंड उचित है।

9. दड का उद्देश्य अन्य बालको के सम्मुख व्यवहार परिशीलन हेतु आदर्श उपस्थित करना होना चाहिए।

10. शारीरिक दड अत्यत सावधानी से केवल गभीर अपराधों के लिए तथा कभी कभी ही दिया जाना चाहिए।

11. दड इस प्रकार से दिया जाना चाहिए कि कक्षा के अन्य छात्रो को दण्डित छात्र से किसी प्रकार की कोई सहानुभूति न हो।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुरस्कार तथा दड छात्रो के व्यवहार को वाछित दिशा की ओर प्रेरित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। पुरस्कार का न मिलना भी परोक्ष रुप से दड देना ही है। अध्यापकगण पुरस्कार तथा दड दोनो ही का उचित उपयोग करके छात्रो को वाछित कार्यो को करने के लिए प्रोत्साहित तथा अवाछित कार्य करने के लिए हतोत्साहित कर सकते है।

---

20 स्मरण तथा विस्मरण
(Remembering and Forgetting)

जीवन मे स्मरण तथा विस्मरण का अत्यत महत्व है । स्मरण शक्ति के अभाव मे किसी भी व्यक्ति को अपना जीवन सुचारु ढग से चलाना कठिन हो जाता है । व्यक्तियो अथवा बालको को यह कहते हुए सुना जा सकता है कि अमुक व्यक्ति की स्मरण शक्ति अधिक है तथा अमुक व्यक्ति की स्मरण शक्ति कम या सामान्य है । शिक्षा प्रक्रिया मे स्मरण का विशेष महत्व है । स्मलति के अभाव में वौद्धिक कार्य नही किये जा सकते हैं । सीखने की प्रक्रिया मे भी स्मरण करने की आवश्यकता होती है । अत: स्मरण तथा विस्मरण स्वरुप पर विचार करना उपयुक्त ही प्रतीत होता है । बोलचाल की भाषा मे तथा कभी-कभी मनोवैज्ञानिक चर्चाओ मे भी स्मरण तथा स्मृति शब्द को एक समान अर्थो मे प्रयोग किया जाता है । स्मृति शब्द वास्तव मे एक सज्ञा है, जबकि स्मरण शब्द एक क्रिया का द्योतक है । स्मरण करने से तात्पर्य पूर्ववर्ती अधिगम को चेतना मे लाना है, जबकि स्मृति शब्द से तात्पर्य सूचनाओ के उस भडार से है जिसे व्यक्ति ने अपने मस्तिष्क मे सचित कर रखा है । प्रस्तुत अध्याय मे स्मरण तथा विस्मरण के स्वरुप तथा महत्व की चर्चा की गई है ।

स्मरण का अर्थ
(Meaning of Remembering)

स्मरण एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति धारण की गई विषयवस्तु का पुन स्मरण करके चेतना मे लाकर उसका उपयोग करता है । किसी विषयवस्तु के धारण के लिए सर्वप्रथम विषयवस्तु का सीखना आवश्यक है । अधिगम के बिना धारण सम्भव नही है तथा धारण के बिना स्मरण करना सम्भव नही हो सकता है । अधिगम के फलस्वरूप प्राणी मे कुछ सरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes) होते है जिन्हे स्मृति चिन्ह (Memory Traces) कहते है । ये स्मृति चिन्ह तब तक निष्क्रिय रुप मे पडे रहते हैं जब तक कोई बाहरी उद्दीपक उन्हे जागृत नही करता है । ये स्मृति चिन्ह अर्थात् संरचनात्मक परिवर्तन किस रुप मे होते है, यह कहना कठिन है । फिर भी, इन्हे जैविक-रसायनिक परिवर्तन (Biochemical Changes) स्वीकार किया जा सकता है । मनोवैज्ञानिको ने स्मरण को भिन्न-भिन्न ढग से परिभाषित किया है—

हिलगार्ड तथा एटकिन्सन के अनुसार —"पूर्ववत् सीखी गई प्रतिक्रियाओ को वर्तमान समय मे व्यक्त करना ही स्मरण है ।"

To rememeber means to show in present response some signs of earlier learned responses.

—Hilgard and Atkinson

वुडवर्थ के अनुसार —"सीखे गये ज्ञान का प्रत्यक्ष उपयोग ही स्मृति है।"

Memory consists in remembering what has previously been learned.

—Wood Worth

आइजनेक के अनुसार —"स्मृति प्राणी की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह पूर्ववर्ती अधिगम प्रक्रियाओ से सूचना एकत्रित करता है तथा विशिष्ट उत्तेजनाओ के प्रत्युत्तर मे इन सूचनाओ को पुन. प्रस्तुत करता है।"

Memory is the ability of an organism to store information from earlier learning process (experience, retention) and reproduce that information in answer to specific stimuli

—H. J. Eysenck

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि स्मृति वह योग्यता है जो पूर्व अनुभवो अथवा अधिगम से सीखी गई बातो को सचित करने तथा कालान्तर मे उसका चेतन जगत मे प्रयोग करने से सबधित है। कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार स्मृति एक शारीरिक (Physiological) प्रक्रिया है, जबकि कुछ मनोवैज्ञानिक स्मृति को मानसिक प्रक्रिया मानते है। वास्तव मे स्मृति एक मनोशारीरिक (Psycho-Physical या Psycho-Physiological) योग्यता है।

स्मृति के तत्व
(Elements of Memory)

स्मृति एक जटिल मनोशारीरिक योग्यता है जिसमे निम्नाकित चार प्रक्रियायें सन्निहित रहती है—

1. अधिगम (Learning)
2. धारण (Retention)
3. पुन. स्मरण (Recall)
4. पहचान (Recognition)

अधिगम
(Learning)

किसी विषयवस्तु को स्मरण करने के लिए सर्वप्रथम उसे सीखना पडता है इसलिए सीखने को स्मृति का पहला अग कहा जाता है। बिना सीखे किसी भी विषयवस्तु का स्मरण करना सम्भव नही है तथा बिना स्मरण के सीखना भी सम्भव नही है। सीखने की प्रक्रिया के सबंध मे विस्तृत चर्चा अध्याय सत्रह में की जा चुकी है। अत उसकी पुनरावृत्ति करना उचित प्रतीत नही होता है।

धारण
(Retention)

धारण स्मृति का दूसरा अग है। धारण से तात्पर्य है—सीखी गई बात को मस्तिष्क मे सचित करना। अत धारण मस्तिष्क की वह शक्ति है जो सीखे गए ज्ञान को मस्तिष्क

में सचित रखती है । वुडवर्थ के अनुसार "धारण वह शक्ति है जिसमे सीखी गई वस्तु पुन. सक्रिय न होने तक निष्क्रिय पडी रहती है ।" जब प्राणी किसी वस्तु को सीखता है तब उसके मस्तिष्क के अचेतन अथवा अर्द्धचेतन में कुछ छाप पड जाती है जिन्हे स्मृति छाप (Memory Stress) कहते हैं। जब तक मस्तिष्क मे ये छाप बनी रहती है तब तक सीखी गई बातें मस्तिष्क मे सुरक्षित रहती है तथा आवश्यकता होने पर उसका पुन स्मरण किया जा सकता है, परतु स्मृति चिन्हो के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति उनसे सबधित बातो को भूल जाता है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे धारण शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। धारण शक्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक मानसिक योग्यता, स्वास्थ्य, रुचि तथा चिन्तन है । प्राय देखा गया है कि उच्च मानसिक योग्यता तथा अच्छे स्वास्थ्य वाले व्यक्तियो मे धारण शक्ति अधिक होती है । व्यक्ति जिस विषयवस्तु मे रुचि लेता है तथा जिस विषयवस्तु का चिन्तन करता है, उस विषयवस्तु की धारण शक्ति अधिक होती है।

पुनः स्मरण
(Recall)

पुन स्मरण स्मृति का तीसरा अग है । पुन स्मरण गत अनुभवो अथवा अधिगम को वर्तमान मे पुन उत्पादक करने से है । दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि पूर्व अनुभवो अथवा सीखी गई बातो को अचेतन मन से चेतन मन मे लाना ही पुन स्मरण है । पुन स्मरण धारण शक्ति पर निर्भर करता है । जो बाते जितनी अच्छी तरह से धारण की गई होती है उसका उतना ही अधिक सरलता से पुन स्मरण किया जा सकता है। भय, चिन्ता, परेशानी, सवेगात्मक तनाव आदि पुन स्मरण मे बाधा पहुँचाते है । व्यक्ति भय या चिन्ता की स्थिति मे भलीभाँति सीखी गई तथा धारण की गई बात को भी पुन स्मरण करने मे असमर्थ हो जाता है । अध्यापक से डरने वाला बालक अच्छी तरह से याद की गई बातो को उस अध्यापक के सम्मुख सही ढग से दोहराने मे असफल रहता है ।

पहचान
(Recognition)

पहचानना स्मृति का चौथा अग है । पहचान से तात्पर्य उस विषयवस्तु को जानने से है जिसे पूर्व समय मे धारण किया गया है । अत पहचान से तात्पर्य पुन स्मरण मे किसी प्रकार की त्रुटि न करना है । उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अनेक वर्षो के उपरान्त अपने किसी मित्र को देखता है तथा देखते ही पहचान लेता है कि वह उसके साथ कक्षा 10 मे पढता था तथा इसका नाम राम गोपाल शर्मा है तो इसे पहचानना कहते है । सामान्यत पुन स्मरण तथा पहचान की क्रियाये साथ-साथ चलती है । कभी व्यक्ति पुन स्मरण कर लेता है तथा पहचान नही पाता तथा कभी व्यक्ति पहचान तो जाता है परतु उससे सबंधित विवरण का पुन स्मरण करने मे कठिनाई अनुभव करता है ।

स्मरण के प्रकार
(Types of Memory)

मनोवैज्ञानिको ने स्मृति को कई ढग से वर्गीकृत किया है जैसे—तात्कालिक स्मृति

(Immediate Memory) व स्थायी स्मृति (Permanent Memory) अथवा रटन्त स्मृति (Rote Memory) तथा तार्किक स्मृति (Logical Memory) अथवा निष्क्रिय स्मृति (Passive Memory) तथा सक्रिय स्मृति (Active Memory) आदि आदि।

तात्कालिक स्मृति (Immediate Memory) —तात्कालिक स्मृति से तात्पर्य किसी विषयवस्तु को सीखने के उपरान्त तत्काल दोहरा देने से है।

स्थायी स्मृति (Permanent Memory)—स्थायी स्मृति से अभिप्राय. सीखी गई बातो को लम्बे समय के उपरान्त सुनाने से है।

रटन्त स्मृति (Rote Memory) —किसी विषयवस्तु को बिना अच्छी तरह से समझे धारण कर लेना तथा आवश्यकता पडने पर उसका पुन· स्मरण कर लेना रटन्त स्मृति कहलाती है। इसे यान्त्रिक स्मृति (Mechanical Memory) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

तार्किक स्मृति (Logical Memory) —विषयवस्तु को अच्छी तरह से समझकर सीखना, धारण करना तथा पुन स्मरण करना तार्किक स्मृति कहलाती है। इसे बौद्धिक स्मृति भी कहते हैं।

निष्क्रिय स्मृति (Passive Memory) —पूर्व अनुभवों को अत्यधिक प्रयास अथवा क्रिया के पुनः स्मरण करना निष्क्रिय स्मृति कहलाती है।

सक्रिय स्मृति (Active Memory) —पूर्व अनुभवों बिना किसी तथा प्रयास पुन. स्मरण करना सक्रिय स्मृति कहलाती है।

स्मृति के उपरोक्त वर्णित प्रकारों मे से किसी एक प्रकार को सर्वश्रेष्ठ कहना सम्भवत· उपयुक्त नही है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो तथा पाठ्यविषयो के अनुरुप स्मृति का एक प्रकार दूसरे प्रकार से अधिक उपयुक्त हो सकता है।

अच्छी स्मृति की विशेषतायें
(Characteristics of Good Memory)

अच्छी स्मृति की प्रमुख विशेषताये निम्नवत् है—

1. शीघ्र अधिगम (Quick Learning)
2. उत्तम धारण शक्ति (Good Retention)
3. शीघ्र पुन स्मरण (Quick Recall)
4. शीघ्र तथा सही पहचान (Quick and Accurate Recognition)

अच्छी स्मृति का पहला लक्षण शीघ्र अधिगम है जो व्यक्ति किसी बात को जितना शीघ्र ही सीख लेता है, उसकी स्मृति उतनी ही अच्छी होती है। जब बालक एक-दो बार पढने या सुनने पर ही पाठ को याद कर लेता है तो उसकी स्मृति अच्छी समझी जाती है।

अच्छी स्मृति की दूसरी विशेषता सीखी गई बात को अधिक समय तक सचित करना है जो व्यक्ति बिना दोहराए सीखी गई बातों को अधिक समय तक मस्तिष्क मे धारण कर सकते है, उनकी स्मृति अधिक अच्छी समझी जा सकती है। अच्छी धारण

शक्ति वाला बालक ही अपने पाठ को अधिक समय तक स्थायी रुप से स्मरण रख सकता है।

अच्छी स्मृति की तीसरी विशेषता शीघ्र पुन· स्मरण करना है जो व्यक्ति सीखी गई बात को जितना शीघ्र अपने चेतन मस्तिष्क मे ले आता है उसकी स्मृति उतनी ही अच्छी होती है। परीक्षा में शीघ्र पुन स्मरण छात्रो के लिए विशेष रुप से उपयोगी होता है।

शीघ्र तथा सही पहचान अच्छी स्मृति की चौथी विशेषता है। अच्छी स्मृति के लिए शीघ्र पुन स्मरण ही पर्याप्त नही है वरन् शीघ्र तथा सही पहचानना भी आवश्यक है। परीक्षा मे प्रश्नो के उत्तर देते समय बालक अनेक उत्तरो का पुन स्मरण कर सकता है, परतु उनमे से उचित उत्तर को शीघ्रता तथा स्पष्ट ढग से पहचानने पर ही उसे अच्छी स्मृति वाला बालक कहा जा सकता है।

स्मरण करने की विधियाँ
(Methods of Memorizing)

मनोवैज्ञानिको ने स्मरण करने की अनेक विधियों का उल्लेख किया है। स्मरण करने की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नवत् है—

1. पूर्ण तथा खड विधि (Whole Vs Part Method)
2. सान्तर तथा निरन्तर विधि (Spaced Vs Nonspaced Method)
3. सक्रिय तथा निष्क्रिय विधि (Active Vs Passive Method)
4. बौद्धिक तथा रटन्त विधि (Understanding Vs Cramming Method)

स्मरण करने की पूर्ण विधि से तात्पर्य किसी पाठ को एक साथ प्रारम्भ से अत तक दोहरा कर याद करने से है, जबकि खड विधि मे पाठ को छोटे-छोटे कुछ खडो मे विभक्त करके एक-एक खड को याद किया जाता है। छोटे बच्चो के लिए अथवा जटिल व बडी पाठ्यवस्तु के लिए खड विधि अधिक उपयुक्त मानी जाती है, जबकि प्रौढ व्यक्तियो या बड़े बच्चो अथवा सरल व छोटी पाठ्यवस्तु के लिए पूर्णविधि उपयुक्त मानी जाती है। वास्तव मे दोनो ही विधियो के अपने-अपने कुछ गुण व दोष है इसलिए आवश्यकतानुसार खड विधि अथवा पूर्ण विधि या इनका मिश्रित रुप प्रयुक्त किया जा सकता है।

स्मरण की सान्तर विधि मे किसी विषयवस्तु को स्मरण करने के लिए उसे समय अन्तरालो पर बार-बार दोहरा कर याद किया जाता है, जबकि निरन्तर विधि मे एक ही बैठक मे विषयवस्तु को बार-बार दोहराकर याद किया जाता है। स्थायी स्मृति के लिए सान्तर विधि अधिक उपयुक्त होती है, जबकि तात्कालिक स्मृति के लिए निरन्तर विधि को अधिक अच्छा माना जाता है।

स्मरण करने की सक्रिय विधि के अतर्गत कुछ करके, लिखकर या बोलकर विषयवस्तु का स्मरण किया जाता है, जबकि निष्क्रिय विधि मे मन ही मन पढकर या देखकर या सुनकर विषयवस्तु को याद किया जाता है। छोटी कक्षा के बालकों के लिए सक्रिय विधि अधिक उपयोगी होती है, जबकि बडी कक्षा के विद्यार्थियो के लिए निष्क्रिय

विधि अधिक उपयोगी होती है।

बौद्धिक विधि के अतर्गत पाठ को अच्छी तरह से समझा कर तार्किक ढग से याद किया जाता है, जबकि रटन्त विधि मे विषयवस्तु को बिना सोचे-समझे बार-बार दोहराकर रट लिया जाता है। रटन्त विधि की अपेक्षा बौद्धिक विधि को अधिक अच्छा माना जाता है।

विस्मरण
(Forgetting)

विस्मरण से तात्पर्य स्मरण की विफलता से है। जब व्यक्ति अपने भूतकाल के अनुभवो को चेतन मे लाने मे असफल हो जाता है, तब उसे विस्मृति कहते है। सामान्यत विस्मरण को व्यक्तित्व का एक नकारात्मक पक्ष माना जाता है, परतु विस्मरण सदैव ही अनुचित नही होता है। कभी-कभी जीवन मे कुछ बातें ऐसी होती है जिन्हें विस्मरण करना ही व्यक्ति के लिए उचित होता है। उदाहरण के लिए अतीत के कष्टदायक या दुखद अनुभवो को भूलना ही उचित प्रतीत होता है। विस्मरण एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति पूर्व मे धारण किये गये अनुभवो को पुन स्मरण करने मे असमर्थ हो जाता है। स्मृति चिन्हो के धुँधला पड जाने अथवा लोप हो जाने पर व्यक्ति पुन स्मरण तथा पहचानने मे स्वय को असमर्थ पाता है। मनोवैज्ञानिको ने विस्मरण की अनेक परिभाषाये दी है—

मन के अनुसार —"सीखी गई बात को धारण रखने या पुन स्मरण रखने की असफलता विस्मरण है।"

Forgetting is failing to retain or to be able to recall what has been acquired.

—Munn

ड्रेवर के अनुसार —"विस्मरण से तात्पर्य किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव को याद करने अथवा सीखे गए कार्य को करने मे असफलता से है।"

Forgetting means failure at any time to recall an experience, when attempting to do so, or to perform an action previously learned.

—Drever

स्पष्ट है कि सीखी गई बातो को स्मरण रखने की असफलता ही विस्मरण कहलाती है। विस्मरण व्यक्ति को अनावश्यक तथा व्यर्थ की बातो से मुक्त करती है। विस्मरण से व्यक्ति आवश्यक तथा उपयोगी नवीन बातो को धारण करने के लिए तत्पर हो जाता है।

स्मरण तथा विस्मरण को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors affecting Remembering and Forgetting)

स्मरण तथा विस्मरण को अनेक कारक प्रभावित करते है। स्मरण तथा विस्मरण को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नवत् है—

1. समय अन्तराल (Time Interval)

अधिगम तथा धारण के बीच समय अन्तराल जितना अधिक होता है, धारण की मात्रा उतनी ही कम होती जाती है तथा विस्मरण की मात्रा उतनी ही बढती जाती है। इबिंगहॉस (Ebbinghaos—1885) ने विस्मरण के क्षेत्र में सम्भवत सर्वप्रथम प्रयोगात्मक अध्ययन किये तथा पाया कि सीखने के उपरान्त विस्मरण तीव्र गति से प्रारम्भ हो जाता है उसने देखा कि लगभग दस घटे मे व्यक्ति सीखी गई निरर्थक सामग्री का 60 प्रतिशत से अधिक भाग भूल जाते है। बाद के अध्ययनो मे भी लगभग इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए। एबिगहॉस ने विस्मरण वक्र (Forgetting Curve) का निर्माण किया। चित्र 37 में स्मृति वक्र को प्रस्तुत किया गया है।
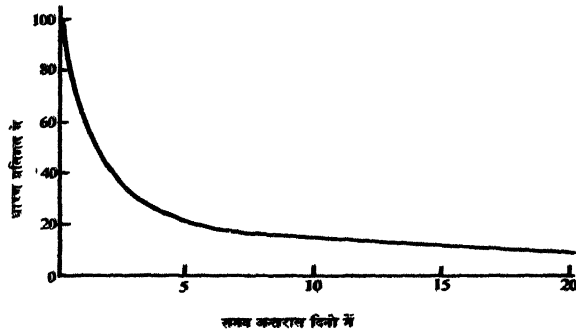
चित्र—37

स्मरण-विस्मरण पर समय अन्तराल का प्रभाव

2. अधिगम स्तर (Level of Learning)

अधिगम् की जाने वाली विषयवस्तु का अभ्यास जितना अधिक बार किया जाता है उसका धारण भी उतना ही अधिक होता है। जिसके फलस्वरुप उसका स्मरण अधिक होता है तथा विस्मरण कम होता है। अनेक अध्ययनो ने सिद्ध कर दिया है कि एक निश्चित सीमा तक अधिगम की मात्रा बढाने पर धारण की मात्रा भी वढती है। परतु उस सीमा के उपरान्त अधिगम की मात्रा बढ़ाने पर धारण उसी अनुपात मे नही बढ़ता है अधिगम मात्रा तथा स्मरण के बीच सम्बध को चित्र 38 मे दर्शाया गया है।
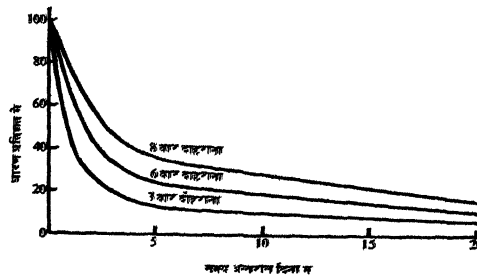
चित्र—38 स्मरण-विस्मरण पर अधिगम स्तर का प्रभाव

सीखा गया ज्ञान अधिक समय तक स्मरण रहता है, जबकि निष्क्रिय अथवा रटन्त विधि से सीखा गया ज्ञान विस्मृत हो जाता है। सुखद वातावरण मे सीखी गई बातें अधिक समय तक स्मरण रहती है, जबकि दुखद वातावरण मे सीखी गई बातें व्यक्ति विस्मृत करना चाहता है।

स्मृति प्रशिक्षण
(Training for Memory)

भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की स्मरणशक्ति मे अतर पाया जाता है। यद्यपि आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्मृति को जन्मजात गुण मानते है। फिर भी प्रयोगो के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि अभ्यास तथा प्रशिक्षण से स्मृति को कुछ सीमा तक बढाया जा सकता है। प्रश्न उठता है कि स्मृति को बढाने के लिए किस प्रकार के अभ्यास तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। स्मृति को बढाने मे निम्न उपाय सहायक हो सकते है—

1. सीखने की इच्छा स्मरण शक्ति को प्रभावित करती है। जब तक कोई व्यक्ति सीखने का इच्छुक नही होता है तब तक उसमे उस वस्तु को स्मरण करने की ललक नही होती है। अत अच्छे स्मरण के लिए सीखने की इच्छा का होना अत्यत आवश्यक है। अध्यापको तथा अभिभावको को शिक्षण कार्य करते समय सर्वप्रथम बालकों मे सीखने की इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए। जिससे सीखी गई विषयवस्तु अथवा बाते बालको के द्वारा सरलता व शीघ्रता से स्मरण की जा सके।

2. करके सीखना, सीखने की एक अधिक अच्छी विधि मानी जाती है। जब व्यक्ति किसी कार्य को करके सीखता है तब वह अधिक समय तक स्मरण रहता हैं। यही कारण है कि सक्रिय स्मृति को निष्क्रिय स्मृति की तुलना मे श्रेष्ठ माना जाता है। अध्यापको तथा अभिभावको को बच्चो मे करके सीखने की आदत विकसित करनी चाहिए जिससे सीखी गई विषयवस्तु अधिक समय तक स्मरण रहे।

3. नवीन सीखी गई विषयवस्तु को पूर्ववर्ती सीखी गई विषयवस्तु से सबधित करके सिखाया जाना चाहिए। सहसबधित पाठ्यवस्तु अधिक समय तक स्मरण रहती है।

4. सीखी गई विषयवस्तु को अधिक समय तक स्मरण रखने का सर्वाधिक सरल उपाय उसे समय-समय पर दोहराना है। यदि छात्र समय-समय पर सीखी गई बातो को दोहराते रहेगे तब वह अधिक समय तक स्मरण रहेगी।

5. सीखने के उपरान्त विश्राम भी स्मरण शक्ति को प्रभावित करता है। सीखने के बाद विश्राम न लेने या अत्याधिक विश्राम लेने से स्मरण शक्ति घट जाती है। सम्भवत सीखने के उपरान्त कुछ मिनटो का विश्राम थकावट के प्रभाव को समाप्त कर देता है। जिसके परिणामस्वरुप धारण शक्ति अच्छी हो जाती है। सीखने के उपरान्त अत्यधिक अन्तराल हो जाने पर विस्मरण का प्रभाव होने लगता है।

6. पाठ्यसामग्री का सार्थक अथवा असार्थक होना भी स्मरण को प्रभावित करता है। प्रयोगो मे देखा गया है कि सार्थक विषयवस्तु की स्मृति अधिक अच्छी होती है, जबकि असार्थक विषयवस्तु की स्मृति कम होती है। अत बालको को अर्थयुक्त विषयवस्तु ही पढायी जानी चाहिए।

---

21 संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययीकरण तथा कल्पना

(Sensation, Perception, Conception and Imagination)

प्राणी वातावरण मे उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपको के प्रति प्रतिक्रियाये करके धीरे-धीरे अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करता है। वाह्य जगत का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है। ज्ञानेन्द्रियो के प्रभाव को सवेदना कहते है। प्राणी क्या व्यवहार करता है, क्यों करता है तथा कैसे करता है, ये तीनो प्रश्न मनोवैज्ञानिको के लिए सदैव ही अत्यत महत्वपूर्ण रहे है। वास्तव मे प्राणी तथा वातावरण के वीच होने वाली अन्तर्क्रिया ही उसके व्यवहार को निर्धारित करती है। प्राणी के लिए अपने पर्यावरण को जानना अत्यत आवश्यक है। व्यक्ति अपने पर्यावरण को कैसे जानता है, उस पर कैसे नियत्रण करता है, उससे किस प्रकार अन्तर्क्रिया करता है, यह एक अत्यत जटिल प्रश्न है जिसका उत्तर सवेदना, प्रत्यक्षीकरण प्रत्यय निर्माण तथा कल्पना के अध्ययन से मिल सकता है। प्रस्तुत अध्याय मे सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण तथा कल्पना के वारे मे चर्चा की गई है।

संवेदना
(Sensation)

सवेदना मस्तिष्क की एक सामान्य तथा सरलतम प्रतिक्रिया है। वालक जव जन्म लेता है तो वह अपने वाह्य जगत के सम्वन्ध मे कुछ नही जानता है। धीरे-धीरे उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य करना प्रारम्भ कर देती है तथा वह अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने लगता है। ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा व्यक्ति पर होने वाले प्रभाव को सवेदना कहते है। सवेदना का पूर्व ज्ञान अथवा अनुभव से कोई सम्वन्ध नही होता है। क्योकि ज्ञानेन्द्रियो से ज्ञान प्राप्त होता है इसलिए इन्हे ज्ञान के द्वार भी कहा जाता है। पहले पॉच ज्ञानेन्द्रियो अर्थात् ऑख, कान, नाक, त्वचा तथा जिह्वा के आधार पर पॉच प्रकार की सवेदनाओ को माना जाता था। ये सवेदनाये है—(i) दृष्टि सवेदना (Visual Sensation), (ii) श्रवण सवेदना (Hearing Sensation), (iii) घ्राण सवेदना (Smell Sensation), (iv) स्वाद सवेदना (Taste Sensation) तथा (v) स्पर्श सवेदना (Touch Sensation)। परतु आधुनिक मनोवैज्ञानिक सात सवेदनाओ के अस्तित्व को स्वीकार करते है। उनके अनुसार उपरोक्त पॉच सवेदनाओ के अतिरिक्त दिशा सवेदना (Direction Sensation) तथा सतुलन सवेदना (Balance Sensation) भी होते है।

संवेदना के पक्ष
(Aspects of Sensation)

सवेदना के चार मुख्य पक्ष है—(i) जानना (Detection), (ii) विभेदीकरण (Discrimination), (iii) तादात्मिकरण (Identification) तथा (iv) पहचान (Recognition)।

सवेदना के जानने से तात्पर्य यह जानने से है कि वातावरण मे उपस्थित अनेक उद्दीपको मे से किस उद्दीपक से सवेदना हुई है। सवेदना का जानना इस बात पर निर्भर करता है कि उस उद्दीपक में कितनी ऊर्जा है जो व्यक्ति की किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्रभावित कर रहा है।

विभेदीकरण सवेदना का द्वितीय पक्ष है। विभेदीकरण से अभिप्राय एक साथ होने वाली दो समान प्रकार की सवेदनाओ मे विभेद करने से है। जैसे यदि एक साथ व्यक्ति के पैर मे कोई बारीक सुई चुभाई जाये तथा हाथ में मोटी सुई चुभाई जाये तो वह यह विभेद कर ले कि पैर तथा हाथ मे होने वाली चुभन मे क्या अतर है।

तादात्मीकरण सवेदना का तृतीय पक्ष है जिसका तात्पर्य सवेदना की प्रकृति तथा मात्रा को जानने से है।

पहचान सवेदना का चतुर्थ व सर्वोच्च पक्ष है जिसके अभिप्राय सवेदना को पहचान लेने से है।

संवेदना के लक्षण
(Symptoms of Sensation)

मनोभौतिकी अध्ययनो से स्पष्ट हो गया है कि विभिन्न उद्दीपकों से होने वाली संवेदनाओ मे चार प्रमुख लक्षण होते है। ये है—(i) गुण (Quality), (ii) तीव्रता Intensity), (iii) व्यापकता (Extensity), तथा (iv) अवधि (Duration)

गुण (Quality)—गुण सवेदना की मुख्य विशेषता है। सवेदना का प्रकार उसके गुण पर निर्भर करता है। प्रत्येक सवेदना मे एक विशेष गुण पाया जाता है जो उसे अन्य सवेदनाओं से भिन्न करता है। गुण के आधार पर सवेदनाओ को सात भागो मे बाँटा जा सकता है—दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, दिशा तथा सतुलन सवेदनाये। गुण के आधार पर ये सभी सवेदनाये एक-दूसरे से पूर्णत भिन्न होती है।

तीव्रता (Intensity)—सवेदनाओं की दूसरी विशेषता तीव्रता है। भिन्न-भिन्न संवेदनाओं की तीव्रता भिन्न-भिन्न होती है। कुछ सवेदनाये अधिक तीव्र होती है, जबकि कुछ सवेदनाये कम तीव्र होती है। जिन सवेदनाओं की तीव्रता अधिक होती है उनसे अधिक तीव्र सवेदनात्मक अनुभव उत्पन्न होते है। उदाहरण के लिए कम ध्वनि की अपेक्षा अधिक तीव्र ध्वनि अधिक तीव्र सवेदना उत्पन्न करती है।

व्यापकता (Extensity)—सवेदनाओ मे व्यापकता का लक्षण भी पाया जाता है। ज्ञानेन्द्रियो के सीमित क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाली सवेदनाओ का विस्तार कम व्यापक होता है, जबकि व्यापक क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाली सवेदनाओ का विस्तार अधिक होता है। उदाहरण के लिए स्पर्श संवेदना त्वचा के सीमित भाग के लिए भी हो

सकती है तथा व्यापक भाग के लिए भी हो सकती है। कुछ सवेदनाओं के लिए व्यापकता का निर्धारण करना अत्यत कठिन कार्य होता है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिको की मान्यता है कि व्यापकता सभी सवेदनाओ मे नही पाई जाती है।

अवधि (Duration)—सवेदना की चौथी विशेषता उसकी अवधि है। भिन्न-भिन्न सवेदनाओ की अनुभूति भिन्न-भिन्न अवधि तक होती है। कुछ संवेदनाये क्षणिक होती है, कुछ अल्पकालिक होती है तथा कुछ दीर्घकालिक होती है।

विभिन्न सवेदनाओं का सक्षिप्त विवरण निम्नाकित तालिका मे प्रस्तुत किया गया है

तालिका
संवेदनाओं का संक्षिप्त विवरण

सवेदना	भौतिक उद्दीपक	सावेदिक अग	सावेदिक अनुभव
दृष्टि	प्रकाश	आँख	रग, चमक, आकार
श्रवण	ध्वनि	कान	शोर
घ्राण	गन्ध	नाक	सुगन्ध, दुर्गन्ध
स्वाद	घुलनशील पदार्थ	जिह्वा	खट्टा, मीठा, कडुवा
स्पर्श	यान्त्रिक उद्दीपन	त्वचा	दवाव

संवेदना के लिए ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा (Education of Sense Organs for Sensaton)

सवेदना के द्वारा प्राणी को विभिन्न वस्तुओ अथवा परिस्थितियो का प्रारम्भिक ज्ञानं प्राप्त होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। ज्ञान प्राप्ति मे ज्ञानेन्द्रियो तथा सवेदनाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। सवेदना ज्ञान प्राप्ति का प्रथम सोपान है। ज्ञानेन्द्रियो के माध्यम से व्यक्ति को सवेदना होती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने बालको की शिक्षा में ज्ञानेन्द्रियो तथा सवेदनाओ को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आधुनिक काल मे पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षा को ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा के रुप मे स्वीकार किया जाता है। शैक्षिक दृष्टि से ज्ञानेन्द्रियो की शिक्षा अत्यत आवश्यक है। ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञानेन्द्रियों को इस प्रकार से प्रशिक्षित करना है कि बालकों को सही ढग से अनुभव तथा निरीक्षण करना आ जाये, जिससे बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों का सही उपयोग करना सीख जाये। ज्ञानेन्द्रियो के समुचित विकास से बौद्धिक विकास मे सहायता मिलती है। मैडम मॉन्टेसरी ने अपनी शिक्षण विधि मे छोटे बालकों को शिक्षा प्रदान करने मे ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा पर जोर दिया है। उन्होंने ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के शिक्षोपकरण (Didactic Apparatus) का निर्माण किया जिनके माध्यम से बालक प्रसन्नतापूर्वक अपनी ज्ञानेन्द्रियों का समुचित उपयोग करना सीख लेता है। ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा का दूसरा पक्ष उन बच्चों की शिक्षा से सबधित है जिनकी ज्ञानेन्द्रियो मे कुछ दोष है। दोषयुक्त

ज्ञानेन्द्रियों वाले बालकों जैसे अन्धे, बहरे, या गँगे बालकों की शिक्षा साधारण ज्ञानेन्द्रियो वाले बालको के साथ उचित ढग से नही हो सकती । अत जिन बालको की ज्ञानेन्द्रियो मे कुछ दोष हो, उनकी विशिष्ट आवश्यकताओ के प्रति सजग रहकर उनकी शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए ।

सवेदना का मानव जीवन मे अत्यन्त महत्व है । व्यक्ति सवेदनाओ के द्वारा ही अपने बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करता है । सवेदनाओ के अभाव मे व्यक्ति के लिए किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव कदापि नही हो सकता है । जन्म से वहरे व्यक्ति के लिए ध्वनि ज्ञान अर्थात् स्वरो की जानकारी अर्जित करना असम्भव ही होता है । जन्मान्ध व्यक्ति दृष्टि सम्बन्धी ज्ञान अर्थात् विभिन्न रगों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने मे असमर्थ ही रहता है । मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियो के पशु-पक्षियो की ज्ञानेन्द्रियो से अधिक विकसित होने के कारण मनुष्य सवेदनाओ की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ होते है । परन्तु कुछ पशु-पक्षी किन्ही विशिष्ट सवेदनाओ मे मनुष्य-से अधिक वढे-चढे होते है । जैसे गिद्ध की दृष्टि सवेदना इतनी तीव्र होती है कि वह काफी दूर की वस्तु को देख लेता है जवकि मनुष्य उतनी दूर की वस्तु को देखने मे असमर्थ होता है । इसी प्रकार से घ्राण सवेदना मे कुना मनुष्य से अधिक प्रबल होता है ।

शिक्षा के क्षेत्र मे सवेदनाओ को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाना स्वाभाविक ही है । बौद्धिक विकास की दृष्टि से ज्ञानेन्द्रियो को प्रशिक्षित करके उनका विकास करना अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है । बालको की सवेदनाएँ प्रवलता तथा स्पष्टता की दृष्टि से प्रौढो की सवेदनाओ से काफी पिछडी होती है । जैसे-जैसे बालको की मानेन्द्रियो का विकास होता जाता है वैसे-वैसे उनकी सवेदनाएँ स्पष्ट तथा प्रबल जाती हैं । यही कारण है कि प्रारम्भ से ही बालको के लिए ज्ञानेन्द्रियो शिक्षा की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण माना जाता है । ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा की उचित व्यवस्था करके बालको की सवेदनाओ को स्पष्ट स्वरूप दिया जा सकता है जो कालान्तर मे बालको के भावी विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है, मद वुद्धि बालको की सख्या को कम कर सकता है तथा राष्ट्र को अधिक सुयोग्य नागरिक उपलब्ध करा सकता है । परिवार तथा पूर्व-प्राथमिक विद्यालय छोटे बालको को सर्वोत्तम ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा हेतु आवश्यक वातावरण उपलब्ध करा सकते है ।

नि सन्देह ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा की उचित व्यवस्था करने के लिए यह आवश्यक होगा कि सर्वप्रथम बालकों की ज्ञानेन्द्रियो की ओर उचित ध्यान दिया जाये । यदि किसी बालक की ज्ञानेन्द्रियो मे कोई दोष या रोग है तो उस दोष या रोग का उपचार करने के लिए चिकित्सीय परामर्श लेना चाहिए । कमजोर दृष्टि वाले बालक श्यामपट पर लिखी बातो को ठीक प्रकार से देखने मे कठिनाई का अनुभव करते है । इसी प्रकार से ऊँचा सुनने वाले बालक प्राय कक्षा मे अध्यापक के द्वारा बताई जा रही बातो को ठीक ढग से सुनने मे असमर्थ रहते है । अत यह आवश्यक ही होगा कि बालको की ज्ञानेन्द्रियो का समय-समय पर परीक्षण कराया जाये तथा रोग का पता चलने पर उसके माता पिता को उपचार हेतु परामर्श दिया जाये । अध्यापक को चाहिए कि वह दृष्टि दोष या श्रवण दोष वाले बालकों को कक्षा मे आगे वैठाये जिससे वे श्यामपट पर लिखी बातो को ठीक ढग से पढ़ सके तथा अध्यापक द्वारा कही बातो को सही ढग से सुन सके ।

बालको की ज्ञानेन्द्रियो के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि उन्हे उचित क्रियाशील वातावरण उपलब्ध हो सके। वास्तव मे बालको के स्वाभाविक विकास मे उनकी क्रियाशीलता तथा चचलता के महत्वपूर्ण तथा उपयोगी भूमिका अदा करती है। बालक अपनी क्रियाशीलता या चचलता के कारण स्वाभाविक ढग से भिन्न-भिन्न वस्तुओ के बारे मे ज्ञान प्राप्त करते रहते है। माता-पिता तथा अध्यापको को इसमें किसी प्रकार का कोई व्यवधान उत्पन्न नही करना चाहिए। सकुचित तथा निष्क्रिय वातावरण मे बालको की ज्ञानेन्द्रियो का विकास ठीक ढग से नही पाता है जबकि खुला तथा क्रियाशील पारिवारिक व विद्यालीय वातावरण ज्ञानेन्द्रियो के विकास मे सहायता करता है। उपयुक्त खेल-खिलोनो की व्यवस्था करके छोटे बालको को क्रियाशील बनाया जा सकता है।

प्रत्यक्षीकरण
(Perception)

प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य सवेदना की व्याख्या करने से है। बाह्य उद्दीपकों अर्थात् वातावरण से प्राप्त होने वाली उत्तेजनाओ का तात्कालिक ज्ञान देने वाली मानसिक प्रक्रिया को प्रत्यक्षीकरण कहते है। दूसरे शब्दो मे प्रत्यक्षीकरण के अतर्गत व्यक्ति सवेदनाओ की व्याख्या करके उन्हे अर्थमुक्त बनाता है। कोई भी सवेदनात्मक स्थिति प्रत्यक्षीकरण का आधार बन सकती है। कुछ लोगो के विचार मे प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य किसी वस्तु को प्रत्यक्ष रुप मे देखने से है। परतु वास्तव मे, प्रत्यक्षीकरण केवल दृष्टि सवेदना अथवा दृष्टि ज्ञानेन्द्रिय से सम्बधित नही हैं वरन् यह किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से प्राप्त होने वाली सवेदनाओ पर आधारित हो सकता है। किसी बात को सुनना, भोजन की गध सूँघना, किसी वस्तु का स्वाद लेना भी प्रत्यक्षीकरण के उदाहरण है। यदि कोई बालक कुत्ते की आवाज सुनता है तथा पहचान जाता है कि वह कुत्ते की आवाज है तो यह ध्वनि ज्ञानेन्द्रिय से प्राप्त सवेदना का प्रत्यक्षीकरण है। दरअसल उसके पूर्व अनुभव ने उसे बताया कि आने वाली आवाज सडक पर भौकने वाले कुत्ते की है। सवेदनाओ के इस प्रकार के ज्ञान को ही प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है। सवेदना उद्दीपक के प्रति मस्तिष्क की प्रथम प्रतिक्रिया है, जबकि प्रत्यक्षीकरण सवेदना के उपरान्त होने वाली द्वितीय प्रतिक्रिया है। वास्तव मे सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के बीच अतर सैद्धान्तिक दृष्टि से ही किया जाता है। क्रियात्मक रुप मे सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण एक-दूसरे मे इस प्रकार से समाविष्ट होते है कि सवेदना की समाप्ति तथा प्रत्यक्षीकरण के प्रारम्भ होने के सबध मे कुछ कहना कठिन होता है। सवेदना से तात्पर्य ज्ञानेन्द्रियो के किसी बाह्य उद्दीपक के उत्तेजित होने से है, जबकि प्रत्यक्षीकरण से तात्पर्य सवेदना को अर्थ प्रदान करने से है। प्रत्यक्षीकरण पूर्व ज्ञान तथा पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है। इसलिए इसे ज्ञान की ओर दूसरा कदम माना जाता है। जैसे ही व्यक्ति की सवेदनात्मक ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी प्रतिक्रियाये प्रस्तुत करती है, वैसे ही व्यक्ति अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर उन प्रतिक्रियाओ को अर्थ देने का प्रयास करता है। जब वर्तमान सवेदनाये पूर्व ज्ञान के समान होती है तब वर्तमान सवेदनाओ का अर्थ स्पष्ट हो जाता है जिसके परिणामस्वरुप प्रत्यक्षीकरण होने लगता है। प्रत्यक्षीकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाये दी हैं। कुछ परिभाषाये निम्नवत् हैं—

रायबर्न के अनुसार—"अनुभव के आधार पर सवेदना की व्याख्या करने की प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण कहलाती है।"

The process of interpretation of sensation according to experience is known as perception.

—Ryburn

वुडवर्थ के शब्दों में —"प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा वस्तुओ तथा वस्तुनिष्ठ तथ्यो को जानने की प्रक्रिया है।"

Perception is the process of getting to know objects and objective facts by use of the senses.

—Wood Worth

कॉलिन्स तथा ड्रेवर के अनुसार —"सवेदना के द्वारा किसी वस्तु अथवा परिस्थिति को तत्काल समझ लेना प्रत्यक्षीकरण है।"

Perception is the immediate apprehension of an object or situation by way of sensation.

—Collins and Drever

प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है जो सवेदना के उपरान्त तथा चिन्तन से पूर्व सम्पादित होती है। सवेदना बाह्य उद्दीपको पर आधारित होती है जिसमे पूर्व अनुभवो अथवा अधिगम का कोई स्थान नही होता है। प्रत्यक्षीकरण मे बाह्य उद्दीपनो तथा पूर्व अनुभव व अधिगमो का पर्याप्त योगदान रहता है। चिन्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण करने पर इसके अग्राकित सात सोपान प्राप्त होते है नि.सदेह इनमे से पाँच सोपान सवेदना से सम्बंधित है, परंतु प्रत्यक्षीकरण के सवेदना के अनुगामी होने के कारण इन्हे प्रत्यक्षीकरण के सोपान के रुप में स्वीकार किया जा सकता है। ये सात सोपान है—(i) बाह्य उत्तेजक का होना (ii) उत्तेजक का ज्ञानेन्द्रियो को उत्तेजना देना, (iii) ज्ञानेन्द्रियो का ज्ञान वाहक ततुओ को प्रभावित करना, (iv) ज्ञान वाहक ततुओ का उत्तेजना को मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र मे पहुँचाना, (v) संवेदना होना, (vi) संवेदना की पूर्व अनुभवो से तुलना करना, (vii) सवेदना को अर्थ देने के फलस्वरुप प्रत्यक्षीकरण होना।

संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण में अंतर

(Difference between Sensation and Perception)

सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के सबध मे उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण एक-दूसरे से घनिष्ठ रुप से सम्बधित हैं, परतु फिर भी इन दोनो में अतर है। नि सदेह सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण दोनों ही ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रियाये है, परतु ये दोनो एक ही शृंखला की दो भिन्न-भिन्न कडियाँ है, सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण के बीच प्रमुख अतर निम्नवत है—

1. सवेदना ज्ञान प्राप्ति का प्रथम सोपान है, जबकि प्रत्यक्षीकरण द्वितीय सोपान है। सवेदना के उपरान्त ही प्रत्यक्षीकरण होता है।

2. सवेदना का पूर्व अनुभव अथवा अधिगम से कोई सम्बंध नही होता है, परतु प्रत्यक्षीकरण पूर्व अनुभव तथा अधिगम पर आधारित होता है।

3. सवेदना एक सरल मानसिक प्रक्रिया है, परतु प्रत्यक्षीकरण अपेक्षाकृत जटिल मानसिक प्रक्रिया है।

4. सवेदना मे व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ तथा नाडी सस्थान ही सक्रिय होता है, जबकि प्रत्यक्षीकरण मे उसका सम्पूर्ण शरीर सक्रिय रहता है।

5. सवेदना से प्राप्त होने वाला ज्ञान अस्पष्ट तथा अनिश्चित होता है, जबकि प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त ज्ञान स्पष्ट तथा निश्चित होता है।

6. सवेदना तात्कालिक अनुभव प्रदान करती है, जबकि प्रत्यक्षीकरण उस अनुभव की व्याख्या करके उसे सगठित रुप प्रदान करता है।

प्रत्यक्षीकरण की विशेषतायें

(Characteristics of Perception)

प्रत्यक्षीकरण की प्रमुख विशेषताये निम्नवत् है—

(1) यह एक मनोवैज्ञानिक प्रकार्य (Psychological Function) है।

(2) प्रत्यक्षीकरण में उद्दीपक से सम्बधित विभिन्न सवेदनाओ मे एकीकरण तथा सगठन पाया जाता है। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि सवेदनाये बिखरी न होकर एक सगठित रुप मे प्रत्यक्षीकृत होती है। जैसे किसी फूल के रग, गध, आकार, स्पर्श आदि से सम्बधित सभी सवेदनाये जब एकीकृत रुप मे सगठित होती है तभी उस फूल का प्रत्यक्षीकरण हो पाता है।

(3) प्रत्यक्षीकरण सवेदनाओं के चुनाव तथा ध्यान (Selection and Attention) पर आधारित होता है। वातावरण मे उपस्थिति सभी उत्तेजक व्यक्ति को आकर्षित नही करते है। जो उद्दीपक व्यक्ति के लिए अर्थपूर्ण होते है, उन्ही उद्दीपको का व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण करता है। वातावरण मे उपस्थित रहने मात्र से किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण नही हो जाता है। एक ही समय में अनेक वस्तुये व्यक्ति के सम्मुख हो सकती हैं, परतु वह उनमे से कुछ ही का प्रत्यक्षीकरण करता है।

(4) प्रत्यक्षीकरण पूर्व अनुभवो तथा अधिगम पर आधारित होता है। पूर्व अनुभव तथा अधिगम जितना विस्तृत व व्यापक होता है, प्रत्यक्षीकरण उतना ही शीघ्र होता है। जिन उद्दीपको का व्यक्ति को कोई अनुभव नही होता, उनके प्रत्यक्षीकरण मे विलम्ब होता है।

(5) प्रत्यक्षीकरण का आधार परिवर्तन होता है। वातावरण मे परिवर्तन होने पर उसका प्रत्यक्षीकरण होता है। वास्तव में परिवर्तन के कारण ही प्रत्यक्षीकरण होता है। यदि बाह्य वातावरण मे कोई परिवर्तन न हो, तब कोई नया अनुभव ही प्राप्त नही होगा। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षीकरण का प्रश्न ही नही उठेगा।

(6) प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति पूर्ण की होती है। प्रत्यक्षीकरण में न केवल उद्दीपक की व्याख्या की जाती है वरन् उद्दीपक मे अनुपस्थित अथवा छुटे हुए भागो की पूर्ति भी हो जाती है। कभी-कभी उद्दीपक के कुछ भाग व्यक्ति के दृष्टि क्षेत्र से बाहर होते हैं, फिर भी व्यक्ति उस उद्दीपक का पूर्ण (Whole) के रुप मे प्रत्यक्षीकरण करता है। जैसे कि बस को देखते समय व्यक्ति उसके सभी भागों को नही देख पाता, फिर भी वह उसके अनदेखें भागों को पूर्ण मान कर ही उसका प्रत्यक्षीकरण करता है।

(7) प्रत्यक्षीकरण एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के प्रत्यक्षीकरण मे अतर होता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के पूर्व अनुभव, शारीरिक तथा मानसिक दशा, रुचियाँ आदि भिन्न-भिन्न होने के कारण एक ही उद्दीपक के प्रति उनके प्रत्यक्षीकरण मे भिन्नता हो सकती है। किसी व्यक्ति को यह ससार सुखद लगता है, जबकि किसी अन्य व्यक्ति को दुखद। एक ही व्यक्ति का दो भिन्न-भिन्न अवसरो पर किसी उद्दीपक के प्रति भिन्न-भिन्न प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। प्रसन्नता प्राप्त होने पर किसकी व्यक्ति को यह ससार सुखद लगता है, जबकि किसी कठिनाई के आने पर वही ससार नीरस व दुखद लगने लगता है।

प्रत्यक्षीकरण के लिए शिक्षा
(Education for Perception)

प्रत्यक्षीकरण ज्ञानप्राप्ति का दूसरा सोपान है। प्रत्यक्षीकरण के द्वारा किसी वस्तु अथवा परिस्थिति को अर्थ दिया जाता है। प्रत्यक्षीकरण का आधार प्राणी का पूर्व ज्ञान होता है। इसलिए शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य बालको के पूर्व ज्ञान तथा अनुभवो मे यथासम्भव वृद्धि करना है जिससे उनमे प्रत्यक्षीकरण का विकास हो सके तथा प्रत्यक्षीकरण मे स्पष्टता हो। प्रत्यक्षीकरण का अवलोकन करने की शक्ति से घनिष्ठ सवध होता है। अवलोकन के द्वारा किसी वस्तु या परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट ढग से होता है। अत प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिए प्रारम्भ से ही बालक की अवलोकन शक्ति का विकास करना चाहिए। मॉन्टेसरी तथा किंडरगार्डन जैसी नवीन शिक्षा प्रणालियो मे अवलोकन शक्तियो के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। क्रियाशीलता के द्वारा बालको को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के अधिक अवसर मिलते है। इसलिए बालको को ऐसा वातावरण तथा अवसर प्रदान किये जाने चाहिए कि वे अधिक क्रियाशील हो सके। बालको के लिए खेलकूद, व्यायाम आदि की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिए बालकों को शैक्षिक दृष्टि से उपयोगी स्थानो को देखने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। सग्रहालयो, प्रसिद्ध इमारतो तथा स्मरणीय स्थानो तथा आस-पास के अन्य वातावरण को देखने के लिए भ्रमण की व्यवस्था की जा सकती है। प्रत्यक्षीकरण को वढाने के लिए अध्यापक विविध प्रकार की शिक्षण सामग्री का प्रयोग कर सकता है। अध्यापक को उदाहरणो तथा श्रव्य, दृश्य सामग्री की सहायता से कठिन व जटिल प्रकरणों को सरस व रोचक ढग से बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करके प्रत्यक्षीकरण को प्रोत्साहित करना चाहिए।

बालको की निरीक्षण शक्ति का विकास करके उनके प्रत्यक्षीकरण को बढाया जा सकता है। बालको की निरीक्षण शक्ति मे गहनता के न होने के कारण वे अपने सम्मुख उपस्थित उद्दीपको को अपने सज्ञान मे नही ला पाते है। बालको को ज्ञानेन्द्रिय विकास के अधिक अच्छे अवसर प्रदान करके उनके प्रत्यक्षीकरण को बढ़ा जा सकता है। माता-पिता तथा अध्यापको को चाहिए कि वे बालको को भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ दिखाये तथा उनकी विशेषताएँ समानता तथा अन्तर सहित स्पष्ट करें। बालकों को निरीक्षण करने के अधिक से अधिक अवसर दिये जाने चाहिए। प्राय बालक अपने सीमित ज्ञान के कारण अपने सम्मुख उपस्थित वस्तुओ मे ठीक ढग से रुचि नही लेते है। अत: बालकों का ध्यान वातावरण की विभिन्न वस्तुओ के प्रति आकर्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। उन वस्तुओ के सम्बन्ध मे तरह-तरह के प्रश्न पूछकर बालको को उन वस्तुओं का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। नवीन शिक्षण विधि जैसे प्रोजक्ट विधि, डाल्टन

योजना, वेसिक शिक्षा पद्धति आदि बालको को निरीक्षण करने से अधिक अवसर देती है। 'कार्य करके सीखने' से वालको की निरीक्षण शक्ति तथा प्रत्यक्षीकरण का विकास होता है।

प्रत्ययीकरण (Conception)

पूर्व अनुभवो के घनीभूत रुप को प्रत्यय कहते है। प्रत्ययो को ज्ञान प्राप्ति का तृतीय सोपान माना जाता है। किन्ही परिस्थितियो, वस्तुओ अथवा कार्यो में एक समान सादृश्यता वाले उद्दीपक की मानसिक प्रतिमा को प्रत्यय कहा जाताहै। सामान्यत विभिन्न परिस्थितियो अथवा वस्तुओं मे उपस्थित सामान्य गुणो अथवा सामान्य सम्वन्धो से प्रत्ययो का निर्माण किया जाता है। प्रत्यय निर्माण सामान्यीकरण की प्रक्रिया है जो विभिन्न सादृश्य वस्तुओ या परिस्थितियों मे तो परिलक्षित होता है, परतु किसी एक वस्तु या परिस्थिति को अभिव्यक्त करने मे सटीक ढग से परिलक्षित नही होता है। मूर्त (Concrete) से अमूर्त (Abstract) की ओर तथा विशिष्ट (Specific) से सामान्य (General) की दिशा मे वढने पर प्रत्ययो का विकास होता है। जैसे-जैसे बालको का वौद्धिक विकास होता जाता है, उनके प्रत्यय अमूर्त होते जाते है। उदाहरण के लिए बालक जव किसी पालतू जानवर को देखकर सीखता है कि वह कुत्ता है तो वह जान जाता है कि कुत्ते की चार टॉग, दो ऑख, एक पूँछ, दो कान तथा सफेद रग होता है किन्तु उसका यह ज्ञान एक विशेष कुत्ते के ज्ञान तक ही सीमित है। इसके उपरात वालक विभिन्न कुत्तो को देखता है तथा धीरे-धीरे उसके मन मे कुत्तो से सम्वधित एक सामान्य विचार बन जाता है तथा वह कुत्तो का अन्य जानवरो से भेद करके पहचानना सीख लेता है। बालक के मन मे वनने वाले इस सामान्यीकृत विचार (Generalized Pattern) को ही प्रत्यय कहते है। धीरे-धीरे बालक अनेको प्रत्ययो का निर्माण कर लेता है। सामान्यीकरण की प्रक्रिया मे मस्तिष्क व्यक्तिगत प्रतिभाओ मे निहित विशिष्ट गुणो को अलग कर देता है तथा सामान्य गुणो को एकीकृत करके सामान्य प्रत्यय का निर्माण करता है। उपरोक्त उदाहरण मे वालक विभिन्न को देखता है तथा उनके विशिष्ट गुणो को अलग करके केवल सामान्य गुणों को मिला कर एक सामान्य कुत्ते की प्रतिमा का निर्माण कर लेता है। अव कुत्ते शब्द को कहने, सुनने या पढने मात्र से वालक मन ही मन कुत्ते की सामान्य विशेषताओ को समझ लेता है। स्पष्ट है कि प्रत्यय निर्माण मे व्यक्ति शब्द के साथ एकाकार हो जाता है। प्रत्ययो के विकास से व्यक्ति अधिक शक्तिशाली भौतिक उपकरणो से सुसज्जित हो जाता है, तथा चिन्तन, तर्क तथा समस्या-समाधान के जटिल मानसिक कार्य करने मे स्वय को समर्थ पाता है। प्रत्ययो के समवध मे कुछ विद्वानो के विचार अग्राकित प्रस्तुत किये गये है—

वुड वर्थ के अनुसार—"प्रत्यय वे विचार है, जो वस्तुओ, घटनाओ, गुणो आदि का उल्लेख करते है।"

Concepts are ideas which refer to objects, events, qualities, etc.

—Wood Worth

डगलस तथा हालैंड के अनुसार—"प्रत्ययीकरण मस्तिष्क मे विचार के निर्माण से सम्वधित है।"

Conception refers to the formation of an idea in the mind.

स्पष्ट है कि एक ही प्रकार की वस्तुओ तथा उनके गुणो को समझ लेना ही प्रत्यय है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि प्रत्यय किसी देखी गई वस्तु के सामान्य गुणो को प्रस्तुत करता है। जातिवाचक तथा भाववाचक सज्ञाये प्रत्ययो की ओर ही सकेत करती है।

प्रत्ययों की विशेषतायें

(Characteristics of Concepts)

प्रत्ययो की प्रमुख विशेषताये निम्नवत् है—

1. प्रत्यय किसी सामान्य वर्ग या जाति को व्यक्त करने वाला सामान्य विचार है। दूसरे शब्दो मे प्रत्यय वर्गीकरण (Categorization) के साथ प्रस्तुत होते है।

2. प्रत्ययो का सबध व्यक्ति के विचारों से होता है। प्रत्यय वास्तविक भी हो सकते है तथा काल्पनिक भी।

3. प्रत्यय सबधित वर्ग विशेष की वस्तुओ अथवा परिस्थितियो के सामान्य गुणो तथा विशेषताओ की सूचना प्रदान करते है।

4. प्रत्यय अनुभवो तथा पूर्व अधिगम पर आधारित होते है। अनुभवो तथा अधिगम मे वृद्धि के साथ प्रत्ययो की सख्या बढती जाती है। विभिन्न व्यक्तियो के प्रत्यय एक ही वस्तु के सबध मे भिन्न-भिन्न हो सकते है।

5. प्रत्यय अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे वस्तु प्रत्यय (Object Concepts),गुण प्रत्यय (Attribute Concepts) तथा सम्बध प्रत्यय (Relation Concepts)।

प्रत्यय निर्माण

(Concept Formation)

मस्तिष्क विभिन्न वस्तुओं अथवा परिस्थितयो का प्रत्यक्षीकरण करके प्राप्त सूचनाओ के आधार पर प्रत्ययो का निर्माण करता है। प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया मे व्यक्तियों को निम्नाकित पाँच मानसिक क्रियाओ अथवा सोपानो से गुजरना पडता है—

(1) **अवलोकन** (Observation) —प्रत्यय निर्माण प्रक्रिया का प्रथम सोपान अवलोकन है। बालक अनेको वस्तुओ को देखता है तथा उनकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करता है।

(2) **विश्लेषण** (Analysis) —प्रत्यय निर्माण का दूसरा सोपान अवलोकित वस्तु अथवा परिस्थिति के गुणो अथवा विशेषताओ को विश्लेषित करना है। बालक विभिन्न वस्तुओं को देखने से प्राप्त ज्ञान का विश्लेषण करता है।

(3) **तुलना** (Comparision) —अवलोकन तथा विश्लेषण के उपरान्त तुलना की जाती है। वह एक ही प्रकार की वस्तुओ अथवा परिस्थतियो की विशेषताओ की तुलना करता है। इस तुलना के द्वारा वह विभिन्न वस्तुओ अथवा परिस्थितियो मे समानता तथा असमानताओं को जान जाता है।

(4) **पृथक्करण** (Differenciation) —अवलोकन, विश्लेषण तथा तुलना के

उपरान्त समान प्रकार की वस्तुओ अथवा परिस्थितियो मे पाई जाने वाली समानताओं तथा भिन्नताओ को पृथक किया जाता है। पृथक्करण के द्वारा वस्तुओं में समानता तथा अन्तर का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। एक समान वस्तुओ मे पाये जाने वाले सामान्य गुण का विभेदन करना अमूर्तकरण (Abstraction) कहलाता है।

(5) **सामान्यीकरण** (Generalization) —प्रत्यय निर्माण प्रक्रिया का अन्तिम सोपान सामान्यीकरण करना है। अवलोकन, विश्लेषण, तुलना तथा पृथक्करण से विभिन्न वस्तुओं के गुणों का परिचय मिल जाता है तथा उनकी समानता व असमानता स्पष्ट हो जाती है। विभिन्न असमानताओ के बावजूद भी कुछ वस्तुओं अथवा परिस्थितियों मे एकरूपता परिलक्षित होती है। बालक उनके सामान्य गुण पहचानने लगते है। सामान्य गुणो के आधार पर साम्य वस्तुओ की एक मानसिक प्रतिमा स्पष्ट हो जाती है जिसे प्रत्यय कहा जाता है। इस प्रत्यय को एक सज्ञा देकर उसका नामकरण कर दिया जाता है। यह सज्ञा सम्वधित प्रत्यय के सामान्य गुणो को इगित करती है।

प्रत्यय निर्माण के उपरोक्त वर्णित पाँचो सोपान एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगे। उदाहरणार्थ बालक किसी सफेद रग के कुत्ते को देखता है, तब उसे उस कुत्ते विशेष की अनेक विशेषताओ का ज्ञान हो जाता है। कालान्तर में बालक घोडा, गाय, ऊँट तथा अन्य कुत्तो को देखता है वह उन विभिन्न जानवरो के गुणों का विश्लेषण करता रहता है। अवलोकन तथा विशलेषण के आधार पर वह भिन्न-भिन्न जानवरो की विशेषताओ की तुलना करता है। वह सफेद रग के अन्य जानवर देखता है तथा जान जाता है कि कुत्ते तथा अन्य जानवरो मे क्या अतर है। वह सफेद, काले, भूरे रग के कुत्तों की विशेषताओं की तुलना करता है तथा देखता है कि रग मे असमानता होने पर भी इनमे अनेक समानताये है, तब वह पृथक्करण के द्वारा कुत्तो के समान्य गुणो को पृथक कर लेता है। उसे विभिन्न कुत्तो मे भिन्नताओ के वावजूद भी एक साम्य दिखाई देता है है तथा अब उसके मस्तिष्क मे कुत्तों का सामान्य रुप स्पष्ट हो जाता है जिसे वह कुत्ता सज्ञा से सम्बोधित करता है। अब कुत्ते शब्द से बालक को एक निश्चित जाति के जानवर का बोध होता है।

प्रत्ययों के निर्माण से सबधित मनोवैज्ञानिको ने अनेक अध्ययन किये। प्याजे ने प्रत्ययों के विकास के सबध मे अत्यत महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने प्रत्यय निर्माण की प्रकृति की व्याख्या की है। प्याजे ने बौद्धिक विकास को चार स्तरो-सावेदिक गतिक अवस्था (Sensory Motor Stage),पूर्व सक्रिया अवस्था (Pre-Operational Stage), मूर्त सक्रिया अवस्था (Concrete-Operational Stage) तथा औपचारिक सक्रिया अवस्था (Formal-Operational Stage) मे विभक्त किया। उसके अनुसार मूर्त सक्रिया अवस्था से प्रत्यय का निर्माण शुरु हो जाता है तथा औपचारिक सक्रिया अवस्था मे प्रत्ययो का विकास परिपक्वता को प्राप्त करता है। प्याजे के सज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की चर्चा मानसिक विकास नामक अध्याय मे की जा चुकी है।

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया को अनेक कारक प्रभावित करते है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रत्यय निर्माण सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होता है।

ज्ञानेन्द्रिय दोष, बौद्धिक क्षमता, सीखने तथा अनुभव प्राप्ति के अवसर तथा वातावरणीय परिस्थितियो का प्रत्ययों के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है ।

प्रत्यय निर्माण में शिक्षा की भूमिका
(Role of Education in Concept Formation)

प्रत्ययनिर्माण ज्ञान प्राप्ति का तीसरा सोपान है । प्रत्यय विकास का शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्व हैं । शैशवावस्था से ही प्रत्ययों का विकास प्रारम्भ हो जाता है । शिशु अपने बाह्य वातावरण की विभिन्न वस्तुओ का ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है तथा प्रत्ययो का निर्माण करने लगता है । वह अपने वाह्य वातावरण मे उपस्थित प्रत्यक्ष वस्तुओं जैसे दूध पीने की बोतल, गिलास, कटोरी, खिलौने, चारपाई, मेज-कुर्सी, शरीर के विभिन्न अग आदि सरल प्रत्ययो का विकास करता हैं । प्रारम्भ मे उसके प्रत्यय अस्पष्ट होते है तथा वह शब्दो के द्वारा उनको ठीक ढग से व्यक्त नही कर पाता, परतु, धीरे-धीरे उसके प्रत्ययों का स्वरुप स्पष्ट होने लगता है । वास्तव मे प्रत्ययो का निर्माण एक लगातार चलने वाली अतहीन प्रक्रिया है । व्यक्ति वातावरण का अवलोकन करके प्रत्ययो का निर्माण करता रहता है । शिक्षा प्रक्रिया प्रत्ययो के निर्माण तथा अस्पष्ट प्रत्ययों को स्पष्ट रुप प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है । उच्च स्तरीय बौद्धिक क्रियाये जैसे चितन, तर्क अथवा समस्या समाधान आदि प्रत्ययो पर ही आधारित होती है । शिक्षा का कार्य है कि वह शनै शनै जटिल प्रत्ययो के निर्माण मे बालकों की सहायता करें । क्योंकि प्रत्यय निर्माण मे सामान्यीकरण तथा पृथक्करण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए अध्यापक को बालको मे सामान्यीकरण तथा पृथक्करण करने की योग्यताओ का विकास करना चाहिए । अध्यापक को दोषरहित अवलोकन के द्वारा प्रत्यक्षीकरण तथा प्रत्यय निर्माण करने मे बालको की सहायता करनी चाहिए । व्यापक अनुभव, मूर्त से अमूर्त तथा सरल से जटिल की ओर के शिक्षण सूत्रों का प्रयोग करके अध्यापक बालको के प्रत्यय निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है । प्रत्यय निर्माण मे अधिगम स्थानान्तरण का भी विशेष महत्व है । पूर्ववर्ती विकसित प्रत्ययो के आधार पर नवीन प्रत्ययों का शिक्षण व नवीन प्रत्ययो का विकास करने पर प्रत्यय निर्माण सरलता तथा स्पष्ट ढग से हो सकता है ।

प्रत्ययो का विकास शैशवावस्था मे ही प्रारम्भ हो जाता है। शिशु अपने वातावरण की प्रत्यक्ष वस्तुओ तथा अपने शारीरिक अगो से सम्बन्धित अपने अनुभवो के आधार पर विभिन्न प्रत्ययो का निर्माण करने लगता है। प्रारम्भ मे मेज, कुर्सी, पलग, दूध की बोतल, दरवाजा, हाथ, पैर, कान, नाक, आँख जैसे सरल प्रत्ययों का विकास होता है। जैसे-जैसे वालक के अनुभव विस्तृत होते जाते है वैसे-वैसे उसके प्रत्यय जटिल व स्पष्ट होते जाते है। वास्तव मे प्रत्ययों का वनना एक सतत् व सचयी प्रक्रिया है। निरीक्षण, अनुकरण तथा वार्तालाप प्रत्ययो के निर्माण मे अत्यन्त उपयोगी होते है। पूर्व प्राथमिक या प्राथमिक विद्यालय मे प्रवेश लेने तक शिशु अनेक प्रत्ययो का निर्माण कर चुका होता है। परन्तु उसके प्रत्यय प्राय अस्पष्ट तथा धुधले होते है। अत अध्यापकों को चाहिए कि वे वालको के प्रत्ययो को स्पष्ट रूप प्रदान करने का प्रयास करें। मानसिक विकास की दृष्टि से प्रत्ययों का विकास एक महत्वपूर्ण कार्य है। अत प्रत्यय विकास की दिशा मे छात्रों को अग्रसित करने के लिए अध्यापकों को सतत् प्रयास करने की आवश्यकता है। स्पष्ट प्रत्यय निर्माण

के लिए वालको को व्यापक तथा विस्तृत अनुभव प्राप्त करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान करने चाहिए। 'सरल से कठिन की ओर' तथा 'मूर्त से अमूर्त की ओर' जैसे शिक्षण सूत्रो के अनुरूप शिक्षण कार्य करके अध्यापकगण अपने छात्रो के प्रत्यय निर्माण मे सहायक हो सकता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के व्यावहारिक तथा वास्तविक होने पर छात्र प्रत्ययो को सरलता से सीख लेते है। अभिव्यक्ति के अधिक अवसर भी प्रत्ययो को स्पष्टता प्रदान करने मे सहायक होते है। जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है, प्रत्यय निर्माण मे अधिगम-अन्तरण भी अत्यन्त सार्थक भूमिका अदा करता है।

कल्पना
(Imagination)

आधुनिक सम्यता के विकास मे कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नये-नये होने वाले आविष्कार मानव की कल्पना शक्ति के ही परिणाम है। कल्पना एक मानसिक क्रिया है जिसमे व्यक्ति अपने विगत अनुभवो के आधार पर अप्रत्यक्ष या अनदेखी वस्तुओ को किसी नवीन रुप मे सगठित करके मन ही मन देखते है। कल्पना प्रत्यक्षीकरण तथा स्मृति पर आधारित होती है। जव व्यक्ति पूर्व मे देखी गई वस्तुओ का स्मरण करके उन्हें नए ढग से व्यवस्थित करता है तब कहा जाता है कि व्यक्ति अपनी कल्पना का प्रयोग कर रहा है जैसे-व्यक्ति पूर्व मे देखे गए अनेको मकानो के आधार पर कभी-कभी अपनी कल्पना मे एक ऐसे मकान का निर्माण करने लगता है जो वास्तव मे कही होता नही है। ऐसा मकान उस व्यक्ति के विचारो की ही उपज होता है। अप्रत्यक्ष बातो के सम्वन्ध मे इस प्रकार विचार करने की प्रक्रिया ही कल्पना कहलाती है। अत कहा जा सकता है कि कल्पना एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति अपने पिछले अनुभवो के आधार पर किसी नयी वस्तु के सवध मे चितन करता है। कल्पना मे पूर्व अनुभव, स्मृति तथा सृजन की प्रमुखता होती है।

मैकडूगल के शब्दो में —"परोक्ष वस्तुओ के सवध मे चिन्तन करना ही कल्पना है।"

Imagination is the thinking of remote objects.

—Mc Dougall

रायबर्न के अनुसार —"कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा प्रतिभाओ का नये प्रकार से उपयोग किया जाता है। यह पिछले अनुभवो को किसी ऐसी नई वस्तु के निर्माण मे उपयोग करना है जो पहले कभी नही थी।"

Imagination is the power to use our images in a new way. It is using our part experience to create something new which has not existed before.

—Ryburn

कल्पना के प्रकार
(Types of Imagination)

कल्पना को कई भागो मे बॉटा जा सकता है। मैकडूगल तथा ड्रेवर के द्वारा किए गये वर्गीकरण को अगामी पृष्ठ पर प्रस्तुत किया गया है। कल्पना के प्रमुख प्रकारो का सक्षिप्त विवरण अग्राकित प्रस्तुत है—

मैकडूगल के अनुसार कल्पना का वर्गीकरण
(Classification of Imagination According to Mc Dougall)
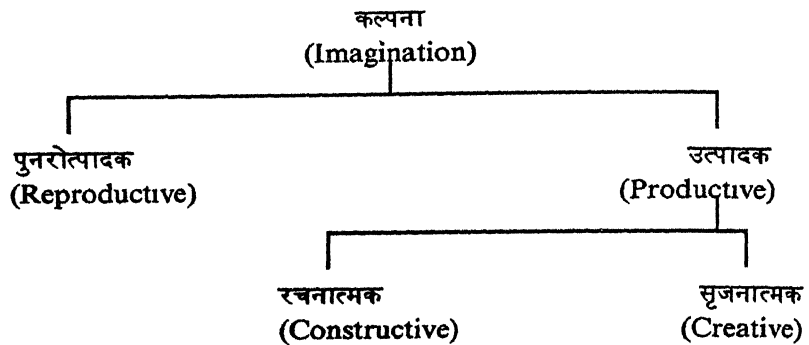
ड्रेवर के अनुसार कल्पना का वर्गीकरण
(Classification of Imagination according to Drever)
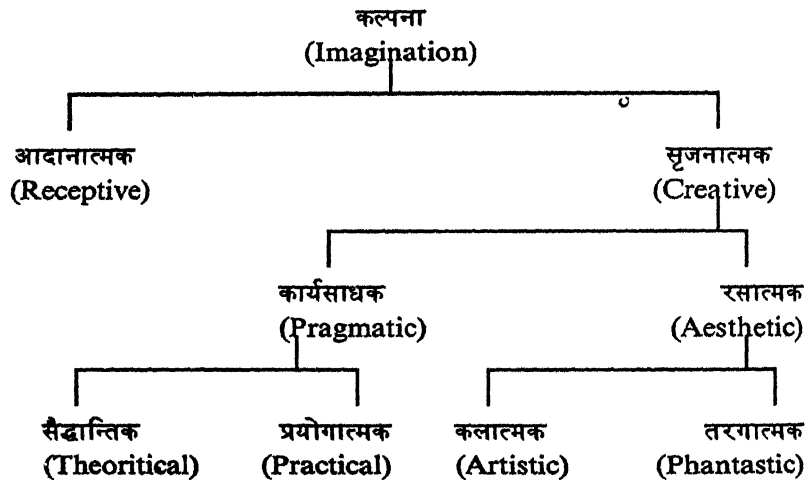
1. आदानात्मक या पुनरोत्पादक कल्पना (Receptive or Reproductive Imagination)—आदानात्मक अथवा पुनरोत्पादक कल्पना को निम्न कोटि की कल्पना माना जाता है। इस प्रकार की कल्पना मे स्मृति के आधार पर पूर्व अनुभवो अथवा प्रतिमाओ को यथावत् चेतना मे लाने का प्रयास किया जाता है। अर्थात जिन बातो का प्रत्यक्ष ज्ञान पूर्व मे हो चुका है, उन्हे ही प्रतिमाओ के रुप मे अभिव्यक्त किया जाता है। जब किसी वस्तु का प्रत्यक्ष देखना सम्भव नही होता तब उस वस्तु का ज्ञान आदानात्मक कल्पना के द्वारा किया जाता है। जैसे—अध्यापक बच्चो को बताता है कि पृथ्वी गेद के समान होगी अथवा मानचित्र दिखला कर किसी देश के आकार को स्पष्ट करता है। क्योकि बालक पृथ्वी को स्पष्ट रुप से नही देख सकते है, परतु उन्होने गेद का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है अत वे गेद के आकार के आधार पर पृथ्वी के आकार की कल्पना कर लेगे।

सृजन होता है। परतु इसमे व्यक्ति यथार्थ का पूर्ण उल्लघन नही करता है। अत जब रसात्मक कल्पना मे स्वाभाविकता का पुट होता है तब उसे कलात्मक कल्पना कहा जाता है। चित्रकार, कवि, लेखको आदि मे यही कल्पना पाई जाती है। उन्हे अपने चित्रो, कहानियो, कविताओ, उपन्यास आदि मे स्वाभाविकता का ध्यान भी रखना होता है। जब कल्पना स्वाभाविकता की सीमा को लाघकर यथार्थ से दूर हो जाती है तो उसे तरगात्मक कल्पना कहते हैं। इस प्रकार की कल्पना मे व्यक्ति हवा मे उडता है, पानी मे चलता है तथा असम्भव कार्य करता है। इस प्रकार की कल्पना दवी हुई भावनाओ की सतुष्टि करती है। बच्चो तथा किशोरो मे इस प्रकार की कल्पना अधिक पाई जाती है।

2. सृजनात्मक अथवा उत्पादक कल्पना (Productive or Creative Imagination)—उत्पादक कल्पना पुनरोत्पादक कल्पना से श्रेष्ठ मानी जाती है। इस प्रकार की कल्पनामे पूर्व अनुभवो तथा प्रतिमाओ को एक नये रुप मे प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की कल्पना मे व्यक्ति नये विचारो का सृजन करता है। यद्यपि इस प्रकार की कल्पना पूर्व अनुभवों पर आधारित होती है, परतु इसका परिणाम भिन्न होता है। यह भविष्य की ओर सकेत करती है। इसे दो भागो मे बॉटा जा सकता है—कार्यसाधक कल्पना(Pragmatic Imagination) तथा रसात्मक कल्पना (Aesthetic Imagination)।

3. कार्यसाधक कल्पना (Pragmatic Imagination)—कार्यसाधक कल्पना के द्वारा व्यक्ति किसी उपयोगी कार्य को सम्पादित करता है। इसके आधार पर व्यक्ति अपनी भिन्न-भिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे सफल होता है। इसे पुन दो भागो मे बॉटा जा सकता है—विचारात्मक कल्पना (Theoritical Imagination) तथा प्रयोगात्मक कल्पना (Practical Imagination)। विचारात्मक या सैद्धातिक कल्पना के द्वारा श्रेष्ठ विचारो, आदर्शो सिद्धान्तो आदि का निर्माण किया जाता है। अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे इस प्रकार की कल्पना का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। व्यावहारिक अथवा प्रयोगात्मक कल्पना मे किसी भौतिक वस्तु अथवा कार्यक्रम का निर्माण किया जाता है। जैसे—किसी पुल, भवन अथवा भ्रमण कार्यक्रम का निर्माण व्यावहारिक कल्पना पर आधारित होते है।

4. रसात्मक कल्पना (Aesthetic Imagination) —रसात्मक कल्पना का सबध व्यक्ति की सौदर्य लिप्सा या सौदर्य भावनाओ से होता है। इस प्रकार की कल्पना में मस्तिष्क पूर्ण स्वतत्र रहता है। कवि, लेखक, चित्रकार इसी प्रकार की कल्पना का सहारा लेकर अपनी रचनाये करते है। इस कल्पना को दो भागो मे बॉटा जा सकता हैं—कलात्मक कल्पना (Artistic Imagination) तथा तरगात्मक कल्पना (Phantastic Imagination)। कलात्मक कल्पना के द्वारा कला सबधी कार्यो का

कल्पना तथा शिक्षा
(Imagination and Education)

कल्पना का भी बालकों की शिक्षा मे महत्वपूर्ण स्थान है। बालको का जीवन कल्पना प्रधान होता है। कल्पनाओ के द्वारा उनकी अनेक दमित प्रवृत्तियॉ सतुष्ट हो जाती हैं। बालको की कल्पना स्थूल व सीमित अनुभवो पर आधारित होती है। इसलिए बालको की कल्पना शक्ति का विकास करने के लिए आवश्यक है कि उनके ज्ञानेन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष ज्ञान का समुचित विकास विकास जाये। बालको का ज्ञानेन्द्रिय प्रशिक्षण जितना अच्छा होगा उसकी कल्पनाये भी उतनी ही अच्छी होगी तथा बालक सृजनात्मक तथा रचनात्मक कल्पनाये करने मे सफल होगा।

कल्पना शक्ति के विकास मे भाषा ज्ञान का भी विशेष महत्व है। बालक की भाषा जितनी अच्छी होगी उसकी कल्पनाये भी उतनी विकसित होती जायेगी। माता-पिता को बालकों के भाषा विकास का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनके लिए ऐसा वातावरण दिया जाना चाहिए कि वे अपनी भाषा का समुचित विकास कर सके। बालकों की रचनात्मक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित करके उनकी कल्पना शक्ति को बढाया जा सकता है। चित्रकला, वस्तुनिर्माण, मिट्टी के खिलौने आदि बनाने का प्रशिक्षण दे कर बालको की रचनात्मक प्रवृत्तियो का विकास किया जा सकता है। कहानियॉ सुनाने, अभिनय कराने तथा काल्पनिक खेलो मे भाग लेने के अवसर देकर बालको की कल्पना शक्ति को बढावा दिया जा सकता है।

कुछ मनोवैज्ञानिको के अनुसार कल्पना के विकास हेतु शैक्षिक प्रयास करना उचित नही माना जाता है। उनके अनुसार बालक स्वय ही कल्पना प्रधान होते है इसलिए उनकी कल्पनाओ को और भी अधिक प्रोत्साहित करना उचित नही है। यदि बालको की कल्पना को प्रोत्साहित किया जायेगा तो वे यथार्थ से दूर हो जायेगे तथा उसका व्यक्तित्व समायोजन अस्वाभाविक हो जायेगा। इस प्रकार के विचार पूर्णरूपेण उचित प्रतीत नही होते है। नि सन्देह बालको की कल्पना शक्ति को अवाछित दिशा मे प्रोत्साहित नही करना चाहिए। बालको को भूत-प्रेत अथवा दैत्य-दानवो की कहानियॉ नही सुनाई जानी चाहिए परन्तु शिक्षाप्रद कहानियॉ सुनाकर बालको की विचारशक्ति तथा कल्पना को वाछित दिशा मे अवश्य प्रोत्साहित करना चाहिए। कल्पना शक्ति के विकास से ही सृजनशीलता का विकास होता है।

सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण तथा कल्पना के शैक्षिक महत्व को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षक को उचित व उपयुक्त शिक्षण सामग्री तथा शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहिए। जिससे बालक ज्ञान प्राप्ति के इन सोपानों पर सरलता व सफलतापूर्वक आगे बढ सके।

---

22 चिन्तन, तर्क तथा समस्या समाधान
(Thinking, Reasoning and Problem Solving)

मानव स्वभावत चिन्तनशील होता है । वह अपने प्रयोजन को पूरा करने के लिए चिन्तन करता है । प्रयोजन की पूर्ति के लिए उसे एक निश्चित योजना बनानी होती है, सोच-विचार कर कार्य करने होते है तथा मार्ग मे आने वाली बाधाओ का समाधान खोजना होता है । चिन्तन शक्ति ही मानव को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाती है । प्रस्तुत अध्याय मे चिन्तन, तर्क तथा समस्या समाधान की सज्ञानात्मक प्रक्रियाओ का वर्णन किया गया है ।

चिन्तन
(Thinking)

चिन्तन एक सज्ञानात्मक क्रिया है । चिन्तन शक्ति के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है । चिन्तन मे मनुष्य अन्य प्राणियो की अपेक्षा अधिक जटिल सज्ञानात्मक प्रक्रिया करता है । ससार की प्रगति मे मनुष्य के द्वारा किए गए चिन्तन का महत्वपूर्ण योगदान है । चिन्तन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति किसी नई परिस्थिति का सामना करने अथवा किसी समस्या का समाधान करने मे अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग करता है । चिन्तन की प्रक्रिया में सवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, पूर्व अधिगम, स्मृति आदि का समावेश होता है । चिन्तन को समस्या समाधान की ओर उन्मुख होने वाली मानसिक प्रक्रिया के रुप मे भी स्वीकार किया जा सकता है । चिन्तन के द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न समस्याओ का समाधान करता है । मनोवैज्ञानिक चिन्तन को एक जटिल प्रक्रिया स्वीकार करते है । यही कारण है कि अभी तक चितन की कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत नही हो सकी है । विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने चिन्तन को भिन्न-भिन्न शब्दो मे परिभाषित किया है ।

रॉस के अनुसार —"चिन्तन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक क्रिया है ।"

Thinking is mental activity in the cognitive aspect.

—Ross

वेलेन्टाइन के शब्दों में —"चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमे शृखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते हैं ।

It ıs well to keep the term 'thınkıng' for an actıvıty whıch consısts essentıally of a connected flow of ıdeas which are dırected towards some end or purpose

—Valentıne

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि चिन्तन वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी समस्याओ का समाधान करता है। जब तक व्यक्ति की समस्या का समाधान नही हो जाता, तब तक वह चिन्तन करता रहता है।

चिन्तन की विशेषतायें
(Characteristics of Thinking)

चिन्तन की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित है—

1. चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमे अनेक सरल मानसिक प्रक्रियाये निहित रहती है।

2. चिन्तन का प्रारम्भ किसी समस्या, कठिनाई, असन्तोष अथवा इच्छा के उत्पन्न होने पर होता है।

3. चिन्तन के फलस्वरुप व्यक्ति की समस्या का समाधान होता है।

4. चिन्तन के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान के अनेक उपायो पर विचार करता है तथा अन्त मे किसी एक उपाय का प्रयोग करके अपनी समस्या का समुचित समाधान करता है।

5. चिन्तन स्थूल (Concrete) से सूक्ष्म (Abstract) की ओर होता है।

6. चिन्तन मे सकेतो, भाषा, तथा सम्प्रत्ययो का योगदान रहता है।

7. चिन्तन मे विश्लेषण (Analysıs) तथा सश्लेषण (Synthesıs) क्रियाओ का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

8. चिन्तन उद्देश्यपूर्ण होता है इसलिए इसका अभिप्रेरणा से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है।

9. चिन्तन व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है।

10. चिन्तन मानव का एक विशिष्ट गुण है जो उसे प्राणी जगत मे सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है।

11 चिन्तन प्रक्रिया मे व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की चिन्तन प्रकिया उनके उद्देश्यो, परिस्थितियो अथवा समस्याओ के अनुरुप भिन्न-भिन्न हो सकती है।

12. चिन्तन मे पूर्वानुभवो का उपयोग निहित रहता है।

13. चिन्तन वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तर्क्रिया का एक पक्ष है।

14. चिन्तन व्यक्ति के व्यवहार के अन्य पक्षो से भी सबधित होता है।

चिन्तन प्रक्रिया
(Thinking Process)

चिन्तन प्रक्रिया को निम्नलिखित पाँच सोपानो मे विश्लेषित करके समझा जा सकता है—

1. **किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना**—व्यक्ति के सम्मुख जव कोई समस्या उत्पन्न होती है तव वह उस समस्या का समाधान करने के लिए चिन्तन करता है। चिन्तन का लक्ष्य समस्या को दूर करना होता है।

2. **लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयास करना**—चिन्तन मे व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है। उसका प्रयास होता है कि शीघ्रताशीघ्र समस्या का समाधान हो जाये।

3. **पूर्व अनुभवों का स्मरण करना**—चिन्तन मे व्यक्ति अपने पुराने अनुभवो को पुन स्मरण करता है जिससे उनके आधार पर वह वर्तमान समस्या का समाधान करने मे समर्थ हो सके।

4. **पूर्व अनुभवों को वर्तमान समस्या से संयोजित करना**—जव व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवो के आधार पर वर्तमान समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करता है तव उसके सम्मुख समस्या के अनेक सभावित समाधान उपस्थित होने लगते है।

5. **समाधान की सार्थकता देखना**—जव चिन्तनकर्ता के मस्तिष्क मे समस्या के सवध मे कई समाधान प्रस्तुत हो जाते है वह वह उनमे से किसी एक समाधान का चयन करता है तथा उसे व्यावहारिक रुप देकर समस्या के समाधान मे उसकी सार्थकता को प्रमाणित करता है।

चिन्तन के प्रकार

(Kinds of Thinking)

चिन्तन मुख्यत. तीन प्रकार का होता है—प्रत्यक्षात्मक चिन्तन (Perceptual Thinking), कल्पनात्मक चिन्तन (Imaginative Thinking) तथा प्रत्ययात्मक चिन्तन (Conceptual Thinking)। कुछ विद्वान तार्किक चिन्तन (Logical Thinking) अथवा विचारात्मक चिन्तन (Reflective Thinking) की चर्चा भी करते है। परतु यहाँ केवल पूर्ववर्ती इगित तीन प्रकार के चिन्तन की ही सक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

1. **प्रत्यक्षात्मक चिन्तन (Perceptual Thinking)**—यह सर्वाधिक निम्न स्तर का चिंतन है जो प्राय छोटे वालको तथा पशुओ मे पाया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन का मुख्य आधार सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इस प्रकार के चिन्तन मे भाषा अथवा सकेतो का प्रयोग नही किया जाता है। यह चिन्तन किसी प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित घटना पर आधारित होता है। इस प्रकार के चिन्तन मे प्राणी अपने पूर्व अनुभवो का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए एक वार आग से जल जाने वाला वालक जव पुन आग को देखता है तो वह यह सोच लेता है कि आग के पास जाने पर मैं जल जाऊँगा तथा वह आग से डर जाता है। इसी प्रकार से विद्यालय देर से पहुँचने पर छात्र दड मिलने के भय से भयभीत हो जाता है क्योकि अपने पूर्व अनुभवो से उसे ज्ञात है कि विद्यालय मे विलम्व से पहुँचने पर दड मिलता है।

2. कल्पनात्मक चिन्तन (Imaginative Thinking) —कल्पनात्मक चिन्तन का आधार मानसिक प्रतिमाये (images) होती है। इस प्रकार के चिन्तन मे कोई वस्तु अथवा परिस्थिति प्रत्यक्ष रुप से उपस्थित नही होती है अर्थात् इसमे प्रत्यक्षीकरण का अभाव रहता है। इसमे व्यक्ति उद्दीपक के सम्मुख न होने पर भी स्मृति के आधार पर भविष्य के वारे मे सोचता है। जैसे जब माता-पिता बाजार जाते है, तब बालक मन ही मन कल्पना करता है कि बाजार से लौटने पर वे उसके लिए खाने की कोई वस्तु अथवा खिलौना लेकर आयेंगे। कल्पनात्मक चिन्तन मे गत अनुभव तथा कल्पना दोनो का ही योगदान रहता है।

3. प्रत्ययात्मक चिन्तन (Conceptual Thinking) —यह चिन्तन का सर्वोच्च रुप है। इस प्रकार के चिन्तन मे पूर्व निर्मित प्रत्ययो के आधार पर प्राणी चिन्तन करता है। इस प्रकार के चिन्तन मे भाषा तथा सकेतो का प्रयोग किया जाता है। प्रत्ययात्मक चिन्तन एक अत्यत जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति पुराने अनुभवो के आधार पर अपनी वर्तमान समस्या का सूक्ष्मतम विश्लेषण करता है तथा उसके सम्वन्ध मे किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

चिन्तन की सामग्री
(Marterial of Thinking)

चिन्तन मे प्राय किसी न किसी सामग्री, साधनों अथवा उपकरणो की आवश्यकता होती है। चिन्तन मे प्रयुक्त होने वाली प्रमुख सामग्री निम्नवत् है—

1. पदार्थ (Objects) —पदार्थों अथवा उद्दीपको के अभाव मे चिन्तन कठिन हो जाता है। प्रत्यक्षात्मक चिन्तन का आधार किसी पदार्थ अथवा उद्दीपक का प्रत्यक्ष रुप से उपस्थित होना होता हैं। जब कोई पदार्थ अथवा उद्दीपक प्राणी के सम्मुख उपस्थित रहता है तो वह चिन्तन मे सहायक होता है जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति के लिए चिन्तन करना सरल हो जाता है।

2. प्रतिमा (Images) —जब कोई पदार्थ प्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित नही होता है, तब व्यक्ति उसके चिन्तन के लिए मानसिक प्रतिमा वनाता है तथा इस मानसिक प्रतिमा के द्वारा वह चिन्तन करता है। मानसिक प्रतिमा किसी देखी गई वस्तु की मस्तिष्क मे बनी छाप है जो उस वस्तु की अनुपस्थिति मे भी वस्तु का मन ही मन अहसास कराती है। कल्पनात्मक अथवा विचारात्मक चिन्तन मे प्रतिमाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

3. प्रत्यय (Concepts) —प्रत्ययात्मक चिन्तन का आधार प्रत्यय होते है। प्रत्यय जितने ही स्पष्ट होते है, प्रत्ययात्मक चिन्तन उतना ही सरल होता है।

4. संकेत तथा प्रतीक (Symbols and Signs) —सकेत तथा प्रतीक उच्च स्तरीय चिन्तन की प्रमुख सामग्री है। अनुपस्थित वस्तु को इगित करने के लिए सकेतो तथा प्रतीको का प्रयोग किया जाता है। सकेतों का अपना विशिष्ट अर्थ होता है। जैसे गणित मे प्रयुक्त किये जाने वाले जोड़, ऋण, गुणा तथा भाग के चिह्न एक-एक विशिष्ट क्रिया को इगित करते हैं। भाषा भी संकेतों तथा प्रतीको का एक रुप है। भाषा के विभिन्न शब्द अथवा अक्षर सकेतों व प्रतीकों का कार्य करते हैं। सकेतो तथा प्रतीकों के

माध्यम से व्यक्ति अपने विचारो को सरलता, शीघ्रता तथा स्पष्टता से व्यक्त करने मे समर्थ होता है। उच्च स्तरीय चिन्तन मे सकेतो का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

चिन्तन का शैक्षिक महत्व
(Educational Importance of Thinking)

सफल जीवन के लिए चिन्तन अत्यत आवश्यक है। यह व्यक्ति की वह मानसिक क्रिया है जो उसे अन्य व्यक्तियो से श्रेष्ठ बनाती है। शैक्षिक अथवा व्यावसायिक क्षेत्रो मे सफलता प्राप्त करने मे व्यक्ति की चिन्तन शक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। अत अध्यापको को बालको की चिन्तन शक्ति को विकसित करने के यथासम्भव प्रयास करने चाहिए। प्रत्यक्षीकरण, विस्तृत अनुभव, प्रत्यय निर्माण, भाषा विकास, विचार अभिव्यक्ति आदि को प्रोत्साहित करके अध्यापक बालको की चिन्तन शक्ति के विकास मे सहायता कर सकते है। बालको की जिज्ञासा शक्ति को जागृत करके उनमे ध्यान तथा

तर्क
(Reasoning)

तर्क चिन्तन का सर्वोच्च रुप है। तर्क अथवा तार्किक चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमे प्राय औपचारिक नियमो का अनुसरण किया जाता है। दूसरे शब्दो मे जब सगठित तथा व्यवस्थित रुप मे चिन्तन किया जाताहै तो उसे तर्क कहते हैं। विभिन्न विद्वानो ने तर्क को भिन्न-ढग से परिभाषित किया है। तर्क की कुछ परिभाषाये अग्राकित प्रस्तुत की जा रही है—

बर्नार्ड के अनुसार —"तर्क वह प्रक्रिया है जो प्रतिक्रिया को तब तक स्थगित रखती है जब तक समस्या से सबधित आकडे इस प्रकार से व्यवस्थित न हो जाये कि निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हो सके।"

Reasoning is a process of delaying response untill data are arranged into a new combination so that a clearly perceived goal can be achieved.

—Bernard

मन के अनुसार —"तर्क उस समस्या का समाधान करने के लिए गत अनुभवों को सयोजित करता है जिस समस्या का समाधान पूर्ववर्ती समाधानो के द्वारा नही किया जा सकता।"

Reasoning is combining past experiences in order to solve a problem which can not be solved by mere reproduction of earlier solutions.

—Munn

ड्रेवर के अनुसार —"तर्क सामान्य सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा समस्या समाधान की प्रक्रिया है।"

Reasoning is a process of thinking involving inference, or of solving problems by employing general principles. —James Drever

गेट्स तथा अन्यों के अनुसार —"तर्क एक उत्पादक चिन्तन है जिसमे किसी समस्या का समाधान करने के लिए गत अनुभवो को नए ढग से सगठित अथवा सयोजित किया जाता है।"

Reasonıng is a productive thınkıng ın whıch prevıous experıences are organzıed or combind in new ways, to solve a problem.

—Gates and others

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि तर्क, कार्य-कारण (Cause-Effect) मे सवध स्थापित करके किसी समस्या का समाधान करना है।

तर्क के प्रकार

(Kinds of Reasoning)

तर्क मुख्यत दो प्रकार का होता है—निगमन तर्क (Deductıve Reasoning) तथा अगमन तर्क (Inductıve Reasonıng)।

1. निगमन तर्क (Decuctive Reasoning) —निगमन तर्क मे व्यक्ति पूर्व अनुभवो, विश्वासो, सिद्धान्तो के आधार पर अपनी समस्या के सवध मे चिन्तन करके समस्या का समाधान प्राप्त करता है। निगमन तर्क वास्तव मे किसी सामान्य सिद्धान्त को स्वीकार करना तथा उसे अन्य परिस्थितियो मे प्रयुक्त करने मे सवधित है। जैसे सामान्य सिद्धान्त है कि सभी प्राणी नश्वर (Mortal) होते है। व्यक्ति इसे स्वीकार करके तर्क कर सकताहै कि रमेश एक प्राणी है अत रमेश भी नश्वर होगा। इसी प्रकार सामान्य व सर्वमान्य विश्वास है कि काँच की वस्तुये गिरकर टूट जाती है। इस विश्वास के आधार पर तर्क कियां जाता सकता है कि काँच का बना जग गिरने पर टूट जाएगा।

2. अगमन तर्क (Inductive Reasoning) —अगमन तर्क के अर्न्तगत व्यक्ति अपने अनुभवो के आधार पर सामान्य नियमों का प्रतिपादन करता है। अगमन तर्क को अवलोकन, प्रयोग तथा सामान्यीकरण प्रक्रिया के रुप में परिभापित किया जा सकता है। अर्थात् व्यक्ति सवसे पहले तथ्यो का अवलोकन करता है, नियम की कल्पना करता है तथा प्रयोग के द्वारा नियम का सत्यापन करता है। उसके परिणामस्वरुप सामान्य नियम का प्रतिपादन होता है। जैसे व्यक्ति देखता है कि इस ससार मे जन्म लेने वाले प्राणी मृत्यु को अवश्य प्राप्त होते है। इस आधार पर वह तर्क कर सकता है कि मनुष्य नश्वर है। इसी प्रकार से यदि कोई व्यक्ति काँच के गिलास, जग तथा अन्य सामग्री को गिर कर टूटता देखता है तब वह अगमन तर्क करके सामान्य निष्कर्ष ज्ञात कर सकता है कि काँच के पात्र गिर कर टूट जाते है।

अगमन तथा निगमन तर्क एक दूसरे के पूरक है। अगमन तर्क सामान्य सिद्धान्तो का निरुपण करता ह, जबकि निगमन तर्क उन सामान्य सिद्धान्तो का परिस्थिति विशेष मे प्रयोग करता है।

तर्क का शैक्षिक महत्व

(Educational Importance of Reasoning)

तर्क शक्ति का महत्व तथा उपयोगिता निर्विवाद रुप से सर्वस्वीकृत है । तार्किक चिन्तन के द्वारा व्यक्ति अपने उद्देश्यो की प्राप्ति करने मे समर्थ होता है । शिक्षा प्रक्रिया मे तर्क को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है । यही कारण है कि अध्यापक से यह अपेक्षा की जाती है कि वे बालको की तर्क शक्ति का विकास करे । विचार-विमर्श, वाद-विवाद, खोज, प्रयोग, अनुसधान आदि तार्किक चिन्तन को प्रोत्साहित करते है । अत बालको को इस प्रकार के कार्यो मे भाग लेने के पूर्व अवसर दिए जाने चाहिए । एकाग्रता, सलग्नता, आत्मनिर्भरता, निरीक्षण क्षमता आदि के अभाव मे तार्किक चिन्तन नही हो सकता है । अत अध्यापको को बालको मे इन गुणो को विकसित करने का यथासम्भव प्रयास करना चाहिए । पूर्व धारणा, पूर्व निर्णय अथवा पूर्व द्वेष प्राय तार्किक चिन्तन मे बाधक होते है । अत अध्यापको को इनके दुष्परिणामो से भी बालको को भलीभाँति अवगत कराना चाहिए तथा आगमन, निगमन तथा वैज्ञानिक तर्क विधि का प्रयोग करके तार्किक चिन्तन करने के लिए बालको को प्रेरित करना चाहिए ।

समस्या समाधान
(Problem Solving)

समस्या समाधान तर्क का ही एक आवश्यक अग है । जब व्यक्ति किसी लक्ष्य पर पहुँचने के लिए प्रयासरत होता है, परतु प्रारम्भिक प्रयासो मे उसे सफलता नही मिलती है, तब व्यक्ति के लिए लक्ष्य तक पहुँचना एक समस्या हो जाती है । जब व्यक्ति मार्ग मे आने वाली बाधाओ पर विजय प्राप्त करके अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है, तब कहा जाता है कि उसने अपनी समस्या का समाधान कर लिया है । अत समस्या समाधान से तात्पर्य कठिनाईयो पर विजय प्राप्त करके लक्ष्यों को प्राप्त कर लेनें से है । समस्या समाधान चिन्तन का ही एक विशिष्ट रुप है । समस्या उस परिस्थिति को कहते है जिसके लिए व्यक्ति के पास पहले से तैयार कोई समाधान (Ready Made Solution) नही होता है । ऐसी परिस्थिति का सामना करने के लिए व्यक्ति को चिन्तन व तर्क करना पडता है ।

स्किनर के अनुसार —"समस्या समाधान लक्ष्य की प्राप्ति मे बाधक प्रतीत होने वाली कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया है ।"

Problem solving is a process of overcoming difficulties that appear to interfere with the attainment of a goal.

—Skinner

व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन मे भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओ का सामना करना पडता है । वास्तव मे जब किसी परिस्थिति को नियत्रित करने के लिए उस परिस्थिति से कोई स्पष्ट सकेत नही मिलते है तब वह परिस्थिति एक समस्या बन जाती हैं । मानव अपने सम्मुख उत्पन्न हुई समस्या का समाधान करना चाहता है । कभी-कभी समस्या का समाधान अकस्मात मिल जाता है तथा कभी समस्या समाधान मे अनेक कठिनाई आती हैं । समस्या समाधान से सबधित किए गए प्रयोगो ने सिद्ध कर दिया है कि प्राणी के द्वारा किये जाने वाले समस्या समाधान व्यवहार को आयु (Age), अन्वेषण (Exploration), कार्य दशायें (Conditions of Work) व अनुभव (Experience) सार्थक रुप से प्रभावित करते है ।

समस्या समाधान की विधियाँ
(Methods of Problem Solving)

समस्या समाधान की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है—

1. अनसीखा तथा आदतजन्य व्यवहार (Unlearned and Habitual Problem Solving Method)—इस विधि का प्रयोग निम्न कोटि के प्राणियो के द्वारा प्राय· अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति यान्त्रिक ढग से करने मे किया जाता है। समस्या समाधान की यह विधि वातावरणीय परिस्थितियों पर आधारित न होकर जन्मजात प्रवत्तियों पर आधारित होती है। पशु-पक्षी तथा छोटे बच्चे बिना सीखे ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करते ह। उदाहरणार्थ मधुमक्खी फूलो का रस चूसने से अपनी भोजन की आवश्यकता का समाधान करती है।

2. प्रयास तथा त्रुटि विधि (Trial and Error Method)——इस विधि मे प्राणी अपनी समस्या का समाधान प्रयास तथा त्रुटियाँ करके करता है। प्राणी तब तक प्रयास करता रहता है, जब तक उसकी समस्या का समाधान नही हो जाता है। इस विधि का प्रयोग भी प्राय निम्न कोटि के प्राणियो के द्वारा किया जाता है। थार्नडाइक के द्वारा भूखी बिल्ली पर किया गया प्रयोग प्रयास एव त्रुटि के द्वारा समस्या समाधान का उदाहरण है। मनुष्य भी कभी-कभी प्रयास एव त्रुटि विधि के द्वारा अपनी समस्याओ का समाधान करने का प्रयास करता है। वह कभी इस ढग से कभी दूसरे ढग से अपनी समस्या को सुलझाने की कोशिश करता है तथा अनेक प्रयासो के उपरान्त अन्त मे वह अपनी समस्या का समाधान कर लेता है।

3. अन्तर्दृष्टि (Insight Method)—इस विधि का प्रयोग प्राय उच्च स्तरीय प्राणियों तथा मनुष्यो के द्वारा किया जाता है। इस विधि में प्राणी समस्त समस्या परिस्थिति पर विचार करके अन्तर्दृष्टि या सूझ के द्वारा समस्या का समाधान खोजते हैं। कोहलर के द्वारा चिम्पाजी पर किया गया प्रयोग अन्तर्दृष्टि विधि के द्वारा समस्या समाधान करने का उदाहरण है।

4. वैज्ञानिक विधि (Scientific Method)—वैज्ञानिक विधि समस्या समाधान की एक आधुनिक विधि है जिसका प्रयोग करके प्रगतिशील मानव अपनी समस्याओ का समाधान करता है। वैज्ञानिक विधि मे तर्कपूर्ण चिन्तन के द्वारा समस्या का समाधान किया जाता है। जॉन डीवी ने अपनी पुस्तक "How We Think" मे वैज्ञानिक विधि के निम्नलिखित पाँच सोपानो की चर्चा की है—

1. समस्या से परिचित होना (Identification of the Problem)
2. परिकल्पना का निर्माण करना (Formulation of a Hypothesis)
3. तथ्यो का सकलन, व्यवस्थापन तथा विश्लेषण करना (Collection, Organization and Analysis of the Data)
4. निष्कर्ष प्राप्त करना (Formulation of Conclusions)
5. परिकल्पना का विशिष्ट परिस्थिति में परीक्षण करना (Verification of the Hypothesis in a Specific Situation)

आधुनिक काल मे वैज्ञानिक विधि के द्वारा समस्या समाधान करने पर वल अधिक दिया जाता है।

समस्या समाधान का शैक्षिक महत्व
(Educational Emportance of Problem-Solving)

समस्या समाधान का शिक्षा मे सर्वाधिक महत्व है। शिक्षक को समस्या समाधान की योग्यता बालकों मे विकसित करनी चाहिए। अध्यापक को छात्रो को बताना चाहिए कि समस्याओ का समाधान किस ढग से किया जाता है। उसे समस्या समाधान की वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करने के लिए बालको को प्रशिक्षित करना चाहिए। बालकों को दैनिक जीवन मे आने वाली समस्याओ का समाधान करने का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। अध्यापको को ध्यान रखना चाहिए कि यदि समस्याये बालको की निजी आवश्यकताओ, उद्देश्यो तथा रुचियो के अनुरुप होगी तो बालक उनका समाधान करना सरलता से सीख सकेंगे।

चिन्तन, तर्क तथा समस्या समाधान शैक्षिक दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण स्थान रखते है। विश्व की प्रगति मे इन तीनो सज्ञानात्मक प्रक्रियाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चिन्तन, तर्क तथा समस्या समाधान योग्यता के कारण ही मनुष्य समस्त प्राणियो मे सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। शिक्षा प्रक्रिया के द्वारा बालको की चिन्तन, तर्क तथा समस्या समाधान योग्यता को अधिक से अधिक विकसित करने का प्रयास किया जाना अत्यत आवश्यक है।

रुचि का विकास करके, प्रेरणा प्रदान करके, उत्तरदायित्व सौप कर, वाद-विवाद के अवसर प्रदान करके तथा उनमे रटन्त स्मरण की आदत को दूर करके बालको की चिन्तन शक्ति का विकास किया जा सकता है।

---

23 सृजनात्मकता
(Creativity)

वैज्ञानिक , तकनीकी तथा औद्योगिक विकास के वर्तमान युग मे नित नये नूतन आविष्कार हो रहे है । इनमे से अधिकाश आविष्कारो के पीछे जहाँ वैज्ञानिको का अथक प्रयास छिपा है वही उनकी सृजनात्मकता का भी कम योगदान नही है । पहले यह माना जाता था कि केवल लेखक,.कवि, चित्रकार, सगीतकार आदि व्यक्ति ही सृजनात्मक होते है । परन्तु अब माना जाने लगा है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति हो सकती है । वास्तव मे ससार के समस्त प्राणियो मे सृजनात्मकता पाई जाती है—किसी मे कम मात्रा मे तथा किसी मे अधिक मात्रा मे सृजनात्मकता होती है । मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए नवीन अविष्कार करने तथा समस्याओ का समाधान खोजने के कार्य मे सृजनात्मकता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । दूसरे विश्वयुद्ध के उपरान्त 'सृजनात्मकता' के प्रत्यय पर मनोवैज्ञानिको व शिक्षाशास्त्रियो ने विशेष ध्यान दिया । तीव्र गति से हो रहे वैज्ञानिक, तकनीकी व औद्योगिक विकास तथा आधुनिकीरण ने मानव जीवन को इतना जटिल तथा समस्याग्रस्त बना दिया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सृजनात्मकता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है । आज के समस्याग्रस्त जटिल समाज तथा प्रतियोगितापूर्ण ससार मे सृजनात्मक व्यक्तियो की माँग है । वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियो के लिए सृजनात्मक व्यक्तियो को खोजना एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गई है । प्रस्तुत अध्याय मे सृजनात्मकता तथा इसका मापन करने की विधियो का वर्णन किया गया है ।

सृजनात्मकता का अर्थ
(Meaning of Creativity)

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने सृजनात्मकता को भिन्न-भिन्न ढंग से पारिभाषित किया है । सृजनात्मकता की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नवत है—

डीहान तथा हेविंगहर्स्ट के अनुसार "सृजनात्मकता वह विशेषता है जो नवीन व वाँछित वस्तु के उत्पादन की ओर ले जाये । यह नवीन वस्तु सम्पूर्ण समाज के लिए अथवा केवल उत्पादक व्यक्ति के लिए नवीन हो सकती है ।"

Creativity is the quality which leads to the production of something new and desirable. The new product may be new to society or new to the individual who creates it.

—Dehan and Havinghurst

ड्रेवहल के शब्दों में, "सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन रचना या विचारो को प्रस्तुत करता है।"

Creativity is that human ability by which he presents any noval work or ideas.

—J. E. Drevahal

क्रो एवं क्रो के अनुसार, "सृजनात्मकता मौलिक परिणामो को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।"

Creativity is a mental process to express the original outcomes.

—Crow and Crow

कोल और ब्रूस के शब्दों में, "सृजनात्मकता मौलिक परिणामो के रूप मे समझने, व्यक्त करने तथा सराहना करने की मानव मस्तिष्क की योग्यता व क्रिया है।"

Creativity is an ability and activity of man's mind to grasp, express and appreciate in the from of an original product.

—Cole and Bruce

उपर्युक्त परिभाषाओ के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सृजनात्मकता का सम्बन्ध मौलिकता या नवीनता से है। सृजनात्मकता समस्या पर नये ढग से सोचने तथा समाधान खोजने से परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दो मे, सृजनात्मकता वह योग्यता है जो व्यक्ति को किसी समस्या को विद्वतापूर्ण समाधान खोजने के लिए नवीन ढग से सोचने व विचार करने मे समर्थ बनाती है। प्रचलित ढग से हटकर किसी नये ढग से चिन्तन करने तथा कार्य करने की योग्यता ही सृजनात्मकता है।

सृजनात्मकता के कारक या तत्व
(Factors or Elements of Creativity)

सृजनात्मकता की विभिन्न परिभाषाओं के अवलोकन तथा विश्लेषण से स्पष्ट है कि सृजनात्मकता को सवेदनशीलता, जिज्ञासा, कल्पना, मौलिकता, खोजपरकता, लचीलापन, प्रवाह, विस्तृतता, नवीनता आदि के सदर्भ मे समझा जा सकता है। सृजनात्मकता के समानार्थी यह सभी प्रत्यय वैज्ञानिक अनुसधानों, कलाकृतियो, सगीत रचना, लेखन व काव्य कला, चित्रकला, भवन निर्माण आदि सृजनात्मक कार्यो मे परिलक्षित होते हैं। सृजनात्मकता के चार प्रमुख कारक निम्नवत है—

(i) प्रवाह (Fluency)—प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक प्रत्युत्तरों से है। प्रवाह को पुन: चार भागो मे बॉटा जा सकता है—वैचारिक प्रवाह (Ideational Fluency), अभिव्यक्ति प्रवाह (Expressional Fluencey), साहचर्य प्रवाह (Associative Fluency) तथा शब्द प्रवाह (Word Fluency)। वैचारिक प्रवाह में विचारों के स्वतन्त्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे किसी कहानी के अनेक शीर्षक बताना, किसी वस्तु के अनेक उपयोग बताना, किसी वस्तु को सुधारने के विभिन्न तरीके बताना आदि आदि। अभिव्यक्ति प्रवाह मे व्यक्ति की अभिव्यक्ति क्षमता के स्वतन्त्र प्रस्फुटन को प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे दिये गये चार

शब्दों से वाक्य बनाना, दिये गये अपूर्ण वाक्य को पूरा करना आदि आदि। साहचर्य प्रवाह से तात्पर्य दिये गये शब्दो या वस्तुओ मे साहचर्य स्थापित करने वाली अभिव्यक्तियो को प्रस्तुत करने से है। जैसे दिये शब्दो के पर्यायवाची या विलोम शब्दो लिखना। शब्द प्रवाह का सम्बन्ध शब्दो से होता है। जैसे दिये गये प्रत्ययो (Prefix and Suffix) से शब्द बनाना। किसी व्यक्ति के द्वारा किसी सृजनशीलता परीक्षण के किसी पद (item) पर प्रवाह को प्राय· उस पद पर दिये गये प्रयुत्तरो की सख्या से व्यक्त किया जाता है। सम्पूर्ण परीक्षण पर व्यक्ति के प्रवाह प्राप्ताको को ज्ञात करने के लिए सभी पदो के प्रवाह अको का योग कर लिया जाता है।

(ii) **विविधता** (Flexıbıty) —विविधता से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये प्रयुत्तरो या विकल्पो मे वैभिन्नय के होने से है। इससे ज्ञात होता है कि व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्प या उत्तर एक दूसरे से कितने भिन्न-भिन्न है। विविधता की तीन विमाए हो सकती है—आकृति स्वत स्फूर्त विविधता (Figural Spontaneous Flexıbilıty), आकृति अनुकूलन विविधता (Fıgural Adaptıve Flexıbility) तथा शाब्दिक स्वत स्फूर्त विविधता (Semantic Spontaneous Flexıbilıty)। आकृति स्वत स्फूर्त विविधता से तात्पर्य किसी वस्तु या आकृति मे सुधार करने के उपायो की विविधता से है। आकृति अनुकूलन विविधता से अभिप्राय किसी वस्तु या आकृति के रुप को किसी अन्य रुप मे परिवर्तित करने की विधियो की विविधता से है। शाब्दिक स्वत स्फूर्त विविधता मे वस्तुओ या शब्दो के प्रयोग मे विविधता को देखा जाता है। सृजनात्मकता के परीक्षणो के किसी पद (ıtem) पर विविधता को प्राय उस पद पर व्यक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रत्युत्तरो (Dıfferent types of responses) से व्यक्त किया जाता है। सम्पूर्ण परीक्षण पर किसी व्यक्ति के विविधता प्राप्ताक को ज्ञात करने के लिए उसके द्वारा विभिन्न पदो पर प्राप्त विविधता अको को जोड लिया जाता है।

(ııı) **मौलिकता (Originality)**—मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पो या उत्तरो के अप्रचलित अथवा असामान्य (Uncommon) होने से है। इसमे देखा जाता है कि दिये गये विकल्प या उत्तर सामान्य या प्रचलित (Popular) विकल्पो या उत्तरो से कितने भिन्न है। दूसरे शब्दों मे मौलिकता नवीनता (Newness) से सम्वन्धित होती है। जो व्यक्ति अन्यो से भिन्न विकल्प प्रस्तुत करता है वह मौलिक कहा जा सकता है। वस्तुओ के नये उपयोग वताना, कहानी, कविता या लेख के शीर्षक लिखना, परिवर्तनो के दूरगामी परिणाम वताना, नवीन प्रतीक खोजना आदि मौलिकता के कुछ उदाहरण है।

(iv) **विस्तारण** (Elaboratıon) —विस्तारण से तात्पर्य दिये गये विचारो या भावों की विस्तृत व्याख्या, पूर्ति या प्रस्तुतीकरण से होता है। विस्तारण को दो भागो मे बॉटा जा सकता है—शाब्दिक विस्तारण (Semantic Elaboratıon) तथा आकृति विस्तारण (Fıgural Elaboration)। शाब्दिक विस्तारण मे किसी दी गई सक्षिप्त घटना, क्रिया, कार्य, परिस्थिति आदि को विशद रूप प्रदान करने के लिए कहा जाता है। जवकि आकृति विस्तारण मे दी गई रेखा या अपूर्ण चित्र मे कुछ जोडकर सार्थक चित्र बनाना होता है।

सृजनात्मक बालकों की विशेषताऐं
(Characteristics of Creative Children)

शैक्षिक दृष्टि से सृजनात्मक वालको की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। सृजनात्मक बालको की विशेषताओ को ज्ञात करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अनेक अध्ययन किये है। टोरेन्स (Torrance) ने अनेक सृजनात्मक व्यक्तियो के व्यवहारो का विशद अध्ययन करने के उपरान्त सृजनात्मक व्यक्ति की 84 व्यक्तित्व विशेषताओ की सूची तैयार की थी। सृजनात्मक वालको की पहचान मे सृजनशीलता की द्योतक ये 84 विशेषताएँ महत्वपूर्ण व सार्थक भूमिक अदा कर सकती है। ये विशेषताएँ निम्नवत है—

1. अव्यवस्था को स्वीकारना (Accepts Disorder)
2. जोखिम उठाना (Adventurous)
3. दृढ भावात्मकता (Strong Affection)
4. अन्यो के प्रति जागरुकता (Awareness of others)
5. अव्यवस्था की ओर आकर्षण (Attracted to Disorder)
6. कठिन कार्यो को करना (Attempts Difficult Jobs)
7. रचनात्मक आलोचना (Constructive Criticism)
8. तीव्र व अन्तर्विवेकशील परम्पराएँ (Deep and Conscientious Conventions)
9. परार्थोन्मुख (Altruistic)
10. सदैव परेशान रहना (Always Beffled by Something)
11. रहस्यात्मक खोजो के प्रति आकर्षित होना (Attracted to Mysterious Discoveries)
12. झेपू या लज्जालु (Bashful Outwardly)
13. साहसिक (Courageous)
14. शिष्टाचार परम्पराओ को स्पष्ट करना (Defines Conventions of Courtesy)
15 स्वास्थ्य परम्पराओ को स्पष्ट करना (Defines Conventions of Helath)
16. श्रेष्ठ बनने की इच्छा (Desire to Excel)
17. दृढ़ निश्चय (Determination)
18. विभेदीकृत मूल्य अधिक्रम (Differentiated Value-hierarchy)
19. असन्तुष्ट (Discontented)
20. व्यवस्था को विगाडने वाले (Disturbs Organization)
21 प्रवल, हावी (Domination)
22. सवेगात्मक (Emotional)
23. सवेगात्मक रुप से सवेदनशील (Emotionality Sensitive)
24. उत्साही (Energetic)

25. दोष निकालने वाला	(A Fault Finder)
26. लोगो की चिन्ता नही करना	(Does not fear being thought differently)
27. जिज्ञासा से परिपूर्ण	(Full of Curiosity)
28. प्राय आत्म-सन्तुष्ट प्रतीत होना	(Appears self-satisfied at times)
29. एकान्तप्रिय	(Likes Solitude)
30. अनुभव करना कि सारी व्यवस्था गडबड है।	(Feels whole parade is out of step)
31. निर्णय में स्वतन्त्रता	(Independence in Judgement)
32. चिन्तन मे स्वतन्त्रता	(Independence in Thinking)
33. व्यक्तिवादी	(Individualistic)
34. अन्त·प्रज्ञात्मक	(Intuitive)
35. परिश्रमी	(Industrious)
36. अन्त मुखी	(Introversive)
37. व्यावहारिक योग्यता मे कमी	(Lacks Business Ability)
38. त्रुटि करना	(Makes Mistakes)
39. कभी न ऊबना	(Never Bored)
40. आक्रामक और पलायनवादी नही	(Not hostile or Negativistic)
41. जनप्रिय न होना	(Not Poupular)
42. विचित्र आदतें	(Oddities of Habits)
43. सतत	(Persistent)
44. अपने विचारो मे लीन	(Becomes Preoccupied)
45. जटिल विचारों को पसन्द करना	(Preference for Complex Ideas)
46. अनैष्ठिक	(Non-conforming)
47. अनियमित समय पर कार्य करना	(Keeps Unusual Hours)
48. प्रश्न करने की योग्यता	(A Questioning Ability)
49. आमूल-चूल परिवर्तनवादी	(Radical)
50. वाह्य सवेदनाओं को ग्रहण करना	(Receptive to External Stimuli)
51. अन्य व्यक्तियों के विचारो का ग्राही	(Receptive to Ideas of Others)
52. कभी-कभी पलायनवादी	(Regresses Occasionally)
53. विचारों के दमन का विरोधी	(Rejection of Suppression as Mechanism of Impulse Control)
54. दमन को नकारना	(Rejection of Repression)
55. संकल्पी	(Resolute)
56. आत्मसात	(Reserved)

57. आत्म-सचेत (Self-aware)
58. आत्म विश्वासी (Self-Confident)
59. आत्म निर्भर (Self-sufficient)
60. हँसोड (Sense of Humour)
61. सुन्दरता के प्रति सवेदनशील (Sensitive to Beauty)
62. निश्छल (Sincre)
63. अधिकारो को त्यागने वाला (Shuns Power)
64. अपने आपको थोपने वाला (Self-assertive)
65. स्वचालित (Self-starter)
66. नियति को मानना (Senses of Destiny)
67. छोटी-छोटी बातो से अरूचि (Not Intersted in Small Details)
68. परिकल्पनात्मक (Speculative)
69. असहमत होने को तत्पर (Spirited in Disagreement)
70. दूरगामी लक्ष्यो का आकाक्षी (Strives for Distant Goals)
71. हठी या अडियल (Stubborn)
72. अस्थायी स्वभाव (Temperamental)
73. दृढ (Tenacious)
74. वात्सल्य (Tender Emotions)
75. डरपोक (Timid)
76. परिपूर्ण (Thorough)
77. शक्ति से परे तटस्थ (Unconcerned about Power)
78. कुछ असुसस्कृत, आदिम (Somewhat Uncultured, Primitive)
79. अपरिष्कृत (Unsophisticated,Naive)
80. कहने मात्र से किसी वस्तु को स्वीकार करने का अनेच्छुक (Unwilling to accept any thing on mere say to)
81. दृष्टा (Visionary)
82. बहुमुखी (Versatile)
83. जोखम उठाने को तैयार (Willing to take risks)
84. कुछ विरक्त और खामोश (Somewhat withdrawn and Quiescent)

सृजनात्मक व्यक्तियो की उपरोक्त वर्णित विशेषताओ के अवलोकन से स्पप्ट है कि सृजनात्मक बालकों मे उच्च बुद्धिलब्धि, स्वतन्त्र निर्णय शक्ति, मौलिकता, क्रियाशीलता, जिज्ञासा, कौतूहल, उत्सुकता, अन्तर्दृष्टि, सवेदनशीलता, समायोजन प्रवृत्ति, विनोदी स्वभाव, सौन्दर्यात्मक मूल्य जैसे गुण पाये जाते है।

सृजनात्मक बालकों की पहचान
(Identification of Creative Children)

यद्यपि सृजनात्मकता वास्तव मे एक मानसिक योग्यता ही है, फिर भी अन्य मानसिक योग्यताओ के मापन की तुलना मे सृजनशीलता का मापन एक जटिल कार्य है। सृजनात्मकता के अन्तर्गत अनूठे, अस्पष्ट, विस्तृत तथा जटिल कार्यो को करने की अनेको क्षमताये समाविष्ट रहती है इसीलिए सृजनात्मकता का मापन करना मुश्किल होता है। वास्तव मे किसी भी एक परीक्षण की सहायता से किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण सृजनशीलता को कदापि मापा नही जा सकता है। यही कारण है कि मेकनील (Mc Neil, 1960) ने सुझाव दिया था कि सृजनात्मकता के प्रत्येक कारक या घटक को अलग-अलग परीक्षणों के द्वारा मापा जाना चाहिए। सृजनात्मक के किसी भी कारक या घटक को मापने के लिए परीक्षण तैयार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उस कारक या घटक को मानव व्यवहार के रुप मे स्पष्ट व वस्तुनिष्ठ ढग से परिभाषित किया जा सके। सृजनात्मक के प्रमुख घटकों तथा सृजनशील व्यक्तित्व की विशेषताओ के वर्णन पीछे किया जा चुका है। हरग्रीव्ज (Hargreaves), थर्सटन (Thurstone), विल्सन (Wilson), टेलर (Tailor), गिलफोर्ड (Guilford), मेरीफील्ड (Merrifield), हालैन्ड (Holland), कैण्ट (Kent), हेरिस (Harris), ओविन (Owen), टोरेन्स (Torrance) आदि ने सृजनशीलता के मापन के प्रयासो मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गिलफोर्ड तथा मेरीफील्ड के द्वारा निर्मित 'कालेज छात्रो के लिए सृजनात्मकता परीक्षण,' हालैण्ड तथा कैण्ट के द्वारा निर्मित 'स्कूल छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण' तथा टोरेन्स के द्वारा तैयार किया गया 'सृजनात्मक चिन्तन का मिनिसोटा परीक्षण' काफी प्रस्द्धि हुए। भारत मे बी० के० पासी तथा बाकर मेहृदी के द्वारा विकसित किये गये सृजनात्मकता परीक्षणो को पर्याप्त सफलता मिली है।

परन्तु अब तक विकसित किये गये सृजनात्मकता परीक्षणो की अपनी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध नही हो सकती है। अधिकाश परीक्षणो की विश्वसनीयता सदिग्ध है। परीक्षण-पुनर्परीक्षण विश्वसनीयता गुणाको का मान प्राय .40 से .75 के बीच पाया गया है। इन परीक्षणो की पूर्व कथन वैधता (Predictive Validity) काफी कम प्राप्त हुई है। सृजनशीलता के विभिन्न परीक्षणो पर प्राप्त अक परस्पर घनिष्ठ रुप से सहसम्बन्धित नही होते हैं। यही कारण है कि सृजनशीलता परीक्षणो से प्राप्त अको की विश्वसनीयता तथा वैधता को सतोषजनक मानने मे कठिनाई होती है। फिर भी जब तक अधिक वैध मापन विधियो का प्रतिपादन नही हो जाता है तब तक उपलब्ध परीक्षणो के प्रयोग से ही सृजनशीलता का मापना करना होगा।

कतिपय सृजनात्मकता परीक्षण
(Some Tests on Creativity)

जैसी कि चर्चा की जा चुकी है सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेक परीक्षणो का निर्माण व मानकीकरण किया गया है। पाठकों की जानकारी के लिए कुछ प्रमुख परीक्षणो का सक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

1. गिलफोर्ड व मेरीफील्ड का कालेज छात्रों के लिए सृजनात्मकता परीक्षण
(Guilford and Merrifield's Creativity Test for College Students)

गिलफोर्ड तथा मेरीफील्ड के अनुसार सृजनात्मक चिन्तन मे गैर परम्परागत उत्पादन (Divergent Production), रुपान्तरण (Transformations) तथा पुन पारिभाषीकरण (Re-definition) की योग्यताऐ निहित होती है। उन्होने कालेज छात्रो की सृजनशीलता का मापन करने के लिए एक परीक्षण का निर्माण किया, जिसमे निम्न छ घटको या कारको को सम्मिलित किया—

(i) समस्या के प्रति सवेदनशीलता (Senstivity)

(ii) विविधता (Flexibility)

(iii) प्रवाह (Fluency)

(iv) मौलिकता (Originality)

(v) विस्तारण (Elaboration)

(vi) पुन पारिभाषीकरण (Re-definition)

2. टोरेन्स के सृजनात्मक चिन्तन के परीक्षण
(Torrance's Tests of Creative Thinking)

इस परीक्षण शृखला मे दो परीक्षण है—प्रथम शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test) है जिसे शब्दों के साथ सृजनात्मक चिन्तन (Thinking Creatively with words) कहते है, तथा दूसरा आकृतिक परीक्षण (Figural Test) है जिसे चित्रो के साथ सृजनात्मक चिन्तन (Thinking Creatively with Figures) कहते है। इस परीक्षण शृखला मे निम्न चार प्रकार के कार्य सम्मिलित है—

(i) किसी चित्र के सम्बन्ध मे अधिकाधिक प्रश्न करना।

(ii) किसी खिलौने मे सुधार करने के लिए विभिन्न परिवर्तन सुझाना।

(iii) किसी सामान्य वस्तु के अधिकाधिक प्रयोग बताना।

(iv) किसी दो गई वक्रीय रेखा के चारों ओर कोई चित्र बनाना तथा चित्र को शीर्षक देना।

यह परीक्षण प्रवाह (Fuency), विविधता (Flexibility), मौलिकता (Originality) तथा विस्तारण (Elaboration) नामक चार विमीय (Dimensional) प्राप्ताक प्रदान करता है।

3. पासी के सृजनात्मक परीक्षण
(Passi's Tests of Creativity)

इन्दौर के बी० के० पासी के द्वारा 1972 मे निर्मित इस सृजनात्मक परीक्षण मे निम्नलिखित छ उपपरीक्षण सम्मिलित है—

(i) समस्या देखो परीक्षण (Seeing Problem Test)

(ii) असामान्य प्रयोग परीक्षण (Unusual Uses Test)

(iii) परिणाम परीक्षण (Consequences Test)

(iv) जिज्ञासा परीक्षण (Test of Inquisitiveness)

(v) वर्ग पहेली परीक्षण (Square Puzzle Test)

(vi) ब्लाक परीक्षण (Block Test)

स्पष्ट है कि इस परीक्षण मे शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनो ही प्रकार के कार्य सम्मिलित किये गये है। परीक्षण पर कुल सृजनात्मकता प्राप्ताक के साथ-साथ चौदह अन्य प्राप्ताक भी प्राप्त होते है। यद्यपि परीक्षण निर्देशिका अग्रेज़ी भाषा मे है परन्तु परीक्षण पुस्तिकाऐ हिन्दी तथा अग्रेजी दोनो ही भाषाओ मे उपलब्ध है।

4. बाकर मेंहदी के सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण (Baqer Medhdi's Tests of Creative Thinking)

अलीगढ के बाकर मेहदी के द्वारा सृजनात्मक चिन्तन की इस परीक्षण शृखला मे दो परीक्षण है—(1) सृजनात्मक चिन्तन का शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test of Creative Thinking) तथा (ii) सृजनात्मक चिन्तन चित्रो द्वारा (Thinking Creatively with Figures)। पहले परीक्षण, जो कि शाब्दिक परीक्षण है, मे निम्न चार कार्य सम्मिलित किये गये है

(i) यदि ऐसा हो जाये तो(Consequences Test)

(ii) वस्तुओ के नये-नये प्रयोग (Unusual Uses Test)

(iii) नये सम्वन्ध पता लगाना (New Relationship Test)

(iv) वस्तुओ को मनोरजक बनाना (Product Improvement Test)

इस परीक्षण के द्वारा सृजनात्मकता के तीन कारकों-प्रवाह (Fluency), विविधता (Flexibility) तथा मौलिकता (Originility) का मापन होता है।'

दूसरे परीक्षण, जो कि अशाब्दिक परीक्षण है, के अन्तर्गत निम्नाकित तीन कार्य सम्मिलित किये गये है—

(i) चित्र बनाओ

(ii) चित्र पूर्ति व शीर्षक बताओ

(iii) त्रिभुजाकार व अण्डाकार आकृतियाँ

इस परीक्षण के द्वारा विस्तारण (Elaboration) तथा मौलिकता (Originality) नामक कारको का मापन होता है।

सृजनात्मक बालकों की शिक्षा (Education for Creative Students)

सृजनात्मक का शिक्षा मे विशेष महत्व है। शिक्षा के द्वारा वालकों की सृजनात्मक शक्तियो का विकास किया जा सकता है जिनके द्वारा व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे सफलता प्राप्त कर सकता है। आधुनिक युग की अधिकाश सफलताओं का श्रेय सृजनात्मकता को दिया जा सकता है। शिक्षा तथा सृजनात्मकता परस्पर घनिष्ठ रुप से

संबधित है। शिक्षा का कार्य मानव की अन्तर्निहित शक्तियो का विकास करना है। प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ न कुछ सृजनात्मकता अवश्य होती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति को ऐसे अवसर प्रदान कर सकती है कि उसमे अन्तर्निहित सृजनशीलता प्रस्फुटित होकर जीवन की समस्याओ का समाधान करने तथा नवीन कार्य करने मे सहायक हो सके। अत शिक्षा के उद्देशय, पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियो का निर्धारण करते समय सृजनात्मकता के महत्व को भी स्वीकार करना होगा।

सृजनात्मक बालकों की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार से हो ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अनेक सुझाव दिए हैं जिनमे से कुछ प्रमुख सुझाव निम्नवत् है—

1. बालको मे सृजनात्मकता का विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि उनके अध्यापक भी सृजनात्मक प्रवृत्ति के हो। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि अध्यापकगण साहित्य, विज्ञान, कला आदि विभिन्न क्षेत्रो मे तरह-तरह के सृजनात्मक कार्य प्रस्तुत करके अपने छात्रों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करने मे समर्थ होने चाहिए।

2. अध्यापको को अपने छात्रो मे सृजनात्मक कार्यों से सम्वन्धित नवीनतम सूचनाओं को सकलित करने की प्रवृत्ति विकसित करनी चाहिए। छात्रो को ऐसी सूचनाओ को सकलित करने के लिए पर्याप्त अवसर तथा सुविधाये भी उपलब्ध करानी चाहिए।

3. छात्रो मे नवीन विचारो को ग्रहण करने तथा उनका सम्मान करने की प्रवृत्ति विकसित की जानी चाहिए।

4. अध्यापको को चाहिए कि वे छात्रों के कार्यों की प्रशसा करे, उनमे स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना विकसित करे तथा उन्हे सृजनात्मक कार्यो के अवसर प्रदान करे, जिससे उनमे आत्मविश्वास विकसित हो सके।

5. अध्यापकों को छात्रो के समक्ष समस्यात्मक प्रश्नों अथवा परिस्थितियो को प्रस्तुत करके उनकी प्रतिक्रियाओ को आमन्त्रित करना चाहिए। छात्रो के द्वारा दिए जाने वाले मौलिक सुझावों का उचित मूल्याकन किया जाना चाहिए।

6. अध्यापकों के द्वारा कक्षा तथा विद्यालय मे ऐसा वातावरण उपस्थित किया जाना चाहिए जो छात्रों की क्रियाशीलता, उत्पादक चिन्तन तथा नम्यता को प्रोत्साहित करने वाला हो।

7. सृजानात्मकता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि बालको की लगन व रुचि को बनाए रखा जाए। अत अध्यापको को अपने छात्रो की रुचि तथा उत्साह बनाए रखने के यथासम्भव प्रयास करने चाहिए।

8. निर्माण, सुधार, खोज तथा आविष्कार की क्रियाओ मे भाग लेने के लिए छात्रों को अधिकाधिक प्रोत्साहित करना चाहिए।

9. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, तकनीकी अथवा

शैक्षिक आदि की विभिन्न समस्याओ को समझने तथा उनका समाधान प्रस्तुत करने के लिए छात्रो को प्रोत्साहित करना चाहिए।

10. विभिन्न क्षेत्रो के महान अन्वेषको के जीवन परिचय से बालको को अवगत कराना चाहिए जिससे वे उनके जीवन की विभिन्न घटनाओ से प्रेरणा प्राप्त कर सके।

नि सदेह सृजनात्मकता का अत्यत महत्व है इसलिए सृजनात्मक प्रवृत्ति के बालको को प्रारम्भ से ही पहचान कर उनके शिक्षण की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे उनकी सृजनात्मकता साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्र मे अपना योगदान कर सके। छात्रों मे सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक होगा कि उन्हे उन्मुक्त वातावरण, उचित सामग्री तथा पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाये। अध्यापक अपने छात्रो की सृजनात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति करने तथा उसका विकास करने के कार्य मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

विशिष्ट बालक के प्रत्यय को गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनो ही दृष्टि से देखा जाता है। विशिष्ट बालक के सम्वध मे गुणात्मक दृष्टिकोण के अनुसार विशिष्ट बालको के कुछ अलग प्रकार होते है तथा यह माना जाता है कि वे सीखने, सोचने, समायोजन करने आदि मे सामान्य बालको से बिल्कुल भिन्न होते है। विशिष्ट बालको के सम्वध मे मात्रात्मक दृष्टिकोण के अनुसार विशिष्ट बालकों तथा सामान्य बालको के गुणो मे केवल मात्रा का अतर होता है। सभी बालक, चाहे वे सामान्य हो अथवा विशिष्ट, एक ही ढग से पढते, सोचते अथवा समायोजित करते है। विशिष्ट तथा सामान्य बालको मे केवल अतर इतना है कि विशिष्ट बालक ऐसे कार्यो को शीघ्रता से या विलम्ब से अथवा अधिक यथार्थता से या कम यथार्थता से करते है। परतु सभी बालको के लिए लागू होने वाले मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त एक समान होते हैं।

विशिष्ट अथवा अपवाद से तात्पर्य असामान्य (Unusal) अथवा दुर्लभ (Rare) से होता है। विशिष्ट अथवा अपवादात्मक बालक शब्द का प्रयोग विद्वानो ने भिन्न-भिन्न ढग से किया है। कुछ ने इस शब्द का प्रयोग असाधारण प्रतिभा के लिए, कुछ ने सुस्त बालको के लिए तथा कुछ ने शैक्षिक दृष्टि से पिछडे बालको के लिए किया है। वास्तव मे चिकित्सीय, मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक दृष्टि से किये जाने वाले विभिन्न वर्गीकरणो को विशिष्ट बालको के नाम से सम्वोधित किया जाता है। मनोवैज्ञानिको ने विशिष्ट बालक शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास तो किया है, परंतु कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत नही की जा सकी है। फिर भी सभी मनोवैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि विशिष्ट बालक से तात्पर्य उस बालक से होता है जो विकास के विभिन्न पक्षो मे सामान्य से भिन्न है तथा जिसके लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वास्तव मे विशिष्ट बालक शब्द एक वृहद पद (Umbrella like term) है जिसके अतर्गत विभिन्न प्रकार की असामान्यताओ से युक्त बालकों के अनेक समूह समाहित रहते है।

क्रुकशैंक के अनुसार—"विशिष्ट बालक वह है जो बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक अथवा संवेगात्मक दृष्टि से सामान्य समझी जाने वाली वृद्धि तथा विकास से इतना भिन्न है कि वह नियमित विद्यालय कार्यक्रम से पूर्ण लाभ नही उठा सकता है तथा विशिष्ट कक्षा अथवा पूरक शिक्षण व सेवा चाहता है।"

An exceptional child is one who deviates intellectually, physically, socially or emotionally so much from what is considered to be normal growth and development that he cannot receive maximum benefit from a regular school programme and requires a special class or supplementary instruction and services

—William M. Cruickshank

डन के अनुसार—"विशिष्ट बालक वे है जो सामान्य से शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं मे इतने भिन्न है कि बहुसख्यक बालको के लिए बनाया गया विद्यालय कार्यक्रम उनको सर्वांगीण समायोजन व अनुकूलतम विकास के अवसर उपलब्ध नही करा पाता है तथा इसलिए अपनी योग्यताओ के अनुरूप उपलब्धि प्राप्त कर सकने के लिए वे विशेष शिक्षण अथवा कुछ स्थितियो मे विशेष सहायक सेवाये अथवा दोनो चाहते है।"

The exceptionals are those who differ from the average to such degree in physical or psychological characteristics that school programme designed for the majority of the childeren do not afford them the opportunity for all-round adjustment and optimum progress and who, therefore, need either special instruction or in some cases special ancillary services or both to achieve a level commensurate with their respective abilities.

—L. M. Dunn

क्रिक के अनुसार—"विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य अथवा औसत बालक से मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक विशेषताओ मे इतना अधिक भिन्न है कि वह विद्यालय व्यवस्थाओं मे सशोधन अथवा विशेष शैक्षिक सेवाये अथवा पूरक शिक्षण चाहता है जिससे वह अपनी अधिकतम क्षमता का विकास कर सके।"

An exceptional child is he who deviates from the normal or average child in mental, physical and social characteristics to such an extent that he requires a modification of school practices or special educatinal services or supplementary instruction in order to develop to his maximum capacity

—S A. Kirk

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विशिष्ट बालक शब्द से तात्पर्य उन बालको से है जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक विशेषताओ मे सामान्य बालको से इतने भिन्न होते हैं कि उनके लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था करने की आवश्यकता होती है।

विशिष्ट बालकों के प्रकार
(Types of Exceptional Children)

जैसा कि चर्चा की जा चुकी है विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से अनेक क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न हो सकते है। अत विशिष्ट बालको को उनकी भिन्नता के क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। सामान्य तौर पर विशिष्ट बालको को निम्नाकित भागो मे बॉटा जा सकता है—

1. बौद्धिक दृष्टि से विशिष्ट बालक
(Intellectually Exceptional Children)

A. प्रतिभाशाली बालक (Gifted Childeren)

B. मद बुद्धि बालक (Mentally Retarded Children)

2. शैक्षिक दृष्टि से विशिष्ट बालक
(Educationally Exceptional Childredn)

A. तीव्र बालक (Accelerated Children)

B पिछडे बालक (Backward Children)

3. शारीरिक दृष्टि से विशिष्ट बालक

(Physically Exceptional Children)

A. बहरे बालक (Deaf Children)

B. कम सुनने वाले बालक (Hard of Hearing Children)

C. अन्धे बालक (Blind Children)

D. दृष्टिदोष से युक्त बालक (Partially Sighted Children)

E. वाणी दोष से युक्त बालक (Children with Speech Defects)

F. विकलाग बालक (Crippled Children)

4. समस्यात्मक बालक

(Problem Children)

A. सामाजिक कुसमायोजित बालक (Socially Malajusted Children) Children)

B. संवेगात्मक दृष्टि से बालक (Emotionally Distrubed Children)

यहाँ यह बात अच्छी तरह जान लेने की है कि विशिष्ट बालको के उपरोक्त प्रकार एक दूसरे से पूर्ण रुपेण भिन्न नही होते है । कुछ बालक ऐसे भी हो सकते है जिनमे एक से अधिक क्षेत्रों मे भिन्नताये होती है । जैसे एक विकलाग बालक प्रतिभाशाली भी हो सकता है । विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालको के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा व्यवस्था करने की आवश्यकता पडती है । सभी प्रकार के विशिष्ट बालको की चर्चा करना प्रस्तुत पुस्तक के विषय क्षेत्र से बाहर है। फिर भी, प्रस्तुत अध्याय मे प्रतिभाशाली, मद बुद्धि, पिछडे तथा समस्यात्मक बालकों की शिक्षा के सम्वन्ध मे चर्चा की जा रही है।

प्रतिभाशाली बालक
(Gifted Children)

जिन बालको की बुद्धि सामान्य बालको से अधिक होती है उन्हे प्रतिभाशाली बालक कहा जाता है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज की प्रगति उस राष्ट्र के प्रतिभाशाली बालको के ऊपर निर्भर करती है । प्रतिभाशाली बालको मे विकास की अधिक सम्भावनाये होती है । उच्च मानसिक योग्यता वाले बालको को इगित करने के लिए अनेक शब्दो जैसे-प्रतिभाशाली बालक (The Gifted), श्रेष्ठ बालक (Superior Children), निपुण बालक (Talented Children), तीव्र सीखने वाले (Rapid Learners), होशियार छात्र (Brilliant Students) तथा तीव्र छात्र (Bright Students) आदि का प्रयोग किया जाता है। ये सभी शब्द लगभग एक दूसरे के पर्यायवाची के रुप मे योग्यता, उपलब्धि, क्षमता आदि मे सामान्य बालको से सार्थक रुप से अधिक योग्यता वाले बालको के लिए प्रयुक्त किये जाते है। सामान्य तौर पर प्रतिभाशाली बालको को उच्च बुद्धि (High Intelligence) के आधार पर परिभाषित

किया जाता है। प्रतिभा को सामान्य बौद्धिक योग्यता अथवा विभिन्न क्षेत्रो जैसे कला, सगीत, नेतृत्व आदि मे विशिष्ट योग्यता के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है। बौद्धिक दृष्टि से प्रतिभाशाली बालको से तात्पर्य उच्च बुद्धिलब्धि (I. Q.) वाले बालको से है। बुद्धिलब्धि से तात्पर्य मानसिक आयु व शारीरिक आयु के अनुपात से है जिसे 100 से गुणा करके दशमलव बिन्दु हटा दिया जाता है। अत —

$$\text{बुद्धिलब्धि (IQ)} = \frac{\text{मानसिक आयु (Mental Age)}}{\text{शारीरिक आयु (Chronological Age)}} \times 100$$

विभिन्न मनोवैज्ञानिको ने विशिष्ट बालको की बुद्धिलब्धि के लिए भिन्न-भिन्न सीमाये बताई है। जैसे टरमैन ने 140 से अधिक बुद्धिलब्धि (IQ) वाले बालको को प्रतिभाशाली कहा, जबकि डनलप ने 132 से अधिक बुद्धिलब्धि (IQ) वाले बालको को प्रतिभाशाली माना है। सामान्य तौर पर 130 से अधिक बुद्धिलब्धि वाले बालको को प्रतिभाशाली बालक माना जा सकता है। कुछ विद्वान बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ दो से पॉच प्रतिशत बालको को प्रतिभाशाली बालक मानते है। इसके विपरीत कुछ विद्वान विभिन्न क्षेत्रो मे उनके द्वारा किये जाने वाले असाधारण प्रदर्शन (Unusal Performance) को प्रतिभा की कसौटी मानते है। उनके अनुसार सगीत, कला, अभिनय, लेखन, गायन आदि क्षेत्रो मे असाधारण योग्यता वाले बालको को प्रतिभाशाली बालक माना जा सकता है।

प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताये

(Characteristics of the Gifted Children)

प्रतिभाशाली बालको की प्रमुख विशेषताये निम्नवत् है—

1. इनकी पढने-लिखने मे अधिक रुचि होती है।
2. इनका शब्द भडार व्यापक होता है।
3. ये कठिन विषयो मे रुचि लेते है।
4. इनकी ज्ञानेन्द्रियो का विकास तीव्र गति से होता है।
5. इनमे मानसिक क्रियाओ जैसे अवधान, निरीक्षण, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययीकरण, कल्पना, तर्क, चिन्तन, निर्णय, व स्मरण करने की क्षमता अधिक तीव्र होती है।
6. इनका सामान्य ज्ञान अधिक अच्छा होता है।
7. ये अर्मूत विषयो मे अधिक रुचि लेते है।
8. ये समस्याओ का समाधान शीघ्र कर लेते है।
9. इनमे बौद्धिक नेतृत्व के गुण होते है।
10. ये विद्यालयी परीक्षाओ मे अधिक अक पाते है।
11. बुद्धि परीक्षाओ मे इनके अक अधिक होते है।
12. इनके क्रियाकलापो मे विभिन्नताये पाई जाती है।
13. ये अपना विद्यालयी कार्य तथा गृह कार्य शीघ्रता से कर लेते है।
14. इनमे अन्तर्दृष्टि अधिक होती है।

प्रतिभाशाली बालकों की उपरोक्त वर्णित विशेषताऐ उनकी सामूहिक विशेषताओ को इगित करती है तथा यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक प्रतिभाशाली बालक मे ये सभी विशेषताये विद्यमान हो।

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान

(Identification of the Gifted Children)

प्रतिभाशाली बालको के लिए किए जाने वाले शैक्षिक प्रावधानो की चर्चा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उन्हे पहचानने की विधियो का वर्णन किया जाये। प्रतिभाशाली बालको के पहचानने के उपरान्त ही उनके लिए विशिष्ट शैक्षिक देखभाल करना सम्भव हो सकता है। प्रतिभाशाली बालको को पहचानने के लिए विधिवत् अवलोकन (Systematic Observation) तथा मानकीकृत परीक्षणो (Standardized Tests) का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ योग्यताओं की पहचान परीक्षणो के द्वारा की जा सकती है तथा कुछ योग्यताओ को जानने के लिए अवलोकन विधि का ही उपयोग करना होता है जबकि कुछ योग्यताओ को जानने के लिए इन दोनो को ही प्रयोग मे लाना होता है। प्रतिभाशाली बालको की पहचान के लिए प्रयोग मे लाई जाने वाली इन दोनो विधियो के विभिन्न उपप्रकारो के नाम आगे प्रस्तुत किए जा रहे है। इनकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गई है।

1. विधिवत् अवलोकन

(Systematic Observation)

A. अध्यापक निर्णय (Judgement of Teachers)

B. सहपाठी निर्णय (Judgement of Classmates)

2. मानकीकृत परीक्षण

(Standardized Tests)

A. समूह बुद्धि परीक्षण (Group Tests of Intelligence)

B. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Tests of Intelligence)

C. सम्प्राप्ति परीक्षण (Tests of Achievement)

D. विशिष्ट योग्यता परीक्षण (Tests of Special Abilities)

E. रुचि सूचि (Interest Inventories)

F. व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Tests)

इनमे से उपयुक्त उपकरणो का प्रयोग करके अध्यापकगण अपनी कक्षा अथवा विद्यालय के प्रतिभाशाली बालकों की पहचान कर सकते है।

प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा

(Education of the Gifted Children)

प्रतिभाशाली बालको के लिए कौन कौन से विशेष शैक्षिक प्रयास किये जाने चाहिए, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। प्राय. प्रतिभाशाली बालकों की शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होती है तथा अध्ययन की दृष्टि से उनकी समस्याये नही होती है। यही कारण है

कि प्राय कहा जाता है कि ऐसे बालको की शिक्षा की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। वे स्वय अपनी पढ़ाई ठीक ढग से कर लेगे। दरअसल प्रतिभाशाली बालको मे शारीरिक दृष्टि से विकलाग बालको जैसे गूगे, बहरे, अन्धे आदि की तरह से अथवा मानसिक दृष्टि से पिछडे बालको की तरह से अपनी ओर विशिष्ट ध्यान आकर्षित करने की सवेगात्मक अपील (Emotional Appeal) नही होती है। यही कारण है कि पहले प्रतिभाशाली बालको के लिए विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रमो के विचार को हतोत्साहित किया जाता रहा था, परतु विगत कुछ वर्षो मे विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र मे हुए आविष्कारो तथा उनमे प्रतिभाशाली व्यक्तियो के द्वारा किए गए योगदान को ध्यान मे रखकर अब प्रतिभाशाली बालको की शिक्षा पर ध्यान देने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रतिभाशाली बालको के लिए उपयोगी तथा प्रभावशाली शैक्षिक व्यवस्था करने के लिए अनेक विधियो का प्रयोग किया जा सकता है। प्रतिभाशाली बालको के वाछित सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करने के विशिष्ट कक्षाओ (Special Class), तीव्र गति से आगे बढाने (Acceleration) की व्यवस्था तथा सपुष्ट कार्यक्रमो (Enrichment Programme) का प्रयोग किया जा सकता है। विद्यालय मे प्रतिभाशाली बालको की शिक्षा को निम्न ढग से प्रोत्साहित किया जा सकता है—

1. **विशिष्ट कक्षाये (Special Classes)**—प्रतिभाशाली बालको के लिए "विशिष्ट कक्षा—विशिष्ट पाठ्यक्रम अभिगमन" एक अत्यत महत्वपूर्ण विधा है। इसके अतर्गत प्रतिभाशाली बालको को अधिक व्यापक तथा विस्तृत पाठ्यक्रम पढाया जाता है जिससे उनकी विशिष्ट योग्यताओ का अधिक से अधिक विकास हो सके।

2. **तीव्र गति (Acceleration)**—तीव्र गति से तात्पर्य प्रतिभाशाली बालको को प्रारम्भ से ही तीव्र गति से शैक्षिक प्रक्रिया से गुजारना है। विद्यालय मे जल्दी प्रवेश दिला कर तथा तीव्र गति से विद्यालयी शिक्षा समाप्त करके बालको की प्रतिभा का विकास किया जा सकता है। वर्ष मे एक से अधिक बार कक्षा उन्नति (Skipping) के द्वारा ऐसे बालको की शैक्षिक गति को तीव्रता प्रदान की जा सकती है।

3. **संपुष्ट कार्यक्रम (Enrichment Programme)**— सपुष्ट कार्यक्रम से तात्पर्य प्रतिभाशाली बालको को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा विस्तृत अनुभव कराने से है। प्रतिभाशाली बालको को पुस्तकालय, भ्रमण आदि की विशेष सुविधाये देकर उनके ज्ञानार्जन में सहायता की जा सकती है।

4. **व्यक्तिगत ध्यान (Individual Attention)**—अध्यापको तथा अभिभावकों को प्रतिभाशाली बालको के प्रति व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना चाहिए। इन बालको को उचित परामर्श तथा निर्देश देकर उनकी विशिष्ट योग्यताओ का अधिकाधिक विकास करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

5. **श्रेष्ठ अध्यापक (Excellent Teachers)** —प्रतिभाशाली बालको को शिक्षा प्रदान करने के लिए श्रेष्ठ अध्यापको की आवश्यकता होती है। सुयोग्य अध्यापको के सम्पर्क मे आने पर ही वे अपनी क्षमताओ व योग्यताओ का विकास कर सकते है। प्रतिभाशाली बालकों के अध्यापको को ऐसे बालकों के मनोविज्ञान का ज्ञान भी होना चाहिए।

6. प्रोत्साहन (Motivation)—प्रतिभाशाली बालकों को अपनी योग्यता का अधिकतम विकास करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। परिवार, विद्यालय तथा समाज को प्रतिभाशाली बालको के विकास मे प्रारम्भ से ही रूचि लेनी चाहिए तथा ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे ऐसे बालकों का सर्वांगीण विकास हो सके।

मंद बुद्धि बालक
(Mentally Retarded Children)

मद बुद्धि बालको से तात्पर्य उन बालको से है जिनकी मानसिक योग्यता सामान्य से कम होती है। मद बुद्धि अथवा मानसिक मदता (Mental Retardation) को प्राय बुद्धि परीक्षणों पर बालको के द्वारा किये गये कार्यो (Performance) के आधार पर परिभाषित किया जाता है। वे बालक जिनकी बुद्धिलब्धि 80 या 85 से कम होती है, प्राय मद बुद्धि बालक कहलाते है।

मद बुद्धि बालको के लिए अल्प बुद्धिमत्ता, मानसिक दौर्वल्यता, मानसिक निम्न सामान्यता (Feeble Mindedness, Mental Deficiency, Mental Subnormality) जैसे शब्दो का प्रयोग भी किया जाता है। मद बुद्धि बालको को उनकी बुद्धिलब्धि अथवा मानसिक योग्यता के आधार पर कई भागो मे बाँटा जा सकता है। प्राय 70 से 85 बुद्धिलब्धि वाले बालकों को Moron, Educable Mentally Retarded या Mild Mental Subnormal कहा जाता है, 50 से 70 बुद्धिलब्धि वाले बालको को Imbecile, Trainable या Moderate Mental Subnormal कहा जाता है, 25 से 50 बुद्धिलब्धि वाले बालको को Idiot, Custodial या Severe Mental Subnormal कहा जाता है तथा शून्य से 25 बुद्धिलब्धि वाले बालको को Profound Mental Subnormal कहा जाता है।

मानसिक मन्दता पर अमेरिकन ऐसोसिएशन के अनुसार—"मानसिक पिछड़ेपन से तात्पर्य सार्थक रुप से औसत से कम सामान्य बौद्धिक कार्यपरकता से है जो अनुकूलन व्यवहार मे कमी के सहगामी के रुप मे विद्यमान होती है तथा विकासात्मक अवस्था मे परिलक्षित होती है।"

Mental retardation refers to significantly sub-aveage general intellectual functioning existing concurrently with deficits in adaptive behaviour and manifested during the developmental period.

—American Association on Mental Deficiency

स्पष्ट है कि मानसिक मन्दता वास्तव मे एक ऐसा शब्द है जो मानसिक मन्दता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न स्तरो के बालकों को इगित करता है।

मंद बुद्धि बालकों की विशेषतायें
(Characteristics of Mentally Retarded Children)

मद बुद्धि बालको की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है—

1. ऐसे बालक सीखी गई बात को नवीन परिस्थितियों मे प्रयुक्त करने मे कठिनाई

का अनुभव करते है।

2. ऐसे बालक अन्य व्यक्तियो या परिजनो की जरा भी चिन्ता किये विना केवल अपनी चिन्ता करते है।

3. ऐसे बालको मे आत्मविश्वास की कमी होती है।

4. ऐसे बालको की बुद्धिलब्धि 80—85 से कम होती है।

5. ऐसे बालको की सीखने की गति मद होती है।

6. ऐसे बालक जटिल परिस्थितियों को सीखने मे प्राय असफल रहते है।

7. ऐसे बालक कार्य तथा कारण (Cause and Effect) के सम्वध मे अजीबोगरीब धारणाये बना लेते है।

8. ऐसे बालकों का पारिवारिक, विद्यालयी, सामाजिक व सवेगात्मक समायोजन उचित नही होता है।

9. ऐसे बालक एक ही प्रकार के विभिन्न अवसरो पर भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार करते है।

मंदबुद्धि बालकों की पहचान

(Identification of the Mentally Retarded Children)

मद बुद्धि बालकों को पहचानने के उपरान्त ही उनकी विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरुप शैक्षिक देखभाल करने सम्भव हो सकता है। मदवुद्धि वालको की पहचान करने के लिए भी विधिवत् अवलोकन (Systematic Observation) तथा मानकीकृत परीक्षणो (Standardized Tests) का प्रयोग किया जा सकता है। व्यक्तिगत व सामूहिक वुद्धि परीक्षणो, सम्प्राप्ति परीक्षणो तथा व्यक्तित्व परीक्षणो के द्वारा मदवुद्धि बालकों को पहचाना जा सकता है। अध्यापको, सहपाठियो, परिवारजनो तथा इष्ट मित्रो के द्वारा बालको के सवध मे की गई अवलोकनात्मक टिप्पणियों से भी मदवुद्धि बालको के संबंध मे महत्वपूर्ण सूचनाये प्राप्त होती है। मानकीकृत परीक्षणो का प्रयोग प्राय तब ही किया जाता है जब कतिपय बालको की बुद्धि के सामान्य होने के सवध मे सदेह होता है। यह संदेह निश्चय ही बालक के द्वारा घर, परिवार, पडोस, विद्यालय या खेलकूद में किये जाने वाले व्यवहार के अवलोकन से ही परिलक्षित होता है। किसी भी बालक के मदवुद्धि होने पर उस पर मानकीकृत परीक्षणो को प्रशासित करके उसकी बुद्धिलब्धि का निश्चय करना अत्यत आवश्यक हो जाता है।

मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा

(Education of Mentally Retarded Children)

मद बुद्धि बालको को किस प्रकार से शिक्षा प्रदान की जाये, इस प्रश्न पर विचार करना अत्यत आवश्यक है। यद्यपि भारतवर्ष मे मद बुद्धि बालको के लिए विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रमो का अभाव सा दृष्टिगोचर होता है, परतु विकसित राष्ट्रो मे मद बुद्धि बालको की शिक्षा के लिए अनेक सार्थक प्रयास किए जा रहे है। अग्राकित उपायो को दृष्टिगत रखकर मद बुद्धि बालको को शिक्षित किया जा सकता है—

1. शिक्षा का उद्देश्य (Aims of Education)—मद बुद्धि बालको की शिक्षा का उद्देश्य उनके दैनिक जीवन मे आने वाली व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए उन्हें तैयार करना है। दूसरे शब्दो मे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति, स्वस्थ आदतो का निर्माण, सुरक्षा, प्राथमिक चिकित्सा तथा मनोरजन की शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. स्वयम् देखभाल का प्रशिक्षण (Training for Self-Care)—मद बुद्धि बालक अपनी देखभाल स्वय कर सके, इसके लिए उन्हे शिक्षित किया जाना आवश्यक है। कपडे पहनने, भोजन करने, सफाई करने, अपनी वस्तुओ की रक्षा करने, अपना मनोरजन करने आदि का प्रशिक्षण ऐसे बालको को दिया जाना चाहिए जिससे वे अपने दैनिक कार्यो को स्वयम् कर सके।

3. सामाजिक प्रशिक्षण (Social Training)—मद बुद्धि बालको को उचित सामाजिक व्यवहार करने के लिए भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। सामूहिक कार्यो, खेलो तथा सामाजिक शिष्टाचार का प्रशिक्षण देकर मद बुद्धि बालको को विभिन्न सामाजिक क्रियाकलापो मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

4. आर्थिक प्रशिक्षण (Economic Training)—मद बुद्धि बालको को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है कि वे अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक न्यूनतम धन अर्जित करने मे समर्थ हो सके। छोटे-छोटे घरेलू कार्यो, हस्तशिल्पो आदि का प्रशिक्षण देकर ऐसे बालको को स्वावलम्बी बनाया जा सकता है।

5. विशिष्ट कक्षाये (Special Classes)—क्योकि मद बुद्धि बालक अपनी मानसिक सीमाओ के कारण सामान्य कक्षाओ का पूर्ण लाभ नही उठा सकते है, अत उनके लिए विशेष रुप से प्रशिक्षित अध्यापको के द्वारा सचालित विशिष्ट कक्षाओ की व्यवस्था की जानी चाहिए।

पिछड़ा बालक
(Backward Children)

पिछडे बालक से तात्पर्य उन बालको से है जो शिक्षा प्राप्त करने में सामान्य बालको से पिछड जाते है। अत जो बालक अपनी कक्षा के अन्य बालकों से अध्ययन की दृष्टि से पिछड जाते है, उन्हे पिछडा बालक कहते है। पिछडे बालको का मद बुद्धि होना आवश्यक नही है। औसत बुद्धि बालक अथवा तीव्र बुद्धि बालक भी पिछडा बालक हो सकता है यदि वह कक्षा के औसत छात्रो से शैक्षिक दृष्टि से कम होता है। पिछडेपन के अनेक कारण हो सकते है। शारीरिक निर्वलता, तुतलाना, हकलाना, ऊँचा सुनना आदि शारीरिक कारणो के अतिरिक्त परिवार के कलहपूर्ण, अशिक्षित, दूषित व शोर-शरावे से युक्त वातावरण, परिवार की निर्धनता, बुरे मित्रो की सगति, अयोग्य व निष्ठुर अध्यापक, निर्देशन का अभाव जैसे अन्य कारणो की वजह से बालक अपनी शिक्षा को ठीक ढग से जारी नही रख पाते है तथा वे शिक्षा प्राप्त करने मे पिछड जाते है। पिछडेपन को प्राय शैक्षिक लब्धि (Educational Quotient) अर्थात् E Q के द्वारा व्यक्त करते

है। शैक्षिक लब्धि ज्ञात करने का सूत्र है—

$$\text{शैक्षिक लब्धि (E.Q)} = \frac{\text{शैक्षिक आयु (Educational Age)}}{\text{वास्तविक आयु (Chronological Age)}} \times 100$$

बर्ट के अनुसार जिस बालक की शैक्षिक लब्धि 85 से कम होती है उसे पिछडा बालक कहते है। पिछडे बालक की यह परिभाषा प्राय सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।

पिछड़े बालकों की विशेषतायें

(Characteristics of Backward Children)

पिछडे बालको मे निम्नलिखित विशेषताये पाई जाती है—

1. ऐसे बालकों की सीखने की गति धीमी होती है।
2. ऐसे बालको की विद्यालयी शैक्षिक उपलब्धि तथा परीक्षा उपलब्धि उनकी बुद्धि की तुलना मे कम होती है।
3. ऐसे बालक अपनी कक्षा का कार्य तथा गृह कार्य समुचित ढग से करने मे असमर्थ होते है।
4. ऐसे बालक विद्यालय के सामान्य पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियो से लाभ उठाने मे विफल रहते है।
5. ऐसे बालको मे जीवन के प्रति निराशा रहती है।
6. ऐसे बालक मानसिक रुप से अस्वस्थ होते है।
7. ऐसे बालक प्राय असमायोजित व्यवहार करते है।

पिछड़े बालकों की पहचान

(Indentification of Backward Children)

नि सदेह पिछडे बालको के लिए कुछ विशिष्ट शैक्षिक प्रावधान करने आवश्यक है जिससे उनके पिछडेपन को दूर करके उन्हें मुख्य शैक्षिक धारा मे सुचारु रुप से आगे बढने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। पिछडे बालको का मानसिक विकास अथवा बुद्धि की दृष्टि से पिछडा होना जरुरी नही है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है पिछडे बालको से तात्पर्य शैक्षिक दृष्टि से पिछडे बालकों से है। अध्यापकगण, अभिभावक तथा सहपाठी अपने निरीक्षण व अवलोकन के द्वारा पिछडे बालकों को पहचान सकते है। गृहकार्य करने मे कठिनाई का अनुभव करने वाले, कक्षा मे अध्यापक के प्रश्नो का समुचित उत्तर देने मे असमर्थ रहने वाले, परीक्षाओ मे कम अक प्राप्त करने वाले, अथवा पढाई से जी चुराने वाले बालक पिछडे बालक हो सकते है। अत अध्यापक, अभिभावक तथा सहपाठी ऐसे बालको को पहचान कर उनकी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओ की ओर ध्यान आकर्षित कर सकते है। विभिन्न प्रकार के मानकीकृत सम्प्राप्ति परीक्षणो (Standardized Achievement Tests) का प्रयोग करके पिछडे बालको को पहचाना जा सकता है। पिछड़े बालको को पहचानने तथा उनके पिछडेपन की मात्रा को आँकिक रुप मे परिवर्तित करनेके लिए शैक्षिक लब्धि (Educational Quotient) की

गणना भी की जा सकती है। शैक्षिक लब्धि करने का सूत्र पीछे प्रस्तुत किया जा चुका है।

पिछड़े बालकों की शिक्षा

(Education of Backward Children)

पिछडे बालको के पिछडेपन का कारण प्राय· उनकी पारिवारिक स्थिति, विद्यालयी वातावरण, मित्र मडली तथा उनका स्वय का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सवेगात्मक विकास होता है। इन कारणो को दूर करके बालकों के पिछडेपन को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। परिवार तथा अध्यापको को मिलकर बालकों के पिछडेपन के कारणो को ज्ञात करना चाहिए तथा उन्हे दूर करके उन बालकों को शिक्षा की मुख्य धारा मे सम्मिलितत करने का प्रयास करना चाहिए। अभिभावक तथा अध्यापकगण निम्नाकित बातों पर ध्यान देकर पिछडे बालको की शिक्षा मे सार्थक योगदान कर सकते है—

1. अभिभावको तथा अध्यापको को ऐसे बालको के शारीरिक दोषो तथा रोगो का उपचार करना चाहिए। बच्चो की शारीरिक निर्बलता को दूर करने के लिए उन्हे सतुलित भोजन दिए जाने की व्यवस्था करायी जानी चाहिए।

2. निर्धन परिवार के बच्चों को नि शुल्क शिक्षा, शिक्षण सामग्री तथा छात्रवृत्तियाँ देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. ऐसे बालको के पारिवारिक वातावरण मे सुधार करने के प्रयास किये जाने चाहिए। बालकों के माता-पिता मे अच्छी आदते विकसित करने तथा अशिक्षित माता-पिता को साक्षर बनाने के लिए प्रयास करने चाहिए।

4. ऐसे बालको के सगी-साथियो पर नजर रखनी चाहिए तथा यदि वे कुसगति मे पडकर स्कूल न जाकर पढना-लिखना छोडकर इधर-उधर घूमते रहते है तो उन्हे कुसगति से बचाना चाहिए।

5. ऐसे बालको की शिक्षा के लिए विशेष शिक्षण विधियो का प्रयोग चाहिए। उन्हें सरल व रुचिकर ढग से श्रव्य व दृश्य सामग्री की सहायता से धीमी गति से पढाया जाना चाहिए।

6. ऐसे बालको के लिए विशेष कक्षाओ की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिनमे छात्र संख्या कम हो तथा जहाँ वे अपनी रुचि, आवश्यकता व परिस्थिति के अनुरुप शिक्षा प्राप्त कर सके।

7. ऐसे बालको की शिक्षा पर अध्यापकों व अभिभावकों को व्यक्तिगत रुप से ध्यान देना चाहिए।

8. ऐसे बालको को पढ़ाने के लिए श्रेष्ठ व प्रशिक्षित अध्यापको की नियुक्ति की जानी चाहिए।

विकलांग बालक

(Physically Handicapped Children)

विकलाग बालक से तात्पर्य किसी स्थायी शारीरिक दोष से युक्त बालकों से होता

है। स्थायी शारीरिक दोष के कारण बालक सामान्य बालको की सामान्य क्रियाओ मे भाग लेने से वचित हो जाते है। अपग, अधे, बहरे, वाणी दोष से युक्त बालक विकलाग बालको के वर्ग मे आते है।

विकलांग बालकों की शिक्षा
(Education of Handicapped Children)

विकलाग बालको मे शारीरिक दोष अवश्य होता है परतु यह आवश्यक नही कि वे मानसिक दृष्टि से भी अयोग्य हो। विकलाग बालको की मानसिक योग्यता प्राय· साधारण अथवा तीव्र होती है परतु शारीरिक दोष के कारण उनमे हीन भावना आ जाती है। इसलिए ऐसे बालकों की शिक्षा की उचित व्यवस्था की अत्यत आवश्यकता होती है। बिकलाँग बालकों की शिक्षा व्यवस्था मे अग्राकित बातो का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए—

1. ऐसे बालको के लिए उनकी विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरुप विद्यालय खोले जाने चाहिए।

2. चिकित्सकों से परामर्श लेकर इनके लिए आवश्यक चिकित्सा सुविधा, उपकरणो तथा अन्य साधनो को उपलब्ध कराना चाहिए।

3. विकलाग बालकों की हीन भावना को दूर करने के लिए माता-पिता तथा शिक्षकों को सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

4. शिक्षा सस्थानो मे अपग बालको के बैठने के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. अपग बालको को उनकी विशिष्ट परिस्थिति के अनुरूप आवश्यकतानुसार उचित व्यावसायिक शिक्षा देना चाहिए।

6. अधे बच्चों को ब्रेल प्रणाली (Braille Method) से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

7. तुतलाने, हकलाने अथवा किसी अन्य उपचार योग्य दोष वाले बालको का मनोवैज्ञानिक उपचार कराना चाहिए।

समस्यात्मक बालक
(Problem Children)

समस्यात्मक बालको से तात्पर्य उन बालको से है जो परिवार, कक्षा या विद्यालय मे तरह-तरह की समस्याये उत्पन्न करते है। ऐसे बालको का व्यवहार सामान्य से अलग हट कर होता है तथा ये कक्षा अथवा विद्यालय मे अपने को ठीक ढग से समायोजित नही कर पाते हैं। ऐसे बालक अध्यापक के लिए समस्या वने रहते है।

समस्यात्मक बालक अनेक प्रकार के हो सकते है। जैसे चोरी करने वाले वालक, झूठ वोलने वाले वालक, क्रोध करने वाले बालक, विद्यालय से भाग जाने वाले वालक, गृहकार्य न करके लाने वाले बालक, कक्षा मे देर से आने वाले वालक आदि-आदि। समस्यात्मक बालकों के समस्यात्मक व्यवहार के कारणो को जान कर ऐसे वालको के

व्यवहार मे सुधार लाया जा सकता है । अध्यापक तथा अभिभावको को चाहिए कि वे जब भी किसी बालक मे समस्यात्मक व्यवहार को देखे तो उसके कारणो को खोजने का प्रयास करे । प्राय बालक आवश्यकताये पूरी न होने पर, अत्याधिक लाड-प्यार मे, कठोर अनुशासन के कारण या असुरक्षा की भावना के कारण विभिन्न प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार करते है । परिवार, विद्यालय व समाज का दूषित वातावरण, माता-पिता व शिक्षको का आवश्यकता से अधिक लाड-प्यार अथवा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार अथवा कठोर अनुशासन बालको मे समस्यात्मक प्रवृत्ति को वढाता है ।

समस्यात्मक बालकों की शिक्षा

(Education of Problem Children)

समस्यात्मक बालको को उनके समस्यात्मक व्यवहार के लिए प्रताडित अथवा शारीरिक दड न देकर मनोवैज्ञानिक ढग से शिक्षा प्रदान करनी चाहिए । माता-पिता तथा अध्यापक अपने उत्तरदायित्व को समझकर उनके लिए उपयुक्त वातावरण, सुविधायें तथा अवसर प्रदान करे जिससे उनकी समस्याओ का निराकरण हो सके । समस्यात्मक बालको की शिक्षा के समय निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए ।

1. माता-पिता को बच्चो के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा सहयोगात्मक व्यवहार करना चाहिए ।

2. बालको की मूल प्रवृत्तियो का दमन न करके उनका शमन या परिशोधन किया जाना चाहिए ।

3. बालको को अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन तथा पुरस्कार देने चाहिए ।

4. बालकों के सगी-साथियो पर कडी नजर रखनी चाहिए ।

5. बालको को नैतिक शिक्षा प्रदान करनी चाहिए ।

6. बालको को मनोरजन के उचित अवसर दिये जाने चाहिए ।

7. बालको की व्यक्तिगत आवश्यकताओ की पूर्ति करनी चाहिए ।

8. अध्यापकों का व्यवहार मधुर तथा सहयोगात्मक होना चाहिए ।

9. बालको की आवश्यकता, परिस्थिति तथा क्षमता के अनुरुप ही उन्हे गृहकार्य दिया जाना चाहिए ।

10. बालको मे आत्म-अनुशासन की भावना विकसित करने के लिए उन्हे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिये जाने चाहिए ।

11. विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओ का आयोजन करके बालकों को अपनी रुचियाँ प्रदर्शित करने के अवसर दिये जाने चाहिए ।

25 समूह मनोविज्ञान
(Group Psychology)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके जीवन का प्रारम्भ समाज मे ही होता है तथा जीवनपर्यन्त समाज मे रहकर ही वह अपने जीवन की विभिन्न गतिविधियाँ करता है। समाज के सदस्यो मे परस्पर सहयोग का होना स्वाभाविक ही है। वास्तव मे मनुष्यो मे समूह मूल प्रवृत्ति (Gregariousness) होती है। वह समूह वना कर रहता है तथा समूह मे रहकर ही अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उसकी अनेक मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि समूहों मे ही हो सकती है। समाज व्यक्तियो का एक दीर्घ समूह होता है। समूह के सदस्य होने के कारण व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियो तथा व्यवहारो का प्रभाव समूह पर पडता है तथा समूह के अन्य सदस्यों का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पडना स्वाभाविक ही है। समूह के कारण व्यक्ति मे कुछ सामूहिक प्रवृत्तियाँ विकसित होती है जो समूह के सदस्यो के व्यवहार का सचालन व निर्देशन करती है। मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अतर्गत न केवल व्यक्ति के व्यवहार वरन् समूह के व्यवहार का अध्ययन भी किया जाता है जिसे समूह मनोविज्ञान (Group Psychology) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। शिक्षा का एक उद्देश्य बालक का समाजीकरण करना है तथा समाजीकरण समूहो मे ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रक्रिया मे बालको को तरह-तरह के समूहो को बना कर कार्य करना होता है। यही कारण है कि शिक्षा मनोविज्ञान मे समूह मनोविज्ञान को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे समूह मनोविज्ञान तथा समूह गतिशीलता की चर्चा की गई है।

समूह का अर्थ
(Meaning of Group)

मनुष्य मे समूह बना कर रहने की सामाजिक प्रवृत्ति होती है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य पारस्परिक सहायता के अभाव मे अपने प्रयोजन को पूरा नही कर सकता है। अपने हितो के लिए उसे अन्य व्यक्तियो से सम्पर्क बनाना पडता है। व्यक्ति के सम्पर्क मे समान हित वाले जो व्यक्ति आते है वे धीरे-धीरे एक समूह का रुप ले लेते है। व्यक्ति समूह मे अपने व्यक्तित्व को भूल कर सामूहिक व्यक्तित्व को अपना लेता है तथा समूह के प्रयोजन के अनुकूल आचरण करता है। समूह समाज के अग होते है। किसी समूह के सदस्य अपने स्वभाव, आचरण, बुद्धि अथवा कार्य मे परस्पर कितने ही भिन्न क्यो न हो, परतु समूह के सदस्य के रुप मे वे एक विशिष्ट ढग से अनुभव करने, सोचने तथा कार्य करने लिए प्रवृत्त होते है। समूह के सदस्यो का यह विशिष्ट ढग उनके व्यक्तिगत ढगो से पूर्णरुपेण भिन्न भी हो सकता है। समूह के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विद्वानो ने भिन्न-भिन्न परिभाषाये दी है—

आगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार—"जब दो या अधिक व्यक्ति निकट आते है तथा एक दूसरे पर प्रभाव डालते है तो कहा जाता है कि वे सामाजिक समूहो का निर्माण करते है।"

Whenever two or more individuals come together and influence one another, they may be said to constitute a social group.

—Ogburn and Nimkoff

क्यूबर के शब्दों में—"कोई समूह पारस्परिक सप्रेषण वाले व्यक्तियो की कोई सख्या है।"

A group is any number of human beings in reciprocal communication.

—Cuber

मैक आइवर तथा पेज के अनुसार—"समूह से हमारा तात्पर्य व्यक्तियो के किसी जमाव से है जो परस्पर एक-दूसरे से सामाजिक सबध बनाते है।"

By group we mean a collection of human beings who are brought into social relations with one another.

—Mac Iver and Page

बोगार्ड्स के अनुसार—"सामाजिक समूह से तात्पर्य दो या अधिक व्यक्तियो से है जिनका कोई समान उद्देश्य होता है जो एक दूसरे से प्रेरित होते है, जिनमे समान निष्ठा होती है तथा जो एक जैसी क्रियाओ मे भाग लेते है।

A social group may be thought of as a number of persons two or more who have some common objects of attention, who are stimulated to each other, who have a common loyalty and participate in similar activities.

—Bogardus

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समूह परस्पर सामाजिक सम्वधों के द्वारा बनते हैं। समूह के सदस्यो की आवश्यकताये अथवा हित एक जैसे होते है।

समूह की विशेषतायें

(Characteristics of Group)

सामाजिक समूहों मे निम्नांकित विशेषताये होती हैं—

1. समूह के सभी सदस्यों के उद्देश्य अथवा दृष्टिकोण समान होते है। इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए वे परस्पर सद्भावना से कार्य करते है।

2. समूह में एकता तथा सहयोग की भावना पाई जाती है। एक जैसा स्वार्थ होने के कारण समूह के सदस्य परस्पर मिल-जुल कर कार्य करते हैं।

3. समूह मे पारस्परिक जागरुकता की भावना होती है। समूह के सदस्य प्रत्यक्ष रुप में आमने-सामने हो अथवा न हो, परतु वे एक-दूसरे के हित के लिए सदैव जागरुक

रहते है।

4. समूह के सदस्यों मे 'हम की भावना' (We feeling) होती है जिसके कारण वे केवल अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति न करके अन्य सदस्यो के हितो की रक्षा भी करते है।

5. समूह के सदस्यो में समूह के प्रति एक आस्था होती है। वे समूह के सम्मान तथा प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए कटिबद्ध रहते है।

6. समूह के सदस्यो के विचारों, आदर्शों तथा मूल्यों मे कुछ न कुछ समानता आवश्यक होती है।

7. प्रत्येक समूह की अपनी कुछ मान्यताये, परम्पराये तथा नियम होते है जिनका पालन समूह के सभी सदस्य करते है।

8. समूह के सदस्यों को एक सामूहिक शक्ति की अनुभूति होती है जिसके परिणामस्वरुप वे ऐसे व्यवहार, आचरण अथवा कार्य कर लेते है जिनकी उनसे आशा नही की जा सकती है।

9. समूह के सदस्य भावनाओ से अधिक प्रभावित होते है, वे परस्पर तर्क तथा आलोचना को अधिक महत्व नही देते है।

10. समूह की बुद्धि, तर्क तथा निर्णय आदि समूह के नेता पर निर्भर करते है। समूह का नेता समूह के मर्न को वाछित दिशा मे मोड सकता है।

समूह के प्रकार
(Types of Group)

समूहो को दो भागो मे बॉटा जा सकता है—स्वाभाविक समूह तथा कृत्रिम समूह।

1. स्वाभाविक समूह (Natural Groups) —स्वाभाविक समूह को प्राथमिक समूह (Primary Groups) भी कहा जाता है। इस प्रकार के समूह अनिवार्य सदस्यता वाले होते है अर्थात् व्यक्ति स्वाभाविक ढंग से ही समूह का सदस्य वन जाता है। जैसे परिवार, राज्य, राष्ट्र आदि स्वाभाविक समूह के उदाहरण है।

2. कृत्रिम समूह (Formed Groups)—कृत्रिम समूहो को द्वितीय समूह (Secondary Groups) भी कहते है। इस प्रकार के समूह की सदस्यता ऐच्छिक होती है। जैसे विद्यालय, क्लव, राजनैतिक दल या मनोरजन सबधी संस्थाये।

ड्रेवर ने मानसिक विकास के आधार पर समूहो को तीन भागों मे विभक्त किया है—प्रत्यक्षात्मक स्तर के समूह, विचारात्मक स्तर के समूह तथा विवेकात्मक स्तर के समूह। प्रत्यक्षात्मक स्तर (Perceptual Level) के समूह प्रत्यक्षात्मक व्यवहार अर्थात् मूल प्रवृत्तियो पर आधारित होते है। इन्हे सर्वाधिक निम्न स्तर का समूह माना जाता है। भीड़ रुपी समूह, प्रत्यक्षात्मक स्तर के समूहों का एक उदाहरण है। विचारात्मक स्तर (Ideational Level) के समूहों का आधार विचारों की समानता होती है। इस प्रकार के समूहो के स्थायी भाव पर आधारित होने के कारण ये प्रत्यक्षात्मक स्तर के समूहों से उच्च कोटि के होते है। गोष्ठी रुपी समूह विचारात्मक समूहो के उदाहरण है।

विवेकात्मक स्तर (Rational level) के समूह सर्वोच्च स्तर के समूह होते है जो आदर्शो तथा व्यापक उद्देश्यो पर आधारित होते हैं । समुदाय रुपी समूह, विचारात्मक स्तर के समूह होते है ।

1. भीड़ (Crowd)—किसी अप्रत्याशित घटना के घट जाने पर लोग उत्सुकतावश एकत्रित हो जाते है जिसे भीड कहते है । भीड तात्कालिक उद्देश्य के लिए एकत्रित होती है तथा उत्सुकता तथा उत्तेजना की समाप्ति पर तितर-वितर हो जाती है । इस प्रकार के समूह अस्थायी तथा असगठित होते है । भीड सदैव मूलप्रवृत्यात्मक होती है जिसका प्रयोजन तथा उद्देश्य पूर्व निश्चित न होकर क्षणिक अथवा अस्थायी होता है । स्पष्ट है कि भीड एक अस्थायी समूह है जो किसी सामान्य उत्सुकता, जिज्ञासा अथवा उत्तेजना के कारण स्वत· बन जाता है तथा कुछ ही समय के उपरान्त समाप्त हो जाता है ।

2. गोष्ठी (Club)—गोष्ठी भीड की अपेक्षा अधिक स्थायी तथा पूर्व नियोजित होती है । गोष्ठी के उद्देश्यो का निर्धारण पहले से ही कर लिया जाता है । प्रयोजन के अनुरुप गोष्ठी कई प्रकार की हो सकती है । जैसे साहित्य, सगीत, कला, खेल, मनोरजन, राजनीति, धर्म, व्यापार आदि से सबधित गोष्ठियाँ हो सकती है । एक गोष्ठी के सभी सदस्यो की रुचियाँ समान होती हैं । प्रत्येक गोष्ठी के अपने कुछ नियम होते है जिनका पालन गोष्ठी के सभी सदस्य करते है । एक व्यक्ति अनेक गोष्ठियो का सदस्य हो सकता है । गोष्ठी अधिक स्थायी, सुदृढ तथा प्रयोजनात्मक होती है ।

3. समुदाय (Community)—समुदाय समूह की उच्चतम श्रेणी है । समुदाय के उद्देश्य व्यापक होते है । समुदाय मे व्यक्ति हित, समाज हित तथा जनहित मे समन्वय होता है । समुदाय के सदस्य समुदाय के आदर्शों की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं ।

विद्यालय एक समूह के रुप में
(School as a Group)

विद्यालय विवेकात्मक स्तर का समूह है । विद्यालय रुपी समूह की प्रमुख विशेषताये निम्नलिखित है—

1. समूह का स्थायित्व
(Permanence of Group)

किसी भी उच्च स्तरीय समूह मे स्थायित्व का होना अत्यंत आवश्यक है । भीड अथवा गोष्ठी आदि मे स्थायित्व नही होता है । स्थायित्व की दृष्टि से **विद्यालय** को समुदाय अथवा समाज के रुप मे स्वीकार किया जा सकता है । भीड तथा गोष्ठी मे व्यक्ति अल्प अवधि के लिए एकत्रित होते है । परतु विद्यालय मे अध्यापक तथा छात्र अनेक वर्षो तक साथ-साथ रहते है तथा एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित करते है । विद्यालय मे भिन्न-भिन्न प्रकृति के छात्र तथा अध्यापक आते है जो परस्पर अन्त क्रिया करके एक-दूसरे के अनेक गुणो को प्रभावित करते हैं ।

2. समूह के प्रति चेतना

(Consciousness about the Group)

समूह के अस्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि समूह के सदस्य समूह के कार्यो की समीक्षा करते रहे जिससे उन्हे अपने कर्त्तव्यो का बोध रहे। यह बात विद्यालय मे पाई जाती है। विद्यालय के सदस्य अर्थात् प्रधानाचार्य, अध्यायक, प्रवन्धक तथा छात्र एक-दूसरे के कार्यों की समीक्षा करके उन्हे अपने कर्त्तव्यो के प्रति सजग रखते हैं। समूह के सदस्यो मे यह भाव होना चाहिए कि वे समूह के सदस्य है तथा उस समूह के प्रति उनके कुछ कर्त्तव्य तथा अधिकार है।

3. अन्य समूहों से सम्पर्क

(Contact with other Groups)

किसी भी समूह की एक अन्य विशेषता उसका अन्य समूहो के साथ सम्पर्क रखना है। सामूहिक भावना की दृष्टि से विभिन्न समूहो के बीच सामाजिक अन्त क्रिया होना आवश्यक है। इस सम्पर्क से समूहो मे सहयोग, सहकारिता, प्रतिस्पर्धा आदि भावनाओ का विकास होता है तथा वे एक-दूसरे से अनेक अच्छी बातो को सीखते है। विद्यालय का सम्पर्क अन्य समूहों से निरन्तर बना रहता है। वाद-विवाद, खेलकूद तथा विभिन्न सास्कृतिक, साहित्यिक व शैक्षिक प्रतियोगिताओ के माध्यम से विभिन्न विद्यालय परस्पर सम्पर्क मे आते है जिससे एक विद्यालय के सदस्य दूसरे विद्यालयो के सदस्यो से अनेक बाते सीखते है।

4. समूह परम्परायें

(Group Traditions)

प्रत्येक समूह की अपनी कुछ निजी परम्पराये होती है जिन पर समूह के सदस्यो को गर्व होता है तथा वे इन परम्पराओ को बनाये रखने के लिए कटिवद्ध होते है। प्रत्येक विद्यालय की भी अपनी कुछ परम्पराये होती है जिनका पालन करना सभी अध्यापको, छात्रो तथा छात्राओं का कर्त्तव्य माना जाता है। कोई विद्यालय अनुशासन के लिए, कोई खेलकूद के लिए तथा कोई परीक्षा-परिणाम के लिए प्रसिद्ध होता है। विद्यालय के अध्यापक तथा छात्र अपने विद्यालय की प्रसिद्धि को बनाए रखने का प्रयत्न करते है।

5. कर्त्तव्यों का विभाजन

(Division of Duties)

समूह के सदस्यो के मध्य कर्त्तव्यों का एक स्पष्ट तथा उचित विभाजन होता है। समूह के प्रत्येक सदस्य के क्या कर्त्तव्य है, इसके निर्धारण के विना समूह के सदस्य अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह ठीक ढग से नही कर सकते है। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी रुचि तथा योग्यतानुसार ही कार्य दिये जाते है। विद्यालयो मे भी प्रवध समिति, प्रधानाचार्य, अध्यापकगण, कर्मचारीगण तथा छात्र-छात्राओं के कर्त्तव्य सुनिश्चित होते है। सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्यो का ठीक ढग से पालन करते है।

समूह गतिशीलता
(Group Dynamics)

समूह किस प्रकार से सक्रिय होते है, समूह के सदस्य किस प्रकार से अन्तर्क्रिया करते हैं तथा समूह किस प्रकार अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करते हैं, यह एक अत्यत महत्वपूर्ण प्रश्न है। समूह के सदस्य परस्पर एक-दूसरे से अन्त क्रिया करते है जिसके कारण समूह के सदस्यो के व्यवहार मे परिवर्तन होते रहते है। समूह के अदर जो परिवर्तन होते है, उन्हे समूह गतिशीलता कहते है। स्पष्ट है कि समूह गतिशीलता से तात्पर्य समूह की विभिन्न आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियो मे व्यक्तियो के व्यवहार का अध्ययन करना है। समूहो का निर्माण क्यो तथा कैसे होता है ? व्यक्ति समूह के सदस्य के रुप में किस प्रकार के क्रियाकलाप करता है ? समूह व्यवहार का सचालन किन प्रक्रियाओ या शक्तियों के द्वारा होता है ? तथा समूह की प्रभावशीलता को कैसे वढ़ाया जा सकता है ? जैसे प्रश्नों के उत्तर समूह गतिशीलता के प्रकरण के अन्तर्गत आते हैं।

समाजिक अन्तर्क्रिया
(Social Interaction)

व्यक्ति के स्वभावत. सामाजिक प्राणी होने के कारण उसके अधिकाश क्रियाकलाप सामाजिक होते हैं। वह अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क मे आता है तथा उनसे सम्वन्ध स्थापित करता है। परस्पर एक-दूसरे पर आश्रित होते के कारण प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियो से प्रभावित होता है तथा अन्य व्यक्तियो को प्रभावित भी करता है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियो द्वारा किये जा रहे व्यवहार से प्रभावित होकर क्रियाये करता है। व्यक्तियों का परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करना ही सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) कहलाता है। सामाजिक अन्तर्क्रिया को तीन भागों मे बाटा जा सकता है—

1. व्यक्ति तथा व्यक्ति के मध्य अन्तर्क्रिया
   (Interaction between Individual and Individual)
2. व्यक्ति तथा समूह के मध्य अन्तर्क्रिया
   (Interaction between Individual and Group)
3. समूह तथा समूह के मध्य अन्तर्क्रिया
   (Interaction between Group and Group)

जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है अथवा प्रभावित होता है तो उसे व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच अन्तर्क्रिया कहते है। जैसे यदि कोई छात्र अपने अध्यापक से या किसी अन्य छात्र से अन्तर्क्रिया करें तो उसे व्यक्ति व व्यक्ति के मध्य होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है।

जब कोई व्यक्ति समूह के व्यवहार से प्रभावित होता है अथवा प्रभावित करता है तो उसे समूह व व्यक्ति के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है। उदाहरण के लिए

यदि किसी कक्षा का कोई छात्र अपनी कक्षा रूपी समूह से अन्तर्क्रिया करता है अथवा अध्यापक कक्षा समूह से अन्तर्क्रिया करता है तो इसे समूह व व्यक्ति के मध्य होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जायेगा।

जव एक समूह किसी अन्य समूह को प्रभावित करता है अथवा प्रभावित होता है तव इसे समूह व समूह के मध्य होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है। जैसे एक कक्षा की दूसरी कक्षा से अथवा एक विद्यालय की दूसरे विद्यालय से होने वाली अन्तर्क्रिया समूहो के मध्य होने वाली अन्तर्क्रिया है।

सामाजिक अन्तर्क्रिया के निम्नाकित पाँच आधार हो सकते है—

(i) सहयोग (Co-operation)

(ii) प्रतिस्पर्धा (Competition)

(iii) संघर्ष (Conflict)

(iv) व्यवस्था (Organization)

(v) आत्मीकरण (Assimilation)

सहयोग, प्रतिस्पर्धा, व्यवस्थापन तथा आत्मीकरण सकारात्मक आधार है जिनसे सामाजिक विकास होता है परन्तु संघर्ष नकारात्मक आधार है जिसके परिणाम विघटनात्मक हो सकते हैं। सहयोग, प्रतिस्पर्धा, व्यवस्थापन तथा आत्मीकरण वालको की शिक्षा तथा सामाजिक विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। सामाजिक अन्तर्क्रिया का अध्ययन करने के लिए समाजमिति नाम की प्राविधि का प्रयोग किया जा सकता है।

नेतृत्व
(Leadership)

नि सदेह समूह के सभी सदस्य परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हुए समूह के उद्देश्यों को प्राप्त करने में प्रयासरत रहते हैं, परंतु फिर भी समूह मे ऐसा कोई एक व्यक्ति अवश्यक होता है जो अन्य सदस्यों से अधिक प्रभावशाली होता है तथा अन्य व्यक्ति उसके मार्ग निर्देशन मे अपना कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्ति को समूह का नेता (Leader of the Group) कहा जाता है। नेता अन्य व्यक्तियो से प्रभावित कम होता है तथा अन्यो पर अपना प्रभाव अधिक छोडता है। समूह के अन्य सदस्य अपने नेता के द्वारा दिये जाने वाले निर्देशो का पालन करते है। नेता के द्वारा किये जानेवाले क्रिया कलाप ही नेतृत्व (Leadership) कहलाते है। अत' नेतृत्व से तात्पर्य उस व्यवहार से है जो समूह के क्रियाकलापों का सचालन करता है। नेतृत्व अन्य व्यक्तियो से प्रभावित होने की अपेक्षा उन्हे अधिक प्रभावित करता है। नेतृत्व अनेक प्रकार का हो सकता है—

(i) अधिकारिक नेतृत्व (Authoritarian Leadership)

(ii) जनतान्त्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership)

(iii) स्वच्छन्दात्मक नेतृत्व (Laissez-fair Leadership)
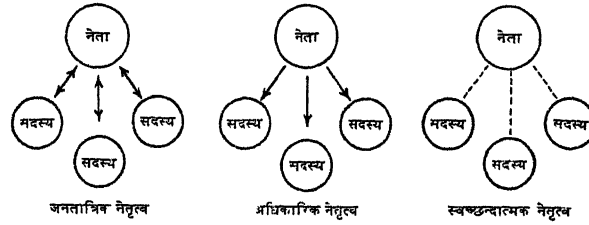
चित्र—40

नेतृत्व के प्रकार

अधिकारिक नेतृत्व शैली मे समूह का नेता समूह की समस्त नीतियो तथा कार्यक्रमो का स्वय ही निर्धारण करता है तथा समूह के अन्य सदस्यो को चुपचाप उन नीतियो व कार्यक्रमो का अनुसरण करना पडता है। जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली में समूह के सभी सदस्य मिलजुल कर परस्पर विचार-विमर्श से समूह की नीतियो तथा कार्यक्रमो का निर्धारण व क्रियान्वयन करते हैं। स्वच्छान्दतात्मक नेतृत्व शैली में समूह के सदस्य को अपनी-अपनी इच्छा से कार्य करने की पूर्ण छूट होती है। समूह का नेता सदस्यों को केवल सूचनाये प्रदान करता है। वह उनके कार्यो मे हस्तक्षेप नही करता है।

अच्छे नेता के गुण

(Qualities of a Good Leader)

नेता मे अपने समूह के अन्य सदस्यो से भिन्न कुछ विशेष गुण होते है। इन गुणो के कारण ही उसे समूह का नेतृत्व सौपा जाता है। नेता के गुण समूह के प्रकार तथा परिस्थितियों पर निर्भर करते है। किसी खेल-समूह का नेता उस खेल विशेष मे अन्य साथियो से अधिक निपुण होता है जबकि छात्र सघ का अध्यक्ष वही छात्र वन पाता है जो अध्यापको व अधिकारियो से बातचीत करने मे, छात्रों के हितों का ध्यान रखने मे तथा मैत्री व्यवहार करने में अन्यों से अधिक निपुण व योग्य ठहरता है। परिस्थितिनुसार कही शारीरिक बल मे, कही आकर्षक व्यक्तित्व मे, कही मानसिक गुणों में, कही विद्वता में, कही सामाजिकता मे, नेता अन्य सदस्यों से अधिक योग्य व प्रतिभा सम्पन्न होता है। अच्छे नेतृत्व के लिए प्राय· निम्नाकित गुणों का होना आवश्यक माना जाता है—

(1) आकर्षक व्यक्तित्व (Attractive Personality)

(2) तीव्र बुद्धि (High Intelligence)

(3) परिश्रमी (Labourious)

(4) समायोजनशीलता (Adjustability)

(5) सामाजिकता (Sociability)

(6) बहिर्मुखी (Extrovert)
(7) सकल्पशक्ति (Will Power)
(8) अभिव्यक्ति क्षमता (Expression Power)
(9) सम्प्रेषण योग्यता (Communication Ability)
(10) सगठन क्षमता (Organizing Capacity)
(11) लोकप्रियता (Popularity)

नेतृत्व का प्रशिक्षण
(Training for Leadership)

नेतृत्व के गुण बालकों मे प्रारम्भ से ही उपस्थित होते है । उचित परिस्थितियो के मिलने पर वे गुण विकसित हो जाते है । नेतृत्व के गुणो से युक्त बालक अपनी मित्र मडली, खेल-समूह, कक्षा, विद्यालय आदि मे अपने गुणो का प्रदर्शन करके अन्य व्यक्तियो को प्रभावित करता है तथा नेता पद को प्राप्त करना चाहता है । शिक्षा का उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है । अत शिक्षा प्रक्रिया मे सलग्न विभिन्न व्यक्तियो को बालको के गुणो को पहचान कर उनका सर्वोत्तम विकास करने के लिए अवसर प्रदान करने चाहिए । शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य भी बालक के नेतृत्व गुणो का विकास करने की ओर इशारा करता है । अच्छे नेतृत्व के गुणो की चर्चा पीछे की जा चुकी है । अध्यापक तथा अभिभावको को चाहिए कि बालको मे इन गुणो का विकास करने का यथा सम्भव प्रयास करें ।

नेतृत्व के प्रारम्भिक लक्षणो से युक्त बालको की नेतृत्व क्षमता को विकसित करने के लिए उन्हे उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सौपे जाने चाहिए । ऐसे बालको की सामर्थ्य के अनुरुप उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपने पर वे उन कार्यों को करते समय अपने नेतृत्व के गुण का विकास कर सकेगे ।

नेतृत्व के प्रशिक्षण के लिए बालको को कार्य करने का स्वतत्र वातावरण प्रदान करना चाहिए । इससे बालकों मे स्वानुशासन की भावना विकसित हो सकेगी, उनकी छिपी हुई योग्यताये सामने आ सकेगी एवं उनमें आत्मविश्वास, आत्मसम्मान तथा आत्मचेतना का विकास हो सकेगा ।

विभिन्न प्रकार के साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद, व्यायाम, एन० सी० सी०, बालचर, कक्षा नायक, सहकारिता कार्यक्रम, प्रतियोगिता आदि का आयोजन करके बालको मे नेतृत्व गुणो का विकास किया जा सकता है ।

कर्त्तव्यपरायणता, आज्ञापालन, परस्पर विचारविमर्श आदि का विकास करके बालको मे प्रजातान्त्रिक नेतृत्व की भावना विकसित की जा सकती है ।

शिक्षा में समूह मनोविज्ञान का महत्व
(Importance of Group Psychology in Education)

शिक्षा के क्षेत्र मे समूह मनोविज्ञान का अत्यंत महत्व है । शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमे अनेक व्यक्ति मिलकर अपना-अपना योगदान करते है । शिक्षा

सस्थाओ मे अनेक प्रकार के समूह देखने को मिलते है। जैसे कक्षा समूह (Class Group), क्रीडा समूह (Sports Group), साहित्यिक समूह (Litrary Group), अध्यापक समूह (Teacher Group) आदि । ये सभी समूह अपने-अपने स्तर पर शिक्षा प्रक्रिया के सचालन मे योगदान करते है । अत शिक्षा प्रक्रिया के उचित सचालन के लिए इन समूहो का अध्ययन करना तथा उसके आधार पर इन विभिन्न समूहो के द्वारा शिक्षा प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए प्रयास करना समूह मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है । यही कारण है कि आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक शिक्षा के क्षेत्र मे समूह मनोविज्ञान की उपयोगिता के सम्वध मे एकमत है। सामाजिकता के विकास के कार्य मे समूह मनोविज्ञान महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। बालक कक्षा समूह से रह कर ही समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरता है । समूह के सदस्य एक-दूसरे में आदर्शो, सद्‌गुणो, आदतो, सहयोग आदि भावनाओ का आदान-प्रदान कर सकते है । मानसिक क्रियाओ के विकास मे भी समूह मनोविज्ञान का अध्ययन उपयोगी हो सकता है । समूह के सदस्य परस्पर विचार-विमर्श करके तर्क, निर्णय, कल्पना, चिन्तन आदि वौद्धिक योग्यताओ का विकास कर सकते है । नैतिक आचरण के निर्देश, सामूहिक व्यायाम, राष्ट्र प्रेम, प्रत्युत्तर की भावना, मनोबल आदि को समूह के सदस्यो मे विकसित करना सरल होता है । समूह मे रहने वाले व्यक्तियो मे सहानुभूति, निर्देश तथा अनुकरण जैसी प्रवृत्तियाँ अधिक क्रियाशील होती है। यही कारण है कि समूह मनोविज्ञान व्यक्तिगत विकास तथा सामाजिक विकस के मध्य सामजस्य स्थापित करता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा प्रक्रिया मे समूह मनोविज्ञान महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है । अध्यापक समूह मनोविज्ञान के ज्ञान की सहायता से छात्रो मे समूह भावना का विकास कर सकते है । छात्रो के समक्ष अच्छे आदर्श प्रस्तुत करके, उन्हे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य देकर, उन्हे परस्पर एक-दूसरे की सहायता व सहयोग करने के लिए प्रोत्साहित करके, उनमे स्वस्थ प्रतियोगित की भावना विकसित करके, उन्हे कक्षा तथा विद्यालय की गौरवशाली परम्पराओं से अवगत कराकर तथा उन्हे नेतृत्व के लिए प्रशिक्षित करके उनकी समूह भावना का विकास किया जा सकता है ।

---

26 मापन तथा मूल्यांकन
(Measurement and Evaluation)

शिक्षा एक गत्यात्मक प्रक्रिया है शिक्षा शास्त्री, प्रशासक, प्रधानाचार्य, अध्यापक, अभिभावक तथा छात्र आदि अनेक व्यक्ति प्रक्रिया से घनिष्ठ सम्वन्ध रखते है । इनमे से कुछ व्यक्ति (जैसे शिक्षा शास्त्री, प्रशासक व प्रधानाचार्य) शिक्षा प्रक्रिया से सम्वन्धित विभिन्न प्रकार की नीतियो का निर्धारण करते है, कुछ व्यक्ति (जैसे छात्र तथा अध्यापक) शिक्षण-अधिगम की वास्तविक प्रक्रिया से सम्वन्ध रखते है, तथा कुछ अन्य व्यक्ति (जैसे अभिभावक तथा समाज का जागरुक वर्ग) शिक्षा प्रक्रिया के परिणामो से प्रभावित होते है । शिक्षा प्रक्रिया से सम्वन्धित इन सभी व्यक्तियो के सम्मुख तरह-तरह की समस्याये उत्पन्न होती रहती है तथा इन्हे उन समस्याओ का समाधान खोजना पडता है । उचित निर्णय के लिए समस्या के सम्वन्ध मे कुछ जानकारी की आवश्यकता होती है । जब तक समस्या से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना उपलब्ध नही होगी, निर्णयकर्ता स्वय को उचित निर्णय लेने मे असमर्थ पायेगा और यदि वह कोई निर्णय लेता भी है तो उसके निर्णय के अनुपयुक्त होने की सम्भावना अधिक होगी । वास्तव मे उचित निर्णय समस्या से सम्बन्धित सूचना की **पर्याप्तता** (Sufficiency), **संदर्भता** (Relevancy) तथा **यथार्थता** (Accuracy) पर निर्भर करता है । इसलिए निर्णयकर्त्ता चाहता है कि (i) उसे समस्या से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचना प्राप्त हो सके । (ii) उसे प्राप्त होने वाली सूचना समस्या के सदर्भ मे अधिक से अधिक हो । (iii) उसे प्राप्त होने वाली सूचना अधिक से अधिक यथार्थ हो । समस्याओं के सम्वन्ध मे सूचना की अधिकता, सदर्भता तथा यथार्थता को सुनिश्चत करने के लिए ही मापन तथा मूल्यॉकन की आवश्यकता होती है । शिक्षा के क्षेत्र मे मापन तथा मूल्याकन किसी समस्या के समाधान के सम्वन्ध मे निर्णय लेने के लिए आवश्यक सूचना उपलब्ध कराते है ।

मापन का अर्थ
(Meaning of Measurement)

मापन एक ऐसा शब्द है जो अत्यन्त प्राचीन काल से दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे बहुतायत से प्रयुक्त किया जाता रहा है । सामान्यत व्यक्ति अपने दैनिक कार्यो के दौरान अनेकोवार औपचारिक तथा अनौपचारिक ढग से मापन करता रहता है । वस्त्र विक्रेता कपडा नापता है, ग्वाला दूध नापता है, फल विक्रेता फल तौलता है, डाक्टर तापमान नापता है, कार चालक कार की गति देखता है, विजली विभाग विद्युत की खपत देखता है, ये सभी मापन के ही उदाहरण है । यद्यपि इन सभी मे मीटर, किलोग्राम, लीटर, थर्मामीटर, गति मापक जैसे किसी मानक साधन की आवश्यकता होती है ।

परन्तु विना किसी मानक साधन के अभाव मे भी मापन हो सकता है। जैसे साक्षात्कार के द्वारा प्रतियोगियो को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ इत्यादि क्रम का देना, वीमारी के आधार पर मरीजो को कुछ वर्गों मे विभाजित करना, किसी गुण विशेष (जैसे लिंग भेद) के आधार पर व्यक्तियो को समूहो मे वाटना अथवा परीक्षा पुस्तिकाओ के आधार पर छात्रो को अक प्रदान करना आदि भी मापन के उदाहरण है। अतर केवल मापन की यथार्थता (Accuracy) का है। मापन के पहले उदाहरणो मे प्राप्त परिणाम अधिक यथार्थ थे जवकि वाद के उदाहरणो मे प्राप्त परिणाम मे त्रुटि की सभावना कुछ अधिक हो सकती है।

वास्तव मे मापन के अतर्गत व्यक्तियो या वस्तुओं के किसी गुण अथवा विशेषता (Characteristics) का वर्णन करना निहित होता है। गुण या विशेषता का यह वर्णन गुणात्मक भी हो सकता है, और मात्रात्मक भी। किसी गुण या विशेपता के गुणात्मक वर्णन (Qualitative description) मे उसकी उपस्थिति/अनुपस्थिति की चर्चा की जाती है अर्थात उस गुण या विशेषता के प्रकार को वतलाया जाता है। जैसे व्यक्तियो को उनके लिगभेद के आधार पर पुरुष अथवा महिला कहना गुणात्मक मापन है। किसी गुण अथवा विशेषता के मात्रात्मक वर्णन मे व्यक्ति अथवा वस्तु मे उपस्थित उस गुण या विशेषता की मात्रा को वतलाया जाताहै। जैसे यह कहना कि रमेश की लम्वाई 5 फुट 1 इच है, मात्रात्मक मापन (Quantitative measurement) का उदाहरण है। स्पष्ट है कि मापन प्रक्रिया मे व्यक्ति अथवा वस्तु को कोई ऐसा शब्द अथवा अंक प्रदान किया जाता है जो उस व्यक्ति मे उपस्थित वाछित गुण के प्रकार अथवा मात्रा को अभिव्यक्त कर सके।

अत कहा जा सकता है कि किसी पूर्व निर्धारित तथा मान्य नियमो के आधार पर व्यक्तियो (या वस्तुओ) के किसी समूह के प्रत्येक सदस्य को अंको (अथवा अक्षरो) के किसी समूह से एक-एक अक प्रदान करना ही मापन है। स्पष्ट है कि मापन मे तीन वाते निहित है·

(i) व्यक्तियों (या वस्तुओ) के किसी समूह का होना।

(ii) अंको (अथवा अक्षरों) के किसी समूह का होना।

(iii) अक (अथवा अक्षर) प्रदान करने के लिए किन्ही नियमों का होना।

व्यक्तियों (अथवा वस्तुओ) का समूह मापन के उद्देश्य पर निर्भर करता है। मापन का उद्देश्य बतलाता है कि किन व्यक्तियों अथवा वस्तुओ की किसी विशेषता का मापन करना है। अको अथवा अक्षरो का समूह मापी जाने वाली विशेषता तथा मापन मे प्रयुक्त साधन के ऊपर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कक्षा अध्यापक अपने शिक्षण की प्रभावशीलता को जानना चाहता है, तो उसकी कक्षा के सभी छात्र व्यक्तियों का वाछित समूह होगा तथा उसके द्वारा पढाये जाने वाले विषय के प्रश्न-पत्र मे सभी सम्भव प्राप्ताक अको का वाछित समूह होगा। छात्रों द्वारा हल किए गये प्रश्नो के उत्तर के आधार पर अक कैसे प्रदान किए जायेगे, यह वाछित नियम होगे।

यद्यपि साधारणत: शैक्षिक मापन का तात्पर्य छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के सदर्भ मे लिया जाता है परन्तु वास्तव मे शिक्षा के क्षेत्र में किए जाने वाले सभी मापन शैक्षिक

मापन के अन्तर्गत आते है। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के अतिरिक्त उनकी बुद्धि, अभिक्षमता, स्मृति, व्यक्तित्व, रुचि, अभिवृत्ति, चरित्र, अधिगम शैली आदि अनेक चरो का मापन किया जाता है। छात्रो के अतिरिक्त अध्यापकगण, कर्मचारी वर्ग, अभिभावक वृन्द, प्रशासकगण तथा समाज आदि भी शिक्षा प्रक्रिया से घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित होते है। यदि इनमे से किसी एक या अधिक वर्गो के व्यक्तियो की किसी विशेषता अथवा गुण का मापन किसी शैक्षिक उद्देश्य के लिये किया जाता है तो यह मापन भी शैक्षिक मापन के अन्तर्गत आता है। अत कहा जा सकता है कि शैक्षिक मापन के अन्तर्गत शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित किन्ही व्यक्तियो अथवा वस्तुओ के किसी गुण अथवा विशेषता का वर्णन किया जाता है। गुण अथवा विशेषता का यह वर्णन गुणात्मक अथवा मात्रात्मक हो सकता है। अतएव मापन एक ऐसी वर्णनात्मक प्रक्रिया है जिसमे व्यक्तियो अथवा वस्तुओ के किन्ही गुणो अथवा विशेषता का क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है।

मापन के स्तर
(Levels of Measurement)

मापन को उसकी यथार्थता (Accuracy) के आधार पर चार प्रकार मे बाटा जा सकता है। ये है (i) नामित मापन (Nominal Measurement) (ii) क्रमित मापन (Ordinal Measurement) (iii) अतरित मापन (Interval Measurement) तथा (iv) अनुपातिक मापन (Ratio Measurement)।

1. नामित मापन (Nominal Measurement)—यह मापन का सबसे कम परिमार्जित स्तर है। इस प्रकार का मापन किसी गुण अथवा विशेषता के नाम पर आधारित होता है। इसमे व्यक्तियो अथवा वस्तुओ को किसी गुण अथवा विशेषता के प्रकार के आधार पर कुछ वर्गों मे विभक्त कर दिया जाता है। इन वर्गो मे किसी भी प्रकार का कोई अन्तर-निहित क्रम अथवा सम्बन्ध (Inherent ordering or relation) नही होता है। प्रत्येक भाग गुण के किसी एक प्रकार को व्यक्त करता है। गुणके सभी प्रकार गुण की दृष्टि से एक समान होते है। गुण के विभिन्न प्रकार को एक-एक नाम प्रदान कर दिया जाता है। जैसे नागरिको को ग्रामीण एव शहरी मे, स्नातक छात्रो को कला, विज्ञान व वाणिज्य वर्गो मे, बच्चो को लडके व लडकियो मे बाटना नामित मापन के उदाहरण है। नामित मापन एक गुणात्मक मापन है।

2. क्रमित मापन (Ordinal Measurement)—यह नामित मापन से कुछ अधिक परिमार्जित होता है। यह मापन गुण की मात्रा के आकार पर आधारित होता है। इस प्रकार के मापन मे व्यक्तियो अथवा वस्तुओ को उनके किसी गुण की मात्रा के आधार पर कुछ ऐसे वर्गों में विभक्त कर दिया जाता है जिनमे एक अतर्निहित क्रम निहित होता है। जैसे छात्रो को उनकी योग्यता के आधार पर श्रेष्ठ छात्र, औसत छात्र व कमजोर छात्रो के तीन वर्ग मे बाटना क्रमित मापन का उदाहरण है। छात्रो के इन तीनो वर्गों मे एक अतर्निहित सम्बन्ध है। पहले वर्ग के छात्र दूसरे वर्ग के छात्रो से श्रेष्ठ है तथा दूसरे वर्ग के छात्र तीसरे वर्ग के छात्रो से श्रेष्ठ है। क्रमित मापन मे यह आवश्यक नही कि विभिन्न वर्ग के मध्य गुण की मात्रा का अन्तर समान है जैसे यदि नरेश, सोहन तथा लोकेश क्रमश श्रेष्ठ वर्ग, औसत वर्ग तथा कमजोर वर्ग मे है। तो इसका अर्थ यह नही है

कि नरेश व सोहन के बीच योग्यता मे वही अन्तर है जो सोहन तथा लोकेश के बीच है।

3. अंतरित मापन (Intervel Measurement)—यह नामित व क्रमित मापन से अधिक परिमार्जित होता है। अतरित मापन गुण की मात्रा के परिमाण पर आधारित होता है। इस प्रकार के मापन मे व्यक्तियो अथवा वस्तुओ मे विद्यमान गुण की मात्रा को इस प्रकार की इकाईयो के द्वारा व्यक्त किया जाता है कि किन्ही दो लगातार इकाईयो मे अन्तर समान रहता है। जैसे छात्रो को उनकी भाषा योग्यता के आधार पर अक प्रदान करना अन्तरित मापन का उदाहरण है। यहाँ यह स्पष्ट है कि 30 एव 31 अको के बीच वही अन्तर है जो 36 व 37 अको के बीच है।

4. अनुपातिक मापन (Ratio Measurement)—यह मापन का सर्वाधिक परिमार्जित स्तर है। इस प्रकार के मापन मे अन्तरित मापन के सभी गुणो के साथ-साथ परम शून्य (Absolute Zero) की सकल्पना निहित रहती है। परम शून्य अथवा वास्तविक शून्य (True Zero) वह स्थिति है जिस पर कोई गुण पूर्ण रुपेण अस्तित्व विहीन हो जाता है। जैसे लम्बाई या भार का मापन अनुपातिक मापन है क्योंकि लम्बाई अथवा भार के पूर्णरुपेण अस्तित्व हीन होने की सकल्पना की जा सकती है। अनुपातिक मापन की दूसरी विशेषता इस पर प्राप्त मापो की तुलनीयता है। अनुपातिक मापन द्वारा प्रयुक्त मापक को अनुपात के रुप मे व्यक्त कर सकते है। जबकि अन्तरित मापन द्वारा प्राप्त अक गुण के परिमाण को अनुपात में व्यक्त करने मे असमर्थ होते है। जैसे 80 किलोग्राम भार वाला व्यक्ति 40 किलोग्राम भार वाले व्यक्तियो से दो गुना भार वाला व्यक्ति कहा जा सकता है। परन्तु 140 I. Q. वाले व्यक्ति को 70 I Q. वाले व्यक्ति से दो गुना बुद्धिमान कहना उचित नही होगा। दरअसल 40-40 किलोग्राम वाले दो व्यक्ति भार की दृष्टि से 80 किलोग्राम वाले व्यक्ति के समान हो जायेगे। परन्तु 70-70 I. Q. वाले दो व्यक्ति मिलकर भी 140 I. Q. वाले व्यक्ति के समान बुद्धिमान नही हो सकते हैं।

मूल्यांकन का अर्थ
(Meaning of Evaluation)

मूल्याकन का शाब्दिक अर्थ मूल्य का अकन करना है। दूसरे शब्दो मे मूल्याकन मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया है। मापन की अपेक्षा मूल्याकन अधिक व्यापक है। मापन के अन्तर्गत किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के गुणो अथवा विशेषताओ का वर्णन मात्र ही किया जाता है, जवकि मूल्याकन के अन्तर्गत उस व्यक्ति अथवा वस्तु की गुणो अथवा विशेषताओ की वाछनीयता पर दृष्टिपात किया जाता है। अत मापन मूल्यांकन का एक अग मात्र है। मूल्याकन एक ऐसा कार्य अथवा प्रक्रिया है जिसमे मापन से प्राप्त परिणामो की वाछनीयता (Desirability) का निर्णय किया जाता है। मापन वास्तव मे स्थिति निर्धारण है जवकि मूल्याकन उस स्थिति का मूल्य निर्धारण है। मापन किसी गुण अथवा विशेपता का गुणात्मक अथवा मात्रात्मक वर्णन मात्र है, जवकि मूल्य निर्धारण उस गुणात्मक अथवा मात्रात्मक वर्णन की गुणवत्ता (quality) का निर्धारण है। किसी गुण अथवा विशेषता की कितनी मात्रा किसी व्यक्ति मे उपलब्ध है इस प्रश्न

का उत्तर मापन से प्राप्त होता है। जबकि किसी व्यक्ति मे उपस्थित किसी गुण अथवा विशेषता की मात्रा कितनी सतोषप्रद है इस प्रश्न का उत्तर मूल्याकन निर्धारित करता है। छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि को अको मे व्यक्त करना मापन का उदाहरण है, जबकि छात्रो के प्राप्ताको के आधार पर उनकी उपलब्धि के स्तर के सम्बन्ध मे सतोषजनक अथवा असतोषजनक का निर्धारण करना मूल्याकन का उदाहरण है। नि सदेह मापन मूल्याकन मे सहायक है परन्तु मूल्याकन का विकल्प अथवा समानार्थी नही है।

मापन की तरह मूल्याकन भी व्यक्तियो अथवा वस्तुओ के किसी भी गुण के सदर्भ मे किया जा सकता है। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र मे साधारणत मूल्याकन से अभिप्राय छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि के सदर्भ मे लगाया जाता है। मूल्याकन प्रक्रिया मे किसी कार्यक्रम के द्वारा प्राप्त उद्देश्यो अथवा उपलब्धियो की वाछनीयता को ज्ञात किया जाता है अर्थात् मूल्याकन वह प्रक्रिया है जो यह बताती है कि वाछित उद्देश्यो को किस सीमा तक प्राप्त किया जा चुका है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री नार्मन ई० ग्रोनलुड के अनुसार, मूल्याकन को छात्रो के द्वारा प्राप्त किये गये शिक्षा उद्देश्यो की सीमा को ज्ञात करने की क्रमवद्ध प्रक्रिया के रुप मे परिभाषित किया जा सकता है। मूल्याकन के अन्तर्गत छात्रो के व्यवहार के गुणात्मक व मात्रात्मक वर्णन के साथ-साथ व्यवहार की वाछनीयता से सम्बन्धित मूल्य निर्धारण भी निहित रहता है। वास्तव मे कोई भी अध्यापक अपने शिक्षण कार्य के उपरान्त यह जानना चाहता है कि क्या उसने वह उद्देश्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए उसने शिक्षा कार्य किया था। इसी प्रकार छात्र यह जानना चाहते है कि क्या उन्होने वह ज्ञान प्राप्त कर लिया है जिसे प्राप्त करने के लिए वे अध्ययन कार्य कर रहे है। प्रधानाचार्य यह जानना चाहता है कि क्या उसके विद्यालय के छात्रो के द्वारा वाछित शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति की जा रही है। यह सभी प्रश्न मूल्याकन की तरफ सकेत करते है।

मूल्याकन का यह नवीन प्रत्यय इस मूलभूत मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा सस्था का कार्य छात्रो को सीखने मे सहायता करना है। सीखने के दौरान छात्रो के व्यवहार में जिन परिवर्तनो को लाने का प्रयास किया जाता है उन्हे शिक्षा के उद्देश्यो के नाम से पुकार जाता है। इन शिक्षण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यालय मे कुछ अधिगम
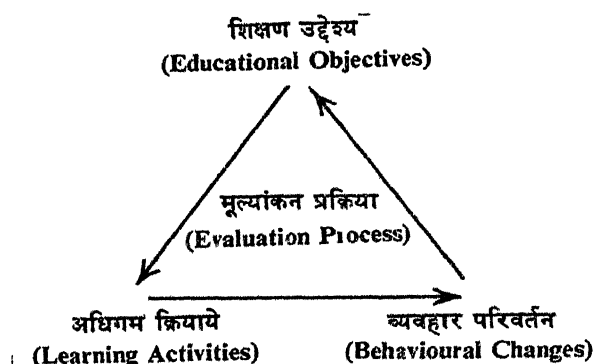
चित्र—41 मूल्यांकन प्रक्रिया का रेखाचित्रीय निरुपण

क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। ये अधिगम क्रियाये अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे किस सीमा तक सफल रही है, यह देखना मूल्याकन का कार्य है। स्पष्य है कि मूल्याकन मे शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति की वाछनीयता को देखा जाता है। इस प्रकार से मूल्याकन प्रक्रिया के तीन अंग है— (i) **शिक्षण उद्देश्य, (ii) अधिगम क्रियाये तथा (iii) व्यवहार परिवर्तन।** मूल्याकन के ये तीनो अग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है। शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए विद्यालय मे अधिगम क्रियाएँ आयोजित की जाती है जिनसे छात्रो के व्यवहार मे कुछ परिवर्तन होते है। छात्रो के व्यवहार मे आये इन परिवर्तनो की तुलना वाँछित परिवर्तनो (शिक्षा उद्देश्यों) से करके मूल्याकन किया जाता है। मूल्याकन प्रक्रिया के इन तीनो अगो को त्रिभुजाकार रुप मे निम्न ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है—

मूल्याकन का यह नवीन प्रत्यय केवल पाठ्यवस्तु के ज्ञान तक ही सीमित नही है वरन् विद्यालय पाठ्यक्रम से सम्वन्धित उद्देश्यो की एक विशाल तथा व्यापक श्रखला का मूल्याकन करता है। मूल्याकन का यह नवीन प्रत्यय पारम्परिक परीक्षा प्रणाली से प्राप्त अंकों के ऊपर ही आधारित नही होता वरन् अनेक प्रकार की प्राविधियो, विधियो तथा यन्त्रों का प्रयोग करता है। मूल्याकन का यह नवीन प्रत्यय छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि से ही सम्वन्धित नही है वरन् उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से सम्वन्धित है।

मापन तथा मूल्यांकन का महत्व
(Importance of Measurement and Evaluation)

मापन तथा मूल्याकन शिक्षा प्रक्रिया की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा सतत् जारी रहने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा प्रक्रिया से सम्वन्धित अनके व्यक्तियो के लिए मापन तथा मूल्याकन का अत्यन्त महत्व है। मापन तथा मूल्याकन के महत्व को निम्नाकित रुप से व्यक्त किया जा सकता है।

(i) मापन तथा मूल्याकन उचित शैक्षिक निर्णय लेने के लिए अत्यन्त आवश्यक तथा उपयोगी है।

(ii) शिक्षा शास्त्री, प्रशासक, अध्यापक, छात्र तथा अभिभावक सभी मिलकर शिक्षण उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए कार्य करते है। अत यह स्वाभाविक है कि वे शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति कीसीमा को जानना चाहते है।

(iii) मापन तथा मूल्याकन शिक्षक की प्रभावशीलता को इगित करता है।

(iv) मापन तथा मूल्याकन शिक्षण के उद्देश्यो को स्पष्ट करता है।

(v) मापन तथा मूल्याकन छात्रों को अध्ययन के लिये तथा अध्यापको को शिक्षण के लिए प्रोत्साहित करता है।

(vi) मापन तथा मूल्याकन के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों सहायक सामग्री आदि मे आवश्यक सुधार किया जा सकता है।

(vii) मापन तथा मूल्याकन शिक्षण मे सुधार लाता है। अध्यापक को अपनी कमियाँ ज्ञात हो जाती है जिससे वह अपने शिक्षण को अधिक मुसगठित व प्रभावशाली बना सकता है।

(viii) मापन तथा मूल्याकन के आधार पर छात्रो को शैक्षिक तथा व्यवसायिक परामर्श तथा निर्देशन दिया जा सकता है।

(ix) मापन तथा मूल्याकन से छात्रो की बुद्धि, रूचियो, अभिक्षमताओ, कुशलताओ योग्यताओ, दृष्टिकोणो एव व्यवहारो की जाच का ज्ञान सभव है।

(x) मापन तथा मूल्याकन से विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमो की उपयोगिता का ज्ञान किया जा सकता है।

मापन तथा मूल्यांकन के कार्य
(Functions of Measurement and Evaluation)

मापन तथा मूल्याकन के प्रमुख कार्य निम्नवत् है

(i) छात्रो की वृद्धि तथा विकास मे सहायता करना।

(ii) छात्रों की वृद्धि तथा विकास मे आये विभिन्न प्रकार के अवरोधो को जानना व दूर करना।

(iii) छात्रो को अधिगम के लिए प्रेरित करना।

(iv) अध्यापकों की शिक्षण प्रभावशीलता को ज्ञात करना।

(v) शिक्षण मे सुधार लाना।

(vi) पाठ्यक्रम के सुधार के लिये आधार तैयार करना।

(vii) शिक्षण विधियो तथा सहायक शिक्षण सामग्री की उपादेयता व प्रभाव कारिता को ज्ञात करना।

(viii) शैक्षिक तथा व्यवसायिक परामर्श व निर्देशन के लिये आवश्यक आधार तैयार करना।

(ix) छात्रों का वर्गीकरण करना।

(x) छात्रों का चयन करना।

(xi) छात्रो की कक्षा-उन्नति करना।

(xii) शैक्षिक मानकों का निर्धारण करना।

मूल्यांकन प्रक्रिया के पद
(Steps of Evaluation Process)

किसी अच्छे मूल्याकन कार्यक्रम मे यह आवश्यक है कि वह छात्रों के व्यवहार मे होने वाले परिर्तनो का ठीक ढग से मूल्याकन कर सके। विभिन्न विषयों के शिक्षण के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं तथा इन भिन्न-भिन्न उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की अधिगम क्रियाये छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। इन भिन्न-भिन्न प्रकार की अधिगम क्रियाओ के फलस्वरुप छात्रों के व्यवहार मे भिन्न-भिन्न व्यवहार परिवर्तन होते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार परिवर्तनों का मापन सरल नही है। जैसी कि चर्चा की जा चुकी है मूल्याकन एक सतत प्रक्रिया है अत: इसमे अनेक पदो या क्रियाओ का होना स्वाभाविक ही है। मूल्याकन प्रक्रिया को निम्नाकित क्रमवद्ध पदो मे बॉटा जा सकता है—

(i) सामान्य उद्देश्यो का निर्धारण करना।

(ii) विशिष्ट उद्देश्यो का निर्धारण करना।

(iii) शिक्षण विन्दुओ का चयन करना।

(iv) उपयुक्त अधिगम क्रियाये आयोजित करना।

(v) छात्रों के व्यवहार परिवर्तन को ज्ञात करना।

(vi) प्राप्त साक्ष्यो के आधार पर मूल्याकन करना।

(vii) परिणामो को पृष्ठपोषण के रुप मे प्रयुक्त करना।

उपरोक्त इगित सातो पदो का सक्षिप्त विवरण अग्राकित प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. सामान्य उद्देश्य (General Objectives)—शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। शिक्षा सस्था मे विभिन्न विषयो की शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रत्येक विषय का अपना एक अस्तित्व एव महत्व होता है। उसे पाठ्यक्रम मे रखने का एक निश्चित ध्येय होता है। मूल्याकन प्रक्रिया का पहला पद यह ज्ञात करना है कि किसका मूल्याकन करना है अर्थात् वे कौन से शैक्षिक उद्देश्य है, जिनकी प्राप्ति की वाछनीयता को ज्ञात करना है। जब तक शैक्षिक उद्देश्यो का निर्धारण नही किया जायेगा तब तक उन उद्देश्यो की प्राप्ति के सम्बन्ध मे कुछ भी कहना सम्भव नही हो सकेगा। नि सदेह शैक्षिक उद्देश्यो का निर्धारण एक क्लिष्ट कार्य है।शिक्षण के सामान्य उद्देश्य वास्तव मे ऐसे व्यापक तथा अतिम लक्ष्य है जिनकी प्राप्ति किसी अध्यापक का एक सामान्य तथा दूरगामी लक्ष्य होता है। इनकी प्राप्ति के लिये एक लम्बा समय तथा सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का योगदान आवश्यक होता है।

2. विशिष्ट उद्देश्य (Specific Objectives)—कोई भी अध्यापक दो-चार दिन के अध्यापन के द्वारा सामान्य उद्देश्यो की प्राप्ति नही कर सकता है। दैनिक शिक्षण कार्य करते समय अध्यापक के मस्तिष्क मे तात्कालिक प्राप्त उद्देश्य (Immediate Achievable Objectives) होते है जिनकी प्राप्ति कक्षा शिक्षण के दौरान सम्भव है। जैसे वृत्त का क्षेत्रफल पढाते समय अध्यापक यह सोचता है कि उसके अध्यापन के दौरान छात्र वृत्त का क्षेत्रफल ज्ञात करने का सूत्र बता सकेगे, छात्र किसी दिए गए वृत्त का क्षेत्रफल ज्ञात कर सकेगे तथा छात्र वृत्त के क्षेत्रफल से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ का समाधान कर सकेगे। शिक्षण के उपरान्त यदि छात्र ऐसा कर पाते है तो अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को पूर्ण मानता है। यदि नही तो वह नये सिरे से पुन शिक्षण कार्य करता है। छात्रो मे लाए जाने वाले इन परिवर्तनो को ही विशिष्ट उद्देश्यो के नाम से पुकारते है। सामान्य उद्देश्यों के निर्धारण के उपरात विशिष्ट उद्देश्यो का निर्धारण किया जाता है। ये विशिष्ट उद्देश्य छात्रो मे होने वाले सभावित व्यवहार परिवर्तन के रुप मे लिखे जाते हैं।

3. शिक्षण बिन्दु (Teaching Points)—सामान्य उद्देश्यो तथा विशिष्ट उद्देश्यो के निर्धारण के उपरान्त मूल्याकन प्रक्रिया का तृतीय पद आता है। इस पद के अतर्गत उन शिक्षण बिन्दुओ को निर्धारित किया जाता है जिनके द्वारा विशिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति

की जा सकती है। किसी भी प्रकरण को शिक्षण मे सुविधा की दृष्टि से छोटे-छोटे भागो मे बाटा जा सकता है। ये छोटे-छोटे भाग ही शिक्षण विन्दु कहलाते है। प्रत्येक शिक्षण विन्दु अपने-आप मे शिक्षण की एक सक्षिप्त परन्तु पूर्ण इकाई होती है। ये शिक्षण विन्दु अध्यापक के कार्य को अत्याधिक सरल कर देते है। इन शिक्षण विन्दुओ का अनुसरण करके अध्यापक धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जाता है। ये शिक्षण विन्दु अध्यापक को शिक्षण योजना बनाने मे अत्याधिक सहायक होते है।

4. अधिगम क्रियाये (Learning Activities)—छात्रो के व्यवहार मे परिवर्तन कुछ अधिगम परिस्थितियो की सहायता से ही लाएँ जा सकते है। ये अधिगम परिस्थितिया छात्र एव शिक्षण उद्देश्यो के बीच सम्बन्ध को स्थापित करती है तथा इनके परिणामस्वरुप छात्रो के व्यवहार मे वाछित परिवर्तन आते है। अत शिक्षण उद्देश्यो के निर्धारण करने तथा शिक्षण विन्दुओं के चयन करने के उपरात अध्यापक का कार्य अधिगम क्रियाओ का आयोजन करना है। अधिगम क्रियाये अनेक प्रकार से छात्रो के सम्मुख प्रस्तुत की जा सकती है। कक्षा शिक्षण, पुस्तकालय, पाठ्य पुस्तको, जनसचार साधनो, रेडियो, टेलीविजन, चलचित्र, प्रयोगशालाओ, भ्रमण आदि की सहायता से छात्रो के व्यवहार मे परिवर्तन लाए जा सकते है।

5. व्यवहार परिवर्तन (Bechavioural Changes)—अधिगम क्रियाओ के प्रस्तुतिकरण के उपरात छात्रो के व्यवहार मे होने वाले परिवर्तनो को ज्ञात करना होता है। इसके लिए कुछ ऐसे परीक्षणो या अन्य युक्तियो का प्रयोग करना होता है जो अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन की सीमा का ज्ञान प्रन्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रदान कर सके। विभिन्न प्रकार के व्यवहार परिवर्तन को मापने के लिए विभिन्न युक्तियो का प्रयोग किया जाता है। साधारणत बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, अभिवृत्ति मापनी, उपलब्धि परीक्षण, निदानात्मक परीक्षण, समाजमिति, प्रश्नावली, साक्षात्कार, विद्यालयी सचयी लेखा आदि युक्तियो का प्रयोग करके छात्रो के व्यवहार मे आए परिवर्तनो को ज्ञात किया जाता है।

6. मूल्यांकन (Evaluation)—छात्रो के व्यवहार मे होने वाले परिवर्तनो का ज्ञान करने के उपरान्त व्यवहार परिवर्तनों की वाछनीयता के सम्वन्ध मे व्याख्या की जाती है। इसके अतर्गत छात्रो के व्यवहार मे आए परिवर्तनो की तुलना अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों से की जाती है। यदि आया हुआ व्यवहार, परिवर्तन अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के काफी निकट होता है तो शिक्षण कार्य को सतोषप्रद कहा जा सकता है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखनी होती है कि शत-प्रतिशत छात्रो के व्यवहार मे शत-प्रतिशत वाछित परिवर्तन लाना लगभग असम्भव कार्य है। इसलिए व्यहार परिवर्तनो के सम्वन्ध मे न्यूनतम स्तर (Minimal level) निर्धारित किया जाता है। यह न्यूनतम स्तर दो प्रकार के होते है · (1) कक्षा न्यूनतम स्तर (Class minimal level) तथा (2) छात्र न्यूनतम स्तर (Student minimal level)। कक्षा न्यूनतम स्तर यह वताता है कि कम से कम कितने प्रतिशत छात्रो के व्यवहार मे परिवर्तन आना चाहिए जवकि छात्र न्यूनतम स्तर वताता है कि प्रत्येक छात्र के व्यवहार मे कम से कम कितना परिवर्तन आना चाहिए। जैसे—कोई गणित अध्यापक वृत्त का क्षेत्रफल पढाते समय निर्धारित कर सकता है कि कक्षा के कम से कम 80% छात्र वृत्त के क्षेत्रफल से सम्वन्धित

दिए गए प्रश्नो मे से कम से कम 90% प्रश्न सही हल कर लेगे। स्पष्ट है कि इस उदाहरण मे कक्षा न्यूनतम स्तर 80% है तथा छात्र न्यूनतम स्तर 90% है। न्यूनतम स्तर निर्धारण करने के उपरान्त अध्यापक अपने छात्रो के परिणामो की तुलना न्यूनतम स्तरो से करके मूल्याकन कर सकता है। भिन्न-भिन्न उद्देश्यो के लिए तथा भिन्न-भिन्न विषयो के लिए न्यूनतम स्तर भिन्न-भिन्न हो सकते है।

7. पृष्ठ पोषण (Feed back)—मूल्याकन प्रक्रिया का अतिम पद परिणामो को पृष्ठ पोषण (Feed back) के रुप मे प्रयोग करना है। यदि मूल्याकन से ज्ञात होता है कि शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्यो की प्राप्ति नही हुई है तो वह प्राप्त परिणामो के आधार पर अपने शिक्षण कार्य मे सुधार करताहै। वह उद्देश्यो को नए सिरे से पुन निर्धारित करता है, शिक्षण विन्दुओ का चयन करता है अधिगम क्रियाये आयोजित करता है, व्यवहार परिवर्तनो का मापन करता है तथा मूल्याकन करता है। यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक अपेक्षित उद्देश्यो की प्राप्ति नही हो जाती । इस प्रकार से मूल्याकन के परिणाम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभाशाली वनाने के लिए पृष्ठ पोषण (Feed back) प्रदान करते है तथा अतत. उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायक होते है।

मापन त्रुटियाँ

(Errors of Measurement)

जैसी की चर्चा की जा चुकी है कि साधारणत. शैक्षिक मापन अप्रत्यक्ष प्रकार का मापन होता है। इसलिए मापन मे त्रुटि का हो जाना सम्भव है। मापन त्रुटियो के अन्तर्गत वे सभी त्रुटि आ जाती है जो परीक्षण से प्राप्त अको को प्रभावित करती है। मापन त्रुटियो को चार भागो मे बाटा जा सकता है

(i) व्यक्तिगत त्रुटियाँ (Personal Errors)

(ii) चर त्रुटियाँ (Variable Errors)

(iii) स्थिर त्रुटियाँ (Constant Errors)

(iv) व्याख्यात्मक त्रुटियाँ (Interpretive Erros)

इन चारो त्रुटियों का सक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया गया है—

1. व्यक्तिगत त्रुटियाँ (Personal Errors)—मापन की व्यक्तिगत त्रुटियाँ मापन के अकन मे होने वाली त्रुटियाँ है। अत इस प्रकार की त्रुटियाँ परीक्षक से सम्वन्धित होती है। परीक्षक अपने विवेक से परीक्षार्थियों के उत्तरो पर अक प्रदान करताहै। उसकी व्यक्तिगत पसन्द, दृष्टिकोण, प्रश्न के उत्तर के सम्वन्ध मे पूर्व धारणा, अक प्रदान करते समय की मनोस्थिति, थकान आदि का अपरोक्ष रुप से अकन पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार से हुई त्रुटियों को व्यक्तिगत त्रुटियाँ कहते है, क्योकि ये त्रुटियाँ परीक्षक की वैयक्तितता के कारण होती हैं। परीक्षण को वस्तुनिष्ठ बनाकर इन त्रुटियो को दूर किया जा सकता है।

2. चर त्रुटियाँ (Variable Errors)—मापन की चर त्रुटियाँ मापन के प्रशासन व छात्रो की प्रतिक्रियाओं से सम्वन्धित त्रुटियाँ है। परीक्षण के द्वारा छात्रों के प्राप्ताकों में कुछ ऐसी त्रुटियाँ होती है जो विभिन्न परीक्षार्थियो के लिए भिन्न-भिन्न होती है।

परीक्षण के प्रशासन के दौरान निर्देशो की अस्पष्टता, परीक्षण स्थिति मे अन्तर, सयोग के कारण उत्तर का सही होना, छात्रो की थकान, प्रश्नो की अस्पष्टता परीक्षण के प्रति जानकारी, प्रोत्साहन, चिन्ता आदि के कारण चर त्रुटियाँ हो जाती है । परीक्षण को विश्वसनीय बनाकर चर त्रुटियो को कम किया जाता सकता है ।

3. स्थिर त्रुटियाँ (Constant Errors)—मापन की स्थिर त्रुटियाँ वे त्रुटियाँ है जो सभी परीक्षार्थियो को समान रूप से प्रभावित करती है । ये त्रुटियाँ परीक्षण की रचना या परीक्षण के प्रयोग से सम्वन्धित होती है । जव परीक्षण इच्छित योग्यता का ठीक-ठाक मापन न करके किसी अन्य योग्यता का पूर्ण या आशिक मापन करता है तव परीक्षण से प्राप्त अंको मे त्रुटि आ जाती है । क्योंकि इस प्रकार की त्रुटि सभी परीक्षार्थियो के लिए होती है इसलिए इन्हे स्थिर त्रुटि कहते है । परीक्षण को वैध बनाकर स्थिर त्रुटियों को कम किया जा सकता है ।

4. व्याख्यात्मक त्रुटियाँ (Interpretive Errors)—मापन की व्याख्यात्मक त्रुटियाँ प्राप्ताको की व्याख्या से सम्बन्धित होती है । उपयुक्त सन्दर्भ विन्दुओ के अभाव मे प्राप्ताको की व्याख्या करने में त्रुटियो का हो जाना स्वाभाविक ही होता है । परीक्षण के लिए मानको को विकसित करके व्याख्यात्मक त्रुटियों को दूर किया जा सकता है ।

मूल्यांकन, परीक्षा तथा मूल्यकरण
(Evaluation, Examination and Appraisal)

परीक्षा (Examination) तथा मूल्यकरण (Appraisal) शब्दो का प्रयोग भी मूल्याकन के समानार्थी शब्दों के रूप मे किया जाता है । इसीलिए इन शब्दो के वीच अन्तर को स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है । परीक्षा छात्रो की विद्यालयी उपलब्धि (Scholastic Achievement) का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आयोजित की जाती है । यह परीक्षायें साधारणत केवल विषयवस्तु के सदर्भ मे छात्रों के ज्ञान का मापन करती है जवकि मूल्याकन मे न केवल विषयवस्तु का ज्ञान वरन् अन्य शिक्षण उद्देश्यो जैसे वोध, अनुप्रयोग आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है तथा उसकी सार्थकता का भी निर्धारण किया जाता है । मूल्याकन विद्यालयी उपलब्धि तक सीमित नही होता वरन् यह छात्रो के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से सम्वन्धित होता है । परीक्षाये सतत् नही होती है । ये सामान्यत सत्र के अन्त मे आयोजित की जाती है, जवकि मूल्याकन एक सतत् प्रक्रिया है जो शिक्षण अधिगम के साथ-साथ सत्र पर्यन्त चलता रहता है । परीक्षा मे केवल मात्रात्मक प्राविधि का प्रयोग किया जाता है, जवकि मूल्याकन मे मात्रात्मक प्राविधियो के साथ-साथ गुणात्मक प्राविधि भी प्रयोग मे लाई जाती है ।

यद्यपि मूल्यकरण तथा मूल्यांकन दोनों ही शब्दों का अर्थ मूल्य से सम्वन्धित है, फिर भी दोनो मे अन्तर है । यह अन्तर इनके दृष्टिकोण (Approach) का अन्तर है मूल्यांकन आन्तरिक दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है । इसके विपरीत मूल्यकरण बाह्य दृष्टिकोण की ओर सकेत करता है । मूल्याकन वाछनीयता को वताता है जवकि मूल्यकरण उपयोगिता को बताता है ।

मापन तथा मूल्यांकन के उपकरण
(Tools of Measurement and Evaluation)

मापन तथा मूल्याकन के अन्तर्गत छात्रो के व्यवहार का गुणात्मक तथा मात्रात्मक वर्णन किया जाता है। छात्रो के व्यवहार के इस वर्णन के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणो की आवश्यकता होती है। जिन उपकरणो के द्वारा छात्रो के व्यवहार का मापन किया जाता है उन्हे मापन तथा मूल्याकन के उपकरणो के नाम से पुकारा जाता है। विभिन्न प्रकार के व्यवहार के मापन के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। ज्ञानात्मक व्यवहार के मापन के लिए निरीक्षण, मौखिक परीक्षण, लिखित परीक्षण, साक्षात्कार आदि का प्रयोग किया जाता है। भावात्मक व्यवहार के मापन के लिए निरीक्षण, रूचि परीक्षण, अभिवृत्ति मापनी, मूल्य परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, समाजमिति आदि का प्रयोग किया जाता है। क्रियात्मक व्यवहार के लिए निरीक्षण तथा प्रयोगात्मक परीक्षा आदि का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि एक ही प्रकार के उपकरण का प्रयोग करके ज्ञानात्मक भावात्मक व क्रियात्मक तीनो ही प्रकार के व्यवहार को मापा जा सकता है। अत: मापन तथा मूल्याकन के प्रमुख उपकरणो को निम्नवत सूचीवद्ध किया जा सकता है।—

(1) अवलोकन (Observation)

(2) परीक्षण (Test)

(3) साक्षात्कार (Interview)

(4) प्रश्नावली (Questionnaire)

(5) निर्धारण मापनी (Rating Scale)

(6) प्रक्षेपीय तकनीक (Projective Techniques)

(7) समाजमिति (Sociometry)

(8) सचयी अभिलेख (Cumulative Records)

मापन तथा मूल्याकन के इन उपकरणों का वर्णन आगे किया गया है।

अवलोकन
(Observation)

अवलोकन व्यक्ति के व्यवहार के मापन की अत्यन्त प्राचीन विधि है। व्यक्ति अपने आस-पास घटित होने वाली क्रियाओं तथा घटनाओं का अवलोकन करते रहते है। मापन के उपकरण के रूप मे अवलोकन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति अथवा छात्र के वाह्य व्यवहार को देखकर उसके व्यवहार का वर्णन करने से है। अवलोकन को मापन की एक वस्तुनिष्ठ विधि के रूप मे स्वीकार नही किया जाता, फिर भी अनेक प्रकार की परिस्थितियो मे तथा अनेक प्रकार के व्यवहार के मापन मे इस विधि का काफी प्रयोग किया जाता है। छोटे बच्चों के व्यवहार का मापन करने के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। छोटे बच्चे मौखिक अथवा लिखित परीक्षाओ के प्रति जागरूक नही होते है जिसकी वजह से मौखिक तथा लिखित परीक्षणो के द्वारा उनका मापन करना कठिन हो जाता है। व्यक्तित्व के गुणो का मापन करने के लिए भी अवलोकन का प्रयोग

किया जा सकता है। अनपढ व्यक्तियो, मानसिक रोगियो, विकलांगो तथा अन्य भाषा भाषी लोगों के व्यवहार के मापन के लिए अवलोकन मे एक मात्र विधि है अवलोकन की सहायता से ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक तीनों ही प्रकार के व्यवहार का मापन किया जा सकता है।

अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है

(1) प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

(2) परोक्ष अवलोकन (Indirect Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन से अभिप्राय किसी व्यवहार को उसी रुप से देखना है जैसा कि व्यवहार हो रहा है। इसमे मापनकर्ता व्यवहार का अवलोकन स्वय करता है। जबकि परोक्ष अवलोकन मे किसी व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध मे अन्य व्यक्तियो से पूछा जाता है। प्रत्यक्ष अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है— **सहभागिक अवलोकन** (Participant Observation) तथा **असहभागिक अवलोकन** (Nonparticipant Observation)। सहभागिक अवलोकन मे अवलोकनकर्ता उस समूह का एक अग होता है जिसका वह अवलोकन कर रहा होता है। जबकि असहभागिक अवलोकन मे अवलोकनकर्ता समूह के क्रिया कलापो मे कोई भाग नही लेता है। अवलोकन को **नियंत्रित अवलोकन** (Controlled Observation) तथा **अनियंत्रित अवलोक** (Uncontrolled Observation) के रुप मे भी बाटा जा सकता है। नियन्त्रित अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता आवश्यक परिस्थितियाँ निर्मित करके अवलोकन करता है। जबकि अनियन्त्रित अवलोकन मे वास्तविक परिस्थितियो मे अवलोकन कार्य किया जाता है। नियन्त्रित अवलोकन मे व्यवहार के अस्वाभाविक हो जाने की सभावना रहती है क्योंकि अवलोकित किया जाने वाला व्यक्ति सजग हो जाता है। अनियन्त्रित अवलोकन में अवलोकित किए जाने वाले व्यक्ति को कोई जानकारी नही होती जिसमे वह स्वाभाविक व्यवहार का प्रदर्शन करता है।

परीक्षण
(Test)

परीक्षण वे उपकरण है जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी समूह के व्यवहार का क्रमवद्ध (Systematic) ज्ञान प्रदान करते है। परीक्षण से तात्पर्य किसी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियो मे रखने से है जो उसके वास्तविक गुणो को प्रकट कर दे। विभिन्न प्रकार के गुणो को मापने के लिए विभिन्न परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है। व्यक्तित्व को जानने के लिए व्यक्तित्व परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। अभिक्षमता ज्ञात करने के लिए अभिक्षमता परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। छात्रो की कठिनाइयों को जानने के लिए निदानात्मक परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। परीक्षणों को अनेक ढग से वर्गीकृत किया जा सकता है।

परीक्षण की प्रकृति के आधार पर उन्हे **मौखिक परीक्षण** (Oral test), **लिखित परीक्षण** (Written test) तथा **प्रयोगात्मक परीक्षण** (Practical test) मे बाटा जा सकता है। मौखिक परीक्षण में मौखिक प्रश्नोत्तर के द्वारा छात्रो के व्यवहार का मापन किया जाता है। परीक्षक मौखिक ही प्रश्न करता है तथा परीक्षार्थी मौखिक रूप से ही

उत्तर प्रदान करता है। स्पष्ट है कि मौखिक परीक्षा मे एक समय मे एक ही छात्र के गुणो को मापा जा सकता है। लिखित परीक्षण मे प्रश्न लिखित रूप मे पूछेजाते है तथा छात्र उनका उत्तर लिख कर देता है। प्रयोगात्मक परीक्षणो मे छात्रो को कोई प्रयोगात्मक कार्य करना होता है तथा इस प्रयोगात्मक कार्य के आधार पर उनका मापन किया जाता है।

परीक्षण के प्रशासन के आधार पर परीक्षणो को दो भागो मे वाटा जा सकता है—**व्यक्तिगत परीक्षण** (Individual test) तथा **सामूहिक परीक्षण** (Group test)। व्यक्तिगत परीक्षण वे परीक्षण है जिनके द्वारा एक समय मे केवल एक ही व्यक्ति की योग्यता का मापन किया जा सकता है। इसके विपरीत सामूहिक परीक्षण वे परीक्षण है जिनके द्वारा एक ही समय मे अनेक व्यक्तियो की किसी योग्यता का मापन किया जा सकता है।

परीक्षण मे प्रयुक्त सामग्री के प्रस्तुतीकरण के आधार पर भी परीक्षण को दो भागो मे वाटा जा सकता है। शाब्दिक परीक्षण **(Verbal test)** तथा अशाब्दिक परीक्षण (Nonverbal test)। शाब्दिक परीक्षण वे परीक्षण है। जिनमे प्रश्न तथा उत्तर किसी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किए जाते है जवकि अशाब्दिक परीक्षण वे परीक्षण है जिनमे प्रश्न तथा उत्तर दोनो ही (अथवा उत्तर) सकेतो या चित्रो आदि भाषा रहित माध्यमो से प्रस्तुत किए जाते है।

परीक्षणो की रचना के आधार पर परीक्षणो को **मानकीकृत परीक्षण** (Standardized test) तथा **अध्यापक निर्मित परीक्षण** (Teacher-made test) मे भी वाटा जा सकता है। मानकीकृत परीक्षण वे परीक्षण है जिनके प्रश्नो का चयन पद-विश्लेषण के आधार पर करते है और जिनकी विश्वसनीयता, वैधता, तथा मानक उपलब्ध रहते है। अध्यापक निर्मित परीक्षण वे परीक्षण है जिन्हे अध्यापक अपनी आवश्यकतानुसार तात्कालिक रुप से तैयार कर लेता है।

प्रश्नो के उत्तर की प्रकृति के आधार पर भी परीक्षणो को दो भागो मे वाटा जा सकता है—**निबन्धात्मक परीक्षण** (Essay type test) तथा **वस्तुनिष्ठ परीक्षण** (Objective type test)। निवन्धात्मक परीक्षण वे परीक्षण है जिनमे परीक्षार्थी प्रश्नो का उत्तर देने के लिए स्वतन्त्र (Free) होता है जवकि वस्तुनिष्ठ परीक्षणों मे परीक्षार्थी कुछ निश्चित शब्दो या वाक्याशो की सहायता से प्रश्नो के उत्तर प्रदान करता है।

परीक्षण के द्वारा मापे जा रहे गुण के आधार भी परीक्षणो को अनेक भागो मे वाटा जा सकता है जैसे **गति परीक्षण** (Speed test), **सामर्थ्य परीक्षण** (Power test), **निदानात्मक परीक्षण** (Diagnostic test), **अभिक्षमता परीक्षण** (Aptitude test), **बुद्धि परीक्षण** (Intelligence test), **रुचि परीक्षण** (Interest test), **व्यक्तित्व परीक्षण** (Personality test) आदि।

साक्षात्कार
(Interview)

साक्षात्कार व्यक्तियो से सूचना सकलित करने का सर्वाधिक प्रचलित साधन है

विचारानुकूल उत्तर देने की स्वतन्त्रता होती है। जब प्रश्नावली मे दोनो ही प्रकार के प्रश्न होते है तब उसे मिश्रित प्रश्नावली (Mixed questionnaire) कहते हैं।

निर्धारण मापनी
(Rating Scale)

निर्धारण मापनी किसी व्यक्ति के गुणो का गुणात्मक विवरण प्रस्तुत करती है। निर्धारण मापनी की सहायता से व्यक्ति मे उपस्थित गुणो की सीमा (degree) अथवा गहनता (Intensity) या आवृति (Frequency) को मापने का प्रयास किया जाता है। निर्धारण मापनी मे कुछ सकेत (अथवा अक) होते है। ये सकेत (अथवा अक) कम से अधिक के सातत्य (Continuum) मे क्रमवद्ध रहते है। उत्तरदाता को मापे जाने वाले गुण के आधार पर इन सकेतो (अथवा अको) मे से किसी एक ऐसे सकेत का चयन करना होता है जो छात्र मे उपस्थित उस गुण की सीमा की अभिव्यक्ति कर सके। निर्धारण मापनी अनेक प्रकार की हो सकती है जैसे स्थिति मापनी (Ranking Scale), सामाजिक अतर मापनी (Social Distance Scale), क्यू विधि (Q Technique), प्रत्यय भिन्नता मापनी (Semantic differential Scale), अभिवृत्ति मापनी (Attitude scale) आदि।

प्रक्षेपीय तकनीक
(Projective Technique)

प्रक्षेपीय तकनीक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता व्यक्ति के अचेतन पक्ष का मापन है। प्रक्षेपण से अभिप्राय उस अचेतन प्रक्रिया से है जिसमे व्यक्ति अपने मूल्यो, दृष्टिकोणो, आवश्यकताओ, इच्छाओ, सवेगो आदि को अन्य वस्तुओ अथवा अन्य व्यक्तियो के माध्यम से अपरोक्ष ढग से व्यक्त करता है। प्रक्षेपीय तकनीक मे व्यक्ति के सम्मुख किसी ऐसी उद्दीपक परिस्थिति को प्रस्तुत किया जाता है जिसमे वह अपने विचारों, दृष्टिकोणो, सवेगों, गुणो, आवश्यकताओं आदि को उस परिस्थिति मे आरोपित (Impose) कर दे। प्रक्षेपीय तकनीक मे प्रस्तुत किए जाने वाले उद्दीपन असरचित (Unstructured) होते है तथा इन पर व्यक्ति के द्वारा की गई क्रियाये सही या गलत न होकर व्यक्ति की सहज व्याख्याएँ होती है। प्रक्षेपीय तकनीको मे व्यक्ति द्वारा दी जाने वाली प्रतिक्रिया के आधार पर इन्हे पॉच भागो मे बॉटा जा सकता है— **साहचर्य तकनीकें** (Association Techniques), **रचना तकनीकें** (Construction Techniques), **पूर्ति तकनीकें** (Completion Techniques), **क्रम तकनीकें** (Ordering Techniques), तथा **अभिव्यक्ति तकनीकें** (Expressive Technıues)। रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण (Rorschach Ink Blot test) तथा मुरे प्रासगिक अन्तर्वोध परीक्षण (Murray Thematic Apperception test), वाल अन्तर्बोध परीक्षण (C A T), शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association test), तथा शाब्दिक पूर्ति परीक्षण (Verbal Completion test) कुछ वहुतायत से प्रयोग किए जाने वाले प्रक्षेपीय मापन उपकरण है।

समाजमिति

(Sociometry)

समाजमिति एक ऐसा व्यापक पद है जो किसी समूह मे व्यक्तियो की पसन्द, अत.क्रिया आदि का मापन करने वाले उपकरणो के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। अत समाजमिति पसन्द के मापन की एक विधि है। इसमे व्यक्ति से कहा जाता है कि वह दिए गए आधार पर एक या एक से अधिक व्यक्तियो का चयन करे। जैसे कक्षा मे आप किसके साथ बैठना पसन्द करेगे, आप किसके साथ खेलना पसन्द करेगे, आप किसे मित्र बनाना पसन्द करेगे। व्यक्ति एक, दो, तीन या अधिक पसन्द बता सकता है। इस प्रकार के समाजमितिय प्रश्नों के ऊपर प्राप्त उत्तरो से तीन प्रकार का समाजमितीय विश्लेषण किया जा सकता है। ये है—**समाजमितीय मैट्रिक्स** (Sociomatric Matrix), **सोशियोग्राम** (Socio Gram) तथा **समाजमितीय गुणांक** (Sociomatric Index)। समाजमितीय मैट्रिक्स मे समूह के सभी छात्रो के द्वारा इगित की गई पसन्द को सारणी के रुप मे प्रस्तुत किया जाता है। सोशियोग्राम मे समूह की पसन्द को चित्ररुप मे प्रस्तुत करते है। समाजमितीय गुणाक के द्वारा विभिन्न व्यक्तियो के सम्वन्ध मे अन्य छात्रो द्वारा इगित की गई पसन्द को अथवा समूह की सामूहिक सामाजिक स्थिति को अको के रुप मे व्यक्त किया जाता है।

संचयी अभिलेख

(Cumulative Records)

विद्यालयों मे सचयी अभिलेख के रुप मे छात्रो से सम्वन्धित विभिन्न सूचनाओ को क्रमवद्ध रुप मे एकत्रित किया जाता है। इन्हे सचयी अभिलेख के नाम से पुकारा जाता है। इनमे छात्रो की उपस्थिति, शैक्षिक प्रगति, योग्यता, प्रयोगात्मक कार्य, पाठ्य सहगामी क्रियाओ मे सहभागिता, उनकी रुचियाँ, व्यक्तित्व आदि सूचनाओ का आलेख प्रस्तुत किया जाता है। किसी छात्र की प्रगति जानने तथा उसका मूल्याकन करने मे सचयी अभिलेख अत्यधिक उपयोगी होते है।

निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण

(Essay Type and Objective Type Test)

परीक्षण की सहायता से छात्रो की विभिन्न योग्यताओ तथा गुणो का मापन किया जाता है। शैक्षिक सदर्भ मे परीक्षाओ के द्वारा ज्ञानात्मक व्यवहार के मापन को अधिक महत्व दिया जाता है। कक्षाध्यापक परीक्षण का प्रयोग करके समय-समय पर छात्रो की शैक्षिक प्रगति का मापन करता रहता है। शैक्षिक सत्र के अन्त मे परीक्षाओ के द्वारा छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि का मापन किया जाता है। जिसके आधार पर उन्हे कक्षा उन्नति दी जाती है। परीक्षण दो प्रकार के होते है—1. **निबन्धात्मक परीक्षण** (Essay type test) तथा 2. **वस्तुनिष्ठ परीक्षण** (Objective type test)।

निबन्धात्मक परीक्षण

(Essay Type Tests)

निवन्धात्मक परीक्षण प्राचीन काल से ही अत्यत प्रचलित है। इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 2300 वी० सी० पूर्व भी चीन मे निवन्धात्मक प्रश्नो का प्रचलन था। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ तक यह लिखित परीक्षाओ का एक मात्र ढग था। इसलिये इन्हे परम्परागत परीक्षण भी कहते है। निवन्धात्मक परीक्षण अत्यन्त सुविधाजनक होते है। प्रश्न निर्माता निवन्धात्मक प्रश्नो को अत्यन्त सरलता व शीघ्रता से तैयार कर लेते है। निवधात्मक प्रश्नो मे छात्रों से एक विस्तृत (Explicit) उत्तर प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है तथा किसी मानक उत्तर से तुलना किये विना ही परीक्षक छात्रो के द्वारा प्रस्तुत उत्तरो का अकन कर लेता है। निवन्धात्मक परीक्षण का अकन करते समय परीक्षक के लिये यह अत्यन्त सरल होता है कि वह प्राप्ताको के सामान्य स्तर तथा वितरण को नियन्त्रित कर सके। किसी उत्तर पर परीक्षक कितने अक देता है यह उसका व्यक्तिगत निर्णय होता है। निवन्धात्मक परीक्षण का कठिनाई स्तर कुछ भी क्यो न हो, परीक्षक अपने द्वारा दिये जा रहे प्राप्तांको को इस तरह से व्यवस्थित कर सकता है कि उसके पूर्व द्वारा निर्धारित प्रतिशत छात्र न्यूनतम उत्तीर्ण अक प्राप्त कर सके।

निवन्धात्मक प्रश्नो के पक्ष मे जो तर्क दिया जाता है। उनमे सवसे प्रमुख तर्क है कि निवन्धात्मक परीक्षण छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि का सर्वोत्तम मापन करते है। छात्रो को पहले से तैयार उत्तर नही देना होता है वल्कि उन्हे अपने विषय पर अच्छा ज्ञान व वोध होना चाहिये जिससे वे विभिन्न तथ्यो तथा सिद्धातो को एक दूसरे से सम्वन्धित कर सके, तथा इन विचारो की लिखित अभिव्यक्ति करने मे सफल हो सकें। इसके अतिरिक्त निवन्धात्मक परीक्षणो पर छात्रो के द्वारा दिये गये उत्तर छात्रो की विचार प्रक्रिया की प्रकृति तथा गुणवत्ता का ज्ञान प्रदान करते है। आलोचनात्मक चिंतन, सृजनशीलता, अभिव्यक्ति आदि अनेक योग्यताओ का मापन निवन्धात्मक परीक्षण के द्वारा ही किया जाना सम्भव है।

निबन्धात्मक परीक्षण की सीमाएँ (Limitations of Essay Type Tests)—नि सदेह निवन्धात्मक परीक्षणो का अपना एक अलग शैक्षिक महत्व है। परन्तु इसके बावजूद इनमे कुछ ऐसी कमियाँ पायी जाती है जिनकी वजह से मापन व मूल्याकन के क्षेत्र मे इनके उपयोग की आलोचना की जाती है। निवन्धात्मक परीक्षणो की मुख्य सीमाये अग्रांकित है—

1. निवन्धात्मक परीक्षणो मे पाठ्यक्रम तथा शिक्षण उद्देश्यो से अपेक्षाकृत कम प्रश्नो का चयन किया जाता है जिससे विस्तृत पाठ्यक्रम तथा शिक्षण उद्देश्यो का उचित प्रतिनिधित्व नही हो पाता है। इससे चयनित अध्ययन (Select Study) तथा रटन्त स्मरण (Memorization) पर वल दिया जाता है।

2 निवन्धात्मक परीक्षणो मे न केवल परीक्षार्थी वल्कि परीक्षक को भी अत्यधिक छूट रहती है।

3. निवन्धात्मक परीक्षण के उत्तर देने मे तथा उनका अकन करने मे अधिक समय

की आवश्यकता होती है।

4. निबन्धात्मक परीक्षण के अकन मे त्रुटि होने की सभावना अधिक रहती है। परीक्षक प्रश्नों के उत्तरों की अपने ढग से व्याख्या कर सकता है।

5. निबन्धात्मक प्रश्नो की विश्वसनीयता तथा वैधता अपेक्षाकृत कम होती है। न केवल परीक्षा मे पूछे गये प्रश्नो के निर्धारण मे बल्कि छात्रो के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले अको के निर्धारण मे सयोग (Chance) तथा भाग्य (Luck) का महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

6. निबन्धात्मक परीक्षणो ने शिक्षा प्रणाली को बोझिल बना दिया है।

निबन्धात्मक परीक्षण के उपयोग (Use of Essay Type Tests)—यद्यपि निबन्धात्मक परीक्षण मे अनेक कमियाँ भी है फिर भी शैक्षिक मापन मे इनका अपना एक विशेष महत्व है। निबन्धात्मक परीक्षण की मुख्य आलोचना इनके आत्मनिष्ठ (Subjective),अविश्वसनीय (Unreliable) तथा अवैध होने (Invalid) के कारण की जाती है। परन्तु यदि सावधानीपूर्वक निबन्धात्मक परीक्षण का प्रयोग किया जाये तो यह शैक्षिक उपलब्धि का सफलता पूर्वक मापन कर सकता है। निम्न परिस्थितियो मे निबन्धात्मक परीक्षण का प्रभावशाली ढग से उपयोग किया जा सकता है।

1. जब परीक्षण किये जाने वाले समूह मे कम छात्र हो तथा परीक्षण को बार-बार उपयोग में न लाना हो।

2. जब शिक्षक छात्रों की लिखित-भाषाभिव्यक्ति को पूर्णरुपेण विकसित करने का इच्छुक हो।

3. जब अध्यापक शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा छात्रो की अभिवृत्ति को जानने का अधिक इच्छुक हो।

4. जब अध्यापक छात्रों के उत्तर के अकन की दृष्टि से स्वय को विश्वसनीय समझता हो।

5. जब प्रश्नपत्र तैयार करने के लिये उपलब्ध समय कम हो जबकि उत्तरो का अकन करने कें लिये अधिक समय उपलब्ध हो।

निबन्धात्मक प्रश्नों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक तैयार करना चाहिए। निबन्धात्मक प्रश्नो को तैयार करते समय निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए—

1. ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिये जो छात्रो को अपना ज्ञान प्रदर्शित करने के अवसर दे। अर्थात् प्रश्न नई समस्याओ या परिस्थितियों पर आधारित हो न कि कक्षा मे अध्यापन के समय बताई परिस्थितियो पर ही आधारित हो।

2. ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिनके उत्तर पर एक मत होना सम्भव हो अर्थात् विशेषज्ञ किसी उत्तर को अन्य उत्तर से श्रेष्ठ बताने मे एक मत हो सके।

3. प्रश्न परीक्षार्थी की दृष्टि से स्पष्ट होने चाहिए अर्थात् प्रश्न की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि परीक्षार्थी स्पष्ट ढग से समझ सके कि उनसे किस प्रकार के उत्तर की अपेक्षा जा रही है।

4. ऐसे प्रश्न जिनका सक्षिप्त उत्तर दिया जा सके, को वरीयता देनी चाहिये अर्थात्

सम्पूर्ण परीक्षण मे अधिक प्रश्नो को रखना चाहिए।

5. प्रश्नो में आन्तरिक चयन की छूट नही देनी चाहिए।

6. प्रश्नों की गुणवत्ता जानने के लिए परीक्षक को प्रश्न का आदर्श उत्तर तैयार करना चाहिए।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण

(Objective Type Tests)

वस्तुनिष्ठ परीक्षण का प्रयोग बीसवी शताब्दी मे आरम्भ हुआ इसलिए इन्हे नवीन प्रकार की परीक्षा भी कहा जाता है। ये परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षण की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय व वैध होते है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नो मे प्रत्येक प्रश्न का एक निश्चित सही उत्तर होता है तथा परीक्षार्थी से उसी उत्तर की अपेक्षा की जाती है। अतः किसी वस्तुनिष्ठ प्रश्न पर किसी छात्र द्वारा दिया गया उत्तर या तो सही होगा अथवा गलत होगा। सही होने पर छात्र को पूर्ण अक प्राप्त होगे जबकि गलत होने पर कोई अक प्राप्त नही होगा। प्रश्नो के उत्तर की इस प्रवृत्ति की वजह से वस्तुनिष्ठ परीक्षणो का अकन करते समय किसी प्रकार की स्वतन्त्रता अथवा व्यक्तिगत निर्णय लेने की छूट नही होती है चाहे कोई भी व्यक्ति अकन करे किसी छात्र द्वारा प्राप्त अक वही रहेगे। वस्तुनिष्ठ प्रश्न अनेक प्रकार के हो सकते है। बहुविकल्पात्मक प्रश्न (Multiple Choicc Items), सत्यासत्य प्रश्न (True false Items), मिलान प्रश्न (Matching Items) तथा वर्गीकरण प्रश्न (Classification Items), ये चार-चयन प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Selection type Objective Itmes) है। इन सभी प्रकार के प्रश्नो मे छात्रो को दिये गये उत्तरो मे से सही उत्तर का चयन करना होता है। प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall Items) तथा रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न (Completion Items)—पूर्ति प्रकार के वस्तुनिष्ठ (Supply type Objective Items) है। इनमे छात्रो को अपनी स्मृति के आधार पर उत्तर देना होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के लाभ (Advantages of Objective type Items) —जैसी की चर्चा की जा चुकी है, वस्तुनिष्ठ परीक्षण एक नवीन प्रकार का परीक्षण है। शैक्षिक मापन व मूल्याकन के क्षेत्र में इनका प्रयोग दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के लाभ निम्नवत् है :

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षणो मे प्रश्नो की सख्या अधिक होती है जिनके कारण इनमे पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण उद्देश्यो का उचित प्रतिनिधित्व सम्भव होता है।

2. वस्तुनिष्ठ परीक्षणो मे प्रश्न स्पष्ट होते है जिससे परीक्षार्थी को उत्तर देने मे तथा परीक्षक को अकन करने मे सुगमता होती है।

3. वस्तुनिष्ठ परीक्षणो का अकन सरलता व शीघ्रता से सम्भव होता है।

4. वस्तुनिष्ठ परीक्षण अधिक विश्वसनीय तथा वैध होते है।

5. वस्तुनिष्ठ परीक्षण उच्च मानसिक योग्यताओं का मापन कर सकते है।

निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की तुलना

(Comparision of Essay Type and Objective Type Tests)

निबन्धात्मक परीक्षण तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे अनेक समानताएँ व विभिन्नताएँ पाई जाती है। इसकी प्रमुख समानताएँ व विभिन्नताये निम्नवत् है—

1. लगभग सभी प्रकार की महत्वपूर्ण शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए निबन्धात्मक परीक्षण अथवा वस्तुनिष्ठ परीक्षण का उपयोग किया जा सकता है।

2. छात्रों के ज्ञानार्जन को प्रोत्साहित करने के लिए दोनो ही प्रकार के परीक्षणो का प्रयोग किया जा सकता है।

3. दोनों ही प्रकार के परीक्षण मे किसी न किसी प्रकार का विषयनिष्ठ निर्णय (Subjective Judgement) लेना होता है।

4. निवन्धात्मक प्रश्नो मे छात्रो को अपने उत्तर का प्रारुप स्वय तैयार करना होता है तथा अपने शब्दो मे अभिव्यक्त करना होता है। जवकि वस्तुनिष्ठ प्रश्नो मे छात्रो को अनेक उत्तरो मे से किसी एक उत्तर का चयन करना होता है अथवा किसी शब्द, अक, सकेत, अथवा वाक्याश के द्वारा अपने उत्तर को अभिव्यक्त करना होता है।

5. निवन्धात्मक परीक्षण मे सामान्य एव सख्या मे कम प्रश्न होते है। जिनके विस्तृत उत्तर की अपेक्षा की जाती है। जवकि वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे विशिष्ट तथा सख्या मे अधिक प्रश्न होते है जिनके सक्षिप्त उत्तर की अपेक्षा की जाती है।

6. निवन्धात्मक परीक्षण देते समय छात्र अपना अधिकाश समय सोचने एव लिखने मे लगाते है। जवकि वस्तुनिष्ठ परीक्षण देते समय छात्र अपना अधिकाश समय पढने तथा सोचने मे लगाते है।

7. निवन्धात्मक परीक्षण की गुणवत्ता काफी सीमा तक परीक्षक की योग्यता के ऊपर निर्भर करती है। जबकि वस्तुनिष्ठ परीक्षण की गुणवत्ता काफी सीमा तक परीक्षक और निर्माता की योग्यता पर निर्भर करती है।

8. निबन्धात्मक परीक्षण तैयार करने मे सरल परन्तु अकन करने मे कठिन व जटिल होते हैं। इसके विपरीत वस्तुनिष्ठ परीक्षण को तैयार करना कठिन व जटिल कार्य है जवकि उनका अकन अपेक्षाकृत सरल होता है।

9. निबन्धात्मक परीक्षण मे प्रश्नपत्र निर्माता को प्रश्न बनाने, छात्रो को उत्तर लिखने तथा परीक्षक को अक देने मे पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है। जवकि वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे परीक्षणनिर्माता को प्रश्नो की रचना करने मे पर्याप्त छूट रहती है परन्तु छात्रो को उत्तर देने व परीक्षक कोअकन करने मे कोई छूट नही रहती है।

10. निवन्धात्मक परीक्षण मे धोखा धडी (Bluffing) की सम्भावना रहती है जवकि वस्तुनिष्ठ परीक्षणों मे अनुमान लगाने (Guessing) की सम्भावना रहती है।

11. निवन्धात्मक परीक्षणो पर प्राप्त प्राप्ताको का वितरण काफी सीमा तक परीक्षक के द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है परन्तु वस्तुनिष्ठ परीक्षणो के प्राप्ताको के वितरण पर परीक्षक का कोई नियत्रण नही होता है।

पाठको की सरलता के लिए निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षणो के गुण व दोषो का तुलनात्मक वर्णन निम्नाकित सारणी मे किया जा रहा है—

तालिका

निबन्धात्म क एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन

विन्दु Point	निवन्धात्मक परीक्षण Essay type Test	वस्तुनिष्ठ परीक्षण Objective type Test
1. रचना	इनकी रचना सरल होती है तथा कम समय लगता है	इनकी रचना कठिन होती है तथा अधिक समय, धन व शक्ति की आवश्यकता होती है।
2. अंकन	इनका अकन कठिन होता है। विषय का ज्ञाता ही अकन कार्य कर सकता है। इनका आदर्श उत्तर लगभग असभव होता है	इनका अकन सरल होता है। कोई भी व्यक्ति अकन कार्य कर सकता है। इनका निश्चित उत्तर होता है।
3. प्रश्नों के प्रकार	इनमे सामान्य प्रकृति के प्रश्न होते है।	इनमे प्रश्नों की प्रकृति विशिष्ट होती है।
4. प्रश्नों की संख्या	इसमे कम सख्या मे प्रश्न होते है।	इसमे प्रश्नो की सख्या अधिक होती है।
5. प्रशासन	इनका प्रशासन सरल होता है।सामान्यत विशिष्ट निर्देशो की आवश्यकता नही होती।	इनमे विशिष्ट निर्देशो की आवश्यक- होती है। इसलिए इनका प्रशासन कठिन होता है।
6. भाषा तथा सुलेख	इनमे भाषा तथा सुलेख का महत्व होता है।	इनमे भाषा व सुलेख का कोई महत्व नही होता है।
7 अनुमान का प्रभाव	इनमे अनुमान से उत्तर नही लिखा जा सकता। परन्तु धोखा दिया जा सकता है।	इनमे अनुमान से प्रश्नो के उत्तर दिए जाते है।
8. वस्तुनिष्ठता	यह विषयनिष्ठ परीक्षण है जिससे मापन की व्यक्तिगत त्रुटि (Personal Errors) अधिक होती है।	यह वस्तुनिष्ठ परीक्षण है इनमे मापन की व्यक्तिगत त्रुटिया नही होती है।
9. विश्वसनी-यता	यह कम विश्वसनीय होते है। इनमे मापन की चर त्रुटिया (Variable Errors) अधिक होती है।	यह अधिक विश्वसनीय होते है। इनमे मापन की चर त्रुटियाँ कम होती है।

10. **वैधता**	यह अपेक्षाकृत कम वैध होते है। इनमे मापन की स्थिर त्रुटिया (Constant Errors) अधिक होती है।	यह अधिक वैध होते है इनमे मापन की स्थिर त्रुटिया कम होती है।
11. **मानक**	इनके मानक तैयार करना कठिन होता है। इसलिए इनमे व्याख्यात्मक (Interpretive) त्रुटिया अधिक होती है।	इनमे मानक तैयार करना सरल है इनमे व्याख्यात्मक त्रुयिा कम होती है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के प्रकार

(Types of Objective Type Items)

जैसा कि चर्चा की जा चुकी है वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को दो मुख्य प्रकारो मे बॉटा जा सकता है।

(1) **पूर्ति प्रश्न** (Suply Type Item)

(2) **चयन प्रश्न** (Selection Type Item)

1. पूर्ति प्रश्न (Supply Type Item)—इस प्रकार के प्रश्नो मे परीक्षार्थी को उत्तर की पूर्ति करनी होती है। इनमे या तो कोई प्रश्न पूछा जाता है तथा छात्रो को इसका उत्तर अपने ज्ञान का स्मरण करके देना होता है अथवा कोई अपूर्ण वाक्य दिया जाता है तथा छात्र को अपने ज्ञान के आधार पर इस वाक्य को पूर्ण करना होता है। इस प्रकार से पूर्ति प्रश्न के अन्तर्गत छात्रो को प्रश्न का उत्तर स्वय अपनी ओर से देना होता है। यदि छात्रों के ज्ञान मे कोई तथ्य है तो वे प्रश्न का उत्तर दे पाते है अन्यथा वे प्रश्न का उत्तर देने मे असमर्थ रहते है। इस प्रकार के प्रश्नों से छात्रो की प्रत्यास्मरण करने की योग्यता का मापन होता है इसलिए पूर्ति प्रश्नो को प्रत्यास्मरण प्रकार के प्रश्न (Recall Type Items) भी कहते हैं। प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर पूर्ति प्रश्नो को दो भागो मे बॉटा जा सकता है—सामान्य प्रत्यास्मरण प्रश्न (Simple Recall Type Items) तथा रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न (Completion Type Items) ।

(i) सामान्य प्रत्यास्मरण प्रश्न (Simple Recall Type Items)—इस प्रकार के प्रश्नो मे छात्रो से सीधे-सीधे प्रश्न पूछे जाते है। प्रश्न का रूप इस प्रकार का होता है कि उनका उत्तर अत्यन्त सक्षिप्त तथा विशिष्ट होता है। छात्रो को प्रश्न के उत्तर के रुप मे केवल एक शब्द, अक नाम अथवा वाक्याश आदि ही लिखना होता है। सामान्य प्रत्यास्मरण प्रश्नो के कुछ उदाहरण निम्नवत् है—

1. भारत के प्रथम प्रधान मत्री का क्या नाम था ?
2. इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना किस वर्ष मे हुई थी ?
3. सगम तीर्थस्थल किस शहर मे स्थित है ?
4. पानी का रसायनिक सूत्र क्या है ?

(ii) रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न (Completion Type Items)—इस प्रकार के प्रश्नो को अपूर्ण कथन अथवा वाक्य के रुप मे प्रस्तुत किया जाता है। छात्रो को अपने ज्ञान के आधार पर इन वाक्यो की पूर्ति करनी होती है पूर्ति करने के लिए साधारणत एक ही शब्द, नाम, अक अथवा वाक्याश पर्याप्त होता है। रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्नो के कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे है—

1. भारत के प्रथम प्रधानमत्री का नाम   है।
2. इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना मन्   . मे हुई थी।
3. सगम तीर्थस्थल   मे स्थित है।
4. पानी का रसायनिक सूत्र . . है।

पूर्ति प्रश्नों की विशेषताएं—पूर्ति प्रश्नो की मुख्य विशेषताए निम्नवत् है—

1. इस प्रकार के प्रश्नो की रचना करना अत्यन्त सरल होता है।
2. इस प्रकार के प्रश्नो का उत्तर अनुमान से देना सम्भव नही है।
3. इस प्रकार के प्रश्न ज्ञान उद्देश्य के मापन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।
4. इस प्रकार के प्रश्नो का अकन करना सरल होता है।
5. इस प्रकार के प्रश्नों से प्रत्यास्मरण का अभ्यास होता है।

पूर्ति प्रश्नों की रचना में सावधानियाँ—पूर्ति प्रश्नो की रचना मे निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए—

1. प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका केवल एक ही सही उत्तर हो।
2. प्रश्नों तथा वाक्यो की भाषा स्पष्ट होनी चाहिए।
3. परीक्षण मे पूर्ति प्रश्नो की सख्या कुल प्रश्नो के 10% के लगभग होनी चाहिए।
4. सामान्य प्रत्यास्मरण प्रकार के प्रत्येक प्रश्न मे केवल एक ही तथ्य को पूछना चाहिए।
5. रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्नो मे केवल एक ही रिक्त स्थान की पूर्ति कराई जानी चाहिए।
6. सही उत्तर के लिए प्रश्न की भाषा अथवा व्याकरण से कोई संकेत नही मिलना चाहिए।

2. चयन प्रश्न (Selection Type Items)—इस प्रकार के प्रश्नो मे प्रश्न के अनेक सभावित उत्तर दिए जाते है तथा छात्रों से सही उत्तर का चयन करने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार के प्रश्नों से छात्रो की पहचान करने की योग्यता का मापन होता है। इसलिए इन्हे अभिज्ञान प्रश्न (Recognition Type Question) भी कहते है। इस प्रकार के प्रश्नों मे छात्र अनुमान से भी प्रश्न का उत्तर दे सकता है। प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर चयन प्रश्नो को चार भागों मे बाटा जा सकता है। सत्यासत्य प्रश्न (True false Item), बहुविकल्प प्रश्न (Multiple Choice Type Item), मिलान प्रश्न

(Matching Item), तथा वर्गीकरण प्रश्न (Classification Item) ।

(i) **सत्यासत्य प्रश्न (True False Item)**—इस प्रकार के प्रश्नो मे कुछ कथन दिए जाते है । इनमे से कुछ कथन सत्य होते है तथा कुछ कथन असत्य होते है । छात्रो को यह देखना होता है कि कौन सा कथन सत्य है तथा कौन सा कथन असत्य है। इस प्रकार से छात्र प्रत्येक कथन के सन्दर्भ मे सत्य अथवा असत्य विकल्प मे से किसी एक का चयन करता है । सत्यासत्य प्रश्नो के कुछ उदाहरण निम्नवत् है—

1. त्रिभुज के तीनो कोणों का योग 180° होता है ।
2. 26 जनवरी हमारा स्वतन्त्रता दिवस है । सत्य/असत्य ।
3. थर्मामीटर का प्रयोग ताप नापने के लिए होता है । सत्य/असत्य ।
4. उत्तर प्रदेश की राजधानी कानपुर है । सत्य/असत्य ।

(ii) **बहुविकल्प प्रश्न (Multiple Choice Type Items)**—इस प्रकार के प्रश्नो मे एक ही प्रश्न के अनेक उत्तर दिये जाते है । इनमे से केवल एक ही उत्तर सही होता है तथा शेष उत्तर गलत होते है । छात्रों को दिये गये उत्तरो मे से सही उत्तर का चयन करना होता है दिये गये उत्तरो की सख्या 3, 4 या 5 भी हो सकती है । वहुविकल्प प्रश्नो के कुछ उदाहरण निम्नवत् है—

1 भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे—

(अ) श्री राजीव गाँधी (व) श्री वेकटरमन,
(स) डा० राजेन्द्र प्रसाद (द) श्रीमती इदिरा गाधी

2. रामचरित मानस के रचयिता थे—

(अ) सूरदास (व) रामानन्द सागर
(स) तुलसी दास (द) वाल्मिकी

3. प्रत्येक 12 वर्ष वाद लगने वाले मेले का नाम है—

(अ) कुम्भ मेला (ब) माघ मेला (स) कृषि मेला (द) कार्तिक मेला ।

(iii) **मिलान प्रश्न (Matching Items)**—इस प्रकार के प्रश्नो में प्रत्येक प्रश्न के दो भाग होते है । इन दोनों भागो को अलग-अलग दो स्तम्भों मे लिखा जाता है । प्रश्न के एक भाग का प्रश्न के दूसरे भाग से स्पष्ट सम्बन्ध होता है । दूसरे स्तम्भ मे लिखे भाग को पहले स्तम्भ मे लिखे भागो के क्रम मे नही लिखा जाता है । छात्रो को पहले स्तम्भ मे लिखे प्रश्नो के भागो के लिए दूसरे स्तम्भ से सही भाग को छाटना होता है । मिलान प्रश्न का एक उदाहरण आगे दिया गया है—

प्रथम स्तम्भ	दूसरा स्तम्भ
1. रामचरित मानस	1. सूरदास
2. अभिज्ञान शाकुतलम्	2. तुलसीदास
3. सूरसागर	3. कालिदास
4. गोदान	4. प्रेमचन्द्र
	5. अज्ञेय

(iv) **वर्गीकरण प्रश्न (Classification Items)**—इस प्रकार के प्रश्नो मे छात्रो के सम्मुख शब्दों का एक ऐसा समूह प्रस्तुत किया जाता है जिनमे एक को छोडकर सभी शब्द एक ही प्रकार की वस्तुओ अथवा क्रियाओं से सम्वन्धित होते है। कहने का अभिप्राय यह है कि दिये गये शब्द समूहो मे केवल एक ही असगत शब्द होता है। छात्रो को उस असगत शब्द का चयन करके बताना होता है। वर्गीकरण प्रश्न का एक उदाहरण निम्नवत् है—

1. त्रिभुज, चर्तुभुज, आयत, वृत्त, वर्ग।
2. कानपुर, लखनऊ, बनारस, दिल्ली, आगरा।
3. जवाहरलाल नेहरु, जाकिर हुसैन, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, ज्ञानी जैल सिंह।
4. गगा, यमुना, सतलज, हिमालय, कावेरी।

चयन प्रश्नों की विशेषताएं—चयन प्रश्नो की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(1) चयन प्रश्न बोध उद्देश्य के मापन के लिए अधिक उपयुक्त है।

(2) चयन प्रश्न विभेदीकरण की योग्यता के मापन के लिए अधिक उपयुक्त है।

चयन प्रश्नों की रचना में सावधानियाँ—चयन प्रश्नो की रचना मे निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए।

(1) चयन प्रश्नो मे साधारणत चार या अधिक विकल्प का प्रयोग करना चाहिए। जिससे छात्रो द्वारा अनुमान से प्रश्नो का उत्तर देने की सम्भावना कम हो जाये।

(2) दिये गये विकल्पो मे समरुपता होनी चाहिए जिससे छात्रो को सही उत्तरके सम्वन्ध मे कोई सकेत न मिल सके।

(3) मिलान प्रश्नो मे दूसरे स्तम्भ मे पहले स्तम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक कथन होने चाहिये।

(4) निर्देश स्पष्ट एव बोधगम्य भाषा मे लिखने चाहिये।

मापन उपकरणों की विशेषताएँ

(Characteristics of Measuring Tools)

पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि मापन तथा मूल्याकन शिक्षा प्रक्रिया का एक आवश्यक तथा अभिन्न अग है। शिक्षा प्रक्रिया के विभिन्न चरणो मे छात्रो की योग्यताओ एव उपलब्धि का मापन व मूल्याकन करना होता है। मापन तथा मूल्यांकन के लिए कुछ उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। किसी भी अच्छे मापन उपकरण की कुछ विशेषताएँ होती है। मापन उपकरण का चयन करते समय इन विशेषताओ का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई मापन उपकरण इन विशेषताओ से युक्त होता है तब उसे एक अच्छा मापन उपकरण कहा जा सकता है।

मापन उपकरण की विशेषताओ को दो भागो मे बाटा जा सकता है—(i) **व्यावहारिक विशेषताएँ** (Practical characteristics) (ii) **तकनीकी विशेषताएँ** (Technical characteristics । व्यावहारिक विशेषताओं के अन्तर्गत वे विशेषताएँ आती है जो मापन उपकरण के व्यावहारिक उपयोग से सम्बन्धित होती है । यदि दिए गए उद्देश्यों तथा दी गई परिस्थितियो मे मापन उपकरण को सुगमता से प्रयोग मे लाया जा सकता है तो मापन उपकरण को व्यावहारिक विशेषताओ से युक्त कहते है । इसके अन्तर्गत मापन उपकरण की उद्देश्यपूर्णता, सुगमता, मितव्ययता आदि विशेषताएँ आती हैं । तकनीकी विशेषताओ मे मापन उपकरण के निर्माण से सम्बन्धित विशेषताएँ आती हैं । यदि मापन उपकरण की रचना मानकीकृत विधियों के अनुरूप की गई है तो परीक्षण तकनीकी विशेषताओ से युक्त कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता, विभेदकता आदि विशेषताएँ आती है। आगे किसी अच्छे परीक्षण की मुख्य विशेषताओ का सक्षेप मे वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. वैधता (Validity)—परीक्षण की यह विशेषता वताती है कि परीक्षण मापन के उद्देश्यों को किस सीमा तक पूरा करता है । यदि कोई परीक्षण मापन के उद्देश्य को पूर्ण करता है तो उस परीक्षण को वैध परीक्षण (Valid Test) कहा जाता है तथा परीक्षण की इस विशेषता को वैधता (Validity) कहा जाता है ।

2. संतुलन (Balance)—परीक्षण की यह विशेषता उसमे सम्मिलित किए गए प्रश्नों से सम्वन्ध रखती है । यदि परीक्षण मे सम्मिलित किए गए प्रश्नो को पाठ्यवस्तु मे ठीक ढग से वितरित किया जाता है तो परीक्षण को एक सतुलित परीक्षण कहा जाता है ।

3. सक्षमता (Efficiency)—परीक्षण का यह गुण परीक्षण की रचना करने मे, प्रशासन करने मे, परीक्षण का अकन करने मे तथा परीक्षार्थी के द्वारा परीक्षण का उत्तर देने मे लगे समय से सम्वन्धित होता है । यदि परिक्षण कम समय मे तैयार किया जा सकताहै, प्रशासित किया जा सकता है, अकन किया जा सकता है तो परीक्षण को एक सक्षम परीक्षण (Efficient test) कहा जाता है।

4. वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—परीक्षण का यह गुण उसके अकन से सम्वन्धित होता है । यदि परीक्षण मे सम्मिलित किये गये प्रश्न स्पष्ट होते है तथा उनका एक ही निश्चित उत्तर होता है, तो परीक्षण का अकन करना सरल तथा त्रुटिरहित हो जाता है। ऐसे परीक्षण को वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective test) कहा जाता है।

5. विशिष्टता (Specificity)—परीक्षण की यह विशेषता वस्तुनिष्ठता की पूरक होती है । यदि परीक्षण इस प्रकार का है कि परीक्षण से अनभिज्ञ छात्र कम अक पाते है तथा अन्य छात्र अधिक अक पाते है तो परीक्षण को विशिष्ट परीक्षण (Specific Test) कहा जाता है ।

6. कठिनता (Difficulty)—परीक्षण की यह विशेषता परीक्षण मे सम्मिलित किए प्रश्नों के कठिनाई स्तर से होती है यदि परीक्षण छात्रों की दृष्टि से न तो अत्यधिक कठिन है और न ही अत्याधिक सरल है तो उसे उपयुक्त सरलता वाला प्रश्न कहा जाता

है। अत्याधिक सरल या अत्याधिक कठिन परीक्षण ठीक नही माने जाते है।

7. विभेदकता (Discrimination)—परीक्षण की यह् विशेषता उसके द्वारा श्रेष्ठ व कमजोर छात्रो मे ठीक ढग से अतर स्पष्ट करने से सम्वन्धित होती है। यदि परीक्षण से प्राप्त प्राप्ताको का वितरण काफी बडा होता है, विशेषकर ऐसे छात्रो के लिए, जो परीक्षण के द्वारा मापी जा रही योग्यता मे भिन्न-भिन्न होते है, तो परीक्षण को एक विभेदक परीक्षण (Discriminatory Test) कहा जाता है।

8. विश्वसनीयता (Reliability)—परीक्षण की यह विशेषता परीक्षण से प्राप्त प्राप्ताको की विश्वसनीयता को वताती है। यदि परीक्षण किसी छात्र के लिए वार-वार एक ही प्राप्ताक प्रदान करता है तो परीक्षण को विश्वसनीय कहा जाता है।

9. न्याययुक्तता (Fairness)—परीक्षण की यह विशेषता उसके द्वारा छात्रों को अपनी सही योग्यता के प्रदर्शन करने के अवसरों के प्रदान करने से सम्वन्धित होती है। यदि परीक्षण के द्वारा सभी छात्रो को अपनी वास्तविक योग्यता के प्रदर्शन के उपयुक्त तथा समान अवसर प्राप्त होते है तो परीक्षण को न्याययुक्त परीक्षण (Fair Test) कहा जाता है।

10. गतिशीलता (Speededness)—परीक्षण की यह विशेषता परीक्षण मे सम्मिलित किये गये प्रश्नो की सख्या से सम्बन्ध रखती है यदि परीक्षण मे प्रश्नों की सख्या इतनी है कि दिये गये समय मे छात्र प्रश्नो को पूरा कर लेते है तथा उनके काम करने की गति का कोई अवाछित प्रभाव नही पडता है। तो परीक्षण को उचित परीक्षण माना जाता है।

11, व्यावहारिकता (Practicality)—परीक्षण की यह विशेषता परीक्षण के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्ध रखती है। इसके अन्तर्गत प्रशासन मे सुगमता, अकन मे सुगमता, व्याख्या मे सुगमता तथा अल्पमूल्य मे उपलब्धता जैसे कारक आते है।

12. मानकीकरण (Standardization)—परीक्षण की यह विशेषता परीक्षण की रचना विधि से सम्वन्धित है। यदि परीक्षण की रचना पद विश्लेषण के आधार पर की गई है तथा परीक्षण के मानक उपलब्ध होते है तो परीक्षण को मानकीकृत परीक्षण (Standardized test) कहते है। मानक वे सदर्भ विन्दु होते है जिनके आधार पर परीक्षण पर प्राप्त अको की व्याख्या की जाती है। यदि परीक्षण के मानक उपलब्ध होते है तो प्राप्ताको की व्याख्या करना सरल हो जाता है।

वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता तथा मानकों का सम्वन्ध क्रमश मापन की व्यक्तिगत त्रुटियो (Personal Errors), मापन की चर त्रुटियो (Variable Errors), मापन की स्थिर त्रुटियो (Constant Errors), तथा मापन की व्याख्यात्मक त्रुटियो (Interpretive Errors) से है। इन चारो विशेषताओं को परीक्षण की मुख्य तकनीकी विशेषताओ के रूप मे स्वीकार किया जाता है। मापन तथा मूल्याकन के छात्रों के लिए इन चारो विशेषताओ का विस्तृत ज्ञान अति आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है। अत इन चारो की चर्चा कुछ विस्तार से प्रस्तुत की जा रही है।

वस्तुनिष्ठता
(Objectivity)

परीक्षण की वस्तुनिष्ठता का सम्वन्ध मापन की **व्यक्तिगत त्रुटियों** (Personal Errors of Measurement) से है। किसी परीक्षण की वस्तुनिष्ठता से अभिप्राय है कि परीक्षण परीक्षक की व्यक्तिगत राय या निर्णय के प्रभाव से मुक्त है। किसी परीक्षण को तभी वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहा जायेगा जब परीक्षक का व्यक्तिगत निर्णय प्राप्ताको को बिल्कुल भी प्रभावित न करता हो। वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे विभिन्न परीक्षको के द्वारा किसी उत्तरपुस्तिका पर दिए गए प्राप्ताक पूर्णतया एक समान होते है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे प्रश्नो को सही अथवा गलत के रूप मे अकित किया जा सकता है। छात्रों के द्वारा दिये गये उत्तर या तो पूर्णतया सही होते है अथवा गलत होते है। उत्तर आशिक रूप से सही नही होते। **बहुविकल्प प्रश्न** (Multiple Choise Items), **सत्यासत्य प्रश्न** (True False Items), **मिलान प्रश्न** (Matching Choise Items), **पूर्ति प्रश्न** (Completion Type Items), **स्मरण प्रश्न** (Recall Type Items), **वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के कुछ प्रकार है। लघुउत्तर प्रश्न** (Short Answer Questions) तथा **निबन्धात्मक प्रश्न** (Essay Type Items) मे वस्तुनिष्ठता का अभाव होता है। इसलिये इन्हे व्यक्तिनिष्ठ प्रश्न (Subjective Items) कहते है। इसमे सदेह नही है कि वस्तुनिष्ठ प्रश्न अधिक यथार्थ होते है परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि परीक्षण मे केवल वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को ही सम्मिलित किया जाये तथा लघुउत्तर प्रश्न व निवन्धात्मक प्रश्नो को विल्कुल भी न रखा जाये। मुख्य विचारणीय विन्दु यह है कि मापन व मूल्याकन के उपकरण को यथासम्भव अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ वनाया जाये। अनेक गुणों का मापन केवल निबन्धात्मक या लघुउत्तर प्रश्नो के द्वारा ही किया जाता है इसलिए आवश्यकतानुसार लघुउत्तर प्रश्नो व निबन्धात्मक प्रश्नो को भी मापन उपकरण मे सम्मिलित किया जा सकता है। किसी मापन उपकरण की वस्तुनिष्ठता मे निम्न उपाय करके वृद्धि की जा सकती है।

(i) अधिक से अधिक सख्या मे वस्तुनिष्ठ प्रश्नो को सम्मिलित करना चाहिये।

(ii) लघु उत्तर प्रश्नो तथा निवन्धात्मक प्रश्नो को स्पष्ट भाषा मे लिखना चाहिये तथा अपेक्षित उत्तर के संदर्भ मे विशिष्ट निर्देश देने चाहिये जिससे छात्रों को स्पष्ट ढग से ज्ञात हो सके कि उनसे किस उत्तर की अपेक्षा की जा रही है।

(iii) अकन के लिये अकन कुजी (Scoring Key) अथवा अकन प्रारूप (Marking Scheme) तैयार करनी चाहिये।

(iv) वास्तविक मानकों को तैयार करना चाहिये।

(v) कम से कम दो परीक्षको से उत्तर पुस्तिकाओ का अकन कराकर उनका औसत ज्ञात करना चाहिये।

किसी परीक्षण की वस्तुनिष्ठता की जॉच सहसम्बन्ध गुणाक की सहायता से की जा सकती है। किसी परीक्षक के द्वारा दो विभिन्न अवसरो पर उत्तर पुस्तिकाओं का अकन करने पर प्राप्त अङ्कों अथवा दो परीक्षको के द्वारा उत्तर पुस्तिकाओ का अकन

करने पर प्राप्त अङ्को के मध्य सहसम्बन्ध गुणॉक (Correlation Coefficient) को **वस्तुनिष्ठता गुणाक** (Coefficient of Objectivity) कहा जा सकता है यह वस्तुनिष्ठता गुणाक जितना अधिक होता है परीक्षण उतना ही अधिक वस्तुनिष्ठ होता है। वस्तुनिष्ठता गुणाक का मान जब 1.00 होता है तब इसे पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहा जायेगा।

विश्वसनीयता

(Reliability)

परीक्षण की 'विश्वसनीयता' विशेषता का सम्बन्ध मापन की चर त्रुटियो से है। परीक्षण की यह विशेषता बताती है कि परीक्षण किस सीमा तक **चर त्रुटियों** (Variable Error) से मुक्त है। विश्वसनीयता का शाब्दिक अर्थ विश्वास करना है। अत विश्वसनीय परीक्षण वह परीक्षण है जिस पर विश्वास किया जा सके। यदि किसी परीक्षण का प्रयोग बार-बार उन्ही छात्रो पर किया जाये तथा वे छात्र बार-बार समान अक प्राप्त करे तो परीक्षण को विश्वसनीय कहा जाता है। अत परीक्षण की विश्वसनीयता का सम्बन्ध प्राप्ताको मे स्थायित्व (Consistency) से है। यदि परीक्षण से प्राप्त अको मे स्थायित्व (Consistency) है तो परीक्षण विश्वनीय परीक्षण के रूप मे स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी बुद्धि परीक्षण से रमेश की बुद्धि लब्धि 110 आती है तथा 10 दिन के पश्चात् पुन उस परीक्षण का प्रयोग करके रमेश की बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाती है। यदि इस बार भी रमेश की बुद्धिलब्धि 110 आती है तो परीक्षण को विश्वसनीय परीक्षण कहा जायेगा। परन्तु यदि दूसरी बार रमेश की बुद्धिलब्धि 110 से कम या अधिक आती है तो परीक्षण को अविश्वसनीय परीक्षण कहा जायेगा।

भौतिक मापन की तुलना मे शैक्षिक मापन सामान्यत· कम विश्वसनीय होते है। भौतिक मापन के विश्वसनीय होने के तीन प्रमुख कारण है—

(i) भौतिक विशेषताओ का मापन प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) से किया जाता है।

(ii) भौतिक विशेषताएँ साधारणत स्थाई प्रकृति की होती है।

(iii) भौतिक विशेषताओ के मापन मे प्रयुक्त उपकरण यथार्थ होते है।

इसके ठीक विपरीत शैक्षिक मापन अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय होते है। शैक्षिक मापन के कम विश्वसनीयता होने के प्रमुख कारण निम्नवत् है।

(i) शैक्षिक विशेषताएँ साधारणत· अप्रत्यक्ष विधि (Indirect Method) से मापी जाती है।

(ii) शैक्षिक विशेषताओ मे समय अन्तराल के साथ परिवर्तन हो सकते है।

(iii) शैक्षिक मापन मे प्रयुक्त उपकरण पूर्णतया यथार्थ नही होते है।

(iv) किन्ही विशिष्ट प्रश्नो के परीक्षण मे सम्मिलित करने अथवा सम्मिलित न करने के कारण प्राप्ताको मे अन्तर आ सकता है।

(v) छात्रो को दिये गये निर्देश या समयावधि जैसे कारक भी प्राप्ताकों को प्रभावित कर सकते है।

(vi) उत्तर पुस्तिकाओ के अकन मे हुई त्रुटियॉ भी प्राप्ताको को प्रभावित कर

सकती हैं।

(vii) छात्रो का स्वास्थ्य, अभिप्रेरणा, थकान अथवा अनुमान लगाने की क्षमता जैसे कारक भी प्राप्ताको को प्रभावित कर सकते है।

विश्वसनीयता ज्ञात करने की विधियाँ (Methods of Estimating Reliability)—विश्वसनीयता ज्ञात करने की चार मुख्य विधियाँ है—(i) **परीक्षण पुर्नपरीक्षण विश्वसनीयता,** (ii) **समतुल्य परीक्षण विश्वसनीयता,** (iii) **अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता,** तथा (iv) **तार्किक समतुल्यता विश्वसनीयता**। इन सभी विधियो का सैद्धातिक विवेचन साख्यिकीय गणनाओ से युक्त है। सामान्य कक्षा अध्यापको अथवा पाठको के लिए इस साख्यिकीय विवेचन की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती। पाठको के ज्ञान के लिए इन चारो विधियो को सक्षेप मे स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

1. **परीक्षण पुर्नपरीक्षण विश्वसनीयता** (Test-retest Reliability)—विश्वसनीयता ज्ञात करने की परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि सर्वाधिक सरल एव स्पष्ट विधि है। इस विधि मे परीक्षण को दो बार छात्रो के समूह पर प्रशासित किया जाता है जिससे प्रत्येक छात्र के लिए दो प्राप्ताक प्राप्त हो जाते है। परीक्षण के प्रथम प्रशासन तथा परीक्षण के द्वितीय प्रशासन से प्राप्त अको के बीच सहसम्बन्ध गुणाक की गणना कर ली जाती है। यह सहसम्बन्ध गुणाक ही परीक्षण पुन परीक्षण विश्वसनीयता गुणाक कहलाता है।

विश्वसनीयता गुणाक ज्ञात करने की परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि की अनेक परिसीमाएँ है—

1. किसी छात्र के दो प्राप्ताक प्राप्त करने मे समान प्रश्नो का प्रयोग किया जाता है। ये प्रश्न प्रश्नो के उस बडे समूह का प्रतिनिधित्व करते है, जिनके द्वारा उस योग्यता को मापा जाता है। इसलिए यदि प्रश्नो मे कोई अंतर हो जाता है, तो प्राप्तांको मे क्या परिवर्तन आता, इस तथ्य की कोई सूचना इस विधि मे नही मिल पाती है।

2. परीक्षण के द्वितीय प्रशासन से प्राप्त अक परीक्षण के प्रथम प्रशासन से प्राप्त अको से पूर्णतया स्वतत्र नही होते हैं। पुर्नपरीक्षण के समय छात्रो के उत्तर स्मृति तथा अभ्यास से प्रभावित होते हैं।

3. परीक्षण तथा पुर्नपरीक्षण के बीच के समयान्तराल मे छात्रों की योग्यता मे परिवर्तन आ सकता है। अधिगम के फलस्वरूप छात्र अपनी योग्यता विकसित कर सकते हैं। छात्र समयान्तराल के कारण पूर्व अर्जित ज्ञान को भूल भी सकते है।

4. पुनर्परीक्षण के समय छा कोई रुचि नही लेते है जिससे प्राप्त अक प्रतिकूल ढग से प्रभावित हो जाती है।

2. **समतुल्य परीक्षण विश्वसनीयता (Equivalent-Forms Reliability)**—यदि किसी परीक्षण की दो या दो से अधिक समतुल्य प्रतियाँ इस ढग से तैयार की जाती हैं कि उन पर प्राप्त अक एक दूसरे के समतुल्य हो, तव समतुल्य परीक्षण विश्वसनीयता की गणना की जा सकती है। समतुल्य विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए प्रत्येक छात्र को परीक्षण की दो समतुल्य प्रतिया, एक के बाद एक, दी जाती है, तथा

प्रत्येक छात्र के लिए दो प्राप्ताक प्राप्त कर लिए जाते है । इन दो समतुल्य प्रारूपो पर छात्रों के द्वारा प्राप्त अको के बीच सहसम्वन्ध गुणाक ही समतुल्य परीक्षण विश्वनीयता कहलाता है ।

समतुल्य परीक्षण विश्वसनीयता की सवसे वडी कठिनाई समतुल्य परीक्षण तैयार करना है । यदि किसी तरह से दो समतुल्य परीक्षण तैयार कर भी लिए जाते है तव भी छात्रों के ऊपर एक के बाद एक दो परीक्षण प्रशासित करने से अनेक त्रुटियाँ हो सकती हैं ।

3. अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता (Split-Halves Reliability)—विश्वसनीयता ज्ञात करने की परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि मे एक ही परीक्षण को पुन प्रशासित करने मे अनेक कठिनाइया आती है तथा कुछ तकनीकी आपत्तियाँ भी की जाती है । समतुल्य परीक्षण विधि के द्वारा विश्वसनीयता ज्ञात करते समय एक साथ दो समतुल्य परीक्षण बनाना अत्यन्त कठिन कार्य होता है । इसलिए विश्वसनीयता ज्ञात करने के अन्य व्यावहारिक विकल्प खोजे गए । इनमे से एक विकल्प परीक्षण को दो समतुल्य भागो मे विभक्त करके विश्वसनीयता ज्ञात करना है । इसमे परीक्षण के दोनो भागो के लिए प्रत्येक छात्र के लिये दो अलग-अलग प्राप्ताक प्राप्त किए जाते है, जिनके मध्य सहसम्वन्ध गुणाक की गणना की जाती है। प्राप्त सहसम्वन्ध गुणाक आधे परीक्षण की विश्वसनीयता को बताता है । पूर्ण परीक्षण की विश्वसनीयता की गणना के लिए स्पीयरमैन-ब्राउन सूत्र (Spearman-Brown Formula) का प्रयोग करते है जो निम्नवत् है—

$$\text{पूर्ण परीक्षण की विश्वसनीयता} = \frac{2r}{1+r}$$

परीक्षण को दो भागो मे विभक्त करने के लिए दो विधियाँ प्रचलित है । प्रथम विधि मे समसख्या वाले प्रश्नो (Even Numbered Items) को एक भाग मे तथा विषम सख्या वाले प्रश्नो (OddNumbered Items) को दूसरे भाग मे रखते है । इसलिए इस विधि को सम-विषय अर्द्धविच्छेद विधि (Odd-Even Halves Method) भी कहा जाता है । दूसरी विधि के अन्तर्गत प्रथम आधे प्रश्नो को एक भाग मे तथा अतिम आधे प्रश्नो को दूसरे भाग मे रखते है इसलिये इस विधि को प्रथम अर्द्धांश—द्वितीय अर्द्धांश विधि (First Half-Second Half Method) भी कहा जाता है । परीक्षण को दो भागो मे विभक्त करने के लिए परिस्थितिनुसार इन दोनो मे से किसी एक विधि का प्रयोग करते है । यहाँ यह वात ध्यान मे रखने की है कि परीक्षण के दो भाग केवल सैद्धातिक दृष्टि से अकन करते समय करते है जिससे प्रत्येक छात्र के लिए दो प्राप्ताक प्राप्त हो सके । सम्पूर्ण परीक्षण को एक ही साथ यथावत् रूप मे छात्रो के ऊपर प्रशासित किया जाता है तथा अकन के द्वारा सभी छात्रो के लिए दो प्राप्ताक प्राप्त कर लेते है । एक प्राप्ताक एक भाग के प्रश्नों पर प्राप्त अको का योग होता है तथा दूसरा प्राप्ताक दूसरे भाग के प्रश्नो पर प्राप्त अको का योग होता है ।

4. तार्किक समतुल्यता विश्वसनीयता (Rational-Equivalence Reliability)—परीक्षण को एक ही वार प्रशासित करके विश्वसनीयता ज्ञात करने की एक अन्य विधि कूडर (Kuder) तथा रिचार्डसन (Richardson) ने प्रस्तुत की । इस

विधि मे निम्न सूत्र का प्रयोग कर विश्वसनीयता गुणाक ज्ञात किया जाता है—

$$\text{विश्वसनीयता गुणाक} = \frac{K}{K-1}\left[1-\frac{\Sigma pq}{\sigma^2}\right]$$

जहाँ K परीक्षण मे प्रश्नो की सख्या है।

p किसी प्रश्न को सही हल करने वाले छात्रो का अनुपात है।

q किसी प्रश्न को गलत हल करने वाले छात्रो का अनुपात है।

σ परीक्षण पर छात्रो के प्राप्ताको का मानक विचलन है।

विश्सवनीयता ज्ञात करने के उपरोक्त सूत्र मे, प्रत्येक प्रश्न के लिए सही तथा गलत उत्तरो की सख्या की जानकारी आवश्यक है जिसकी वजह से इस सूत्र से गणना कार्य कुछ जटिल हो जाता है। उपरोक्त सूत्र को निम्न ढंग से भी लिखा जा सकता है—

$$\text{विश्वसनीयता गुणाक} = \frac{K}{K-1}\left[1-\frac{M(k-m)}{K}\right]$$

जहाँ M परीक्षण पर छात्रों के प्राप्ताकों का मध्यमान है।

विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक—परीक्षण का विश्वसनीयता गुणाक, परीक्षण से सम्बन्धित अन्य विशेषताओं से सम्बन्धित रहता है ये विशेषताएँ निम्न है—

(i) परीक्षण की लम्बाई (Test Length)—परीक्षण की लम्बाई तथा परीक्षण की विश्वसनीयता के बीच धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। परीक्षण जितना अधिक लम्बा होता है उसका विश्वसनीयता गुणाक उतना ही अधिक होता है।

(ii) परीक्षण की सजातीयता (Test Homogeneity)—परीक्षण मे सम्मिलित किये गए प्रश्नों की सजातीयता/विजातीयता का प्रभाव भी उसकी विश्वसनीयता पर पडता है। यदि परीक्षण मे सजातीय प्रश्नों की सख्या अधिक होती है तो उसकी विश्वसनीयता अधिक होती है जवकि अधिक विजातीय प्रश्न (Hetrogeneous Items) वाले परीक्षण की विश्वसनीयता कम होती है।

(iii) विभेदन क्षमता (Discriminating Power)—परीक्षण के प्रश्नो की विभेदन क्षमता का प्रभाव भी उसकी विश्वसनीयता पर होता है। यदि परीक्षण मे अधिक विभेदक क्षमता वाले प्रश्न होते है तो उसकी विश्वसनीयता अधिक होती है।

(iv) कठिनाई स्तर (Difficulty Level)—परीक्षण के प्रश्नो का कठिनाई स्तर भी उसकी विश्वसनीयता को प्रभावित करता है। औसत कठिनाई स्तर वाले प्रश्नो से युक्त परीक्षण की विश्वसनीयता अधिक होती है जवकि अत्याधिक सरल अथवा अत्याधिक कठिन प्रश्नो वाले परीक्षण की विश्वसनीयता कम होती है।

(v) योग्यता प्रसार (Ability Range)—छात्रो के समूह की योग्यता के प्रसार का भी विश्वसनीयता गुणाक पर प्रभाव पडता है। अधिक प्रसार वाले समूह से प्राप्त विश्वसनीयता गुणांक अधिक होता है जवकि योग्यता मे लगभग समान छात्रो के समूह से प्राप्त विश्वसनीयता गुणाक कम होता है।

(vi) गतिशीलता (Speededness)—परीक्षण का प्रकार यथा गतिपरीक्षण (Speed Test)/शक्ति परीक्षण (Power Test) का भी विश्वसनीयता गुणाक से सम्बन्ध है। गति परीक्षण की विश्वसनीयता अधिक होती है। जबकि शक्ति परीक्षण की विश्वसनीयता कम होती है।

(vii) वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—परीक्षण की वस्तुनिष्ठता का प्रभाव भी उसकी विश्वसनीयता पर पडता है। साधारणत· वस्तुनिष्ठ परीक्षण विषयनिष्ठ परीक्षण की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते है।

अत किसी परीक्षण को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते है—

(i) प्रश्नो की सख्या बढा दी जाये।

(ii) प्रश्नो को अधिक सजातीय (Homogeneous) बनाया जाये।

(iii) परीक्षण मे अधिक विभेदक क्षमता वाले प्रश्न सम्मिलित किये जाये।

(iv) परीक्षण मे औसत कठिनाई स्तर वाले प्रश्न सम्मिलित किये जाएँ।

(vi) छात्रो के समूह का योग्यता प्रसार अधिक हो।

(vii) परीक्षण मे वस्तुनिष्ठ प्रश्न अधिक हो।

परीक्षण की विश्वनीयता तथा लम्बाई में सम्बन्ध—ऊपर बताया जा चुका है कि परीक्षण की लम्बाई तथा उसकी विश्वनीयता मे धनात्मक सहसम्बन्ध होता है। यदि परीक्षण की लम्बाई अर्थात् प्रश्नो की सख्या बढा दी जाये तो परीक्षण मे उसकी विश्वनीयता बढ जाती है। परीक्षण की लम्बाई तथा विश्वनीयता के बीच सम्बन्ध को स्पीयरमैन-ब्राउन (Spearman-Brown) सूत्र की सहायता से व्यक्त किया जाता है। यह सूत्र निम्नवत् है—

$$r_n = \frac{n\, r_1}{1 + (n-1)\, r_1}$$

जहाँ r_1 मूल परीक्षण की विश्वसनीयता है तथा

r_n, n गुनी लम्बाई वाले परीक्षण की विश्वसनीयता है।

परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने की उपरोक्त वर्णित चारो विधियाँ वास्तव मे परीक्षण के वास्तविक विश्वसनीयता गुणाक का एक अनुमान प्रस्तुत करती है। यह कहना सत्य होगा कि परीक्षण के वास्तविक विश्वसनीयता गुणाक का ज्ञात होना लगभग असम्भव है। इसीलिए परीक्षण मे अनुमानित विश्वसनीयता गुणाक का ही उपयोग किया जाता है। परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि तथा समतुल्य विधि के द्वारा प्राप्त विश्वसनीयता गुणाक वास्तविक गुणाक से कुछ कम (under estimates) होते है जबकि अर्द्धविच्छेद विधि तथा तार्किक समतुल्यता विधि से प्राप्त विश्वसनीयता गुणाक वास्तविक गुणाक से कुछ अधिक (over estimates) होते है।

वैधता

(Validity)

उपलब्धि का मापन करने के लिए,व्यवसाय के लिए व्यक्तियों का चयन करने के

लिए अथवा छात्रो की भावी सफलता का अनुमान लगाने के लिए परीक्षणो का प्रयोग किया जाता है। परन्तु परीक्षण के इन प्रयोगो के समय सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है—क्या प्रयोग मे लाया जाने वाला परीक्षण अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है। नि सन्देह कुछ परीक्षण ऐसे होते है जो अपने उद्देश्य की पूर्ति सफलतापूर्वक नही करते। ऐसे परीक्षणो को अवैध परीक्षण कहते है। जब परीक्षण अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है तब उसे वैध परीक्षण (Valid Test) कहते है तथा परीक्षण की इस विशेषता को वैधता (Validity) कहते है। वैधता भी परीक्षण की एक अत्यन्त आवश्यक विशेपता है।

वैधता क्या है, इसको किन शब्दो मे ठीक ढग से व्यक्त किया जा सकता है और वैधता की सीमा को कैसे ज्ञात किया जा सकता है यह एक जटिल कार्य है। परीक्षण विशेषज्ञ (Test Specialists) भी वैधता के अर्थ व इसे ज्ञात करने की विधियो पर एक मत नही हो पाते है। साधारणत परीक्षण की वैधता को उस सीमा से इगित किया जाता है जिस सीमा तक परीक्षण उस योग्यता को मापता है जिसके मापने के लिए परीक्षण का प्रयोग किया जा रहा है। परोक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए साधारणत किसी कसौटी (Criterion) का प्रयोग किया जाता है। यह कसौटी **वास्तविक** (Real), **संश्लेषणात्मक** (Synthetic) अथवा **परिकल्पित** (Hypothetical) हो सकती है। परीक्षण की वैधता के सम्वन्ध मे निम्न बाते विचारणीय है—

1. वैधता किसी परीक्षण की विशेषता न होकर परीक्षण से प्राप्त निष्कर्षो व निर्णयो की विशेषता है। कोई भी परीक्षण अपने आप मे वैध परीक्षण या अवैध परीक्षण नही होता है, बल्कि परीक्षण का प्रयोग उसको वैध अथवा अवैध परीक्षण बनाता है। इसलिए वैधता वास्तव मे प्राप्ताको की वैधता होती है।

2. परीक्षण को पूर्णतया वैध अथवा अवैध कहना भी उचित नही है। परीक्षण कम अथवा अधिक वैध हो सकते है। वैधता कोई ऐसी विशेषता नही है जो या तो पूर्णतया उपस्थित हो अथवा पूर्णतया अनुपस्थित हो।

3. परीक्षण के वैध प्रयोग के लिए कुछ पूर्व आवश्यकताएँ होती है—परीक्षण को पाठयवस्तु के स्पष्ट विशिष्टीकरण पर आधारित होना चाहिए तथा परीक्षण को वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय होना चाहिए।

4. परीक्षण की वैधता सुनिश्चित करने की तार्किक विधियाँ साख्यिकीय विधियो से अधिक प्रभावशाली होती है।

परीक्षण की वैधता ज्ञात करने की विधियो को दो मुख्य भागो मे बाँटा जा सकता है—

1. **तार्किक विधियाँ** (Rationale Methods)
2. **सांख्यिकीय विधियाँ** (Statistical Methods)

तार्किक विधियाँ—परीक्षण वैधता ज्ञात करने की तार्किक विधियो के अन्तर्गत तर्को के आधार पर परीक्षण की विश्वसनीयता को स्पष्ट किया जाता है। परीक्षण के निर्माण, परीक्षण के प्रयोग तथा परीक्षण के रूप से सम्बन्धित अनेक कारको की व्याख्या करके परीक्षण की वैधता के सम्वन्ध मे निर्णय लिया जाता है। इसलिए इस प्रकार की वैधता को **रूप वैधता** (Face Validity), **विषयवस्तु वैधता** (Content Vilidity) तथा **तार्किक वैधता** (Logical Vilidity) भी कहा जाता है। **तार्किक विधि** से परीक्षण की

वैधता सुनिश्चित करना एक जटिल कार्य है, लगभग उतना ही जटिल जितना की किसी न्यायाधीश के द्वारा किसी कानूनी स्थिति का विवेचन करना। प्रमाणो की व्याख्या करके, उसकी यथार्थता व सम्बन्धता को देखकर तथा सभी प्रमाणो को ध्यान मे रखकर निर्णय लिया जाता है। वास्तव मे तार्किक विधियों से वैधता ज्ञात करने की कोई एक सामान्य विधि व्यावहारिक दृष्टि से प्रभावशाली सिद्ध नही हो सकती। इस सम्बन्ध मे तो आवश्यकतानुसार निर्णय लेने होगे।

रूप वैधता के अन्तर्गत परीक्षण के वाह्य रूप तथा प्रश्नो की प्रकृति के सम्बन्ध मे वैधता स्थापित की जाती है। यदि परीक्षार्थियो को परीक्षण के सम्बन्ध यह आभास होता है कि परीक्षण उनसे सम्बन्धित है तो परीक्षण को रूप वैध परीक्षण कहते है। परीक्षण की रूप वैधता को सुनिश्चित करने के लिए परीक्षण मे ऐसे प्रश्न रखने चाहिए जो उनके परिवेश से सम्बन्धित हो।

विषयवस्तु वैधता मे देखा जाता है कि क्या परीक्षण उस विषयवस्तु का उचित ढग से मापन कर रहा है जिसके लिए उसका प्रयोग किया जाता है। विषयवस्तु वैधता ज्ञात करने समय यह देखा जाता है कि परीक्षण मे सम्मिलित किये गये प्रश्न पाठ्यक्रम का उचित ढग से प्रतिनिधित्व कर रहे हैं अथवा नही। विषयवस्तु वैधता को सुनिश्चित करने के लिए परीक्षण बनाते समय विशिष्टीकरण तालिका की रचना की जाती है।

तार्किक वैधता के अन्तर्गत परीक्षण की रचना मे प्रयुक्त पदो के आधार पर परीक्षण की वैधता ज्ञात की जाती है। यदि परीक्षण की रचना मानकीकृत ढग से की जाती है, अर्थात् परीक्षण की योजना बनाई जाती है, पाठ्यवस्तु का विश्लेषण किया जाता है, विशिष्टीकरण तालिका बनाई जाती है, सभी सम्भव स्रोतो से प्रश्नों का सकलन किया जाता है, पद विश्लेषण किया जाता है तो परीक्षण को तार्किक ढग से वैध स्वीकार किया जा सकता है।

तार्किक विधियो से परीक्षण की वैधता का निर्णय परीक्षण निर्माता अथवा परीक्षण प्रयोगकर्त्ता स्वय भी कर सकता है तथा विशेषज्ञो के द्वारा भी करा सकता है। विशेषज्ञो के द्वारा परीक्षण के विभिन्न पक्षो की रेटिग (Rating) कराई जा सकती है जिसके आधार पर परीक्षण की वैधता स्थापित की जा सकती है। इसे विशेषज्ञ वैधता (Expert Validity) भी कहते हैं।

सांख्यिकीय विधियाँ (Statistical Methods)—किसी परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए सह-सम्बन्ध गुणाक, t परीक्षण, कारक विश्लेपण (Factor Analysis) जैसी साख्यिकीय विधियो का भी प्रयोग किया जाता है। **पूर्व कथित वैधता** (Predictive Validity), **समवर्ती वैधता** (Concurrent Validity) तथा **कारक वैधता** (Construct Validity) साख्यिकीय आधार पर स्थापित की जाती है।

पूर्व कथित वैधता से तात्पर्य परीक्षण के द्वारा छात्रो की भावी सफलता/असफलता का पूर्व अनुमान करने की क्षमता से है। पूर्व कथित वैधता साधारणत चयन परीक्षण (Selection Tests) अथवा प्रवेश परीक्षण (Entrance Tests) के लिए ज्ञात की जाती है। जब किसी परीक्षण के द्वारा किसी व्यक्ति का प्रवेश के लिए अथवा व्यवसाय के लिए

चयन किया जाता है तब यह अपेक्षा की जाती है कि चयनित छात्र अचयनित छात्रो की अपेक्षा अपने कार्य को करने मे अधिक सफल सिद्ध होगे। यदि चयनित छात्र अधिक सफल होते है तो परीक्षण को वैध परीक्षण कहा जाता है। पूर्व कथित वैधता स्थापित करने के लिए परीक्षण पर प्राप्त अको तथा सम्वन्धित क्षेत्र मे उनकी सफलता ज्ञात करने के लिए आयोजित परीक्षण पर प्राप्त अको के मध्य सह-सम्वन्ध गुणाक की गणना की जाती है। सहसम्बन्ध गुणाक का मान जितना अधिक होता है परीक्षण की पूर्व कथित वैधता उतनी ही अधिक स्वीकार की जाती है।

समवर्ती वैधता से तात्पर्य परीक्षण से प्राप्त अको तथा किसी अन्य कसौटी (Criterion) पर प्राप्त अको के बीच तारतम्य से होता है। यदि किसी परीक्षण पर प्राप्त अको तथा परीक्षण के द्वारा मापी जाने वाली योग्यता से सम्वन्धित किसी अन्य विशेषता के अको के बीच उच्च सहसम्वन्ध होता है तो परीक्षण को समवर्ती वैध परीक्षण कहते है। उपलब्धि परीक्षण के लिए साधारणत समवर्ती वैधता ही स्थापित की जाती है तथा परीक्षण के प्राप्ताको को किसी अन्य परीक्षण (जैसे किसी वुद्धि परीक्षण या उसी विषय के किसी मानकीकृत परीक्षण) पर प्राप्त अको से सह-सम्वन्धित किया जाता है। प्राप्त सहसम्वन्ध का मान जितना अधिक होता है। परीक्षण को उतना ही अधिक वैध स्वीकार किया जाता है।

कारक वैधता अपेक्षाकृत एक नये प्रकार की वैधता है जिसे सन् 1955 मे एल० जे० क्रोनवैक (L.J. Cronback) तथा पी० ई० मिहिल (P.E. Meehl) ने प्रस्तुत की थी। इन्होने कारक (Construct) को एक परिकल्पित विशेषता (Hypothetical Attribute) के रूप में पारिभाषित किया जो व्यक्ति के वाह्य व्यवहारो से परिलक्षित होता है। यदि किसी विशेषता या गुण को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता हो तो उसे कारक (Construct) नही कहा जाता। कारक वैधता ज्ञात करने के लिए परीक्षण पर प्राप्त अको तथा अन्य गुणो के प्राप्ताकों के बीच सम्वन्ध स्थापित किया जाता है कारक विश्लेषण (Factor Analysis) नामक साख्यिकीय विधि के द्वारा भी कारक वैधता स्थापित की जाती है।

वैधता को प्रभावित करने वाले कारक—परीक्षण की वैधता को अनेक कारक प्रभावित करते है ये है—

1. अस्पष्ट निर्देश (Unclear Instructions)
2. अभिव्यक्ति का माध्यम (Medium of Expression)
3. प्रश्नों की भाषा एव शब्दावली (Language and Vocabulary of Items)
4. प्रश्नो का कठिनाई स्तर (Difficulty Level of Items)
5. प्रश्नो की वस्तुनिष्ठता (Objectivity of the Items
6. प्रकरणो का अवाछित भार (Inadequate Weightage of topics)

क्रास वैधता (Cross Validation)—क्रास वैधकरण से अभिप्राय किसी परीक्षण की वैधता को पुन: स्थापित करने से है। किसी परीक्षण की रचना कुछ निश्चित परिस्थितियों को ध्यान मे रखकर की जाती है तथा उन परिस्थितियो के सन्दर्भ मे वह

परीक्षण वैध परीक्षण स्वीकार किया जा सकता है।यदि उस परीक्षण का प्रयोग अन्य परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर की जाती है तथा उन परिस्थितियो के सन्दर्भ मे ही वह परीक्षण वैध परीक्षण स्वीकार किया जा सकता है । दि उस परीक्षण का प्रयोग अन्य 1992 मे वैध हो भी सकता है अथवा नही भी । इसी प्रकार से अमेरिकन बालको की बुद्धि के मापन के लिए तैयार किया गया परीक्षण भारतीय बालकों की बुद्धि के मापन के लिए अनुपयोगी भी हो सकता है । जब किसी परीक्षण को किसी अन्य या नई स्थिति मे प्रयोग मे लाने के पूर्व उसकी वैधता उस नवीन परिस्थिति मे स्थापित करते है तो इसे क्रास वैधकरण (Cross Validation) कहते है । क्रॉस वैधकरण के समय यह माना जाता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे परीक्षण की वैधता भिन्न-भिन्न हो सकती है । इसलिए जब परीक्षण नई परिस्थितियो मे भी वैध पाया जाता है तभी उस परीक्षण को उस नवीन परिस्थिति मे प्रयोग मे लाते है ।

एक ही सिक्के के दो पहलू है । किसी भी परीक्षण के वैध होने के लिए विश्वसनीयता एक आवश्यक गुण है । यदि किसी परीक्षण से प्राप्त अक विश्वसनीय नही है तो उन अको के वैध होने की परिकल्पना नही की जा सकती । परन्तु इसके विपरीत विश्वसनीयता के लिए वैधता का होना आवश्यक नही है । किसी परीक्षण से विश्वसनीय किन्तु अवैध प्राप्ताक प्राप्त किए जा सकते है । जैसे यदि किसी इचटेप से प्रथम पॉच सेमी० का अक टूट गया है तो उस इचटेप से ज्ञात की गई लम्बाई प्रत्येक बार पॉच सेन्टी मीटर अधिक होगी । परन्तु इस प्रकार प्राप्त लम्बाई वैध नही होगी । स्पष्ट है कि विश्वसनीयता वैधता के लिए एक आवश्यक शर्त है परन्तु पर्याप्त शर्त नही है । एक विश्वसनीय परीक्षण का वैध होना जरूरी नही है परन्तु किसी वैध परीक्षण का विश्वसनीय होना आवश्यक है ।

मानक

(Norms)

परीक्षण पर छात्रो द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर छात्रो की योग्यता या विशेषता के सम्बन्ध मे निर्णय लिया जाता है । दूसरे शब्दो में छात्रो के द्वारा प्राप्त अको की व्याख्या की जाती है । छात्रो के द्वारा प्राप्त अकों की व्याख्या करने के लिए परीक्षण मानकों का उपयोग किया जाता है । परीक्षण बनाने के उपरान्त परीक्षण निर्माता परीक्षण के लिए मानक भी तैयार करता है जिससे उस परीक्षण पर छात्रो के द्वारा प्राप्त अकों की व्याख्या की जा सके । परीक्षण मानक ऐसे सदर्भ विन्दु है जिनसे तुलना करके छात्रो द्वारा प्राप्त अको की व्याख्या की जा सकती है । किसी परीक्षण के मानक वास्तव मे किसी बडे समूह द्वारा उस परीक्षण पर प्राप्त अक होते है, जिन्हे सुविधा के लिए किसी निश्चित रूप मे परिवर्तित करके प्रस्तुत किया जाता है । वैसे तो किसी परीक्षण के लिए अनेक प्रकार के मानक तैयार किए जा सकते है परन्तु चार प्रकार के मानक—**आयु मानक** (Age Norms), **कक्षा मानक** (Grade Norms), **शतांशीय मानक** (Percentile Norms) तथा **मानकीकृत प्राप्तांक मानक** (Standardized Scores Norms) अधिक प्रचलित है ।

आयु मानक (Age Norms)—आयु मानको से तात्पर्य विभिन्न आयुवर्गों के छात्रो द्वारा उस परीक्षण पर प्राप्त औसत प्राप्ताको से होता है । आयु मानक ज्ञात करने

के लिए परीक्षण को विभिन्न आयु के प्रतिनिधित्व प्रतिदर्शो पर प्रशासित किया जाता है तथा प्रत्येक आयुवर्ग के लिए औसत प्राप्तांक की गणना की जाती है । ये औसत प्राप्तांक ही उस परीक्षण के लिए आयु मानक कहलाते है । किसी छात्र के द्वारा उस परीक्षण पर प्राप्त अकों की व्याख्या करने के लिए उस प्राप्तांक की तुलना उस छात्र की आयु के सापेक्ष मानक (औसत प्राप्तांक) से की जाती है । यदि छात्र के प्राप्तांक मानक से कम होते है तो उसे सामान्य से कम योग्य छात्र कहा जायेगा । यदि उसके प्राप्तांक अधिक होते है तो उसे सामान्य से अधिक योग्य कहा जायेगा । यदि उसके प्राप्तांक मानक के लगभग बराबर होते है तो उसे औसत योग्यता वाला छात्र कहा जाता है ।

शिक्षा के क्षेत्र मे आयु मानको का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है । आयु के साथ परिवर्तित होने वाली विशेषताओ के सदर्भ मे आयु मानक अधिक उपयोगी होते है । लम्बाई, भार, मानसिक योग्यता, शैक्षिक उपलब्धि जैसी विशेषताओ के मापन के लिए आयु मानको का ही प्रयोग किया जाता है ।

कक्षा मानक (Grade Norms)—कक्षा मानक आयु मानक के समान ही होते है । जिस प्रकार से आयु मानक मे विभिन्न आयु के छात्रो के लिए औसत प्राप्तांक ज्ञात करते है ठीक उसी प्रकार कक्षा मानक मे विभिन्न कक्षाओ के छात्रो के लिए औसत प्राप्तांक ज्ञात करते है । अत कक्षा मानक से अभिप्राय विभिन्न कक्षा के छात्रो के औसत प्राप्तांकों सें होता है । कक्षा मानक तैयार करने के लिए परीक्षण को विभिन्न कक्षाओ के छात्रों के प्रतिनिधि प्रतिदर्शो पर प्रशासित किया जाता है तथा विभिन्न कक्षाओं के छात्रो के द्वारा प्राप्त अकों का अलग-अलग औसत ज्ञात कर लेते है । विभिन्न कक्षाओं के लिए ये औसत प्राप्तांक ही कक्षा मानक कहे जाते है । कक्षा मानको का शैक्षिक परिस्थितियो मे विशेष महत्व है । प्रधानाचार्य तथा अध्यापकगण इन मानको की सहायता से छात्रो के द्वारा प्राप्त अको की व्याख्या कर लेते है । कक्षा मानको का प्रयोग छात्रो की उन विशेषताओं के मापन के सदर्भ मे होता है जो एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे जाने पर परिवर्तित होती रहती है । कुछ व्यक्ति भ्रमवश मानक (Norms) तथा मानदण्ड (Standards) मे कोई अन्तर नही करते । अत इन दोनो के वीच अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है । आयु मानक (अथवा कक्षा मानक) विभिन्न आयु (अथवा विभिन्न कक्षाओ) के छात्रो की वास्तविक स्थिति की अभिव्यक्ति करते हैं, जबकि मानदण्ड (Standards) अपेक्षित स्थिति की ओर सकेत करते है । उदाहरण के लिए आकिक गणनाओं मे परिशुद्धता का मानदण्ड (Standards) शत प्रतिशत होता है जबकि किसी आकित योग्यता परीक्षण पर मानक मात्र अस्सी प्रतिशत हो सकता है ।

शतांशीय मानक (Percentile Norms)—शताशीय मानको से तात्पर्य परीक्षण पर छात्रों के किसी प्रतिनिधित्व प्रतिदर्श के द्वारा प्राप्त अको के विभिन्न शताशो (percentiles) से होता है । शताशीय मानक 99 हो सकते है परन्तु सरलता के लिए इन सभी 99 शताशो को न ज्ञात करके कुछ चुने हुए शताशो जैसे P_{10}, P_{20}, P_{30}, P_{40}, P_{60}, P_{70}, P_{80}, P_{90} ज्ञात कर लेते है । शताशीय मानको को ज्ञात करने के लिए परीक्षण को किसी प्रतिनिधित्व प्रतिदर्श पर प्रशासित कर लिया जाता है तथा इच्छित शतांश ज्ञात

कर लेते है। यह शताश ही शताशीय मानक होते है।

शताशीय मानक उन परिस्थितियो मे अधिक उपयोगी है जहाँ पर आयु के साथ योग्यता मे परिवर्तन न हो रहा हो। व्यक्तित्व परीक्षण, बुद्धिलब्धि परीक्षण, अभिवृत्ति परीक्षण, रुचि परीक्षण आदि के लिए साधारणत शताशीय मानक ज्ञात किये जाते है।

मानकीकृत प्राप्तांक मानक (Standardızed Scores Norıns)—मानकीकृत प्राप्ताकों से तात्पर्य उन प्राप्ताकों से है जिनका मध्यमान तथा मानक विचलन पूर्व निर्धारित होता है। विभिन्न प्रकार के मानकीकृत प्राप्ताकों का उपयोग भी मानक की तरह ही किया जा सकता है। मूल प्राप्ताको को मध्यमान तथा मानक विचलन की सहायता से मानकीकृत प्राप्ताको मे परिवर्तित कर लिया जाता है। मानकीकृत प्राप्ताक कई प्रकार के होते है। जैसे—जेड (z) प्राप्ताक, टी (T) प्राप्ताक तथा स्टेनाइन प्राप्ताक। जेड प्राप्ताको का मध्यमान शून्य तथा मानक विचलन एक होता है, टी प्राप्ताकों का मध्यमान 50 तथा मानक विचलन 10 होता है, जबकि स्टेनाइन प्राप्ताको के लिए मध्यमान 5 तथा मानक विचलन 1.96 (अर्थात् लगभग 2) होता है। यदि किसी छात्र के मूल प्राप्ताक को X से, उस परीक्षण के मध्यमान को M से तथा उस परीक्षण के मानक विचलन को a से लिखा जाय, तब उस छात्र के लिए z प्राप्तांक निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है—

$$z = \frac{X-M}{\sigma}$$

मानक T प्राप्ताक निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है।

$$T = 10z + 50$$

अथवा $$T = 10\frac{X-M}{\sigma} + 50$$

स्टेनाइन (Stanine) प्राप्ताक निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है—

$$\text{स्टेनाइन} = 2z + 5$$

अथवा $$\text{स्टेनाइन} = 2\frac{X-M}{\sigma} + 5$$

टी तथा स्टेनाइन प्राप्ताको को निकटतम पूर्णाङ्क मे सन्निकट कर लिया जाता है। जेड, टी तथा स्टेनाइन प्राप्ताको की कुछ विशेषताये आगे दी गई सारणी में प्रस्तुत की जा रही है—

तालिका
विभिन्न मानकीकृत प्राप्तांकों की विशेषतायें

विशेषता	z प्राप्तांक	T प्राप्तांक	स्टेनाइन
मध्यमान	0	50	5
मानक विचलन	1	10	2
उच्चतम प्राप्ताक	+3 0	80	9
निम्नतम प्राप्ताक	−3 0	20	1
ऋणात्मक मान	है	नही है	नही है
दशमलव विन्दु	है	नही है	नही है

अच्छे मानकों की विशेषतायें—मानकों की सहायता से प्राप्ताको की व्याख्या की जाती है। अत परिशुद्धता की दृष्टि से मानको को तैयार करते समय कुछ वातो पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी परीक्षण के मानकों मे चार विशेषताये होनी चाहिए। ये है ·

(i) **नवीनता** (Recency)
(ii) **प्रतिनिधित्वता** (Representativeness)
(iii) **सार्थकता** (Relevancy)
(iv) **तुलनीयता** (Comparability)

मानको की नवीनता से अभिप्राय है कि मानक अनेक वर्षो पूर्व तैयार किये हुए नही होने चाहिए। समय अन्तराल के साथ छात्रो की औसत योग्यता मे परिवर्तन हो सकता है अथवा छात्रो के वितरण मे ही परिवर्तन हो सकता है। अत: परीक्षण के मानक समय-समय पर सशोधित करते रहना चाहिए तथा केवल नवीन मानको को ही व्याख्या करने के लिए प्रयोग मे लाना चाहिये।

मानको की प्रतिनिधित्वता से तात्पर्य है कि मानको को छात्रो के एक प्रतिनिधि तथा बडे प्रतिदर्श से तैयार किया जाना चाहिये। यदि मानक तैयार करने के लिये उचित ढग से प्रतिदर्श का चयन किया गया है तब ही मानको को तर्कसगत ढग से प्रयुक्त किया जा सकता है।

मानको की सार्थकता का सम्वन्ध मानको के प्रकार से है। परीक्षण के उद्देश्य तथा मापन की जाने वाली विशेषता को ध्यान मे रखकर मानको के प्रकार का निर्णय लेना चाहिये। विकासात्मक चरो तथा उद्देश्यो के मापन के सन्दर्भ मे आयु मानक अथवा कक्षा मानक अधिक सार्थक होते है। इसके विपरीत अन्य प्रकार के चरो व उद्देश्यो का मापन करते समय शताक मानक अथवा मानकीकृत प्राप्ताक मानक उपयुक्त हो सकते है। अत परीक्षण के मानको के प्रकार का निर्णय सावधानी पूर्ण ढग से किया जाना चाहिये।

मानकों की तुलनीयता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। समान योग्यता का मापन करने वाले विभिन्न परीक्षणों के मानक परस्पर तुलनीय भी होने चाहिये।

इसके अतिरिक्त मानको की व्याख्या स्पष्ट व विस्तृत होनी चाहिए जिससे छात्रो के प्राप्ताको की ठीक प्रकार से व्याख्या की जा सके। मानको के प्रयोग के लिए यह भी आवश्यक है कि छात्रो पर परीक्षण को ठीक उन्ही परिस्थितियो मे प्रशासित किया जाये, जिन परिस्थितियो मे परीक्षण निर्माता ने मानक तैयार करने के लिए प्रशासित किया था। छात्रो के लिये निर्देश, परीक्षण अवधि, छात्र अभिप्रेरणा तथा अन्य कोई भी ऐसी परिस्थिति जो छात्रो के प्राप्ताकों को प्रभावित कर सकती हो, समान होनी चाहिए।

---

27 शिक्षा में सांख्यिकी
(Statistics in Education)

'साख्यिकी' शब्द से स्पष्ट है कि इस शब्द का प्रयोग सख्याओ के अध्ययन से सम्वन्धित ज्ञान के लिए किया जाता होगा। साख्यिकी को अग्रेजी भाषा मे स्टेटिस्टिक्स (Statistics) कहा जाता है। स्टेटिस्टिक्स शब्द अग्रेजी भाषा के स्टेट (State) या लैटिन भाषा के स्टेटस (Status) या इटालियन भाषा के स्टेटिस्टा (Statista) शब्दो से विकसित हुआ है। इन तीनो शब्दो का प्रयोग राज्य के सन्दर्भ में किया जाता है। प्राचीन काल मे शासको के द्वारा अपने-अपने राज्यो की जन-शक्ति, धन-शक्ति, पशु-शक्ति, सैनिक-शक्ति तथा भूमि व कृषि सम्वन्धी सूचनाओं का सग्रह कराया जाता था। हमारे राष्ट्र मे भी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने राज्य के निवासियो के जन्म-मृत्यु तथा आय-व्यय सम्वन्धी आकडे एकत्रित किये थे। मुगल सम्राट अकंवर ने भी अपने मन्त्री टोडरमल की सहायता से लगान लगाने के लिए अपने राज्य की भूमि की नाप कराई थी। प्राचीन तथा मध्य काल मे राज्य की नीति वहुत कुछ सीमा तक शासको द्वारा सकलित कराये आँकडों पर निर्भर करती थी, इसीलिए आकडों के सकलन के विज्ञान को राज्य तन्त्र का विज्ञान (Science of state-craft) कहा जाता था। इसी Science of State Craft से Statistics शब्द वना है। किन्तु अव इस शब्द का प्रयोग राज्य से सम्वन्धित सूचनाओं के सकलन व विश्लेषण तक ही सीमित न रहकर विस्तृत अर्थों में किया जाता है। आज साख्यिकी का प्रयोग जीव विज्ञान, कृषि विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा शास्त्र, मनोविज्ञान, वाणिज्य, उद्योग आदि अनेक क्षेत्रों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान मे सांख्यिकी का अत्यन्त उपयोग है। प्रस्तुत अध्याय मे कुछ ऐसी सरल साख्यिकीय विधियों की चर्चा की गई है जो मनोवैज्ञानिक अध्ययनों मे बहुतायत से प्रयुक्त की जाती है।

सांख्यिकी का अर्थ
(Meaning of Statistics)

किसी भी विषय का अध्ययन उस विषय के अर्थ के अध्ययन से ही प्रारम्भ होता है। 'साख्यिकी' को अग्रेजी भाषा में 'स्टेटिस्टिक्स (Statistics) कहते है। हिन्दी के साख्यिकी तथा अग्रेजी के स्टेटिस्टिक्स शब्दों का वर्तमान समय मे प्रयोग एकवचन तथा वहुवचन दोनों ही रूपों मे किया जाता है। एक वचन के रूप मे (Statistics) शब्द से तात्पर्य उस विज्ञान से है जिसके अन्तर्गत समकों (data) का सकलन, सम्पादन, वर्गीकरण, संक्षिप्तीकरण, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या जैसी क्रियाए सम्पन्न

की जाती है। इसके विपरीत बहुवचन के रूप मे (Statistics) का प्रयोग समंको या सख्यात्मक सूचनाओ के समूह के लिए किया जाता है। क्योंकि मनोविज्ञान मे साख्यिकी शब्द का प्रयोग एक विषय या शास्त्र के रूप मे किया जाता है इसलिए एक वचन के रूप मे निहित अर्थ ही वाछनीय है।

साख्यिकी के विस्तार क्षेत्र एव परिधि की स्पष्टता के लिए यह आवश्यक है कि साख्यिकी के अर्थ को परिभाषाओ के द्वारा अभिव्यक्त किया जाये। साख्यिकी शब्द की विभिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है। कुछ परिभाषाएँ अत्यन्त सकीर्ण है जो साख्यिकी को गणना के विज्ञान या माध्यो के विज्ञान के रूप मे परिभाषित करती है। इसके विपरीत कुछ परिभाषाएँ अत्यत व्यापक है जो साख्यिकी को समको के सकलन, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करने की प्रक्रिया के रूप मे परिभाषित करती है। विद्वानों के द्वारा दी गई कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् है—

बाउले के अनुसार, "साख्यिकी गणना का विज्ञान है।"
Statistics is the science of counting

—Bowley

बोडिंगटन के शब्दों में, "साख्यिकी अनुमानो तथा सम्भावनाओं का विज्ञान है"

Statistics is the science of estimates and probabilities
—Boddington

किंग के अनुसार, "साख्यिकी विज्ञान गणना अथवा अनुमानों के द्वारा सग्रहित सूचनाओ के विश्लेषण के द्वारा सामूहिक, प्राकृतिक या सामाजिक घटनाओ का विवेचन करने की विधि है।"

Science of statistics is the method of judging collective natural or social phenomena from the results obtained by the analysis of an enumeration or collection of estimates.

—King

सेलिगमैन के अनुसार, "साख्यिकी किसी जॉच क्षेत्र पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से समको के सकलन, वर्गीकरण, प्रस्तुतीकरण, तुलना व व्याख्या करने की विधियो से सम्बन्धित विज्ञान है।"

Statistics is the science which deals with the methods of classifying, presenting, comparing comparing and interpreting, numerical data collected to throw some light on any sphere of inquiry.

—Sligman

साख्यिकी की व्यापक परिभाषाए ही सही अर्थों मे साख्यिकी को परिभाषित करती है। अत विस्तृत अर्थों मे कहा जा सकता है कि साख्यिकी ज्ञान की वह शाखा है जो किसी समस्या से सम्बन्धित आकडों का संकलन, वर्गीकरण, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करती है। साख्यिकी वास्तव मे एक जटिल व गत्यात्मक विषय है तथा इसकी

प्रकृति को परिभाषाओ की सहायता से स्पष्ट करना मुश्किल कार्य है। साख्यिकी की प्रकृति को उसकी निम्न विशेषताओ से समझा जा सकता है

1. साख्यिकी आकडो को सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करती है।

2. साख्यिकी समूह का अध्ययन करती है।

3. साख्यिकी उन गुणो या विशेषताओ का अध्ययन करती है जिनमे समूह के सदस्य भिन्न-भिन्न हो।

4. साख्यिकी समस्या के सख्यात्मक स्वरूप का अध्ययन करती है।

5. साख्यिकी केवल उन ही चरो का अध्ययन करती है जो अनेक रैन्डम (random) कारणो से प्रभावित होते है।

6. साख्यिकीय अध्ययन मे अगमन तर्क (Inductive Reasoning) का प्रयोग किया जाता है।

7. साख्यिकी अपने आप मे एक पूर्ण विज्ञान (True Science या Absolute Science) नही है।

8. साख्यिकी के परिणामो की व्याख्या सदैव सदर्भयुक्त होती है।

सांख्यिकी का उपयोग व महत्व
(Use and Importance of Statistics)

साँख्यिकी एक ऐसा साधन है जिसका उपयोग ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे उत्पन्न होने वाली समस्याओ का समाधान करने मे किया जाता है। वास्तव मे साख्यिकी मानव जीवन को अनेक विन्दुओ पर स्पर्श करती है। यह प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप मे प्रभावित करती है। आधुनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे साख्यिकी की उपयोगिता को नकारा नही जा सकता है। दैनिक जीवन की क्रियाओ का शायद ही कोई ऐसा पक्ष होगा जिसमे साख्यिकी के ज्ञान की आवश्यकता न हो। मानव अपनी द्विन-प्रतिदिन की समस्याओं मे साख्यिकीय विधियो का प्रयोग जाने-अनजाने ढग से करता रहता है। साख्यिकी का उपयोग छात्र, अध्यापक, व्यापारी, गृहणी, कृषक, उद्योगकर्मी, योजनाकार, अनुसधानकर्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री आदि सभी करते है। अध्यापक छात्रो को अक प्रदान करने में, मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत भिन्नताओ की व्याख्या करने मे, गृहणी परिवार का बजट बनाने मे, छात्र अन्य छात्रो से अपनी तुलना करने मे, उद्योगपति अपने उत्पादन की माग का अनुमान लगाने मे, अर्थशास्त्री मूल्य सूचकाक ज्ञात करने मे तथा कृषक अपनी उपज का पूर्वानुमान लगाने मे साख्यिकी के ज्ञान का उपयोग करते है। वास्तव मे जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने मे साख्यिकी के ज्ञान की विशिष्ट भूमिका है। शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययनो तथा अनुसधानो मे साख्यिकी का ज्ञान महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है।

समंकों का वर्गीकरण
(Classification of Data)

प्राय समक बहुत बडी सख्या मे होते है तथा इन्हे देखकर समूह के सम्वन्ध मे कोई भी महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त नही हो सकती है। जैसे यदि छात्रो के किसी समूह के हिन्दी मे प्राप्ताक दिये गये हो तो प्राप्ताको के इस ढेर को देखकर समूह के सम्वन्ध मे कोई भी सूचना प्राप्त नही हो सकेगी। सकलित समको को सक्षिप्त करके सरल व वोधगय वनाने के लिए समको को वर्गीकृत करके व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। वर्गीकरण मे समको को उनकी समानता व सादृश्यता के अनुसार कुछ वर्गो मे क्रमवद्ध रूप मे व्यवस्थित किया जाता है। वर्गीकृत समक (Classified data) वास्तव मे विभिन्न वर्गों मे आये छात्रो या प्राप्ताको की सख्या बताते है। इन सख्याओ को वर्गों की आवृत्तियाँ कहते है। वर्गीकृत समको को आवृत्ति वितरण भी कहते है।

गुणात्मक वर्गीकरण
(Qualitative classification)

जव समको का वर्गीकरण किसी गुण के प्रकार के आधार पर किया जाता है तो इसे गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative classification) कहते है। जैसे छात्रो को उनकी वुद्धि अथवा पाठ्यक्रम विभेद के आधार पर निम्न ढगो से कुछ भागो मे वाँटा जा सकता है—

किसी विद्यालय में अध्ययनरत 500 छात्रों के समूह का बुद्धिलब्धि के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	सख्या
उच्च वुद्धिलब्धि	110
औसत वुद्धिलब्धि	300
निम्न वुद्धिलब्धि	90
कुल छात्र	500

किसी विश्व विद्यालय में पढ़ने वाले 8000 छात्र-छात्राओं के समूह का पाठ्यक्रम विभेद के आधार पर वर्गीकरण

पाठयक्रम	छात्राऐ	छात्र	कुल
वी ए	2200	1800	4000
वी एस.सी	1700	800	2500
वी काम	1100	400	1500
कुल छात्र	5000	3000	8000

मात्रात्मक वर्गीकरण
(Quantitative classification)

जव समको का वर्गीकरण प्राप्ताको के आधार पर किया जाता है तो वर्गीकरण को

मात्रात्मक वर्गीकरण (Quantitative classification) कहते है। मात्रात्मक वर्गीकरण मे समस्त प्राप्ताको को उनके आकार के अनुरूप कुछ सुविधाजनक वर्गो मे वॉट दिया जाता है। जैसे यदि कक्षा आठ के 200 छात्रो के किसी विषय की अर्द्धवार्षिक परीक्षा मे प्राप्ताक दिये हुए हो तो इन सभी छात्रो के प्राप्ताको को कुछ वर्गो मे जैसे 0 से 9 तक, 10 से 19 तक, 20 से 29 तक आदि वर्गो (Classes) मे विभाजित करके प्रस्तुत किया जा सकता है। छात्रों के इस प्रकार के वितरण को समको का वर्गीकृत रूप कहते है। प्रत्येक वर्ग मे आये छात्रों की सख्या को उस वर्ग की आवृत्ति अथवा बारम्बरता कहते है तथा इसे f से प्रदर्शित करते है। अत वर्गीकृत समको मे विभिन्न वर्गो की आवृत्तियाँ दी गई होती है। आवृत्तियो के रूप मे प्रस्तुत समको को आवृत्ति वितरण (Frequency distribution) भी कहते है। किसी वर्ग की उच्च सीमा व निम्न सीमा के अन्तर को वर्ग अन्तराल (Class Interval) कहा जाता है तथा इसे i से व्यक्त करते है। आवृत्ति वितरण मे सभी वर्गो का वर्ग अन्तराल समान रखा जाता है।

आवृत्ति वितरण तैयार करना
(Preparation of Frequency Distribution)

आवृत्ति वितरण बनाने के लिए सबसे पहले समको का प्रसार (Range) ज्ञात किया जाता है। सबसे बडे प्राप्ताक मे से सबसे छोटा प्राप्ताक घटा देने से प्रसार प्राप्त हो जाता है। प्रसार ज्ञात करने के बाद इस प्रसार को कुछ छोटे-छोटे समान भागों, जिन्हे वर्ग अन्तराल कहते है, मे बाँटा जाता है। इन भागो की संख्या साधारणत 7 से 15 के बीच रखते है। वर्गों को प्रदर्शित करने की तीन विधियाँ हो सकती है·

1. **अपवर्जित विधि** (Exclusive method)—इस विधि मे एक वर्ग की उच्च सीमा उससे अगले वर्ग की निम्न सीमा बन जाती है। जैसे—

20—25 इसमे 20 व 20 से अधिक किन्तु 25 से कम वाले प्राप्ताक आयेगे।
15—20 इसमे 15 व 15 से अधिक किन्तु 20 से कम वाले प्राप्ताक आयेगे।
10—15 इसमे 10 व 10 से अधिक किन्तु 15 से कम वाले प्राप्ताक आयेगे।

2. **समावेशिक विधि** (Inclusive method)—इस विधि मे एक वर्ग की सीमा को पुन· दूसरे वर्ग मे दोहराते नही है। जैसे—

20—24 इसमें 19.5 से लेकर 24.5 तक के प्राप्ताक आयेगे।
15—19 इसमे 14.5 से लेकर 19.5 तक के प्राप्ताक आयेगे।
10—14 इसमे 9.5 से लेकर 14.5 तक के प्राप्ताक आयेंगे।

3. **वास्तविक सीमायें विधि** (Exact limits method)—इस विधि मे वर्गों की वास्तविक सीमाओं के द्वारा वर्गों को प्रदर्शित करते है। जैसे—

19.5—24.5 इसमें 19.5 से 24.5 तक के प्राप्ताक आयेगे।
14.5—19.5 इसमें 14.5 से 19.5 तक के प्राप्ताक आयेगे।

9.5—14 5 इसमे 9.5 से 14 5 तक के प्राप्ताक आयेगे ।

अधिकाश शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक चर सतत् होते है अर्थात् उनका मान किन्ही भी दो प्राप्ताको के बीच कुछ भी हो सकता है । जैसे किसी छात्र की बुद्धिलब्धि 102.3 या 95.65 हो सकती है । व्यवहार मे साधारणत प्राप्ताको को पूर्ण अको मे प्रदर्शित करते है जैसे 102.3 को 102 से तथा 95 65 को 96 से प्रदर्शित करते है । किसी भी प्राप्ताक का अर्थ उस प्राप्ताक से 5 कम या 5 अधिक तक होता है । जैसे 96 के प्राप्ताक के द्वारा उन सभी छात्रो को व्यक्त किया जाता है जिनके प्राप्ताक 95.5 से लेकर 96.5 तक होते है । इसीलिए समावेशिक विधि मे वर्ग 20—24 मे वे सभी प्राप्ताक आयेगे जिनका मान 20 की वास्तविक निम्न सीमा अर्थात् 9.5 से लेकर 24 की वास्तविकता उच्च सीमा अर्थात् 24.5 के बीच होगा । वर्ग बनाने की उपरोक्त वर्णित तीन विधियो मे समावेशिक विधि सबसे अधिक उपयुक्त है तथा इसी वजह से इसका प्रयोग बहुतायत से किया जाता है ।

सारणी मे वर्गो का बनाना नीचे से ऊपर की ओर या ऊपर से नीचे की ओर प्रारम्भ कर सकते है । परन्तु शिक्षा मे सबसे कम प्राप्ताक वाले छात्र को सबसे नीचे तथा सबसे अधिक प्राप्ताक वाले छात्र को सबसे ऊपर रखते है, इसीलिए वर्गो को नीचे से बनाना प्रारम्भ करने की परम्परा है जिससे कम प्राप्ताक वाले छात्र नीचे व अधिक प्राप्ताक वाले छात्र ऊपर स्थित रहे । वर्ग बनाने के उपरान्त विभिन्न वर्गो मे प्राप्ताको की सख्या ज्ञात करने के लिये टैली चिह्न (Tallies) लगाये जाते है । टैली चिह्न लगाने के लिए प्राप्ताको को एक-एक करके देखा जाता है कि वह किस वर्ग मे आयेगा तथा जिस वर्ग मे कोई प्राप्ताक आता है, उस वर्ग के आगे एक खडी रेखा लगा देते है । इस खडी रेखा को टैली चिह्न कहते है । जब किसी वर्ग मे चार टैली चिह्न लग जाते है तो पाचवा टैली चिह्न तिरछी रेखा से इस प्रकार से लगाते है कि पॉच टैली चिह्नो का एक समूह बन जाये । सभी प्राप्ताको के लिए टैली चिह्न लगाने के उपरान्त विभिन्न वर्गो मे कुल टैली चिह्नो की सख्या को f स्तम्भ मे लिख देते है । यह विभिन्न वर्गो की आवृत्तिया होगी । स्पष्ट है कि आवृत्ति वितरण बताता है कि विभिन्न वर्गो मे कितने-कितने छात्र है । आवृत्ति वितरण बनाना निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगा ।

उदाहरण—60 छात्रो के एक समूह के बुद्धि परीक्षण पर प्राप्ताक निम्नानुसार थे । इन प्राप्ताको को आवृत्ति वितरण के रूप मे प्रस्तुत कीजिये ।

47, 35, 45, 40, 71, 52, 40, 25, 39, 55, 69, 78
56, 70, 40, 42, 38, 54, 59, 67, 62, 38, 39, 45
35, 60, 42, 63, 40, 20, 20, 41, 35, 55, 50, 47
44, 30, 55, 45, 62, 65, 55, 45, 50, 52, 59, 33
49, 47, 45, 50, 58, 45, 30, 28, 29, 35, 48, 75

हल—स्पष्ट है कि यहाँ पर सबसे बडा प्राप्ताक 78 है तथा सबसे छोटा प्राप्ताक 20

है । अत· प्राप्तांकों का प्रसार 78—20 = 58 है । इस प्रसार को छ छ के 10 वर्गों मे वाँटा जा सकता है । सवसे पहला वर्ग 20 से प्रारम्भ किया जा सकता है । अत पहला वर्ग 20 मे 25 दूसरा वर्ग 26 से 31, तीसरा वर्ग 32 से 37 होगा । इसी प्रकार से आगे के वर्ग वनाये जायेंगे । सवसे ऊपर का वर्ग 74 से 79 का होगा । इसके वाद वर्ग नही वनायेगे क्योकि सवसे वडा प्राप्ताक 78 है तथा वह इस वर्ग मे आ जायेगा । वर्ग वनाने के उपरात टैली चिह्न लगाकर विभिन्न वर्गों की आवृत्तियाँ ज्ञात की जायेगी । प्राप्त आवृत्ति वितरण का रूप निम्नवत होगा ·

वर्ग Class	टैली चिह्न Tallies	आवृत्ति f
74 – 79	||	2
68 – 73	|||	3
62 – 67	||||	5
56 – 61	||||	5
50 – 55	|||| ||||	10
44 – 49	|||| |||| ||	11
38 – 43	|||| |||| |	12
32 – 37	||||	5
26 – 31	||||	4
20 – 25	|||	3
i = 6		N = 60

स्पष्ट है कि 20 से 25 के वीच अक प्राप्त करने वाले केवल तीन छात्र है, 26 से 31 के वीच अक प्राप्त करने वाले 4 छात्र है, 32 से 37 के वीच अक प्राप्त करने वाले 5 छात्र है । इस प्रकार से आवृत्ति वितरण वताता है कि विभिन्न वर्गों मे कितने छात्रो ने अक प्राप्त किये है । किन्तु यदि किसी वर्ग से नीचे अक प्राप्त करने वाले छात्र की सख्या ज्ञात करनी हो तो उस वर्ग से नीचे तक की सभी आवृत्तियों को जोडना होगा, क्योकि उस वर्ग से नीचे के सभी वर्गों मे आने वाले छात्रों के प्राप्ताक उस वर्ग के प्राप्ताको से कम है । आवृत्तियो के इस योग को सचयी आवृत्ति कहते है । अतः किसी वर्ग की सचयी आवृत्ति उन छात्रो की संख्या है जिन्होंने उस वर्ग की उच्च सीमा से कम अंक प्राप्त किये हैं । सचयी आवृत्ति को cf से प्रदर्शित करते है । किसी भी वर्ग की सचयी आवृत्ति प्राप्त करने के लिए उस वर्ग तथा उससे नीचे तक के सभी वर्गों की आवृत्तियो को जोड देते है । पीछे दिये गये आवृत्ति वितरण की सचयी आवृत्तियाँ निम्नानुसार प्राप्त करेंगे —

वर्ग Class	आवृत्ति f	सचयी आवृत्ति cf
74 – 79	2	58 + 2 = 60
68 – 73	3	55 + 3 = 58
62 – 67	5	50 + 5 = 55
56 – 61	5	45 + 5 = 50
50 – 55	10	35 + 10 = 45
44 – 49	12	23 + 12 = 35
38 – 43	11	12 + 11 = 23
32 – 37	5	7 + 5 = 12
26 – 31	4	3 + 4 = 7
20 – 25	3	3 = 3
i = 6	N = 60	

आवृत्ति वितरण बनाने के लाभ
(Advantages of Frequency Distribution)

समको को आवृत्ति वितरण के रूप मे व्यवस्थित करने के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है ·

1. आवृत्ति वितरण के रूप मे प्रस्तुत समक बोधमय होते है । अव्यवस्थित समको से समूह के सम्वन्ध मे किसी निष्कर्ष पर पहुँचना लगभग असम्भव होता है, जवकि आवृत्ति वितरण के अवलोकन से समूह के सम्वन्ध मे एक स्पष्ट धारणा वन जाती है जिससे समूह के सम्वन्ध मे निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते है ।

2. अवर्गीकृत समको को रेखाचित्रो के द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता है जवकि वर्गीकृत समको को रेखाचित्रों के द्वारा व्यक्त करके सरल व वोधमय वनाया जा सकता है । साधारण व्यक्तियो के लिए रेखाचित्रों द्वारा प्रस्तुत समक ही अधिक अर्थयुक्त होते है ।

3. दो या दो से अधिक समूहो की तुलना भी आवृत्ति वितरण बनाकर अधिक व्यवहारिक तथा उपयोगी होता है ।

4. विभिन्न् साख्यिकीय गुणाँको जैसे मध्यमान, मध्याक, मानक विचलन, सहसम्वन्ध गुणाक आदि की गणनाये आवृत्ति वितरण वनाकर सरलता व शीघ्रता से की जा सकती है ।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान
(Measures of Central Tendency)

आवृत्ति वितरण के रूप मे प्रस्तुत करने पर, समंक काफी हद तक वोधमय हो जाते

है। परन्तु समूह की समूहिक योग्यता ज्ञात करने के लिए समको को और भी अधिक सक्षिप्त करके केवल एक ही प्राप्ताक के द्वारा व्यक्त करना उचित होगा। सक्षिप्तीकरण की इस प्रक्रिया मे एक ऐसा प्राप्ताक ज्ञात किया जाता है जो सम्पूर्ण समूह के प्राप्ताकों का प्रतिनिधित्व कर सके। ऐसे प्राप्ताक को केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान कहते हैं। स्पष्ट है कि केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान वही प्राप्तांक होगा जिसके आसपास अधिकतर प्राप्ताक केन्द्रित होते हैं। कुछ प्राप्ताक केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान से छोटे तथा कुछ प्राप्ताक केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान से बड़े हो सकते है। क्योंकि सभी प्राप्ताकों की प्रवृत्ति केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान की ओर होती है, इसीलिए केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान को केन्द्रीय मान भी कहते हैं। केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान ज्ञात करने की अनेक विधिया हैं तथा प्रत्येक विधि अपनी तरह से केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान को पारिभाषित करती हैं। साधारणत· तीन प्रकार के केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानों अर्थात बहुलाक, मध्याक व मध्यमान का प्रयोग किया जाता है।

बहुलांक
(Mode)

बहुलाक वह प्राप्ताक है जो समूह मे सवसे अधिक प्रचलित या लोकप्रिय होता है। यह वह प्राप्ताक है जिसे सवसे अधिक छात्र प्राप्त करते है। अत यह समूह का केन्द्रभूत विन्दु (Point of concentration) है। दूसरे शब्दो में वहुलाक वह प्राप्ताक है जो सवसे अधिक वार आता है अर्थात् जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है। जैसे 8, 7, 6, 9, 9, 8, 6, 5, 8, 5, 4, 9 का बहुलाक 9 है, क्योकि प्राप्ताक 9 की आवृत्ति सवसे अधिक है। स्पष्ट है कि वहुलाक प्राप्ताको की आवृत्तियो पर विचार करता है। वहुलांक को साधारणत M_o सकेताक्षर से प्रदर्शित किया जाता है।

वर्गीकृत समको में सवसे अधिक आवृत्ति वाले वर्ग के मध्य विन्दु को वहुलाक कहा जाता है। जैसे पीछे प्रस्तुत की गई सारणी मे 44 से 49 वाले वर्ग की आवृत्ति सवसे अधिक है। अत. इस वर्ग का मध्य विन्दु अर्थात् 46.5 बहुलांक होगा।

कभी-कभी दो या अधिक प्राप्ताकों या वर्गों की आवृत्तियो अन्य प्राप्ताकों की आवृत्तियों से अधिक परन्तु आपस मे बरावर होती है। तव उन सभी प्राप्ताकों को वहुलांक कहते हैं। दो वहुलाक होने पर समको को द्विवहुलाकी (Bimodal) तथा दो से अधिक वहुलाक होनेपर समंकों को बहुवहुलांकी (multi-modal) कहा जाता है। जैसे 6, 9, 9, 9, 5, 4, 7, 6, 8, 6, मे 6 व 9 की आवृत्तियाँ सवसे अधिक परन्तु वरावर-वरावर है। अत यहाँ पर दो वहुलांक 6 व 9 होगे। इन समकों को द्विवहुलाकी (Bimodal data) समक कहा जायेगा।

यद्यपि वहुलाक केन्द्रीय प्रवृत्ति का सवसे सरलता व शीघ्रता से ज्ञात किया जाने वाला मान है परन्तु यह समूह की योग्यता का एक मोटा अनुमान ही प्रदान करता है। वहुलाक का प्रयोग केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान के रूप मे करने मे तीन परेशानी हो सकती है। प्रथम, यह आवश्यक नही है कि केवल एक ही वहुलाक हों। समंकों के एक से अधिक वहुलांक हो सकते है। द्वितीय, यह आवश्यक नही है कि यह केन्द्रीय प्राप्ताक हों। सवसे छोटा या सवसे वडा प्राप्तांक भी वहुलाक हो सकता है। तृतीय, यह वहुत ही अस्थायी प्रकृति का होता है। एक दो छात्रो के प्राप्ताकों में परिवर्तन होने पर ही वहुलाक का मान परिवर्तित हो सकता है।

मध्यांक या माध्यिका
(Median)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का दूसरा प्रकार मध्याक या माध्यिका है। मध्याक वह प्राप्ताक है जो समूह को दो वरावर भागों में इस प्रकार वाँटता है कि एक भाग के सारे प्राप्ताक उससे छोटे हों तथा दूसरे भाग के सारे प्राप्ताक उससे वडे हो। अत. मध्याक वह प्राप्ताक है जिससे कम व अधिक अक पाने वाले छात्रों की सख्या वरावर-वरावर होती है। यदि समस्त प्राप्ताकों को उनके आकार के अनुसार आरोही (Ascending) या अवरोही (Decending) क्रम (order) में व्यवस्थित कर लिया जाये तो उस श्रेणी का मध्य प्राप्ताक श्रेणी को दो ऐसे भागों मे वाँटेगा कि आधे प्राप्ताक मध्य प्राप्ताक से छोटे होंगे तथा आधे प्राप्ताक मध्य प्राप्ताक से वडे होगे। अत· मध्य प्राप्ताक, जो कि क्रमवद्ध श्रेणी का मध्य विन्दु है, मध्याक कहलायेगा। स्पष्ट है कि मध्याक प्राप्ताको के क्रम पर विचार करता है तथा इस पर प्राप्ताकों के वीच अन्तर का कोई प्रभाव नही पडता है। इसीलिए मध्याक को स्थिति केन्द्रीय मान (Positional central point) के नाम से भी पुकारा जाता है। मध्यांक को साधारणतः Md संकेताक्षर से लिखा जाता है।

अव्यवस्थित समंकों से मध्यांक ज्ञात करना
(Median from Ungrouped Data)

अव्यवस्थित समको से मध्याक ज्ञात करने के लिए, सवसे पहले प्राप्ताको को उनके आकार के अनुरूप एक क्रम मे व्यवस्थित कर लेते है। तव प्राप्ताकों की इस क्रमवद्ध श्रेणी का मध्यविन्दु देख लेते है। यह मध्यविन्दु ही मध्याक होगा। जैसे 12, 13, 8, 15, 21, को 8, 12, 13, 15, 21 या 21, 15, 13, 12, 8 के रूप मे क्रवद्ध किया जा सकता। इस क्रमवद्ध श्रेणी का मध्यविन्दु 13 है, अत· मध्यांक 13 होगा। जव प्राप्तांको की संख्या विषम होती है तव तो श्रेणी का मध्यविन्दु स्पष्ट हो जाता है। परन्तु जव प्राप्ताकों की सख्या सम होती है तो कोई भी प्राप्ताक मध्य मे नही होता है। जैसे 10, 13, 6, 15, 24, 9 की क्रमवद्ध श्रेणी 6, 9, 10, 13, 15, 24 होगी, जिसका मध्यविन्दु स्पष्ट नही है। ऐसी परिस्थिति में मध्य के दोनों प्राप्तांकों का औसत ले लेते है। यहा पर 10 व 13 का औसत अर्थात् 11.5 ही मध्याक होगा।

अतः जव N विषम होता है तव मध्यांक ज्ञात करने का सूत्र होता है—

$$\text{मध्याक, Md} = \frac{N+1}{2} \text{ वा प्राप्ताक} \quad \ldots \quad (\text{सूत्र } 1)$$

तथा जब N सम होता है तब मध्यांक ज्ञात करने का सूत्र होता है—

$$\text{मध्याक Md} = \frac{N/_2 \text{ वा प्राप्ताक} + (N/_2 + 1) \text{ वा प्राप्ताक}}{2} \quad \ldots \quad (\text{सूत्र } 2)$$

उदाहरण—36, 44, 69, 32, 51, 57, 40, 52, 75 का मध्याक ज्ञात करो।

हल—प्राप्तांकों को क्रमवद्ध करने पर

32, 36, 40, 44, 51, 52, 57, 69, 75

$$\text{मध्याक, Md} = 43.5 + \frac{30-23}{12} \times 6$$
$$= 47$$

उदाहरण : 80 छात्रों के एक समूह द्वारा हिन्दी परीक्षा मे प्राप्त अको का आवृत्ति वितरण निम्नानुसार था। मध्याक ज्ञात कीजिये।

वर्ग	0—9	10—19	20—29	30—39	40—49	50—59	60—69	70—79
f	3	5	8	23	22	9	6	4

हल : मध्याक ज्ञात करने के लिए सबसे पहले मध्याक वर्ग पहचानना होगा तथा मध्याक वर्ग ज्ञात करने के लिए संचयी आवृत्ति वितरण तैयार करके उस वर्ग को ज्ञात करना होगा, जिसमें N/2 वी सचयी आवृत्ति स्थित होगी। अत सचयी आवृत्ति वितरण तैयार करने पर

वर्ग	f	cf	
70—79	4	80	
60—69	6	76	
50—59	9	70	
40—49	22	61	मध्याक वर्ग
30—39	23	39	
20—29	8	16	
10—19	5	8	
0—9	3	3	
i = 10	N = 80		

क्योंकि N = 80 है, अत N/2 = 40, स्पष्ट है कि 40वी सचयी आवृत्ति 40 − 49 वाले वर्ग मे स्थित होगी। अत

मध्याक वर्ग की निम्न सीमा	L = 39.5
मध्यांक वर्ग से नीचे संचयी आवृत्ति	cf_B = 39
मध्याक वर्ग की आवृत्ति	f = 22
वर्ग विस्तार	i = 10

मध्यांक ज्ञात करने का सूत्र है

$$Md = L + \frac{N/2 - cf_B}{f} \times i$$

इस सूत्र मे विभिन्न मान रखने पर

$$Md = 39.5 + \frac{40-39}{22} \times 10$$
$$= 39.95$$

मध्यांक ज्ञात करते समय कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ—आवृत्ति वितरण के रूप मे व्यवस्थित समंकों से मध्याक ज्ञात करते समय कभी-कभी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती कि मध्याक ज्ञात करना कुछ मुश्किल कार्य हो जाता है। साधारणत इस प्रकार की दो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है : (i) जब किसी एक वर्ग की सचयी आवृत्ति N/2 के बराबर हो तथा (ii) जब एक से अधिक वर्गों की सचयी आवृत्ति N/2 के बराबर हो। मध्यांक ज्ञात करते समय जब किसी एक वर्ग की संचयी आवृत्ति N/2 के ठीक बराबर होती है तब उस वर्ग की उच्च सीमा ही मध्याक होता है। दूसरे शब्द मे N/2 के बराबर सचयी आवृत्ति वाले वर्ग की उच्च सीमा ही मध्याक है। मध्याक ज्ञात करते समय जब एक से अधिक वर्गों की सचयी आवृत्ति N/2 के बराबर होती है तब उन सभी वर्गों की उच्च सीमाओ का औसत ही मध्याक होता है। दूसरे शब्दो मे, N/2 के बराबर सचयी आवृत्तियों वाले वर्गों की उच्च सीमाओ का औसत ही मध्याक है। यह बात निम्न उदाहरणो से स्पष्ट हो जायेगी।

उदाहरण :

वर्ग	f	cf
70—79	1	40
60—69	4	39
50—59	7	35
40—49	8	28
30—39	7	20
20—29	6	13
10—19	5	7
0—9	2	2
i = 10	N = 40	

वर्ग	f	cf
76—83	2	40
68—75	8	38
60—67	10	30
52—59	0	20
44—51	0	20
36—43	14	20
28—35	4	6
20—27	2	2
i = 8	N = 40	

पहले उदाहरण में N= 40 है। अत: N/2 अर्थात 20 वा प्राप्तांक मध्याक होगा। क्योंकि 30—39 वाले वर्ग की संचयी आवृत्ति N/2 अर्थात् 20 के बराबर है, अत: इस वर्ग की उच्च सीमा अर्थात् 39.5 ही मध्याक होगा।

दूसरे उदाहरण में भी N = 40 है अत: N/2 अर्थात् 20 वा प्राप्ताक मध्याक होगा। क्योंकि 36—43, 44—51 व 52—59 वाले वर्गों की संचयी आवृत्ति N/2 अर्थात् 20 के बराबर है, इसलिए इन तीनों वर्गों की उच्च सीमाओं अर्थात् 43.5, 51.5, व 59.5 का औसत ही मध्याक होगा। 51.5, 59.5 व 67.5 का औसत ज्ञात करने के लिए इन तीनों सख्याओं को जोड कर तीन से भाग कर देगे। स्पष्ट है कि इन तीनों संख्याओं का औसत 51.5 है। अत: मध्यांक का मान 51.5 होगा।

मध्यमान

(Mean)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का तीसरा प्रकार मध्यमान है। इसे औसत भी कहते है। मध्यमान समको का गुरुत्व केन्द्र (Point of Gravity) होता है। मध्यमान वह प्राप्ताक है जो समस्त प्राप्ताकों के योग को प्राप्ताको की सख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है। जैसे 5, 8, 7, 9, 6 का कुल योग 35 है तथा प्राप्तॉको की सख्या 5 है, अत. मध्यमान 7 होगा। स्पष्ट है कि मध्यमान बताता है कि यदि प्राप्ताको के योग को सभी छात्रो मे बराबर-बराबर बॉटा जाये तो प्रत्येक छात्र को कितने-कितने अङ्क मिलेगे। स्पष्ट है कि मध्यमान प्राप्ताको के आकार पर विचार करता है। मध्यमान को M सकेताक्षर से प्रदर्शित करते है। अत

$$\text{मध्यमान, } M = \frac{\sum X}{N} \qquad \text{———(सूत्र 4)}$$

यहाँ $\sum X$ = प्राप्ताकों का योग

N = प्राप्ताकों की सख्या

उदाहरण : कक्षा 6 के 10 छात्रो की लम्बाई सेमी० मे निम्नानुसार थी। छात्रो की मध्यमान लम्बाई क्या होगी ?

130, 128, 135, 134, 126, 140, 139, 137, 136, 132

हल : प्राप्ताको का योग $\sum X = 1337$

प्राप्ताको की सख्या $N = 10$

क्योकि मध्यमान, $M = \frac{X}{N}$

अत $M = \frac{1337}{10} = 133\ 7$

वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना

(Mean From Grouped Data)

आवृत्ति वितरण के रूप मे व्यवस्थित समकों से मध्यमान दो विधियो से ज्ञात किया जा सकता है—दीर्घ विधि व लघु विधि। दोनो ही विधियों मे विभिन्न वर्गों की समस्त आवृत्तियों को उस वर्ग के मध्य विन्दु पर केन्द्रित मान लिया जाता है। दूसरे शब्दो मे, किसी भी वर्ग के सभी छात्रों का प्राप्ताक उस वर्ग के मध्य विन्दु के वरावर मान लिया जाता है। जैसे यदि 20—28 वर्ग में 8 आवृत्तियाँ है तो मध्यमान की गणना के लिए माना जायेगा कि इन आठो आवृत्तियों के प्राप्ताक 24—24 हैं।

दीर्घ विधि (Long Method)—दीर्घ विधि से मध्यमान ज्ञात करने के लिए विभिन्न वर्गों के मध्य विन्दुओं को उनकी सापेक्षिक आवृत्तियों से गुणा करके जोड़ लेते है तथा इस योग को कुल आवृत्तियों की संख्या से भाग करने पर मध्यमान प्राप्त हो जाता है। अत:

$$\text{मध्यमान, } M = \frac{\sum fX}{N} \qquad \text{———(सूत्र 5)}$$

जहाँ f = वर्ग की आवृत्ति

X = वर्ग का मध्यविन्दु

$\sum fX$ = विभिन्न वर्गो की आवृत्तियो व मध्य विन्दुओ की गुणा का योग

N = कुल आवृत्ति

उदाहरण : निम्न समको से मध्यमान की गणना करो

वर्ग	मध्यविदु X	f	fX
45—49	47	2	94
40—44	42	4	168
35—39	37	5	185
30—34	32	16	512
25—29	27	18	486
20—24	22	11	242
15—19	17	10	170
10—14	12	7	84
5—9	7	4	28
0—4	2	3	6
		N = 80	$\sum fX$ = 1975

हल : मध्यमान, $M = \frac{\sum fX}{N}$

सारणी से, $\sum fX = 1975$

$N = 80$

सूत्र मे ये मान रखने पर

$$M = \frac{1975}{80}$$

$$= 24.69$$

लघु विधि या कल्पित मध्यमान विधि : (Short method or Assumed Mean Method)—दीर्घ विधि मे विभिन्न वर्गो के मध्यविन्दु ज्ञात करके उनसे वर्गो की आवृत्तियो की गुणा करनी होती है, जिसकी वजह से गणना कार्य कुछ जटिल व समयव्ययी हो जाता है। इसलिए मध्यमान ज्ञात करने की लघु विधि (Short method), जिसे कल्पित मध्यमान विधि (Assumed mean method) भी कहते है, का प्रयोग किया जाता है। इस विधि मे किसी भी वर्ग को कल्पित मध्यमान वर्ग मान लेते

है तथा उस वर्ग के मध्यविन्दु को कल्पित मध्यमान कहते है। अव आवृत्ति वितरण मे f स्तम्भ के आगे एक नया स्तम्भ, जिसे विचलन स्तम्भ कहते है तथा d सकेताक्षर से प्रदर्शित करते है, वना लेते है। कल्पित मध्यमान वाले वर्ग के आगे d वाले स्तम्भ मे शून्य लिख देते है। इसके बाद कल्पित मध्यमान वर्ग के ऊपर के वर्गों मे क्रमश +1, +2, +3, +4 आदि तथा नीचे के वर्गों मे क्रमश —1, —2, —3, —4 आदि लिख देते है (यदि वर्ग ऊपर से नीचे की ओर वने होते है तो ऊपर के वर्गों मे —1, —2, —3, —4 व नीचे के वर्गों मे +1, +2, +3, +4, लिखते है)। अव विभिन्न आवृत्तियो को उनके सगत d से गुणा करके उनका जोड कर लेते है तथा इस योग को i से गुणा व N से भाग करके कल्पित मध्यमान मे जोड देने पर मध्यमान प्राप्त हो जाता है। अत

$$\text{मध्यमान, } M = A.M. + \frac{\Sigma fd}{N} \times i \qquad \text{———(सूत्र 6)}$$

जहाँ A.M. = कल्पित मध्यमान (Assumed mean)
f = वर्ग की आवृत्ति (Class frequency)
d = वर्ग का विचलन (Deviation)
Σ fd = विभिन्न वर्गों की आवृत्तियों व विचलनों की गुणा का योग
i = वर्ग विस्तार (Class interval)
N = कुल आवृत्ति (Size of the group)

लघु विधि से मध्यमान ज्ञात करते समय किसी भी वर्ग को कल्पित मध्यमान वर्ग माना जा सकता है परन्तु आवृत्ति वितरण के लगभग मध्य के वर्ग को कल्पित मध्यमान वर्ग मानने से Σfd का मान कम आता है जिससे गणना कार्य सरल हो जाता है। अत कल्पित मध्यमान वर्ग लगभग मध्य के वर्ग को ही मानना चाहिये।

उदाहरण : निम्न आवृत्ति वितरण में प्रस्तुत समकों से मध्यमान की गणना करो।

वर्ग	f	d	fd	
63—69	2	+5	10	
56—62	4	+4	16	
49—55	5	+3	15	
42—48	16	+2	32	
35—41	18	+1	18/91	
28—34	41	0	0	कल्पित मध्यमान वर्ग
21—27	20	−1	−20	
14—20	7	−2	−14	
7—13	4	−3	−12	
0—6	3	−4	−12/−58	
i=7	N=100		Σfd= +33	

हल : मध्यमान, $M = AM + \frac{\sum fd}{N} \times i$

सारणी से

$AM = 31$
$\sum fd = +33$
$N = 100$
$i = 7$

सूत्र मे ये मान रखने पर

$$M = 31 + \frac{33}{100} \times 7$$
$$= 31 + 2.31$$
$$= 33.31$$

उदाहरणः निम्न आवृत्ति वितरण मे दिये समको से बहुलाक, मध्यांक व मध्यमान की गणना करो।

वर्ग	f	cf	d	fd
50—54	3	100	4	12
45—49	5	97	3	15
40—44	8	92	2	16
35—39	15	84	1	15/+58
30—34	25	69	0	0
25—29	20	44	−1	−20
20—24	18	24	−2	−36
15—19	4	6	−3	−12
10—14	2	2	−4	− 8/−76
i=5	N=100			Σfd= −18

मध्याक वर्ग/कल्पित मध्यमान वर्ग (30—34)

हल : (i) बहुलाक = उस वर्ग का मध्यबिदु जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक है।
अत. बहुलाक, $M_o = 32$, क्योकि 30—34 वर्ग की आवृत्ति सर्वाधिक है।

(ii) मध्याक, $Md = L + \frac{N/2 - cf_B}{f} \times i$

सारणी से
$$L = 29.5$$
$$N = 100$$
$$cf_B = 44$$
$$f = 25$$
$$i = 5$$

सूत्र में ये मान रखने पर

$$Md = 29.5 + \left[\frac{\frac{100}{2} - 44}{25}\right] \times 5$$

$$= 30.70$$

(iii) मध्यमान, $M = A.M. + \frac{\sum fd}{N} i$

सारणी से
$$AM = 32$$
$$\sum fd = 18$$
$$N = 100$$
$$i = 5$$

सूत्र मे ये मान रखने पर

$$M = 32 + \frac{-18}{100} \times 5$$

$$= 31.10$$

दो या दो से अधिक समूहों का सामूहिक मध्यमान (Combined mean from two or more groups) कभी-कभी दो या अधिक समूहों का किसी चर पर मध्यमान ज्ञात होता है तथा उन समूहों को मिलाकर बने बड़े समूह का मध्यमान ज्ञात करना होता है। दो या दो से अधिक समूहों का सामूहिक मध्यमान निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है :

सामूहिक मध्यमान, $$M_{comb} = \frac{N_1M_1 + N_2M_2 + \ldots + N_iM_i}{N_1 + N_2 + \ldots + N_i}$$ (सूत्र 7)

जहां $N_1, N_2, \ldots\ldots N_i$ विभिन्न समूहों में प्राप्तांको की सख्या तथा $M_1, M_2, \ldots\ldots M_i$ विभिन्न समूहों के मध्यमान है।

अतः दो समूहों के लिए सूत्र होगा

$$M_{comb} = \frac{N_1M_1 + N_2M_2}{N_1 + N_2}$$ ———(सूत्र 8)

तथा तीन समूहों के लिए सूत्र होगा

$$M_{comb} = \frac{N_1M_1 + N_2M_2 + N_3M_3}{N_1 + N_2 + N_3} \text{ ------(सूत्र 9)}$$

उदाहरण—किसी विद्यालय की कक्षा दस के तीन वर्गों अ, ब तथा स का हिन्दी मासिक परीक्षण पर मध्यमान क्रमश 15, 16.5 तथा 14.7 थे। तीनो वर्गों मे क्रमश 42, 40 व 50 छात्र थे। विद्यालय की कक्षा दस का हिन्दी मासिक परीक्षण पर सामूहिक मध्यमान ज्ञात करो।

हल—वर्ग अ के लिए $M_1 = 15$ $N_1 = 42$
वर्ग ब के लिए $M_2 = 16.5$ $N_2 = 40$
वर्ग स के लिए $M_3 = 14.7$ $N_3 = 50$

तीन समूहों का सामूहिक मध्यमान,

$$M_{comb} = \frac{N_1M_1 + N_2M_2 + N_3M_3}{N_1 + N_2 + N_3}$$

सूत्र मे मान रखने पर,

$$M_{comb} = \frac{(42 \times 15) + (40 \times 16.5) + (50 \times 14.7)}{42 + 40 + 50}$$

$$= 15.49$$

अत· कक्षा अष्टम् का सामूहिक मध्यमान = 15.49

विभिन्न केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानों का प्रयोग

(Use of Different Measures of Central Tendency)

बहुलाक, मध्याक व मध्यमान तीनो ही सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते है तथा इनकी सहायता से समूह की कुल योग्यता को व्यक्त किया जा सकता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि इन केन्द्रीय प्रवृत्ति के इन तीनो मानो मे कौन सर्वश्रेष्ठ है तथा किसका प्रयोग समूह की योग्यता को व्यक्त करने के लिए किया जाये। वास्तव मे ऐसा कहना यदि असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है कि इन तीनो मानो मे कोई एक मान अन्यो से श्रेष्ठ है। विभिन्न परिस्थितियों मे केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मान अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। प्राप्तांकों के वितरण की प्रकृति ही इस वात का निश्चय कर पाती है कि समूह का प्रतिनिधित्व करने के लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति का कौन सा मान सर्वाधिक उपयुक्त होगा। एक अच्छे केन्द्रीय मान में दो गुण—प्रथम, सवेदनशीलता (Senstivity) तथा द्वितीय, स्थायीत्व (Stability)—होने चाहिए। सवेदनशीलता से अभिप्राय प्राप्ताको के मानों मे परिवर्तन होने का केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानो पर प्रभाव पडने से है। यदि केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान संवेदनशील होता है तो प्राप्ताको के मानों मे हुए परिवर्तनो के अनुरूप उसका मान वदल जाता है। स्थायीत्व से अभिप्राय प्राप्तांकों की सख्या मे एक या दो की

कमी या वृद्धि का केन्द्रीय मान पर प्रभाव पडने से है । यदि केन्द्रीय मान स्थायी होता है तो प्राप्ताको की सख्या मे मामूली से परिवर्तन का केन्द्रीय मान पर लगभग कोई प्रभाव नही पडता है । इसमे कोई सन्देह नही है कि मध्यमान सवसे अधिक सवेदनशील तथा स्थायी केन्द्रीय मान है । यदि किसी एक या अधिक प्राप्ताको के मान मे परिवर्तन कर दिया जाता है तो मध्यमान मे परिवर्तन अवश्य हो जाता है जवकि मध्याक व वहुलाक मे परिवर्तन का होना आवश्यक नही है । जैसे 3, 4, 5, 5, 8 का मध्यमान, मध्याक व वहुलाक 5 है । यदि 4 के स्थान पर 2 होता तो मध्यमान तो 4.6 हो जाता, जवकि मध्याक व वहुलाक 5 ही रहता । इसी प्रकार से प्राप्ताको के समूह मे कुछ प्राप्ताक जोड देने पर मध्यमान मे परिवर्तन कम होता है जवकि मध्याक व वहुलाक मे परिवर्तन अधिक हो सकता है । जैसे 3, 4, 5, 5, 8 मे दो प्राप्ताक 2 व 3 जोड देने पर मध्यमान तो 4.57 हो जायेगा जवकि मध्याक 4 तथा वहुलाक 3 व 5 हो जायेगा । स्पप्ट है कि मध्यमान मध्याक व वहुलाक की अपेक्षा अधिक सवेदनशील व स्थायीत्व वाला केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान है । यद्यपि मध्यमान सवसे अधिक सवेदनशील व स्थायीत्व वाला केन्द्रीय मान होने के कारण सर्वाधिक प्रयोग मे लाया जाता है तथापि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ जाती है जहाँ मध्याक या वहुलाक का प्रयोग अधिक वाँछनीय होता है । विभिन्न परिस्थितियों मे उपयुक्त केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान छाँटने के लिए निम्न दिशा निर्देश हो सकते है ।

बहुलांक—वहुलाक सवसे अधिक सरलता व शीघ्रता से ज्ञात हो जाने वाला केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान है । परन्तु इसका प्रयोग अत्यन्त सीमित होता है । साधारणत बहुलाक का प्रयोग निम्न परिस्थितियों मे किया जाता है

(i) जब सरलता व शीघ्रता से केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का अनुमान लगाना होता है ।

(ii) जब समूह में विशेष रूप से चर्चित मान ज्ञात करना होता है । जैसे किसी समय विशेष मे सर्वाधिक प्रचलित पोशाक का डिजाइन या जूते के आकार को ज्ञात करते समय बहुलाक की गणना की जायेगी ।

मध्यांक—मध्यॉक केन्द्रीय प्रवृत्ति का एक अच्छा मान है । साधारणत मध्यॉक का प्रयोग निम्न परिस्थितियों में किया जाता है :

(i) जब प्राप्ताको के मध्यविन्दु को ज्ञात करना होता है ।

(ii) जब किनारो के कुछ प्राप्तॉक मध्यमान को वुरी तरह से प्रभावित कर रहे होते है । जैसे 11, 12, 13, 14, 15, 16, 94 का मध्यमान 19 है किन्तु यदि 94 न होता तो मध्यमान 14 होता । स्पष्ट है कि केवल एक प्राप्तांक मध्यमान को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है । अत ऐसी परिस्थिति मे मध्यॉक अधिक उपयुक्त केन्द्रीय मान होगा ।

(iii) जब कुछ प्राप्ताकों के सम्बन्ध में अपूर्ण सूचना प्राप्त होती है । जैसे यदि 10 छात्रों मे से 8 के प्राप्तॉक 10, 12, 15, 20, 22, 28, 30, 31 हों तथा शेष दो प्राप्ताक 30 से अधिक हो तो मध्यमान की गणना सभव नही है परन्तु मध्यॉक की गणना की जा सकती है ।

मध्यमान—मध्यमान केन्द्रीय प्रवृत्ति का सवसे अधिक श्रेष्ठ मान है । इसका प्रयोग अग्राकित परिस्थितियो मे किया जाता है .

(i) जब सभी प्राप्तांको को उनके आकार के अनुसार महत्व देना होता है।

(ii) जब सबसे अधिक स्थायित्व वाले केन्द्रीय मान की गणना करनी होती है।

(iii) जब किनारो के प्राप्तांक मध्यमान को बुरी तरह से प्रभावित न कर रहे होते है।

(iv) जब मानक विचलन, सहसम्बन्ध आदि गणनाए भी करनी होती है।

विचलनशीलता गुणांक
(Measures of Variability)

साख्यिकी का मुख्य उद्देश्य किसी समूह का किसी चर विशेष के सन्दर्भ मे वर्णन करना होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान समूह के सम्बन्ध मे अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते है परन्तु केवल केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान के ज्ञात होने पर समूह के सम्बन्ध मे कोई स्पष्ट धारणा नही बनाई जा सकती है। जैसे, यदि तीन समूहो मे से प्रत्येक मे 5-5 छात्र हो तथा उनके विज्ञान परीक्षण पर निम्नानुसार प्राप्ताक हो—

समूह अ	—	14,	14,	14,	14,	14
समूह ब	—	12,	13,	14,	15,	16
समूह स	—	10,	12,	14,	16,	18

स्पष्ट है कि इन तीनो समूहो का मध्यमान 14 है परन्तु क्या ये तीनो समूह समान है ? मध्यमान 14 केवल यह बताता है कि सभी प्राप्ताक 14 के दोनो तरफ वितरित है अथवा 14 प्राप्ताको का केन्द्र बिन्दु या गुरुत्व केन्द्र है। समूह अ के सभी छात्रो ने 14-14 अक प्राप्त किये है अर्थात् समूह अ के छात्र एक दूसरे से जरा भी भिन्न नही है। समूह ब के छात्रो के प्राप्ताक मध्यमान से क्रमश 2 व 1 मे कम, मध्यमान के बराबर तथा मध्यमान मे क्रमश 1 व 2 से अधिक है। समूह स के प्राप्ताक मध्यमान से क्रमश 4 व 2 कम, मध्यमान के बराबर तथा मध्यमान से क्रमश 2 व 4 अधिक है। स्पष्ट है कि तीनो समूह मध्यमान मे समान होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न-भिन्न है। समूहो मे यह भिन्नता उनके प्राप्ताकों मे एक दूसरे से अन्तर या फैलाव की वजह से है। अत. समूह के सम्बन्ध मे निष्कर्ष ज्ञात करने के लिए समूह के प्राप्ताकों के फैलाव या उनकी विचरणशीलता को जानना भी आवश्यक है। वे सभी माप जो प्राप्ताको के फैलाव या परस्पर भिन्नता को बताती है विचरणशीलता गुणाक कहलाती है। साधारणत विचरणशीलता के लिए प्रसार तथा मानक विचलन का प्रयोग किया जाता है।

प्रसार
(Range)

प्रसार विचरणशीलता का सबसे सरल व शीघ्रता से ज्ञात हो सकने वाला परन्तु कम परिष्कृत (less refined) गुणाक है। सबसे बडे प्राप्ताक व सबसे छोटे प्राप्ताक के अन्तर को ही प्रसार कहा जाता है। अत: प्रसार बताता है कि समूह के प्राप्ताक कितनी दूरी में फैले हुए है। प्रसार ज्ञात करने के लिए सबसे बडे प्राप्ताक मे से सबसे छोटा प्राप्ताक घटाकर एक जोड़ देते हैं। वास्तव मे सबसे बडे प्राप्ताक की उच्च सीमा से

सवसे छोटे प्राप्ताक की निम्न सीमा घटाते है । उच्च सीमा मे वढे .5 व निम्न सीमा मे घटे .5 के अन्तर को समायोजित करने के लिए ही, सवसे वडे व सवसे छोटे प्राप्ताको के अन्तर मे एक जोडा जाता है । अत·

प्रसार = [सबसे बडा प्राप्ताक—सवसे छोटा प्राप्ताक] + 1 (सूत्र 10)

अथवा, प्रसार = सबसे बडे प्राप्ताक की उच्च सीमा—सवसे छोटे प्राप्ताक की निम्न सीमा

अत ऊपर वर्णित समूहो के प्रसार निम्नानुसार होगे

समूह अ का प्रसार = (14—14) + 1 = 1
समूह व का प्रसार = (16—12) + 1 = 5
समूह स का प्रसार = (18—10) + 1 = 9

स्पष्ट है कि समूह अ का प्रसार सवसे कम व समूह स का प्रसार सवसे अधिक है, जवकि समूह ब का प्रसार इन दोनो के वीच में है । समूह स के प्राप्ताक एक दूसरे से अधिक भिन्न है जवकि समूह ब के प्राप्ताक एक दूसरे से कुछ कम भिन्नता रखते है । यद्यति प्रसार समूह से सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है तव भी केवल प्रसार का ज्ञान समूह के प्राप्ताको की विचरणशीलता के ज्ञान के लिए पर्याप्त नही होता है क्योंकि यह दो प्राप्ताको, सबसे बडे प्राप्ताक व सवसे छोटे प्राप्ताक, पर आधारित होता है । जैसे 20, 25, 30, 35, 40 तथा 20, 29, 30, 32, 40 के प्रसार समान है किन्तु समूहों की विचरणशीलता मे अन्तर है।वास्तव मे प्रसार विचरणशीलता का एक मोटा सा अनुमान ही प्रस्तुत कर पाता है ।

मानक विचलन

(Standard Deviation)

मानक विचलन विचरणशीलता के लिए सर्वाधिक प्रयोग मे आने वाला गुणांक है । यह सभी प्राप्ताको पर ऊपर आधारित होता है । सभी प्राप्ताकों के उनके मध्यमान से लिये गये विचलनो के वर्गो के औसत के वर्गमूल को मानक विचलन कहते है । दूसरे शब्दो मे यदि सभी प्राप्ताकों का उनके मध्यमान से विचलन या अन्तर लेकर इन अन्तरो का वर्ग करके जोड लें तथा इस योगफल को प्राप्ताको की संख्या से भाग करके प्राप्त भागफल का वर्गमूल ज्ञात कर ले तो मानक विचलन प्राप्त हो जायेगा । मानक विचलन को S.D. या σ सिगमा) सकेताक्षर से व्यक्त करते है । अत·

$$\text{मानक विचलन S.D.} = \sqrt{\frac{\Sigma(X-M)^2}{N}} \qquad \text{—(सूत्र 11)}$$

जहा X = प्राप्तांक
M = मध्यमान
$\Sigma(X-M)^2$ = प्राप्ताकों का मध्यमान से विचलनों के वर्गों का योग
N = प्राप्ताकों की संख्या

उदाहरण—9, 12, 7, 10, 8 व 14 का मानक विचलन ज्ञात कीजिये।

हल—मानक विचलन ज्ञात करने के लिए सर्व प्रथम मध्यमान ज्ञात किया जायेगा। तत्पश्चात विभिन्न प्राप्तांको का मध्यमान से विचलन लेकर वर्ग किया जायेगा। अत

क्रम	X	X—M	(X—M)^2
1	9	9 − 10 = −1	1
2	12	12 − 10 = 2	4
3	7	7 − 10 = −3	9
4	10	10 − 10 = 0	0
5	8	8 − 10 = −2	4
6	14	14 − 10 = 4	16
N = 6	$\Sigma X = 60$		$\Sigma (X-M)^2 = 34$

क्योकि $\Sigma X = 60$ तथा $N = 6$

अत $M = \frac{60}{6}$

$= 10$

सारणी से स्पष्ट है कि

$\Sigma (X-M)^2 = 34$ तथा $N = 6$

मानक विचलन ज्ञात करने का सूत्र है—

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma (X-M)^2}{N}}$$

अत

सूत्र मे मान रखने पर

$$S.D. = \sqrt{\frac{34}{6}}$$

$$= \sqrt{5.67}$$

$$= 2.38$$

विशेष—कभी-कभी मध्यमान से विचलन ज्ञात करके, विशेषकर जब मध्यमान दशमलव संख्या मे आता है, मानक विचलन ज्ञात करना कठिन व समयव्ययी होता है।

ऐसी परिस्थिति मे विभिन्न प्राप्तांको के मध्यमान से विचलन ज्ञात किये बिना ही निम्न सूत्र से मानक विचलन ज्ञात किया जा सकता है।

$$S.D. = \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{N} - \left(\frac{\Sigma X}{N}\right)^2} \quad \text{——(सूत्र 12)}$$

जहा ΣX = प्राप्ताको का योग

ΣX^2 = प्राप्ताको के वर्गों का योग

N = प्राप्ताको की सख्या

उदाहरण—12, 15, 14, 10, 16, 12 तथा 8 का मानक विचलन ज्ञात करो।

हल—मानक विचलन ज्ञात करने का सूत्र है —

$$S.D. = \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{N} - \left(\frac{\Sigma X}{N}\right)^2}$$

ΣX व X^2 की गणना करने पर

ΣX = 12, 15, 14, 10, 16, 12, 18, अत $X = 97$

ΣX^2 = 144, 225, 196, 100, 256, 144, 324, अत $X^2 = 1389$

सूत्र मे मान रखने पर

$$S.D. = \sqrt{\frac{1389}{7} - \frac{97}{7} \times \frac{97}{7}}$$

$$= \sqrt{198.43 - 192.02}$$

$$= \sqrt{6\,41}$$

$$= 2.53$$

वर्गीकृत समंकों से मानक विचलन की गणना

(Standard Deviation From Grouped Data)

आवृत्ति वितरण के रूप मे व्यवस्थित समकों से भी मानक विचलन की गणना की जा सकती है। ऐसी परिस्थिति मे, मध्यमान ज्ञात करने की तरह् से विभिन्न वर्गों की समस्त आवृत्तियों को वर्गों के मध्य बिन्दुओं पर केन्द्रित माना जाता है तथा निम्नलिखित दो सूत्रों में से किसी एक का प्रयोग करके मानक विचलन की गणना कर ली जाती है :—

$$S.D. = \sqrt{\frac{\Sigma f (X - M)^2}{N}} \quad \text{—— (सूत्र 13)}$$

जहा f = विभिन्न वर्गों की आवृत्तियाँ
X = विभिन्न वर्गों के मध्य बिन्दु
M = मध्यमान
$\sum f(X-M)^2$ = $(X-M)^2$ तथा f की गुणाओ का योग

या S.D. $= \sqrt{\frac{\sum fX^2}{N} - \left(\frac{\sum fX}{N}\right)^2}$ —(सूत्र (14)

जहाँ $\sum fX$ = f व X की गुणाओ का योग
$\sum fX^2$ = f व X^2 की गुणाओ का योग
N = कुल आवृत्ति

उदाहरण—50 छात्रो के वार्षिक गणित परीक्षा मे प्राप्त निम्न सारणी मे प्रस्तुत समको से मानक विचलन ज्ञात करो।

वर्ग	f	X	fX	fX^2	X—M	$(X—M)^2$	$f(X—M)^2$
85—94	2	89.5	179.0	16020.5	38.125	1453.52	2907.04
75—84	5	79.5	397.5	31601.25	28.125	791.02	3995.10
65—74	9	69.5	625.5	43472.25	18.125	328.52	2956.68
55—64	16	59.5	952.0	56644.0	8.125	66.02	1056.32
45—54	24	49.5	1188.0	58806.0	—1.875	3.52	84.48
35—44	12	39.5	474.0	18723.0	—11.875	141.02	1692.24
25—34	7	29.5	206.5	6091.75	—21.875	478.52	3349.64
15—24	4	19.5	78.0	1521.0	—31.875	1016.02	4064.08
5—14	1	9.5	9.5	90.25	—41.875	1753.52	1753.52
i=10	N=80		4110.0	232970.00			21859.10

हल—यदि मानक विचलन ज्ञात करने के लिए प्रथम सूत्र का प्रयोग किया जायेगा तो पहले मध्यमान ज्ञात करना होगा तथा फिर $\sum f(X—M)^2$ की गणना की जायेगी। इस स्थिति मे सारणी मे fX तथा fX^2 के स्तम्भो को बनाने की आवश्यकता नही है।

$$\text{मध्यमान, } M = \frac{\sum fX}{N}$$

$$= \frac{4110}{80}$$

$$= 51.375$$

सारणी से स्पष्ट है कि

$$\Sigma f(X-M)^2 = 21859.10$$

$$N = 80$$

इन मानो को सूत्र मे रखने पर

$$S.D = \sqrt{\frac{\Sigma f(X-M)^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{21859.10}{80}}$$

$$= \sqrt{273.2387}$$

$$= 16.529$$

यदि मानक विचलन ज्ञात करने के लिए दूसरे सूत्र का प्रयोग किया जायेगा तो ΣfX व ΣfX^2 की गणना की जायेगी। इस स्थिति मे $(X-M)$, $(X-M)^2$ तथा $f(X-M)^2$ स्तम्भो को बनाने की आवश्यकता नही है। सारणी से स्पष्ट है कि

$$\Sigma fX = 4110.00$$

$$\Sigma fX^2 = 232970.00$$

$$N = 80$$

इन मानो को सूत्र मे रखने पर

$$S.D. = \sqrt{\frac{\Sigma fX^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fX}{N}\right)^2}$$

$$S.D. = \sqrt{\frac{232970}{80} - \frac{4110 \times 4110}{80 \times 80}}$$

$$= \sqrt{2912.125 - 2639.391}$$

$$= \sqrt{272.734}$$

$$= 16.515$$

नोट—दोनो विधियो से मानक विचलन का मान वास्तवमे समान होना चाहिए। उपरोक्त उदाहरण मे दोनो विधियों से प्राप्त मानो मे अन्तर गणनाकार्य के दौरान सन्निकटीकरण के कारण है।

लघुविधि से मानक विचलन ज्ञात करना
(Standard Deviation By Short Method)

उपरोक्त दोनो सूत्रो से मानक विचलन की गणना काफी जटिल व समय साध्य होती है। पहली विधि मे विभिन्न वर्गों के मध्य विदुओ को मध्यमान से विचलन लेकर वर्ग किया जाता है जिसकी वजह से गणना कार्य जटिल व समय-व्ययी हो जाता है, विशेषकर जव मध्यमान दशमलव अको मे आता है। दूसरी विधि मे भी विभिन्न वर्गों के मध्य विंदुओ का वर्ग करना होता है। इसलिए आवृत्ति वितरण से मानक विचलन की गणना को सरलता व शीघ्रता से करने के लिए लघु विधि का प्रयोग किया जाता है। लघु विधि मे, मध्यमान ज्ञात करने की लघु विधि के अनुरूप, कल्पित मध्यमान से विचलन ज्ञात करते हैं तथा निम्न सूत्र का प्रयोग करके मानक विचलन की गणना करते हैं

$$\text{मानक विचलन, S.D.} = i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2} \quad \text{----(सूत्र 15)}$$

जहा f = विभिन्न वर्गों की आवृत्ति
d = विभिन्न वर्गों का कल्पित मध्यमान से विचलन (वर्ग विस्तार की इकाई मे)
i = वर्ग विस्तार
N = कुल आवृत्ति

उदाहरण—सारणी में प्रस्तुत समकों का मानक विचलन ज्ञात करो।

वर्ग	f	d	fd	fd^2
85—94	2	4	8	32
75—84	5	3	15	45
65—74	9	2	18	36
55—64	16	1	16	16
45—54	24	0	0 +57	0
35—44	12	−1	−12	12
25—34	7	−2	−14	28
15—24	4	−3	−12	36
5—14	1	−4	− 4 −42	16
i = 10	N = 80		+15	221

हल मानक विलचन, $S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$

सारणी से स्पष्ट है कि—

$$i = 10$$
$$\sum fd^2 = 221$$
$$\sum fd = 15$$
$$N = 80$$

सूत्र मे मान रखने पर

$$S.D. = 10 \times \sqrt{\frac{221}{80} - \frac{15}{80} \times \frac{15}{80}}$$

$$= 10 \times \sqrt{2\ 7625 - .0351}$$

$$= 10 \times \sqrt{2.7274}$$

$$= 10 \times 1.6515$$

$$= 16.515$$

विभिन्न विचरणशीलता गुणांकों का प्रयोग
(Use of Different Measures of Variability)

प्रसार तथा मानक विचलन दोनो ही समूह की विचरणशीलता को प्रदर्शित करते हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि विचरणशीलता के इन दोनों मानों मे से कौन सा मान सर्वश्रेष्ठ है तथा किसका प्रयोग समूह की विचरणशीलता को व्यक्त करने के लिए किया जाये। यद्यपि मध्यमान के समान मानक विचलन सबसे अधिक सवेदनशील व स्थायी गुणाक है तथा इसका वहुतायत से प्रयोग किया जाता है तथापि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी जातो है जहाँ प्रसार का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है। विभिन्न परिस्थितियो मे उपयुक्त विचरणशीलता गुणाक छाटने के लिए कुछ दिशा निर्देश निम्नवत् हो सकते हैं—

प्रसार—प्रसार सवसे अधिक सरलता व शीघ्रता से ज्ञात किया जा सकने वाला विचरणशीलता गुणाक है। परन्तु केवल दो प्राप्ताको—सवसे वडे प्राप्ताक व सवमे छोटे प्राप्ताक—पर आधारित होने के कारण यह एक विश्वसनीय गुणांक नहीं माना जाता है, जिसकी वजह से इसका प्रयोग अत्यन्त सीमित होता है। प्रसार का प्रयोग साधारणत निम्न परिस्थितियों में किया जाता है .

(i) जव प्राप्ताक अत्यधिक फैले हुए हो, जिससे अन्य गुणाकों का प्रयोग उपयुक्त न हों।

(ii) जब केवल किनारों के प्राप्ताको के सम्बन्ध मे सूचना वाछनीय हो।
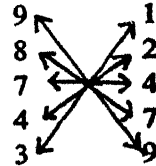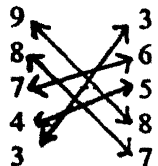
मानक विचलन—मानक विचलन सबसे अधिक प्रयोग मे आने वाला विचरणशीलता गुणाक है। इसका प्रयोग निम्न परिस्थितियो मे किया जाता है

(i) जब सबसे अधिक स्थायीत्व वाले विचरणशीलता गुणाक की गणना करनी हो।

(ii) जब केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान के रूप में मध्यमान का प्रयोग किया हो।

(iii) जब सभी प्राप्ताको को उनके आकार के अनुसार महत्व देना हो।

(iv) जब सहसम्बन्ध, प्रसरण विश्लेषण आदि गणनाये करनी हो।

सहसम्बन्ध गुणांक
(Coefficient of Correlation)

पिछले पृष्ठो मे अभी तक समूह की प्रकृति को किसी एक विशेषता (चर) के आधार पर केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान तथा विचरणशीलता गुणाक की सहायता से स्पष्ट करने की विधियों को प्रस्तुत किया गया है। कभी-कभी किसी समूह के छात्रो के लिए दो चरों के साथ-साथ घटने या बढने की प्रवृत्ति का ज्ञान भी वाछनीय होता है। जैसे साधारणत कहा जाता है कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि व बुद्धिलब्धि मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसका अर्थ है कि अधिक बुद्धिमान छात्र परीक्षा मे अधिक अक प्राप्त करते है तथा कम बुद्धिमान छात्र परीक्षा में कम अक प्राप्त करते है। इसी प्रकार आयु व ऊँचाई मे भी सम्बन्ध होता है। दो चरो के बीच सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए सहसम्बन्ध गुणाक का प्रयोग किया जाता है। सहसम्बन्ध गुणाक बताता है कि एक चर के मान मे परिवर्तन का दूसरे चर के मान पर किस प्रकार से प्रभाव पड रहा है। सहसम्बन्ध गुणाक वह अनुपात है जो दो चरो के बीच सहसम्बन्ध की सीमा व प्रकृति बताता है।

सहसम्बन्ध तीन प्रकार का हो सकता है : धनात्मक सहसम्बन्ध (Positive Correlation), ऋणात्मक सहसम्बन्ध (Negative correlation) तथा शून्य सहसम्बन्ध (Zero correlation)। जब एक चर के मान मे वृद्धि होने पर दूसरे चर के मान मे भी वृद्धि होती है तथा एक चर के मान मे कमी होने पर दूसरे चर के मान में भी कमी होती है तो दोनों चरों के बीच के सहसम्बन्ध को धनात्मक सहसम्बन्ध कहा जाता हैं। जब एक चर के मान मे वृद्धि होने पर दूसरे चर के मान में कमी होती है तथा एक चर के मान में कमी होने पर दूसरे चर के मान में वृद्धि होती है तो दोनों चरो के बीच के सहसम्बन्ध को ऋणात्मक सहसम्बन्ध कहा जाता है। जब एक चर के मान मे वृद्धि होने पर दूसरे चर के मानों पर कोई प्रभाव नही पडता है तो दोनो चरो के बीच सहसम्बन्ध को शून्य सहसम्बन्ध कहते है। सहसम्बन्ध के ये तीनो प्रकार एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो सकेगे। माना कि 5 छात्रो के हिन्दी, इतिहास, अग्रेजी व गणित परीक्षणो पर प्राप्ताक ज्ञात है। हिन्दी व इतिहास, हिन्दी व अग्रेजी तथा हिन्दी व गणित चरो के बीच सहसम्बन्ध को निम्न ढंग से देख सकते है।

हिन्दी इतिहास	हिन्दी अंग्रेजी	हिन्दी गणित
9 ⟷ 9 8 ⟷ 7 7 ⟷ 5 4 ⟷ 4 3 ⟷ 2	9 1 8 2 7 4 4 7 3 9	9 3 8 6 7 5 4 8 3 7
स्थिति 1 · धनात्मक सहसम्बध	स्थिति 2 ऋणात्मक सहसम्बन्ध	स्थिति 3 शून्य सहसम्बन्ध

स्थिति 1 से स्पष्ट है कि जिस छात्र के हिन्दी में सर्वाधिक अक है, उसके इतिहास मे भी सर्वाधिक अक है। जिस छात्र के हिन्दी मे प्राप्ताक दूसरे क्रम पर है उसके इतिहास मे प्राप्ताक भी दूसरे क्रम पर है। यह बात सभी छात्रो के लिए है। अत. यदि छात्रों के हिन्दी मे अक घट रहे है तो इतिहास मे भी घट रहे है तथा यदि हिन्दी मे अक वढ़ रहे है तो इतिहास मे भी वढ़ रहे हैं। अतः हिन्दी व इतिहास चरो के वीच धनात्मक सहसम्वन्ध है।

स्थिति 2 से स्पष्ट है जिस छात्र के हिन्दी में सर्वाधिक अक है उसके अंग्रेजी मे सबसे कम अक है। छात्रो का क्रम दोनो विषयों मे एक दूसरे के विपरीत है। यदि हिन्दी मे अक बढ़ते हैं तो अग्रेजी मे घट रहे है तथा यदि हिन्दी मे घटते हैं तो अग्रेजी में बढते है। अतः हिन्दी व अंग्रेजी चरो के बीच ऋणात्मक सहसम्वन्ध है।

स्थिति 3 से स्पष्ट है कि हिन्दी मे अंक बढ़ने पर कुछ छात्रों के गणित मे अंक बढ़ते हैं तथा कुछ छात्रों के गणित मे अक घटते है। अतः हिन्दी व गणित चरों मे शून्य सहसम्वन्ध है।

परन्तु व्यवहार में दो चरों के वीच के सहसम्वन्ध को ज्ञात करना इतना सरल कार्य नही है। एक तो छात्रों की सख्या वहुत अधिक होती है, दूसरे सभी प्राप्ताकों मे घटने या वढ़ने का क्रम स्पष्ट नही होता है। ऐसी परिस्थितियों मे सहसम्वन्ध छात्रों के लिए दोनो चरों के साथ-साथ घटने या वढ़ने की प्रवृत्ति से प्रकट होता है। यदि सभी छात्रों की वजह से दोनों चरो मे साथ-साथ घटने या वढने की प्रवृत्ति होती है तो पूर्ण घनात्मक सहसम्वन्ध कहा जायेगा, यदि अधिकाश छात्रो की वजह से दोनों चरो मे साथ-साथ घटने या वढने की प्रवृत्ति होती है तो उच्च घनात्मक सहसम्वन्ध कहा जायेगा, इसी प्रकार से कुछ छात्रों, कम छात्रो व वहुत कम छात्रो की वजह से दोनों चरो मे साथ-साथ घटने या बढ़ने की प्रवृत्ति होती है तो क्रमशः परिमित, निम्न व अत्यन्त निम्न घनात्मक सहसम्बन्ध कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार से यदि सभी छात्रों, अधिकाँश छात्रों, कुछ छात्रों, कम छात्रों व बहुत कम छात्रों की वजह से एक चर के घटने पर दूसरे चर के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है तो क्रमशः पूर्ण ऋणात्मक, उच्च ऋणात्मक, परिमित ऋणात्मक, निम्न ऋणात्मक व अत्यन्त निम्न ऋणात्मक सहसम्वन्ध कहा जाता है।

किन्तु यदि दोनो चरो के साथ-साथ बढ़ने या घटने या एक के घटने पर दूसरे के बढने की प्रवृत्ति स्पष्ट नही हो पाती है तो शून्य सहसम्बन्ध कहा जायेगा। सहसम्बन्ध की सीमा व प्रकार को जानने के लिए सहसम्बन्ध गुणाक की गणना की जाती है। सहसम्बन्ध गुणाक एक अनुपातिक सख्या होती है जिसका मान—1.00 से लेकर + 1.00 के बीच होता है। सहसम्बन्ध गुणाक का चिन्ह सहसम्बन्ध के प्रकार को तथा परिमाण सहसम्बन्ध की मात्राको व्यक्त करता है। सहसम्बन्धगुणांक जितना अधिक होता है दो चरो के साथ-साथ घटने या बढ़ने की प्रवृत्ति उतना ही अधिक पुष्ट होती है। सहसम्बन्ध गुणाक के मान के आधार पर इसकी व्याख्या निम्नानुसार की जा सकती है

सहसम्बन्ध गुणाँक का मान	सहसम्बन्ध का प्रकार (Type of Correlation)
+ 1.00	पूर्ण धनात्मक (Perfect Positive)
+.90 से + 1.00 तक	अत्यन्त उच्च धनात्मक (Very High Positive)
+ .70 से + .90 तक	उच्च धनात्मक (High Positive)
+ .40 से + .70 तक	परिमित धनात्मक (Moderate Positive)
+ .20 से + .40 तक	निम्न धनात्मक (Low Positive)
.00 से +.20 तक	अत्यन्त निम्न धनात्मक (Very low Positive)
00	शून्य (Zero Correlation)
.00 से −.20 तक	अत्यन्त निम्न ऋणात्मक (Very Low Negative)
−.20 से − .40 तक	निम्न ऋणात्मक (Low Negative)
−.40 से −.70 तक	परिमित ऋणात्मक (Moderate Negative)
−.70 से − .90 तक	उच्च ऋणात्मक (High Negative)
−.90 से − 1.00 तक	अत्यन्त उच्च ऋणात्मक (Very High Negative)
−1.00	पूर्ण ऋणात्मक (Perfect Negative)

सहसम्बन्ध गुणाँक ज्ञात करने की श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध विधि तथा गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध विधि अधिक प्रचलित है। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इन दोनों विधियों से प्राप्त सहसम्बन्ध गुणाँक का मान भिन्न-भिन्न हो सकता है।

श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणांक
(Rank Order Correlation Coefficient)

श्रेणीक्रम विधि से सहसम्बन्ध गुणाँक ज्ञात करने की विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयरमैन (Charles Spearman) ने किया था, जिनके नाम पर इस विधि को स्पीयरमैन सहसम्बन्ध विधि तथा इससे प्राप्त सहसम्बन्ध गुणाक को स्पीयरमैन सहसम्बन्ध गुणाँक या स्पीयरमैन श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणाँक भी कहते है। इस विधि से प्राप्त सहसम्बन्ध गुणाँक को लैटिन भाषा के अक्षर ρ जिसे रौ (Rho) कहते है, से लिखते है। इस विधि में दोनों चरों के प्राप्तांकों को उनके आकार के अनुसार अलग-अलग क्रमबद्ध किया जाता है। सबसे बड़े प्राप्ताँक को 1, इससे छोटे प्राप्ताँक को 2, तथा इसी प्रकार सभी प्राप्ताँकों को 3, 4, 5 आदि क्रम दे देते है। इस प्रकार से सबसे छोटा प्राप्ताँक ठीक वही क्रम प्राप्त करता है जितने की कुल छात्र अर्थात् N है। दोनो चरों के

प्राप्तांको को अलग-अलग क्रम देने के उपरांत, विभिन्न छात्रो द्वारा प्राप्त दो क्रमो (दोनों चरों पर) के अन्तर के वर्गो का योग प्राप्त कर लेते है। साधारणत एक चर को X से तथा दूसरे चर को Y से व्यक्त करते है। X चर के प्राप्तांकों के क्रम को R_x से तथा Y चर के प्राप्ताको के क्रम को R_y से तथा दोनो चरों पर प्राप्त क्रमो के अन्तर को D सकेताक्षर से प्रदर्शित करते है। D का मान ज्ञात करते समय + या − का ध्यान रखने की आवश्यकता नही होती है। ΣD^2 का मान प्राप्त कर लेने के वाद निम्न सूत्र की सहायता मे सहसम्वन्ध गुणाक का मान ज्ञात कर लेते है। अत

श्रेणीक्रम सहसम्वन्ध गुणाक, $\rho = 1 - \dfrac{6 \Sigma D^2}{N (N^2 - 1)}$ ---- (सूत्र 16)

जहा ΣD^2 = क्रमो के अन्तरों के वर्गों का योग

तथा, N = कुल छात्र सख्या

उदाहरण—10 छात्रो के गणित तथा इतिहास परीक्षणो पर प्राप्ताक निम्नवत थे। गणित तथा इतिहास प्राप्ताको के बीच श्रेणीक्रम सहसम्वन्ध गुणाक की गणना कीजिये।

छात्र	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
गणित	10	13	15	14	16	20	19	18	12	11
इतिहास	12	11	19	17	18	16	10	14	13	15

हल—श्रेणीक्रम सहसम्वन्ध गुणाक की गणना करने के लिए सारणी वनाने पर

छात्र	गणित प्राप्ताक X	इतिहास प्राप्ताक Y	क्रम R_x	क्रम R_y	$D = R_x \sim R_y$	D^2
A	10	12	10	8	2	4
B	13	11	7	9	2	4
C	15	19	5	1	4	16
D	14	17	6	3	3	9
E	16	18	4	2	2	4
F	20	16	1	4	3	9
G	19	10	2	10	8	4
H	18	14	3	56	3	9
I	12	13	8	67	1	1
J	11	15	9	45	4	16
	N = 10					$\Sigma D^2 = 76$

$$\text{श्रेणीक्रम सहसम्वन्ध गुणाक}, \rho = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$\text{सारणी से } \sum D^2 = 76$$

$$N = 10$$

सूत्र मे मान रखने पर

$$\rho = 1 - \frac{6 \times 76}{10\,(10 \times 10 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{456}{990}$$

$$= 1 - 46$$

$$= .54$$

$$\text{अत· श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणाक } \rho = .54$$

प्राप्त ρ = .54 की व्याख्या : गणित तथा इतिहास विषयो मे छात्रो के द्वारा प्राप्त अको के बीच श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध का मान ·54 है। स्पष्ट है कि सहसम्वन्ध परिमित धनात्मक है। अत कहा जा सकता है कि गणित इतिहास के प्राप्ताको के साथ-साथ बढ़ने की प्रवृत्ति काफी है अत: कह सकते है कि छात्रो मे गणित योग्यता के साथ इतिहास योग्यता के बढने की काफी प्रवृत्ति है।

समान प्राप्तांक

(Tied Scores)

श्रेणीक्रम विधि से सहसम्बन्ध ज्ञात करते समय कभी-कभी किसी एक चर या दोनों चरों के कुछ प्राप्ताकों का मान एक समान होता है। ऐसी स्थिति मे प्राप्ताको को क्रम देते समय परेशानी होती है। तब पहले सभी प्राप्ताको को आकार के अनुसार व्यवस्थित करके क्रम दे देते हैं। अब समान प्राप्ताको द्वारा प्राप्त विभिन्न क्रमो का औसत ज्ञात कर लेते हैं तथा सहसम्बन्ध गुणाक के लिए क्रम देते समय उन सभी समान प्राप्ताको को यह औसत दे देते हैं। जैसे यदि X चर पर 10 छात्रो के प्राप्ताक क्रमश 12, 15, 12, 14, 10, 9, 6, 9, 9, 11 हो तो निम्नानुसार व्यवस्थित करके क्रम देगे।

प्राप्तांक	15	14	12	12	11	10	9	9	9	6
क्रम	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
व्यवस्थित क्रम	1	2	3.5	3.5	5	6	8	8	8	10

अत. प्राप्ताक 15 को 1, 14 को 2., प्रत्येक 12 को 3.5, 11 को 5, 10 को 6, प्रत्येक 9 को 8 तथा 6 को 10 वॉं क्रम देगे। इसी प्रकार से यदि दूसरे चर पर भी कुछ प्राप्ताको का मान समान होता है तो प्राप्ताको को आकार के अनुसार व्यवस्थित करके क्रम दे देते है तथा फिर समान प्राप्ताको द्वारा प्राप्त क्रमों का औसत उनमे से प्रत्येक प्राप्ताक को दे देते हैं।

उदाहरण—नीचे दी गई सारणी में दिये गये गणित तथा भाषा प्राप्तांकों के मध्य श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणाक ज्ञात करो। प्राप्त ρ की व्याख्या भी करो।

हल—श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणाक, $\rho = 1 - \frac{6 \Sigma D^2}{N (N^2 - 1)}$

सारणी बनाकर गणना कार्य करने पर

छात्र	गणित प्राप्तांक X	भाषा प्राप्तांक Y	R_x	R_y	$R_x \sim R_y$ = D	D^2
1	12	15	8	3	5	25
2	14	14	4.5	4	.5	25
3	12	9	8	9	1	1
4	17	11	2	6.5	4.5	20.25
5	19	10	1	8	7	49
6	12	11	8	6.5	1.5	2.25
7	14	16	4.5	2	2.5	6.25
8	13	18	6	1	5	25
9	15	12	3	5	2	4
		N=9				$\Sigma D^2 = 133.00$

सारणी से

$$\Sigma D^2 = 133$$
$$N = 9$$

सूत्र मे मान रखने पर

$$\rho = 1 - \frac{6 \times 133}{9 (9 \times 9 - 1)} = - \cdot 11$$

अतः श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणाक $\rho = - \cdot 11$

प्राप्त $\rho = -.11$ की व्याख्या—गणित तथा भाषा प्राप्ताको के बीच $-.11$ का सहसम्बन्ध है। स्पष्ट है कि यह सहसम्बन्ध ऋणात्मक है परन्तु $\rho = -\cdot 11$ होने के कारण इसे निम्न कोटि का ऋणात्मक सहसम्बन्ध कहा जायेगा। अत. कहा जा सकता है कि गणित व भाषा प्राप्तांकों मे एक दूसरे के विपरीत जाने की प्रवृत्ति है। दूसरे शब्दो मे जैसे-जैसे छात्रों की गणित योग्यता बढ़ती है वैसे-वैसे भाषा योग्यता घटती है किन्तु घटने की यह प्रवृत्ति बहुत अधिक नही है।

गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक
(Product-Moment Correlation Coefficient)

गुणनफल-आघूर्ण विधि से सहसम्बन्ध गुणाक ज्ञात करने की विधि का प्रतिपादन कार्ल पियरसन (Karl Pearson) ने किया था, जिनके नाम पर इस विधि को पियरसन सहसम्बन्ध विधि तथा इससे प्राप्त सहसम्बन्ध गुणाक को पियरसन सहसम्बन्ध गुणाक भी कहा जाता है। इस विधि मे दोनों चरो पर छात्रो द्वारा प्राप्त अको के सापेक्ष जेड प्राप्ताकों के गुणनफलों का आघूर्ण ज्ञात किया जाता है तथा यह आघूर्ण ही दोनो चरो के बीच सहसम्बन्ध की मात्रा को प्रकट करता है। गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक को अग्रेजी भाषा के अक्षर r से प्रदर्शित करते है। अत

$$r = \frac{\sum z_x z_y}{N} \quad \text{--- (सूत्र 17)}$$

जहा N = छात्रों की सख्या
z_x = X प्राप्ताको के लिए मानक प्राप्ताक
z_y = Y प्राप्ताको के लिए मानक प्राप्ताक
Z_x तथा z_y ज्ञात करने के सूत्र होगे—

$$z_x = \frac{X - M_x}{\sigma_x} \qquad \text{तथा } z_y = \frac{Y - M_y}{\sigma_y}$$

गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक के इस सूत्र को निम्न सरल रूपों मे वदला जा सकता है —

$$r = \frac{\sum xy}{N \sigma_x \sigma_y} \quad \text{---- (सूत्र 18)}$$

$$r = \frac{\sum (X - M_x)(Y - M_y)}{N \sigma_x \sigma_y} \quad \text{---- (सूत्र 19)}$$

$$r = \frac{\sum (X - M_x)(Y - M_y)}{\sqrt{\sum (X - M_x)^2 \sum (Y - M_y)^2}} \quad \text{----(सूत्र 20)}$$

$$r = \frac{N \sum XY - \sum X . \sum Y}{\sqrt{[N \sum X^2 - (\sum X)^2][N \sum Y^2 - (\sum Y)^2]}} \quad \text{---- (सूत्र 21)}$$

r की गणना मे ये सभी सूत्र समरूप है तथा समको के किसी समूह के लिए इन सभी सूत्रो से r का मान समान प्राप्त होता है। इसीलिए परिस्थितिनुसार उपयुक्त सूत्र का प्रयोग करके सहसम्बन्ध गुणांक का मान ज्ञात किया जा सकता है। अन्तिम सूत्र का प्रयोग वहुतायतः से किया जाता है।

उदाहरण—5 छात्रो के लिए बुद्धिलब्धि व समायोजन परीक्षणो पर प्राप्तांक नीचे दिये जा रहे हैं। गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक की गणना करो।

बुद्धिलब्धि (X)	113	121	95	135	75
समायोजन प्राप्तांक (Y)	10	14	8	12	6

हल—गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक का सूत्र है—

$$r = \frac{N\sum XY - \sum X \sum Y}{\sqrt{[N\sum X^2 - (\sum X)^2][N\sum Y^2 - (\sum Y)^2]}}$$

सूत्र के विभिन्न पदों की गणना करने के लिए निम्न सारणी बनाने पर—

छात्र	X	X^2	Y	Y^2	XY
1	113	12769	10	100	1130
2	121	14641	14	196	1694
3	95	9025	8	64	760
4	135	18225	12	114	1620
5	75	5625	6	36	450
N = 5	$\sum X = 539$	$\sum X^2 = 60285$	$\sum Y = 50$	$\sum Y^2 = 540$	$\sum XY = 5654$

सारणी से सूत्र मे मान रखने पर

$$r = \frac{5 \times 5654 - 539 \times 50}{\sqrt{[5 \times 60285 - 539 \times 539][5 \times 540 - 50 \times 50]}}$$

$$= \frac{28270 - 26950}{\sqrt{10904 \times 200}} = \frac{1320}{1476.75}$$

$$= \cdot 89$$

अत: गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक $r = \cdot 89$

प्राप्त r = .89 की व्याख्या; छात्रो की बुद्धिलब्धि व समायोजन प्राप्तांको के लिए r का मान .89 है। स्पष्ट है कि यह r धनात्मक तथा अत्यन्त उच्च श्रेणी का है। इस उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्रो मे बुद्धि व समायोजन क्षमता लगभग साथ-साथ घटती व बढ़ती है। जो छात्र अधिक बुद्धिमान होता है वह अधिक समायोजित भी होता है।

उदाहरण—कक्षा 10 के 12 छात्रो को सामान्य ज्ञान परीक्षण तथा स्मृति विस्तार परीक्षण दिये गये। उनके प्राप्तांक निम्नानुसार थे। क्या दोनो परीक्षणों पर प्राप्त अंकों में सहसम्बन्ध है?

छात्र	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
सामान्य परीक्षण	13	20	25	18	17	16	12	23	20	22	18	15
स्मृति विस्तार परीक्षण	14	19	25	19	14	17	16	21	22	21	19	18

हल—गुणनफल आघूर्ण विधि से सहसम्बन्ध गुणाक ज्ञात करने का सूत्र है

$$r = \frac{N\Sigma XY - \Sigma X.\Sigma Y}{\sqrt{[N\Sigma X^2 - (\Sigma X)^2]\,[N\Sigma Y^2 - (\Sigma Y)^2]}}$$

गुणनफल-आघूर्ण सहसम्बन्ध की गणना करने के लिए सारणी बनाने पर

छात्र	X	X^2	Y	Y^2	XY
1	13	169	14	169	182
2	20	400	19	361	380
3	25	625	25	625	625
4	18	324	19	361	342
5	17	289	14	196	238
6	16	256	17	289	272
7	12	144	16	256	192
8	23	529	21	441	483
9	20	400	22	484	440
10	22	484	21	441	462
11	18	324	19	391	342
12	15	225	18	324	270
N=12	$\Sigma X=219$	$\Sigma X^2=4169$	$\Sigma Y=225$	$\Sigma Y^2=4335$	$\Sigma XY=4228$

सारणी से स्पष्ट है कि

$\Sigma X = 219$ $\quad\quad$ $\Sigma Y = 225$

$\Sigma X^2 = 4169$ $\quad\quad$ $\Sigma Y^2 = 4335$

$\Sigma XY = 4228$

$N = 12$

सूत्र मे विभिन्न मान रखने पर

$$r = \frac{12 \times 4228 - 219 \times 225}{\sqrt{[12 \times 4169 - 219 \times 219]\,[12 \times 4335 - 225 \times 225]}}$$

$$= \frac{50736-49275}{\sqrt{2067 \times 1395}} = \frac{1461}{1698.16}$$

$= \cdot 86$ अत गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणाक $r = 86$

प्राप्त $r = \cdot 86$ की व्याख्या : कक्षा 10 के छात्रो द्वारा सामान्य ज्ञान तथा स्मृति विस्तार परीक्षणो पर प्राप्ताको के बीच ·86 का सहसम्बन्ध गुणाक है। स्पष्ट है कि यह सहसम्बन्ध गुणाक अत्यन्त उच्च धनात्मक श्रेणी का है। अत. इस सहसम्बन्ध गुणाक के आधार पर कहा जा सकता है, कि जिस छात्र ने सामान्य ज्ञान परीक्षण पर अधिक अक प्राप्त किये है उसकी प्रवृत्ति स्मृति विस्तार परीक्षण पर भी अधिक अक प्राप्त करने की है तथा जिस छात्र ने सामान्य ज्ञान परीक्षण मे कम अक प्राप्त किये है उसकी प्रवृत्ति स्मृति विस्तार परीक्षण पर भी कम अंक प्राप्त करने की है।

समंकों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन
(Graphical Representation of Data)

समको को जनसाधारण के लिए उपयोगी व वोधमय वनाने के लिए इन्हे रेखाचित्रो के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। रेखाचित्रो की सहायता मे प्रदर्शित समक सरलता व शीघ्रता से समझ मे आ जाते है तथा अधिक समय तक स्मरणीय रहते है समको को रेखाचित्रों की सहायता से प्रदर्शित करने की कुछ प्रमुख विधियाँ—दड आरेख, वृत्त चित्र, दडाकृति, आवृत्ति वहुभुज, आवृत्ति वक्र, सचयी आवृत्ति वक्र तथा प्रतिशत सचयी आवृत्ति वक्र है।

दंड आरेख
(Bar Diagram)

किसी समूह में विभिन्न गुणों वाले छात्रो की सख्या को प्रदर्शित करने के लिए दड आरेख का उपयोग किया जाता है। जैसे यदि किसी समूह में 6 लड़के व 4 लडकियाँ हो तो इन्हे निम्न ढग से प्रदर्शित किया जा सकता है·
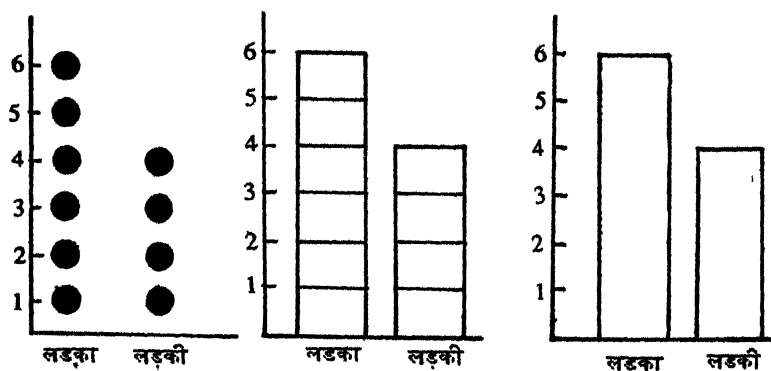
चित्र 42 छह लड़कों व चार लड़कियों का रेखाचित्रीय निरूपण

स्पष्ट है कि लडके-लडकियों की सख्या को प्रथम चित्र मे डॉटो (•) से, द्वितीय चित्र मे आयतों की सख्याओ से, व तृतीय चित्र मे दड की लम्वाई के द्वारा इगित किया गया है। इस तृतीय प्रकार के चित्रण को ही दड आरेख कहा जाता है तथा इसका वनाना सर्वाधिक सरल होने के कारण साधारणत इसी का प्रयोग किया जाता है। दड की लम्वाई छात्रो की सख्या या आवृत्तियों के अनुपात मे रखी जाती है। दड आरेख लम्ववत या क्षैतिज किसी भी दिशा मे वनाया जा सकता है। दड आरेख मे विभिन्न रगो या विभिन्न प्रकार की रेखाओ को भर देने से यह अधिक आकर्षक वन जाता है। कुछ दड आरेख आगे प्रस्तुत किये जा रहे है। दो या अधिक समूहो की मध्यमान योग्यता को भी दंड आरेख की सहायता से प्रस्तुत किया जा सकता है।

उदाहरण—किसी विद्यालय की कक्षा 6, 7 व 8 के छात्रो के लिए सामान्य ज्ञान परीक्षण पर प्राप्त अकों के मध्यमान निम्नवत थे। इस सूचना को रेखाचित्र के रूप मे प्रस्तुत करो—

कक्षा	मध्यमान
VI	42
VII	47
VIII	61
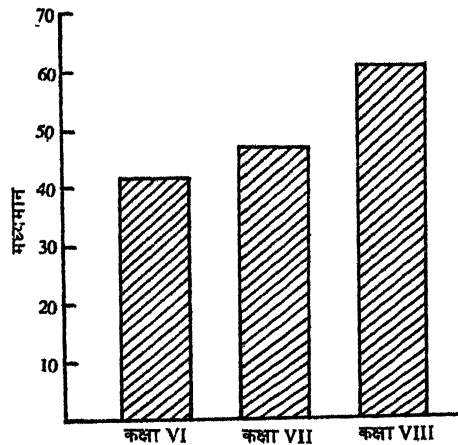
चित्र 43 विभिन्न कक्षाओ का मध्यमान

उदाहरण—किसी महाविद्यालय मे अध्ययन रत छात्र-छात्राओ की सख्या निम्नानुसार थी । इन समको को दड आरेख के रूप मे प्रस्तुत करो

सकाय	छात्र	छात्राऐ	कुल
कला	800	600	1400
विज्ञान	600	300	900
वाणिज्य	500	200	700
विधि	400	150	550
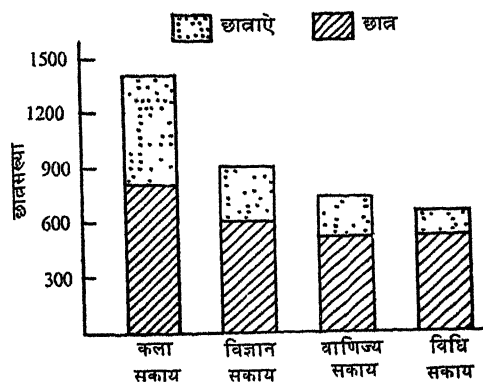
चित्र 44 विभिन्न सकायो मे छात्र संख्या.

वृत्त चित्र
(Pie-Diagram)

वृत्त चित्र को कोणीय चित्र भी कहते है तथा इसका प्रयोग साधारणत: किसी समूह की सरचना या गठन (Composition) को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है । वृत्त के केन्द्र मे 360 अश का कोण होता है । इस कोण को समूह के विभिन्न उपसमूहों मे छात्रों की सख्या के अनुरूप उपसमूहों की सख्या के बराबर भागो मे विभाजित कर लिया जाता है । प्रत्येक वृत्त खड उससे सम्बन्धित उपसमूह मे छात्रो की सख्या को प्रदर्शित करता है । वृत्त चित्र बनाने के लिए पहले विभिन्न उपसमूहों के लिए कोण का मान ज्ञात कर लिया जाता है तथा फिर एक वृत्त बनाकर उस वृत्त को प्रोटेक्टर की सहायता से वाछित कोण वाले वृत्त खडो मे विभक्त कर लिया जाता है । विभिन्न वृत्त खडों को विभिन्न रगो से या अलग-अलग प्रकार की रेखाओ से भर कर वृत्त चित्र को अधिक आकर्षक बना दिया जाता है । उदाहरण के लिए यदि किसी महाविद्यालय मे पढने वाले कुल 2400 छात्रो मे से 600 छात्र वाणिज्य वर्ग के, 1000 छात्र कला वर्ग के तथा 800 छात्र विज्ञान वर्ग के हो

तो उस महाविद्यालय के छात्रो की सरचना निम्न ढग से वृत्त चित्र द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है —

क्योकि कुल 2400 छात्र व्यक्त होने 360 अशों से

अत 800 छात्र व्यक्त होगे $\frac{360 \times 800}{2400} = 120°$ से

अत: 1000 छात्र व्यक्त होगे $\frac{360 \times 1000}{2400} = 150°$ से

अत 600 छात्र व्यक्त होगे $\frac{360 \times 600}{2400} = 90°$ से

समंक : विभिन्न वर्गों के छात्रों की संख्या

वर्ग	छात्र	अश
विज्ञान वर्ग	800	120
कला वर्ग	1000	150
वाणिज्य वर्ग	600	90
कुल	2400	360
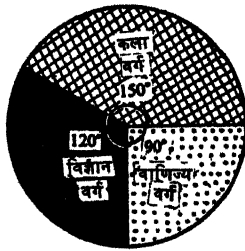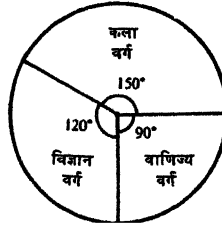
चित्र 45 छात्र संरचना

आवृत्ति दण्डाकृति, बहुभुज व वक्र
(Frequency Histogram, Polygon and Curve)

आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित समंकों को भी दंडाकृति (Histogram) के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। दंडाकृति को ग्राफ पेपर पर बनाना अधिक सरल

होता है। दडाकृति बनाते समय प्राप्ताक वर्गों को क्षैतिज रेखा पर तथा आवृत्तियो को लववत् रेखा पर लिखा जाता है। इसे बनाने के लिए सबसे पहले पैमाना बना लेते है कि कितने खानों या दूरी से एक आवृत्ति को तथा कितने खानो या दूरी से एक प्राप्ताक वर्ग को व्यक्त किया जायेगा। पैमाना बनाते समय ध्यान रखना चाहिए कि चित्र की ऊँचाई व चौडाई में लगभग 2 व 3 अथवा 3 व 4 का अनुपात रहे। इससे आकृति अधिक आकर्षक प्रतीत होती है। आकृति मे खाली स्थान को कम करने के लिए कृत्रिम आधार रेखाओ का प्रयोग किया जा सकता है। कृत्रिम आधार रेखा में लम्बवत या क्षैतिज रेखा के उस भाग को व्यक्त नही करते है जिसका कोई विशेष महत्व नही हो तथा इस बात को लम्ब या आधार रेखा पर चिन्ह से व्यक्त करते हैं। आवृत्ति वितरण, से दडाकृति बनाने की विधि निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो सकेगी।

प्राप्ताक वर्ग	f
33 – 37	2
28 – 32	4
23 – 27	7
18 – 22	5
13 – 17	3
8 – 12	1
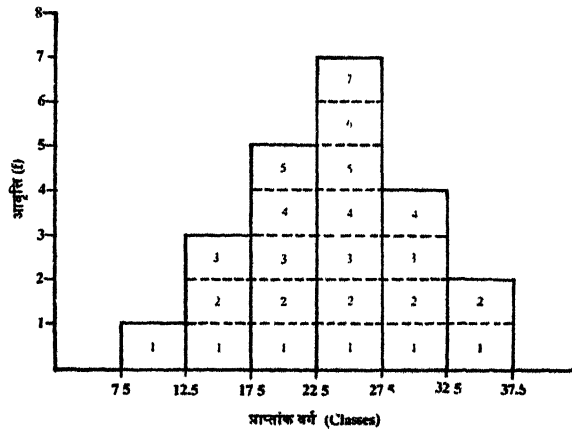
चित्र 46 आवृत्ति दण्डाकृति

यदि दंडाकृति के विभिन्न दंडों की ऊपरी रेखाओं के मध्यविन्दुओं को मिला दिया जाये तो एक बहुभुज के आकार का चित्र प्राप्त हो जायेगा। इस चित्र को आवृत्ति बहुभुज (Frequency Polygon) कहते हैं। आवृत्ति बहुभुज बनाने के लिए आवृत्ति वितरण में सबसे नीचे व सबसे ऊपर एक-एक वर्ग जोड़ लेते हैं तथा उनकी आवृत्ति शून्य मान लेते हैं। तत्पश्चात विभिन्न वर्गों की कुल आवृत्तियों को उन वर्गों के मध्य विन्दुओं पर केन्द्रित

मान कर विन्दुओ के द्वारा प्रदर्शित कर लेते है तथा फिर इन सब विन्दुओ को क्रम से सरल रेखाओ के द्वारा मिला देते है। इस प्रकार से आवृत्ति बहुभुज प्राप्त हो जाता है। स्पष्ट है कि आवृत्ति बहुभुज के विभिन्न शीर्ष विभिन्न वर्गों की आवृत्तियों को व्यक्त करते है। यदि आवृत्ति बहुभुज के शीर्षों को गोल करके बहुभुज को सरलित वक्र का रूप दे दिया जाये तो प्राप्त वक्र को आवृत्ति वक्र (Frequency Curve) कहते हैं।
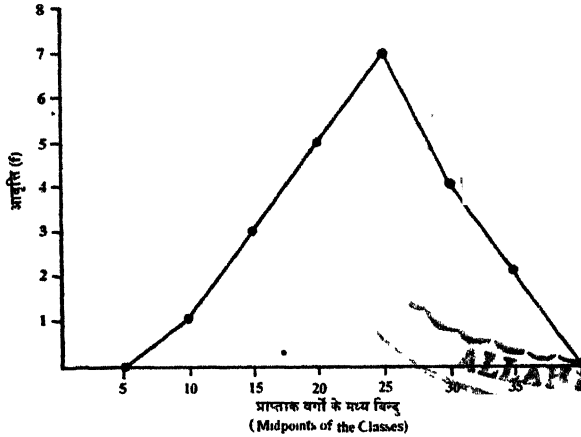
चित्र 47 आवृत्ति वहु
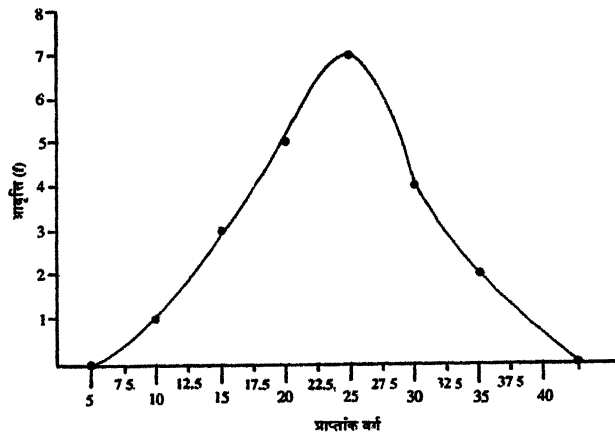
चित्र 48 आवृत्ति वक्र

वास्तव में आवृत्ति दडाकृति, आवृत्ति वहुभुज तथा आवृत्ति वक्र समको को प्रदर्शित करने की लगभग एक जैसी रेखाचित्रिय विधियाँ है तथा तीनो लगभग एक ही प्रकार की सूचना प्रदान करते है। इन तीनों मे क्रमश दण्डो, वहुभुज का कुल क्षेत्रफल तथा वक्र का कुल क्षेत्रफल समूह के कुल सदस्यों की सख्या को प्रदर्शित करता है। एक ही चित्र मे दडाकृति, वहुभुज व वक्र तीनो भी वनाये जा सकते है।
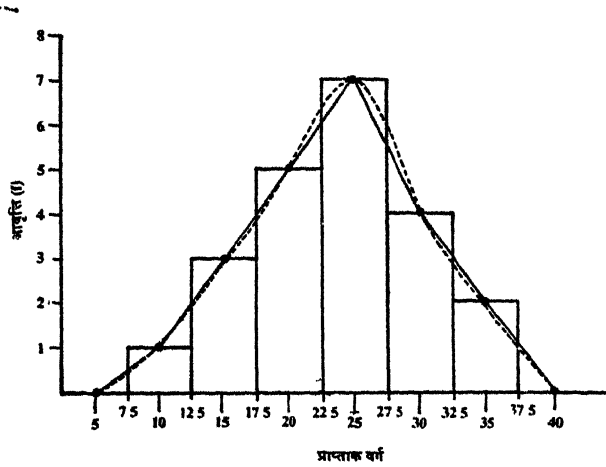
चित्र 49 आवृत्ति दण्डाकृति, वहुभुज तथा वक्र एक ही चित्र मे

संचयी आवृत्ति वक्र
(Cumulative Frequency Curve)

जव सचयी आवृत्तियों को लेकर आवृत्ति वक्र वनाया जाता है तो प्राप्त वक्र को सचयी आवृत्ति वक्र कहते है। संचयी आवृत्ति वक्र बनाते समय विभिन्न वर्गों की सचयी आवृत्तियों को उन वर्गों की उच्च सीमाओ पर अकित करते है। निम्न सारणी मे प्रस्तुत समको के लिए सचयी आवृत्ति वक्र आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्ग	f	cf
81 — 88	3	80
73 — 80	5	77
65 — 72	10	72
57 — 64	15	62
49 — 56	19	47
41 — 48	12	28
33 — 40	9	16
25 — 32	4	7
17 — 24	3	3
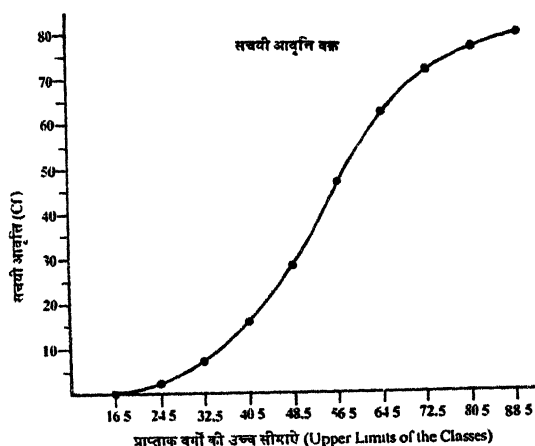
चित्र 50 सचयी आवृत्ति वक्र

प्रतिशत संचयी आवृत्ति वक्र या तोरण

(Percentage Cumulative Frequency Curve or Ogive)

जब सचयी आवृत्तियों को प्रतिशतों में परिवर्तित करके वक्र बनाया जाता है तो प्राप्त वक्र को प्रतिशत संचयी आवृत्ति वक्र या तोरण (Ogive) कहते हैं। प्रतिशत सचयी आवृत्ति वितरण बनाने के लिये सबसे पहले सचयी आवृत्तियो को प्रतिशत सचयी आवृत्तियों, जिन्हें % cf से प्रदर्शित करते हैं, मे बदल लेते है। इसके लिये विभिन्न वर्गों की संचयी आवृत्तियों को 100 से गुणा करके N से भाग कर देते है। इसके उपरात इन प्रतिशत संचयी आवृत्तियो को उनके सापेक्ष वर्गों के उच्च विन्दुओं पर अकित करके वक्र बना लेते है। सारणी में प्रस्तुत समंकों के लिये प्रतिशत सचयी आवृत्ति वक्र या तोरण को आगे प्रस्तुत किया गया है।

वर्ग	f	cf	% cf
57 – 62	3	60	100.0
51 – 56	4	57	95.0
45 – 50	7	53	88.3
39 – 44	12	46	76.7
33 – 38	16	34	56.7
27 – 32	9	18	30.0
21 – 26	6	9	15.0
15 – 20	3	3	5.0
N = 60			
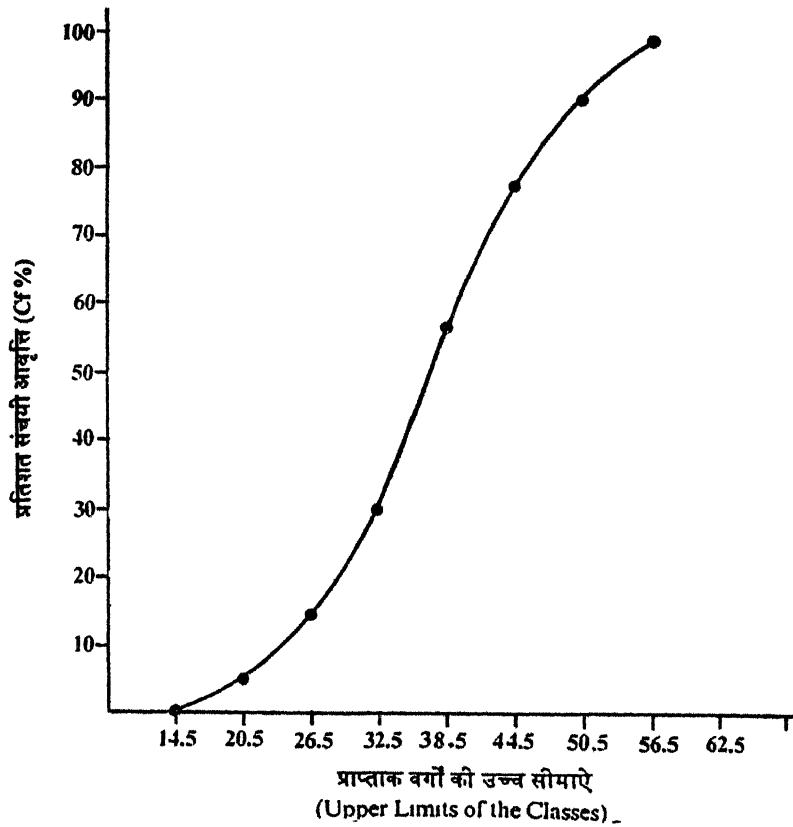
चित्र 51 प्रतिशत सचयी आवृत्ति वक्र अथवा तोरण

समंकों के रेखाचित्रीय प्रदर्शन की उपरोक्त वर्णित विधियों के अवलोकन से पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि रेखाचित्र वास्तव मे समको की नीरसता को समाप्त करके उन्हे आकर्षक तथा प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करने की एक अत्यन्त उपयोगी विधा है। रेखाचित्रों के रूप में प्रस्तुत सूचनाये सरस, आकर्षक, बोधगम्य तथा अधिक समय तक स्मरण रहती है। इनकी सहायता से एक ही नजर मे समको का ज्ञान हो जाता है। रेखाचित्र दो या दो से अधिक समूहों की तुलना करने के कार्य मे भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं।

REFERENCE BOOKS

1. Allport, F H. : *Social Psychology.* Boston : Hofton Mifflin, 1924.
2. Allport, G.W. : *Personality . A Psychological Interpretation,* New York : Henary Halt, 1937
3. Anastasi, A. : *Psychological testing.* New York : The McMillan Company, 1968.
4. Beaumont, H. and McComber, F.G : *Psychological Factors in Education.* New York : McGraw Hill Book Company, 1949.
5. Berrill, N.J. : *The Person in the Womb.* New York · Dodd and Mead, 1968.
6. Bigge M.L., *Learning Theories for Teachers* New York : Harper and Row, 1964.
7. Bijou, S.W. and Bear, D.M. : *Child Development (Both Vols),* New York : Appleton, 1964.
8. Bruce, W.F., and S.F. Freeman : *Development and Learning.* Boston Houghton Miffin Company, 1942.
9. Bruner, J.S. : *The Relevance of Education.* New York . Norton, 1971.
10. Cattell, R.B : *Personality and Motivation.* New York : Harcourt, 1957.
11. Cole, Lawrence E., and Bruce, W.F. . *Educational Psychology.* New York : World Book Company, 1950.
12. Commins, W.D. : *Principles of Educational Psychology.* New York . The Ronald Press Company, 1937.
13. Cronback, L.J. : *Educational Psychology.* New York : Harcort Brace, 1954.
14. Crow, L.D. : and Crow, A. : *Educational Psychology.* New York : American Book Company, 1948.
15. Cruickshank, W. M and Johnson, G.O. : *Education of Exceptional Children and Youth.* Englowood Cliffs : Prentice Hall, 1958.
16. Cruze, W.W. : *Educational Psychology.* New York : The Ronald Press Company, 1942.
17. Davis, R.A. · *Educational Psychology* New York : McGraw Hill Book Company, 1948.
18. Douglas, O B and Holland, B.F. . *Educational Psychology.* New York : The Macmillan Company, 1938.
19. Ellis, R.S. : *Educational Psychology.* New York : D. Van Nostrand Company, Inc., 1951.

20. Eurich, A.C. and Carroll, H.A *Educational Psychology* Boston, D.C., Heath and Company, 1935
21. Fletcher, J.M. : *Psychology in Education*. New York, Obyssey Press, 1949.
22. Gates, A.I., Jersild, A.T., McConneli, T.R., and Challman, R.C. : *Educational Psychology*. New York . The MacMillan Company, 1948.
23. Griffith, C.R. : *An Introduction to Educational Psychology*. New York : The Rinehart & Company, 1935.
24. Griffth, C R. : *Psychology Applied to Teaching and Learning* New York : Rinehart & Company. 1939
25. Guilford, J.P. : *The Nature of Human Intelligence* New York : McGraw Hill, 1967.
26. Guthrie, Edwin R. & Powers, Francis *Educational Psychology* New York : The Ronald Press Company, 1950.
27. Hall, C.S. and Lindzey, G . *Theories of Personality*. New York : Wiley, 1957.
28. Hartman, G.W. : *Educational Psychology*, New York American Book Company, 1941.
29. Hurlock, E.B. : *Child Development*. New York : MacMillan Co., 1972
30. Hollingworth, H.L. : *Educational Psychology*. New York : Appleton Century-Crofts, Inc., 1933.
31. Jordan, A.M. : *Educational Psychology*. New York : Henry Holt & Company, 1942.
32. Judd., C.H. : *Educational Psychology*. Boston : Houghton Miffin Company, 1939.
33. Kelly, W. : *Educational Psychology*. Milwaukee Bruce Publishing Company, 1946.
34. Kingsley, H.L. : *Nature and Conditions of Learning*. New York : Prentice Hall, Inc., 1946.
35. La Rue, D.W. : *Educational Psychology*. New York · Thomas Nelson & Sons, 1939.
36. Leary, D.B. : *Educational Psychology*. New York : Thomas Nelson & Sons. 1934.
37. Maslow, A.H. : *Motivation and Personality*. New York : Harper and Row, 1954.
38. Mursell, J.L. : *Educational Psychology*, New York : W.W. Norton & Company, 1939.
39. Mursell, J.L. : *Developmental Teaching*. New York : McGraw Hill Book Company, 1949.

अनुक्रमाणिका